



ONLYIAS
BY PHYSICS WALLAH

NCERT WALLAH

NCERT की पुस्तकों का सार



सिविल सेवा परीक्षाओं हेतु



ONLYIAS
BY PHYSICS WALLAH

NCERT WALLAH

NCERT की पुस्तकों का सार

आजादी के बाद का भारत और विश्व इतिहास

सिविल सेवा परीक्षाओं हेतु



EDITION: First

Published By: Physicswallah Private Limited

Physics Wallah

ISBN:

MRP:

Mobile App: Physics Wallah (Available on Play Store)



Website: www.pw.live

Youtube Channel: Physics Wallah - Alakh Pandey

Physics Wallah Foundation

Competition Wallah

NCERT Wallah

Email: publication@pw.live

SKU Code: cc90f110-6506-4727-b0fa-d0e0351c8105

अधिकार

इस मॉड्यूल के सभी अधिकार लेखक और प्रकाशक के पास सुरक्षित हैं। लेखक या प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना इसका किसी भी तरह से उपयोग या पुनरुत्पादन नहीं किया जाएगा।

अस्वीकरण: यह मॉड्यूल छात्रों को संबंधित विषय का अध्ययन करने के लिए सामग्री प्रदान करने के उद्देश्य से विभिन्न स्रोतों से बनाया गया संकलन है। सभी सामग्री/सूचना/डेटा में मानवीय त्रुटि के कारण कुछ प्रकार की गलतियाँ हो सकती हैं, इसलिए सरकारी प्रकाशन, पत्रिकाओं, अधिसूचनाओं और मूल पांडुलिपियों के साथ डेटा का संदर्भ लेना उचित है।

इस सामग्री/सूचना/डेटा का उद्देश्य बौद्धिक संपदा के वास्तविक स्वामी के मूल कार्य/पांडुलिपियों पर किसी भी प्रकार के कॉपीराइट का दावा करना नहीं है। साथ ही, जैसा कि इस मॉड्यूल में दिए गए लेखक द्वारा प्रदान की गई सामग्री/सूचना/डेटा के संकलन/संपादन में हर संभव प्रयास किया गया है, प्रकाशक मॉड्यूल की सामग्री/सूचना/डेटा से उत्पन्न किसी भी अशुद्धि या किसी भी कानूनी कार्यवाही के लिए कोई वारंटी और दायित्व नहीं लेता है।

(यह मॉड्यूल केवल शैक्षिक उद्देश्य के लिए उपयोग किया जाएगा)

भूमिका

प्रिय पाठको

सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी में NCERT की पुस्तकों का महत्त्व नाभिकीय है। यद्यपि NCERT की पुस्तकों का प्रकाशन सामान्यतः माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक में अध्ययनरत विद्यार्थियों के लिए किया जाता है, परंतु सिविल परीक्षा की तैयारी के लिए भी ये पुस्तकें केंद्रीय महत्त्व रखती हैं। इसका मूल कारण यह है कि माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक ही वे कक्षाएँ हैं, जहाँ से किसी भी विद्यार्थी के अध्ययन एवं समझ की बुनियाद निर्मित होती है। इन कक्षाओं में ही सामान्य अध्ययन के विभिन्न विषयों की एक समग्र समझ विद्यार्थियों में विकसित की जाती है। इसी बुनियाद के आधार पर आगे के अध्ययन की दुनिया के विभिन्न शिखर स्थापित होते हैं। अगर किंचित कारणों से यह बुनियाद कमजोर रह जाती है अथवा इनका यथोचित विकास नहीं हो पाता है, तो इस स्थिति में आगे के अध्ययन की दुनिया उतनी ही संकीर्ण नींव पर खड़ी दुर्बल प्रतीत होती है। माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक अध्ययन के दौरान विविध सामाजिक, आर्थिक तथा पृष्ठभूमिगत कारणों से विभिन्न विद्यार्थियों की बुनियादी समझ का स्तर भी समान नहीं होता। कुछ विद्यार्थियों को इस दौरान शीर्ष विद्यालय एवं श्रेष्ठ शिक्षकों से पढ़ने का अवसर मिलता है तो कई सारे विद्यार्थियों को ये सारे अवसर नहीं प्राप्त हो पाते, इसलिए आगे सिविल सेवा जैसे परीक्षाओं की तैयारी में भी वे शुरुआत में ही बुनियादी रूप से पिछड़ जाते हैं। तैयारी की शुरुआत में ही उत्पन्न इस गहरे अंतराल को पाटने के लिए NCERT की माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक की पुस्तकों को पुनः पढ़ने की सलाह दी जाती है ताकि छठी कक्षा से बारहवीं कक्षा के समय उत्पन्न हुआ बुनियादी अंतराल आगे अवरोधक न बने और तैयारी की शुरुआत समान स्तर से की जा सके। इसके अलावा जिन्होंने अपने माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक के दौरान बेहतर तरीके से अपनी बुनियाद तैयार की है, वे भी रिवीजन के द्वारा इसे और सुदृढ़ कर सकें ताकि आगे की यात्रा आसान हो सके। इसके अलावा पिछले कुछ वर्षों में ऐसे अभ्यर्थियों की संख्या काफी तेजी से बढ़ी है, जो दसवीं के बाद ही सिविल सेवा की तैयारी शुरू कर देते हैं। इन विद्यार्थियों के लिए यह स्वर्णिम अवसर होता है, जब वे अपनी बुनियादी समझ को बेहतर कर सकें और इसके लिए NCERT की पुस्तकें सर्वश्रेष्ठ माध्यम सिद्ध होती हैं।

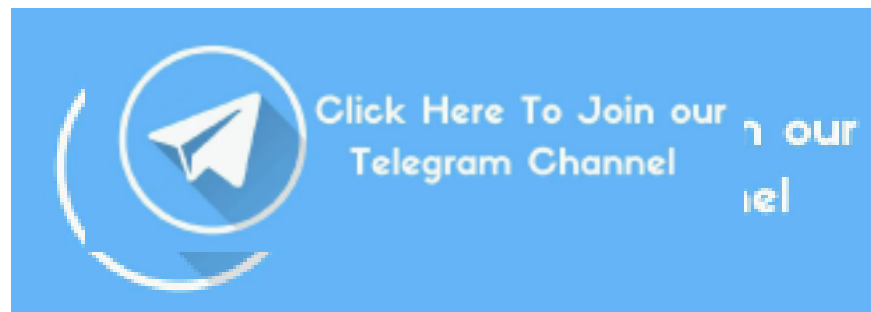
NCERT की पुस्तकों की विशेषता यह है कि यह बिल्कुल आधारभूत स्तर से शुरुआत करती हैं। इनके मूल अध्येता छठी से बारहवीं स्तर के विद्यार्थी होते हैं, इसलिए इसकी संरचना में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि यह उस कक्षा के विद्यार्थियों के लिए आसानी से ग्राह्य हो। इसलिए भी यह पुस्तक तैयारी के दौरान स्टार्टर की तरह कार्य करती है, जहाँ बिना अधिक बोझिल हुए आसानी से तैयारी की यात्रा में प्रवेश किया जा सके। चूँकि ये पुस्तकें विभिन्न कक्षाओं के लिए तैयार की गई हैं इसलिए एक ही विषय, यहाँ तक कि एक ही टॉपिक विभिन्न कक्षाओं में भिन्न-भिन्न स्तर के होते हैं। उदाहरण के लिए छठी कक्षा की सामाजिक विज्ञान की पुस्तक में इतिहास अथवा भूगोल का जो स्तर होगा वह बारहवीं कक्षा के उसी टॉपिक से बिल्कुल अलग होगा तथा मात्र प्रवेशकीय स्वरूप का होगा। एक सिविल सेवा की तैयारी करने वाले अभ्यर्थी के लिए अलग-अलग कक्षाओं की पुस्तकों से एक ही टॉपिक को अलग-अलग पढ़ना एक समय साध्य कार्य होता है। इसके अलावा, स्कूल के विद्यार्थियों की समझ के लिए प्रस्तुतीकरण के रोचक चित्र आदि भी इस समय उतने महत्वपूर्ण मालूम नहीं होते। इस स्थिति में जरूरत महसूस होती है एक ऐसी पुस्तक की जो एक ही विषय, यहाँ तक कि एक ही टॉपिक के विभिन्न महत्वपूर्ण बिंदुओं को अलग-अलग NCERT से एक जगह संकलित कर दे और उनका प्रवाह इतना गतिमान कर दे कि वह हमारी बुनियाद सुदृढ़ करने के साथ-साथ पढ़ने में भी रोचक प्रतीत हो। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए PWOnlyIAS द्वारा NCERT पुस्तकों की यह शृंखला तैयार की गई है। NCERT पुस्तकों की इस शृंखला को सिविल सेवा परीक्षा के पाठ्यक्रम के अनुसार विषयवार रूप से विभाजित किया गया है। इन पुस्तकों में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि छठी से लेकर बारहवीं तक की पुस्तकों में दी गई कोई भी अवधारणा या कोई भी बिंदु, जो सिविल सेवा परीक्षा के अनुरूप महत्वपूर्ण हो, वह न छूटे, बल्कि अगर कहीं अवधारणा समग्रता में स्पष्ट न हो पा रही हो तो उसे अपनी ओर से नोट्स, टेबल एवं रेखाचित्र आदि द्वारा समग्रता प्रदान की जा सके।

पुस्तकों को पढ़ना ही पर्याप्त नहीं होता, बल्कि पठित की जाँच के लिए उसका अभ्यास भी अनिवार्य होता है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए इस शृंखला में विषयवार रूप से विभाजित चार वर्क बुक को भी शामिल किया गया है, जिनमें सिविल सेवा परीक्षा के अनुरूप विभिन्न विषयों के अभ्यास-प्रश्नों को सम्मिलित किया गया है। ये अभ्यास-प्रश्न इस स्वरूप में तैयार किए गए हैं कि ये प्रश्न NCERT की पुस्तकों के रिवीजन की स्व-पुष्टि कर सकें तथा इस माध्यम से सिविल सेवा परीक्षा के प्रश्नों का अभ्यास भी हो सके।

अब आपको पुस्तक सौंपते हुए हम आशा कर रहे हैं NCERT पुस्तकों की यह सीरीज आपके लिए उपयोगी सिद्ध होगी। पुस्तक से संबंधित किसी भी प्रकार के सुझाव एवं शिकायतों के लिए हमें अवश्य लिखें। आपकी महत्वपूर्ण प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा रहेगी।

शुभकामनाएँ!

Join Telegram: @apna_library



Search On TG: @apna_pdf

विषय-सूची

आजादी के बाद का भारत		
1.	राष्ट्र निर्माण की चुनौतियाँ	3-13
2.	एक दल के प्रभुत्व का दौर	14-21
3.	नियोजित विकास की राजनीति	22-25
4.	भारत के विदेश संबंध	26-29
5.	कांग्रेस प्रणाली: चुनौतियाँ और पुनर्स्थापना	30-38
6.	लोकतांत्रिक व्यवस्था का संकट	39-46
7.	क्षेत्रीय आकांक्षाएँ	47-59
8.	भारतीय राजनीति: नए बदलाव	60-68
विश्व इतिहास		
1.	प्रारंभिक समाज	71-84
2.	साम्राज्य का उदय	85-106
3.	बदलती हुई सांस्कृतिक परंपराएँ	107-161
4.	फ्रांसीसी क्रांति	162-173
5.	यूरोप में समाजवाद एवं रूसी क्रांति	174-181
6.	नाजीवाद और हिटलर का उदय	182-193
7.	जीविका, अर्थव्यवस्था एवं समाज	194-209

8.	यूरोप में राष्ट्रवाद का उदय	210-224
9.	भूमंडलीकृत विश्व का बनना	225-231
10.	औद्योगीकरण का युग	232-242
11.	समकालीन वैश्विक विश्व व्यवस्था	243-256
12.	अंतरराष्ट्रीय संगठन	257-269
13.	वैश्वीकरण	270-275
14.	समकालीन विश्व में सुरक्षा	276-286



Join Telegram: @apna_library

आजादी के बाद का भारत

Search On TG: @apna_pdf

Join Telegram: @apna_library

Search On TG: @apna_pdf



राष्ट्र निर्माण की चुनौतियाँ

संदर्भ: इस अध्याय में NCERT पाठ्यपुस्तक की कक्षा-XII (स्वतंत्र भारत में राजनीति -II) के अध्याय-1 का सारांश शामिल है।

परिचय

स्वतंत्र भारत को अपने गठन के शुरुआती कुछ वर्षों में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा। इनमें से सबसे बड़ी चुनौतियाँ भारत की राष्ट्रीय एकता और क्षेत्रीय अखंडता से संबंधित थीं। अतः इस अध्याय को समझने के लिए, स्वतंत्रता के संदर्भ को आकार देने वाली घटनाओं और मुद्दों को समझना हमारे लिए महत्वपूर्ण है, जिससे हम समझ सकें कि स्वतंत्रता के समय राष्ट्रीय एकता एवं सुरक्षा का मुद्दा एक प्राथमिक चुनौती क्यों बन गया। उन चुनौतियों का सामना करते हुए, भारत ने खुद को एक राष्ट्र के रूप में आकार दिया, जो एक साझा इतिहास और समान नियति से एकजुट था। इस एकता को विभिन्न क्षेत्रों के लोगों की आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करना था और क्षेत्र तथा लोगों के विभिन्न वर्गों के बीच मौजूद असमानताओं से निपटना था।

नए राष्ट्र राज्य की चुनौतियाँ

□ भारत के सामने राष्ट्र निर्माण की तीन सबसे महत्वपूर्ण चुनौतियाँ थीं:

- स्वतंत्रता विभाजन के साथ आई, जिसके परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर हिंसा और विस्थापन हुआ तथा एक धर्मनिरपेक्ष भारत के विचार को चुनौती मिली।
 - रियासतों के भारतीय संघ में एकीकरण के लिए तत्काल समाधान की आवश्यकता थी।
 - विभिन्न भाषाएँ बोलने वाले लोगों की आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए देश की आंतरिक सीमाओं को नए सिरे से निर्धारित करने की आवश्यकता थी।
- 14-15 अगस्त, 1947 की मध्यरात्रि को हिंदुस्तान आजाद हुआ। स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने इस रात संविधान सभा के एक विशेष सत्र को संबोधित किया था। उनका यह प्रसिद्ध भाषण 'भाग्यवधू से चिर-प्रतीक्षित भेंट' या 'ट्रिस्ट विद् डेस्टिनी' के नाम से जाना गया।
- राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान दो मुख्य लक्ष्य थे, जिन पर सभी सहमत थे - पहला स्वतंत्रता के बाद देश लोकतांत्रिक सरकार के माध्यम से चलाया जाएगा तथा दूसरा सरकार सभी के हित के लिए मुख्य रूप से गरीब और सामाजिक रूप से वंचित समूहों के लिए, चलाई जाएगी।



चित्र 1.1: कलकत्ता 1947 - दंगा प्रभावित क्षेत्रों में शांति स्थापित करने के लिए हिंदू और मुस्लिम समुदाय के लोग, भारत और पाकिस्तान का झंडा फहराते हुए। शहर में गश्त कर रहे ट्रकों पर चढ़े इन लोगों का यह चित्र विभाजन की प्रसन्नता और त्रासदी, दोनों को एक साथ दर्शाता करता है।



चित्र 1.2: प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू लाल किले से भाषण देते हुए (15 अगस्त, 1947)

- भारत का जन्म बहुत कठिन परिस्थितियों में हुआ था। देश के विभाजन के साथ ही स्वतंत्रता प्राप्त हुई। 1947 अभूतपूर्व हिंसा और विस्थापन के आघात का साल था। फिर भी आजादी के साथ आई समस्याओं ने हमारे नेताओं को नए राष्ट्र के सामने आने वाली कई चुनौतियों से पृथक नहीं होने दिया।

तीन प्रमुख चुनौतियाँ

अनेकता में एकता

- पहली और तात्कालिक चुनौती एकता के सूत्र में बँधे एक ऐसे भारत को गढ़ने की थी जिसमें भारतीय समाज की सारी विविधताओं के लिए जगह हो। भारत अपने आकार और विविधता में किसी महादेश के बराबर था। यहाँ अलग-अलग बोली बोलने वाले लोग थे, उनकी संस्कृति अलग थी और वे अलग-अलग धर्मों के अनुयायी थे।



चित्र 1.3: हिंदुस्तान टाइम्स (19 जुलाई, 1947)

- उस वक्त आमतौर पर यही माना जा रहा था कि इतनी विविधताओं से भरा कोई देश ज्यादा दिनों तक एकजुट नहीं रह सकता। देश के विभाजन के साथ लोगों के मन में समाई यह आशंका एक तरह से सच साबित हुई थी।
- भारत के भविष्य को लेकर गंभीर सवाल खड़े थे: क्या भारत एक रह पाएगा? क्या ऐसा करने के लिए भारत सिर्फ राष्ट्रीय एकता की बात पर सबसे ज्यादा जोर देगा और बाकी उद्देश्यों को तिलांजलि दे देगा?
- क्या ऐसे में हर क्षेत्रीय और उप-क्षेत्रीय पहचान को खारिज कर दिया जाएगा? उस वक्त का सबसे तीखा और चुभता हुआ एक सवाल यह भी था कि भारत की क्षेत्रीय अखंडता को कैसे हासिल किया जाए?

लोकतंत्र की स्थापना:

- दूसरी चुनौती लोकतंत्र को कायम करने की थी। आप भारतीय संविधान के बारे में पहले ही पढ़ चुके हैं। आप जानते हैं कि संविधान में मौलिक अधिकारों की गारंटी दी गई है और हर नागरिक को मतदान का अधिकार दिया गया है।
- भारत ने संसदीय शासन पर आधारित प्रतिनिधित्वमूलक लोकतंत्र को अपनाया। इन विशेषताओं से यह बात सुनिश्चित हो गई कि लोकतांत्रिक ढाँचे के भीतर राजनीतिक मुकाबले होंगे।
- लोकतंत्र को कायम करने के लिए लोकतांत्रिक संविधान जरूरी था, किन्तु मात्र इतना ही पर्याप्त नहीं था। चुनौती यह भी थी कि संविधान से भले खाते जुड़े और संबंधित लोकतांत्रिक व्यवहार समाज में समाहित हो जाएँ।

विकास और कल्याण:

- तीसरी चुनौती थी- ऐसे विकास की जिससे समूचे समाज का भला होता हो न कि कुछ एक तबकों का। इस मोर्चे पर भी संविधान में यह बात साफ़ कर दी गई थी कि सबके साथ समानता का व्यवहार किया जाए और सामाजिक रूप से वंचित तबकों तथा धार्मिक-सांस्कृतिक अल्पसंख्यक समुदायों को विशेष सुरक्षा दी जाए।
- संविधान ने भाग- IV “राज्य की नीति के निदेशक सिद्धांतों” के अंतर्गत लोक-कल्याण के उन लक्ष्यों को भी स्पष्ट कर दिया था, जिन्हें सरकार को अनिवार्य रूप से पूर्ण करना चाहिए।
- अब वास्तविक चुनौती आर्थिक विकास तथा गरीबी की समाप्ति के लिए कारगर नीतियों को तैयार करने की थी।



चित्र 1.4: ये तीनों डाक टिकट 1950 में 26 जनवरी, 1950 को प्रथम गणतंत्र दिवस के उपलक्ष्य में जारी किए गए थे।

विभाजन: विस्थापन और पुनर्वास

14-15 अगस्त, 1947 को एक नहीं बल्कि दो राष्ट्र-भारत और पाकिस्तान-अस्तित्व में आए। ऐसा 'विभाजन' के कारण हुआ, जिसमें ब्रिटिश इंडिया को 'भारत' और 'पाकिस्तान' के रूप में बाँट दिया गया। आपने इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में उस राजनीतिक घटनाक्रम के बारे में पढ़ा है जिसके फलस्वरूप दोनों देशों के भू-भाग को रेखांकित करते हुए सीमा-रेखा खींच दी गई। मुस्लिम लीग ने 'द्वि-राष्ट्र सिद्धांत' की बात की थी। इस सिद्धांत के अनुसार भारत किसी एक कौम का नहीं बल्कि 'हिंदू' और 'मुसलमान' नाम की दो कौमों का देश था और इसी कारण मुस्लिम लीग ने मुसलमानों के लिए एक अलग देश यानी पाकिस्तान की माँग की। कांग्रेस ने 'द्वि-राष्ट्र सिद्धांत' तथा पाकिस्तान की माँग का विरोध किया। बहरहाल, सन् 1940 के दशक में राजनीतिक मोर्चे पर कई बदलाव आए; कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच राजनीतिक प्रतिस्पर्धा तथा ब्रिटिश शासन की भूमिका जैसे कई विषय महत्वपूर्ण रहे। तथा पाकिस्तान के निर्माण की बात स्वीकार कर ली गई।

कल हम ब्रिटिश शासन की गुलामी से मुक्त हो जाएंगे। लेकिन आधी रात को भारत का विभाजन हो जाएगा। इस प्रकार कल का दिन खुशी के साथ-साथ शोक का भी दिन होगा।

महात्मा गांधी (14 अगस्त, 1947 - कोलकाता)

विभाजन की प्रक्रिया

- ❑ फैसला हुआ कि अब तक जिस भू-भाग को 'इंडिया' के नाम से जाना जाता था उसे 'भारत' और 'पाकिस्तान' नाम के दो देशों के बीच बाँट दिया जाएगा। यह विभाजन दर्दनाक तो था ही, इस पर फैसला करना और अमल में लाना और भी कठिन था। तय किया गया कि धार्मिक बहुसंख्या को विभाजन का आधार बनाया जाएगा। इसके मायने यह थे कि जिन इलाकों में मुसलमान बहुसंख्यक थे वे इलाके 'पाकिस्तान' के भू-भाग होंगे और शेष हिस्सा 'भारत' कहलाएगा।
- ❑ यह निर्णय निम्नलिखित चुनौतियों से भरा हुआ था:
 - सबसे पहले, ब्रिटिश भारत में मुस्लिम बहुल इलाकों का कोई एक क्षेत्र नहीं था, दो इलाके थे- पश्चिम में और एक पूर्व में। इसलिए यह तय हुआ कि नया देश पाकिस्तान, दो क्षेत्रों, पश्चिम और पूर्वी पाकिस्तान से मिलकर बनेगा, जो भारतीय भू-भाग के एक लंबे विस्तार से अलग होंगे।
 - दूसरा, सभी मुस्लिम बहुल इलाके पाकिस्तान में नहीं रहना चाहते थे। खान अब्दुल गफ्फार खां, उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रांत के निर्विवाद नेता और 'सीमांत गांधी' के नाम से मशहूर, दो-राष्ट्र सिद्धांत के सख्त खिलाफ थे। आखिरकार, उनकी आवाज को अनसुना कर दिया गया और उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रांत (NWFP) का पाकिस्तान में विलय कर दिया गया।
 - तीसरी समस्या यह थी कि ब्रिटिश भारत के दो मुस्लिम बहुल प्रान्तों-पंजाब और बंगाल, में बहुत बड़े क्षेत्र थे, जहाँ गैर-मुस्लिम बहुसंख्यक थे। अंततः यह निर्णय लिया गया कि इन दोनों प्रांतों को जिले या उससे भी निचले स्तर पर धार्मिक बहुमत के अनुसार विभाजित किया जाएगा।
 - विभाजन की सभी समस्याओं में से चौथी और सबसे कठिन समस्या सीमा के दोनों ओर 'अल्पसंख्यकों' की स्थिति की थी।
- ❑ इन दोनों प्रांतों के बँटवारे ने विभाजन का सबसे गहरा आघात पहुँचाया। यह उन इलाकों में लाखों हिंदुओं और सिखों से संबंधित था, जो अब पाकिस्तान में थे तथा पंजाब एवं बंगाल के भारतीय हिस्से में व कुछ हद तक दिल्ली और आस-पास के इलाकों में भी उतनी ही बड़ी संख्या में मुसलमान खुद को फँसा हुआ महसूस कर रहे थे वे अचानक अपने ही घर में अवाँ छित विदेशी बन गए।

विचारणीय बिंदु

विभाजन के कारण सीमा पार हिंसा के साथ-साथ भारी पलायन हुआ। क्या आप जानते हैं कि विभाजन रेखा किस आयोग के आधार पर तय की गई थी और उस रेखा का क्या नाम है? साथ ही, क्या आप जानते हैं कि भारत में 'विभाजन विभीषिका स्मृति दिवस' कब मनाया जाता है?



- दोनों तरफ के अल्पसंख्यक हमलों का केंद्र बन गए। सूचना के कुछ ही घंटों के भीतर लोगों को अपने साथ जो कुछ भी ले जा सकते थे, उसे लेकर अपने घर छोड़ने पड़े।

विभाजन के परिणाम

- सन् 1947 में बड़े पैमाने पर एक जगह की आबादी दूसरी जगह जाने को मजबूर हुई थी। आबादी का यह स्थानांतरण आकस्मिक, अनियोजित और त्रासदी से भरा था। यह मानव-इतिहास के अब तक ज्ञात सबसे बड़े स्थानांतरणों में से यह एक था।
- धर्म के नाम पर एक समुदाय के लोगों ने दूसरे समुदाय के लोगों को बेरहमी से मार डाला और उन्हें अपंग बना दिया। अमृतसर और कलकत्ता जैसे शहर सांप्रदायिक अखाड़े में तब्दील हो गए। जिन इलाकों में ज्यादातर हिंदू अथवा सिख आबादी थी, उन इलाकों में मुसलमानों ने जाना छोड़ दिया। ठीक इसी तरह मुस्लिम बहुल आबादी वाले इलाकों से हिंदू और सिख भी नहीं गुजरते थे। लोग अपना घर-बार छोड़ने के लिए मजबूर हुए। वे सीमा के एक तरफ से दूसरी तरफ गए और इस क्रम में लोगों को बड़ी-से-बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ा। दोनों ही तरफ के अल्पसंख्यक अपने घरों से भाग खड़े हुए और अस्थायी तौर पर उन्हें शरणार्थी शिविरों में पनाह लेनी पड़ी।



चित्र 1.5: शरणार्थियों से भरी एक ट्रेन (वर्ष 1947)

- स्थानीय प्रशासन और पुलिस सहायता करने में असमर्थ रहे। यात्रा के दौरान भी लोगों को लूटा गया, मारा गया और महिलाओं के साथ बलात्कार किया गया। इस प्रकार, अनेक लोगों के लिए स्वतंत्रता निराशा के साथ आई।
- पूरे परिवार या समुदाय को अपमानित करने के लिए अक्सर महिलाओं की इज्जत छीन ली जाती थी। कई मामलों में 'परिवार की इज्जत' को बचाने के लिए महिलाओं को उनके ही परिवार के सदस्यों ने मार डाला। सीमा के दोनों ओर हजारों महिलाओं का अपहरण किया गया। उन्हें अपहरणकर्ता के धर्म में परिवर्तित किया गया और जबरन शादी के लिए मजबूर किया गया। कई बच्चों को उनके माता-पिता से अलग कर दिया गया।
- भारत और पाकिस्तान के लेखक, कवि तथा फिल्म-निर्माताओं ने अपने उपन्यास, लघुकथा, कविता एवं फिल्मों में इस नृशंसता का जिक्र किया, विस्थापन और हिंसा से पैदा हुए दुखों की अभिव्यक्ति की। विभाजन की विपदा का जिक्र करते हुए रचनाकारों ने वही जुमला इस्तेमाल किया जो इस विपत्ति को झेलने वाले 'बँटवारे' का जिक्र करते हुए करते थे।
- इन सभी के लिए बँटवारे का अर्थ था 'दिल के दो टुकड़े हो जाना'। 'विभाजन' में सिर्फ संपदा, देनदारी और परिसंपत्तियों का ही बँटवारा नहीं हुआ बल्कि वित्तीय संपत्तियाँ और टेबल, कुर्सियाँ, टाइपराइटर, पेपर-क्लिप, किताबें तथा पुलिस बैंड के संगीत वाद्ययंत्र जैसी चीजें भी विभाजित की गईं। सरकारी और रेलवे के कर्मचारियों को भी 'विभाजित' किया गया।
- अनुमान है कि विभाजन ने लगभग 80 लाख लोगों को नई सीमा पार करने के लिए मजबूर किया तथा विभाजन से उत्पन्न हिंसा में पाँच से दस लाख लोग मारे गए।

भारत के भविष्य के लिए भारतीय नेताओं से पूछे गए प्रश्न

- विभाजन ने नेताओं के सामने कठिन परंतु देश के भविष्य को लेकर महत्वपूर्ण प्रश्न खड़ा कर दिया। यह मुद्दा प्रशासनिक या वित्तीय तनाव से परे, आस्था के संदर्भ में भारतीय राज्य की प्रकृति से जुड़ा था।



चित्र 1.6: वर्ष 1947 में नोआखाली (अब बांग्लादेश) में गांधी

- ❑ भारतीय राष्ट्रीय संघर्ष के नेता द्वि-राष्ट्र सिद्धांत में विश्वास नहीं करते थे, फिर भी धार्मिक आधार पर विभाजन हुआ था। धार्मिक संघर्षों के पीछे प्रतिस्पर्धी राजनीतिक हित थे। औपनिवेशिक भारत में मुसलमानों के हितों की रक्षा के लिए मुस्लिम लीग का गठन किया गया था। ऐसे संगठन थे, जो भारत को हिंदू राष्ट्र बनाने के लिए हिंदुओं को संगठित करने की कोशिश कर रहे थे।
- ❑ नव निर्मित पाकिस्तान में मुसलमानों के बड़े पैमाने पर विस्थापन के बाद भी, **भारत में मुस्लिम आबादी वर्ष 1951 में कुल आबादी का 12% थी, लेकिन।**
- ❑ राष्ट्रीय आंदोलन के अधिकांश नेताओं का मानना था कि भारत को सभी धर्मों के लोगों के साथ समान व्यवहार करना चाहिए और भारत ऐसा देश नहीं होना चाहिए जो एक धर्म के अनुयायियों को श्रेष्ठ तथा दूसरे धर्म का पालन करने वालों को निम्न दर्जा दे।
- ❑ सभी नागरिक अपने धार्मिक जुड़ाव के बावजूद समान उद्देश्य से आगे बढ़ रहे थे। धार्मिक या आस्तिक होना नागरिकता की कसौटी नहीं थी। वे एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के आदर्श को संजोते थे और यह आदर्श भारतीय संविधान में भी निहित था।

हमारे यहाँ मुस्लिम अल्पसंख्यक हैं और उनकी सुरक्षा इतनी महत्वपूर्ण है कि वे चाहकर भी कहीं और नहीं जा सकते। यह एक बुनियादी तथ्य है, जिस पर कोई बहस नहीं हो सकती। पाकिस्तान की ओर से चाहे जो भी कृत्य हो और वहाँ गैर-मुस्लिम लोगों पर जो भी अत्याचार किए जाएँ, हमें इन अल्पसंख्यकों के साथ सम्मानजनक रूप से कार्य करना होगा। हमें उन्हें नागरिक अधिकार और सामाजिक न्याय प्रदान करना होगा। अगर हम इसमें धीमे रहते हैं, तो हमारे समाज में एक ऐसा घाव बनेगा जो अंततः राजनीतिक ढाँचे को विषाक्त कर सकता है तथा शायद इसे पूरी तरह से नष्ट भी कर देगा।

—जवाहलाल नेहरू



महात्मा गांधी की शहादत

महात्मा गांधी ने 15 अगस्त, 1947 के दिन आजादी के किसी भी जश्न में भाग नहीं लिया। वे कोलकाता के उन इलाकों में डेरा डाले हुए थे जहाँ हिंदुओं और मुसलमानों के बीच भयंकर दंगे हुए थे। सांप्रदायिक हिंसा से उनके मन पर गहरी चोट लगी थी। यह देखकर उनका हृदय द्रवित हो चुका था कि 'अहिंसा' और 'सत्याग्रह' के जिन सिद्धांतों के लिए वे आजीवन समर्पित भाव से काम करते रहे, वे ही सिद्धांत इस कठिन घड़ी में लोगों को एकसूत्र में पिरो सकने में नाकामयाब हो गए थे। गांधीजी ने हिंदुओं और मुसलमानों से जोर देकर कहा कि वे हिंसा का रास्ता छोड़ दें। कोलकाता में गांधी की मौजूदगी से हालात काफी हद तक सुधर चुके थे और आजादी का जश्न लोगों ने सांप्रदायिक सद्भाव के जज्बे से मनाया। लोग सड़कों पर पूरे हर्षोल्लास के साथ नाच रहे थे। गांधी की प्रार्थना सभा में बड़ी संख्या में लोग जुटते थे। बहरहाल, यह स्थिति ज्यादा दिनों तक कायम नहीं रही। हिंदुओं और मुसलमानों के बीच दंगे एक बार फिर से भड़क उठे एवं गांधीजी अमन कायम करने के लिए 'उपवास' पर बैठ गए।

अगले महीने गांधीजी दिल्ली पहुँचे। दिल्ली में भी बड़े पैमाने पर हिंसा हुई थी। गांधीजी चाहते थे कि मुसलमानों को भारत में गरिमापूर्ण जीवन मिले और उन्हें बराबर का नागरिक माना जाए। इस बात को सुनिश्चित करने के लिए वे बड़े चिंतित थे। भारत और पाकिस्तान के आपसी संबंधों को लेकर भी उनके मन में गहरी चिंताएँ थीं। उन्हें लग रहा था कि भारत की सरकार पाकिस्तान के प्रति अपनी वित्तीय वचनबद्धताओं को पूरा नहीं कर रही है। इस बात से वे नाखुश थे। इन सभी बातों को सोचकर उन्होंने 1948 की जनवरी में एक बार फिर 'उपवास' रखना शुरू किया। यह उनका अंतिम 'उपवास' साबित हुआ। कोलकाता की ही तरह दिल्ली में भी उनके 'उपवास' का जादुई असर हुआ। सांप्रदायिक तनाव और हिंसा में कमी हुई। दिल्ली और उसके आस-पास के इलाके के मुसलमान सुरक्षित अपने घरों में लौटे तथा भारत की सरकार पाकिस्तान को उसका देय चुकाने पर राजी हो गई।

बहरहाल, गांधीजी के कामों से हर कोई खुश हो, ऐसी बात नहीं थी। हिंदू और मुसलमान दोनों ही समुदायों के अतिवादी अपनी स्थिति के लिए गांधीजी पर दोष मढ़ रहे थे। इसके बावजूद गांधीजी ने सशस्त्र सुरक्षा हासिल करने से मना कर दिया और अपनी प्रार्थना सभा में हर किसी से मिलना जारी रखा। अंततः 30 जनवरी, 1948 के दिन ऐसा ही एक हिंदू अतिवादी नाथूराम विनायक गोडसे, गांधीजी की संध्याकालीन प्रार्थना के समय उनकी तरफ चलता हुआ नज़दीक पहुँच गया। उसने गांधीजी पर तीन गोलियाँ चलाई और गांधीजी को तत्क्षण मार दिया। इस तरह न्याय और सहिष्णुता को आजीवन समर्पित एक आत्मा का देहावसान हुआ।

रजवाड़ों का विलय

- ब्रिटिश भारत दो हिस्सों में विभाजित था, जिन्हें ब्रिटिश भारतीय प्रांत और देशी राज्य कहा जाता था।
 - एक हिस्से में ब्रिटिश प्रभुत्व वाले भारतीय प्रांत थे तो दूसरे हिस्से में देसी रजवाड़े। ब्रिटिश प्रभुत्व वाले भारतीय प्रांतों पर अंग्रेजी सरकार का सीधा नियंत्रण था।



चित्र 1.7: विभाजन से पहले और बाद का भारत

- दूसरी तरफ़ छोटे-बड़े आकार के कुछ और राज्य थे, इन्हें रजवाड़ा कहा जाता था। रजवाड़ों पर राजाओं का शासन था। राजाओं ने ब्रिटिश राज की अधीनता या कहें कि सर्वोच्च सत्ता स्वीकार कर रखी थी और इसके अंतर्गत वे अपने राज्य के घरेलू मामलों का शासन चलाते थे। अंग्रेजी प्रभुत्व के अंतर्गत आने वाले भारतीय साम्राज्य के एक-तिहाई हिस्से में रजवाड़े कायम थे।
- प्रत्येक चार भारतीयों में से एक किसी-न-किसी रजवाड़े की प्रजा था। रियासतें ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य के एक तिहाई भू-क्षेत्र पर फैली हुई थीं।

समस्या

- आजादी के तुरंत पहले अंग्रेजी शासन ने घोषणा की कि भारत पर ब्रिटिश प्रभुत्व के साथ ही रजवाड़े भी ब्रिटिश अधीनता से स्वतंत्र हो जाएंगे। इसका तात्पर्य यह था कि सभी रजवाड़े (रजवाड़ों की संख्या 565 थी) ब्रिटिश राज की समाप्ति के साथ ही कानूनी तौर पर स्वतंत्र हो जाएंगे। अंग्रेजी राज का नजरिया यह था कि रजवाड़े अपनी मर्जी से चाहें तो भारत या पाकिस्तान में शामिल हो जाएँ या फिर अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखें।
- भारत अथवा पाकिस्तान में शामिल होने या स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखने का फैसला रजवाड़ों की प्रजा को नहीं करना था। यह फैसला लेने का अधिकार राजाओं को दिया गया था। यह अपने आप में बड़ी गंभीर समस्या थी और इससे अखंड भारत के अस्तित्व पर ही खतरा मंडरा रहा था।

हम भारत के इतिहास में एक महत्वपूर्ण चरण में हैं। साझा प्रयास से हम देश को नई महानता की ओर ले जा सकते हैं जबकि एकता की कमी हमें अप्रत्याशित आपदाओं की ओर ले जाएगी। मुझे उम्मीद है कि भारतीय राज्य पूरी तरह से समझ लेंगे कि अगर हम सहयोग नहीं करेंगे और आम हित में मिलकर काम नहीं करेंगे, तो अराजकता और अव्यवस्था हम सभी को, बड़े और छोटे, अपने घरे में ले लेगी तथा हमें पूरी तरह बर्बाद कर देगी... -सरदार पटेल का रियासती शासकों को पत्र, 1947



- ❑ त्रावणकोर के शासक ने घोषणा की कि राज्य ने स्वतंत्रता का फैसला कर लिया है। हैदराबाद के निजाम ने अगले दिन इसी तरह की घोषणा की। भोपाल के नवाब जैसे शासक संविधान सभा में शामिल होने के खिलाफ थे। रियासतों के शासकों की इस प्रतिक्रिया का अर्थ था कि स्वतंत्रता के पश्चात् भारत कई छोटे-छोटे राष्ट्रों में विभाजित हो जाएगा।
- ❑ इसने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को भी नकार दिया, क्योंकि इसका उद्देश्य लोकतंत्र के साथ-साथ आत्मनिर्णय भी था। इनमें से अधिकांश रियासतों में सरकारें गैर-लोकतांत्रिक तरीके से चलती थीं और शासक अपनी जनता को लोकतांत्रिक अधिकार देने के लिए तैयार नहीं थे।

सरकार का नजरिया

- ❑ अंतरिम सरकार ने भारत को अलग-अलग आकार की छोटी-छोटी रियासतों में विभाजित करने की संभावना के खिलाफ कड़ा रुख अपनाया। सरदार पटेल आजादी के तुरंत बाद के महत्वपूर्ण दौर में भारत के उप-प्रधानमंत्री और गृह मंत्री बने। उन्होंने रियासतों के शासकों के साथ मजबूती से लेकिन कूटनीतिक तरीके से बातचीत करके उनमें से ज्यादातर को भारतीय संघ में शामिल करने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई।

सरदार वल्लभभाई पटेल (1875-1950): स्वतंत्रता संग्राम के नेता, कांग्रेस नेता, महात्मा गांधी के अनुयायी, स्वतंत्र भारत के उप-प्रधानमंत्री एवं प्रथम गृहमंत्री वल्लभभाई पटेल ने देशी रियासतों को भारत में विलय कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे मौलिक अधिकार, अल्पसंख्यक, प्रांतीय संविधान आदि पर गठित संविधान सभा की महत्वपूर्ण समितियों के सदस्य भी थे।



- ❑ यह एक बहुत ही जटिल कार्य था, जिसके लिए कुशल अनुनय की ज़रूरत थी। **उदाहरण के लिए**, तत्कालीन उड़ीसा में 26 छोटी-छोटी रियासतें थीं। गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र में 14 बड़ी रियासतें, 119 छोटी-छोटी रियासतें और कई अन्य अलग-अलग प्रशासन थे।
- ❑ **सरकार का दृष्टिकोण निम्नलिखित तीन विचारों से निर्देशित था:**
 - सबसे पहले, ज्यादातर रियासतों के लोग स्पष्ट रूप से भारतीय संघ का हिस्सा बनना चाहते थे।
 - दूसरा, सरकार कुछ क्षेत्रों को स्वायत्तता देने में लचीला रुख अपनाने के लिए तैयार थी। विचार बहुलता को समायोजित करने और क्षेत्रों की मांगों से निपटने में लचीला दृष्टिकोण अपनाने का था।
 - तीसरा, स्वतंत्रता के दौरान क्षेत्रों के विभाजन ने राष्ट्र की क्षेत्रीय सीमाओं के एकीकरण और सुदृढ़ीकरण पर ध्यान केंद्रित किया था।
- ❑ 15 अगस्त, 1947 से पूर्व शांतिपूर्ण वार्ता के ज़रिए लगभग सभी राज्य, जिनके क्षेत्र भारत की नई सीमाओं से सटे हुए थे, भारतीय संघ में शामिल हो गए थे। ज्यादातर राज्यों के शासकों ने **‘इंस्ट्रूमेंट ऑफ़ एक्सेशन’** नामक एक दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर किए, जिसका मतलब था कि उनका राज्य भारत संघ का हिस्सा बनने के लिए सहमत हो गया है।
- ❑ **जूनागढ़, हैदराबाद, कश्मीर और मणिपुर की रियासतों का विलय बाकी की तुलना में ज्यादा मुश्किल साबित हुआ।** जूनागढ़ का मुद्दा जनमत संग्रह के बाद हल हो गया, जिसमें लोगों की भारत में शामिल होने की इच्छा की पुष्टि हुई।

हैदराबाद

- ❑ हैदराबाद की रियासत बहुत बड़ी थी। यह रियासत चारों तरफ से हिंदुस्तानी इलाके से घिरी थी। पुराने हैदराबाद के कुछ हिस्से आज के महाराष्ट्र तथा कर्नाटक में और बाकी हिस्से आंध्र प्रदेश में हैं। हैदराबाद के शासक को ‘निजाम’ कहा जाता था और वह दुनिया के सबसे दौलतमंद लोगों में शुमार किया जाता था। निजाम चाहता था कि हैदराबाद की रियासत को आजाद रियासत का दर्जा दिया जाए। निजाम ने सन् 1947 के नवंबर में भारत के साथ यथास्थिति बहाल रखने का एक समझौता किया। यह समझौता एक वर्ष के लिए था। इस बीच भारत सरकार से हैदराबाद के निजाम की बातचीत जारी रही।
- ❑ इसी दौरान हैदराबाद की रियासत के लोगों के बीच निजाम के शासन के खिलाफ एक आंदोलन ने जोर पकड़ा। तेलंगाना इलाके के किसान निजाम के दमनकारी शासन से मुख्य रूप से असंतुष्ट थे। वे निजाम के खिलाफ उठ खड़े हुए। महिलाएँ निजाम के शासन में सबसे ज्यादा प्रताड़ित हुईं, परिणामस्वरूप वे भी बड़ी संख्या में इस आंदोलन से आ जुड़ीं।
- ❑ हैदराबाद शहर इस आंदोलन का गढ़ बन गया। कम्युनिस्ट और हैदराबाद कांग्रेस इस आंदोलन की अग्रिम पंक्ति में थे।
- ❑ आंदोलन को देख निजाम ने लोगों के खिलाफ एक अर्द्ध-सैनिक बल रवाना किया। इसे रज़ाकार कहा जाता था। रज़ाकार अव्वल दर्जे के सांप्रदायिक और अत्याचारी थे। रज़ाकारों द्वारा गैर-मुसलमानों को खासतौर पर अपना निशाना बनाया गया।
- ❑ रज़ाकारों के अत्याचार और सांप्रदायिक प्रकृति की कोई सीमा नहीं थी। लोगों की हत्या की गई, उन्हें अपंग बनाया गया, बलात्कार किया गया और लूटपाट की गई, मुख्य रूप से गैर-मुसलमानों को निशाना बनाया गया।

- केंद्र सरकार को स्थिति से निपटने के लिए सेना को आदेश देना पड़ा। सितंबर 1948 में, भारतीय सेना निज़ाम की सेना को नियंत्रित करने के लिए आगे बढ़ी। कुछ दिनों के युद्ध के बाद, निज़ाम ने आत्मसमर्पण कर दिया। इसके परिणामस्वरूप हैदराबाद का भारत में विलय हो गया।



चित्र 1.8: हैदराबाद के निज़ाम के साथ सरदार पटेल

मणिपुर

- स्वतंत्रता से कुछ दिन पहले मणिपुर के महाराजा बोधचंद्र सिंह ने भारत सरकार के साथ विलय पत्र पर हस्ताक्षर किए थे, इस आश्वासन के साथ कि मणिपुर की आंतरिक स्वायत्तता बरकरार रखी जाएगी।
- जून 1948 में, जन दबाव में महाराजा ने मणिपुर में चुनाव कराए और राज्य एक संवैधानिक राजतंत्र बन गया। इस प्रकार मणिपुर भारत का पहला हिस्सा था जिसने सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव कराया।
- मणिपुर की विधानसभा में भारत में विलय के प्रश्न पर गहरे मतभेद थे। मणिपुर की कांग्रेस चाहती थी कि इस रियासत को भारत में मिला दिया जाए जबकि दूसरी राजनीतिक पार्टियाँ इसके खिलाफ थीं।
- भारत सरकार ने महाराजा को राजी किया कि वे भारतीय संघ में शामिल होने के समझौते पर हस्ताक्षर कर दें। सितंबर 1949 में, भारत सरकार को इसमें सफलता मिली। इससे मणिपुर में बहुत अधिक आक्रोश पैदा हुआ, जिसके दुष्परिणाम आज भी महसूस किए जा रहे हैं।

विचारणीय बिंदु

इस अध्याय में आपने हैदराबाद और मणिपुर राज्य के विलय के बारे में जाना। क्या आप जानते हैं कि जम्मू और कश्मीर राज्य का विलय कैसे हुआ? विवाद, युद्ध और युद्ध विराम रेखा का कारण क्या था? क्या आप जानते हैं कि क्षेत्र में शांति बनाए रखने में संयुक्त राष्ट्र की क्या भूमिका है? क्या आप इसके विषय में पता लगा सकते हैं?



राज्यों का पुनर्गठन

- बंटवारे और देसी रियासतों के विलय के साथ ही राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया का अंत नहीं हुआ। भारतीय प्रांतों की आंतरिक सीमाओं को तय करने की चुनौती अभी सामने थी। यह महज प्रशासनिक विभाजन का मामला नहीं था। प्रांतों की सीमाओं को इस तरह तय करने की चुनौती थी कि देश की भाषायी और सांस्कृतिक बहुलता की झलक मिले, साथ ही राष्ट्रीय एकता भी खंडित न हो।
- औपनिवेशिक शासन के दौरान, राज्य की सीमाएँ प्रशासनिक सुविधा के आधार पर खींची जाती थीं। हमारे राष्ट्रीय आंदोलन ने इन विभाजनों को कृत्रिम बताकर खारिज कर दिया था और राज्यों के गठन के आधार के रूप में भाषायी सिद्धांत का वादा किया था। सन् 1920 में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन के बाद, भाषायी सिद्धांत को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी के पुनर्गठन के आधार के रूप में मान्यता दी गई थी।
- विभाजन और स्वतंत्रता के बाद हमारे नेताओं को लगा कि भाषा के आधार पर राज्यों का निर्माण विघटन तथा विभाजन का कारण बन सकता है। यह भी महसूस किया गया कि इससे अन्य सामाजिक और आर्थिक चुनौतियों से ध्यान हट जाएगा, इसलिए केंद्रीय सरकार ने मामले को स्थगित कर दिया।
- इसके साथ ही स्थानीय नेताओं ने इसका विरोध करना शुरू कर दिया। पुराने मद्रास प्रांत के तेलुगू भाषी क्षेत्रों में विरोध शुरू हो गया, जिसमें वर्तमान तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, केरल और कर्नाटक के कुछ हिस्से शामिल थे।

विचारणीय बिंदु

राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 ने भाषाओं के आधार पर राज्यों का निर्माण किया। क्या आपको लगता है कि यह एक सही कदम था, क्योंकि इससे क्षेत्रीय भावना बढ़ती है और राष्ट्रीय एकीकरण को नुकसान पहुँचता है? क्या अन्य भाषाओं के आधार पर विभाजन की ऐसी और भी माँगें हो सकती हैं? क्या आप भाषा के आधार पर स्वायत्तता की माँग का कोई मौजूदा उदाहरण ढूँढ़ सकते हैं?





चित्र. 1.9: अस्तित्व के लिए संघर्ष (स्ट्रगल फॉर सरवाइवल) (26 जुलाई, 1953) शीर्षक से प्रकाशित यह कार्टून उस दौर के माहौल को दर्शाता है जब राज्यों को भाषाई आधार पर गठित करने की माँग ज़ोर पकड़ रही थी।

- ❑ यह मामला तब और गंभीर हो गया जब कांग्रेस नेता और वरिष्ठ गांधीवादी पोद्दी श्रीरामुलु ने अनिश्चितकालीन अनशन शुरू कर दिया, जिसके कारण 56 दिनों की भूख हड़ताल के बाद उनकी मृत्यु हो गई। इससे आंध्र प्रदेश में काफी अशांति फैल गई और हिंसक प्रदर्शन हुए। कई विधायकों ने विरोध में अपनी सीटों से इस्तीफा दे दिया।
- ❑ अंत में, प्रधानमंत्री ने दिसंबर 1952 में एक अलग आंध्र राज्य के गठन की घोषणा की, जिसने भविष्य में अन्य राज्यों को भाषायी आधार पर पुनर्गठित करने के संघर्ष को बढ़ावा दिया।
- ❑ केंद्र सरकार ने वर्ष 1953 में एक राज्य पुनर्गठन आयोग की नियुक्ति की। इस आयोग ने स्वीकार किया कि राज्य की सीमाओं को विभिन्न भाषाओं की सीमाओं को प्रतिबिंबित करना चाहिए।
- ❑ इसकी रिपोर्ट के आधार पर वर्ष 1956 में राज्य पुनर्गठन अधिनियम पारित किया गया। इसके परिणामस्वरूप 14 राज्य और छह संघ राज्यक्षेत्रों का निर्माण हुआ।

भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन का महत्व

- ❑ आजादी के बाद के प्रारंभिक वर्षों में एक बड़ी चिंता यह थी कि अलग राज्य बनाने की माँग से देश की एकता पर आँच आएगी। आशंका थी कि नए भाषायी राज्यों में अलगाववाद की भावना पनपेगी और नव-निर्मित भारतीय राष्ट्र पर दबाव बढ़ेगा। जनता के दबाव में आखिरकर नेतृत्व ने भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन का निश्चय किया। उम्मीद थी कि अगर हर इलाके के क्षेत्रीय और भाषायी दावे को मान लिया जाए, तो बँटवारे एवं अलगाववाद के खतरे में कमी आएगी। इसके अलावा क्षेत्रीय माँगों को मानना और भाषा के आधार पर नए राज्यों का गठन करना एक लोकतांत्रिक कदम के रूप में भी देखा गया।
- ❑ भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की घटना को आज 50 वर्ष से भी अधिक समय हो गया। हम कह सकते हैं कि भाषायी राज्य तथा इन राज्यों के गठन के लिए चले आंदोलनों ने लोकतांत्रिक राजनीति तथा नेतृत्व की प्रकृति को बुनियादी रूपों में बदला है। राजनीति और सत्ता में भागीदारी का रास्ता अब एक छोटे-से अंग्रेजी भाषी अभिजात तबके के लिए ही नहीं, बाकियों के लिए भी खुल चुका था। भाषावार पुनर्गठन से राज्यों के सीमांकन के लिए एक समरूप आधार भी मिला। बहुतां की आशंका के विपरीत इससे देश नहीं टूटा। इसके विपरीत देश की एकता और ज्यादा मजबूत हुई।
- ❑ सबसे बड़ी बात यह कि भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन से विभिन्नता के सिद्धांत को स्वीकृति मिली। जब हम कहते हैं कि भारत ने लोकतंत्र अपनाया है तो इसका सीधा सा मतलब इतना भर नहीं होता कि भारत में लोकतांत्रिक संविधान पर अमल होता है अथवा भारत में चुनाव करवाए जाते हैं।
- ❑ भारत के लोकतांत्रिक होने का वृहदतर अर्थ है। लोकतंत्र को चुनने का अर्थ था विभिन्नताओं को पहचानना और उन्हें स्वीकार करना, साथ ही यह मानकर चलना कि विभिन्नताओं में आपसी विरोध भी हो सकते हैं।
- ❑ दूसरे शब्दों में कहें तो भारत में लोकतंत्र की धारणा विचारों और जीवन पद्धतियों की बहुलता की धारणा से जुड़ी हुई थी। आगे के दिनों में अधिकतर राजनीति इसी दायरे में चली।

नोट: यह नक्शा किसी पैमाने के हिसाब से बनाया गया भारत का मानचित्र नहीं है। इसमें दिखाई गई भारत की अंतर्राष्ट्रीय सीमा रेखा को प्रामाणिक सीमा रेखा न माना जाए।



चित्र 1.10: राज्यों के पुनर्गठन के बाद भारत का प्रशासनिक मानचित्र, 1961

नए राज्यों का निर्माण:

भाषावार राज्यों को पुनर्गठित करने के सिद्धांत को मान लेने का अर्थ यह नहीं था कि सभी राज्य तत्काल भाषायी राज्य में तब्दील हो गए। एक प्रयोग द्विभाषी राज्य बंबई के रूप में किया गया, जिसमें गुजराती और मराठी भाषा बोलने वाले लोग थे। एक जन-आंदोलन के बाद सन् 1960 में महाराष्ट्र और गुजरात राज्य बनाए गए।

पंजाब में भी हिन्दी-भाषी और पंजाबी भाषी दो समुदाय थे। पंजाबी भाषी लोग अलग राज्य की माँग कर रहे थे। बहरहाल, बाकी राज्यों की तरह उनकी माँग वर्ष 1956 में नहीं ही मानी गई। दस वर्ष बाद यानी 1966 में पंजाबी भाषी इलाके को पंजाब राज्य का दर्जा दिया गया और वृहत्तर पंजाब से अलग करके हरियाणा एवं हिमाचल प्रदेश नाम के राज्य बनाए गए।

सन् 1972 में एक बार फिर राज्यों के पुनर्गठन का एक बड़ा प्रयास पूर्वोत्तर में हुआ। असम से अलग करके सन् 1972 में मेघालय बनाया गया। इसी वर्ष मणिपुर और त्रिपुरा भी अलग राज्य के रूप में अस्तित्व में आए। मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश सन् 1987 में अस्तित्व में आए, जबकि नागालैंड इससे कहीं पहले यानी सन् 1963 में ही राज्य बन गया था।

गौरतलब है कि राज्यों के पुनर्गठन में सिर्फ भाषा को ही आधार नहीं बनाया गया। बाद के वर्षों में अनेक उप-क्षेत्रों ने अलग क्षेत्रीय संस्कृति अथवा विकास के मामले में क्षेत्रीय असंतुलन के प्रश्न को उठाकर अलग राज्य बनाने की माँग की, ऐसे तीन राज्य- छत्तीसगढ़, उत्तरांचल (वर्तमान उत्तराखंड) और झारखंड वर्ष 2000 में निर्मित हुए। 2 जून, 2014 को तेलंगाना भी एक नए राज्य के रूप में जुड़ गया राज्यों के पुनर्गठन की कथा अभी समाप्त नहीं हुई है। देश के अनेक इलाकों में छोटे-छोटे अलग राज्य बनाने की माँग को लेकर आंदोलन चल रहे हैं, उदहारणस्वरूप - महाराष्ट्र में विदर्भ, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में हरित प्रदेश और पश्चिम बंगाल में उत्तरी भाग आदि।

निष्कर्ष

ब्रिटिश शासित भारत के दो भागों अर्थात् भारत और पाकिस्तान में विभाजन के कारण इतिहास में सबसे व्यापक सामूहिक पलायन देखा गया, जिसके परिणामस्वरूप व्यापक हिंसा, विस्थापन तथा जान-माल की हानि हुई। हिंदुओं, मुसलमानों और सिखों के बीच सांप्रदायिक तनाव बहुत अधिक था, विभाजन के त्रासद चिह्न आज भी देखने को मिलते हैं। इस विविधता को प्रबंधित करना और यह सुनिश्चित करना कि विभिन्न समुदाय शांतिपूर्वक सह-अस्तित्व में रहें, एक महत्वपूर्ण चुनौती थी। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने इस विविधता को समायोजित करने के लिए एक धर्मनिरपेक्ष और समावेशी ढाँचा बनाने का कार्य किया। लोकतंत्र विचारों और जीवन जीने के तरीकों की बहुलता से संबंधित अवधारणा है, जिसका आभास भारतीय नेताओं को विभाजन के उपरान्त राष्ट्र निर्माण की चुनौतियों का सामना करते समय हो गया था। स्पष्ट है कि राष्ट्र निर्माण एक सतत प्रक्रिया है और भारत अधिक समृद्ध समावेशी तथा सामंजस्यपूर्ण समाज के आदर्श की स्थापना हेतु नई चुनौतियों का समाधान करने के लिए प्रयासरत है।

महत्वपूर्ण शब्दावलि

- ❖ **प्रादेशिक अखंडता:** किसी राष्ट्र की संपूर्ण भौगोलिक सीमाओं और संप्रभुता का अपरिवर्तनीय संरक्षण।
- ❖ **प्रतिनिधि लोकतंत्र:** सरकार की एक प्रणाली जहाँ नागरिक एक संरचित राजनीतिक ढाँचे में अपनी ओर से निर्णय लेने के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव करते हैं।
- ❖ **सामुदायिक:** किसी समाज के भीतर विभिन्न धार्मिक या जातीय समुदायों से संबंधित प्रावधान।
- ❖ **सर्वोच्चता:** किसी विशेष संदर्भ या अधिकार क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण या सर्वोच्च अधिकार होने की स्थिति।
- ❖ **आधिपत्य:** एक ऐसा संबंध जिसमें एक राज्य दूसरे पर राजनीतिक और कानूनी अधिकार रखता है, जबकि अधीनस्थ राज्य को कुछ हद तक स्वायत्तता देता है।
- ❖ **संवैधानिक राजतंत्र:** सरकार की एक प्रणाली जहाँ एक सम्राट एक औपचारिक व्यक्ति के रूप में कार्य करता है, जिसमें सरकार की शक्तियाँ और अधिकार संविधान द्वारा परिभाषित होते हैं।
- ❖ **अपंग या दिव्यांग:** गंभीर रूप से घायल होना, जिसके परिणामस्वरूप अक्सर स्थायी शारीरिक क्षति या विकृति होती है।
- ❖ **राज्य की नीति के निदेशक तत्त्व (DPSP):** भारतीय संविधान में गैर-बाध्यकारी सिद्धांत जो लोगों के कल्याण और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना के लिए कानून एवं नीतियाँ बनाने में सरकार का मार्गदर्शन करते हैं।
- ❖ **द्वि-राष्ट्र सिद्धांत:** वह राजनीतिक विचारधारा जो पृथक मुस्लिम और हिंदू राष्ट्रों के निर्माण की वकालत करती है, जिसके परिणामस्वरूप सन् 1947 में भारत के विभाजन से पाकिस्तान का गठन हुआ, जो इस विश्वास पर आधारित था कि मुस्लिम और हिंदू अलग-अलग राष्ट्र हैं जिनमें कभी न सुलझने वाले मतभेद हैं।



एक दल के प्रभुत्व का दौर

संदर्भ: इस अध्याय में NCERT पाठ्यपुस्तक की कक्षा-XII (स्वतंत्र भारत में राजनीति-II) के अध्याय-2 का सारांश शामिल है।

परिचय

औपनिवेशिक शक्तियों से स्वतंत्रता प्राप्त कई देशों के नेताओं ने निर्णय किया कि उनके देश में अभी लोकतांत्रिक व्यवस्था को नहीं अपनाया जा सकता है। इन नेताओं ने कहा कि **राष्ट्रीय एकता** हमारी पहली प्राथमिकता है और लोकतंत्र को अपनाने से मतभेद तथा संघर्ष को बढ़ावा मिलेगा। उपनिवेशवाद के चंगुल से स्वतंत्र हुए कई राष्ट्रों में इसी कारण गैर-लोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था निर्मित हुई। इस **गैर-लोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था** के कई रूप थे। कहीं पर थोड़ा-बहुत लोकतंत्र रहा लेकिन प्रभावी नियंत्रण किसी एक नेता के हाथ में था, तो कहीं पर एक दल का शासन कायम हुआ एवं कहीं-कहीं पर सीधे सेना ने सत्ता की बागडोर संभाली। गैर-लोकतांत्रिक शासन व्यवस्थाओं की शुरुआत इस वायदे के साथ हुई कि जल्द-ही लोकतांत्रिक व्यवस्था निर्मित की जाएगी। बहरहाल, एक बार कहीं गैर-लोकतांत्रिक शासन के पाँव जम गए तो फिर उसे बदल पाना मुश्किल होता गया। भारत में भी परिस्थितियाँ बहुत अलग नहीं थीं। लेकिन नव स्वतंत्र भारत के नेताओं ने ज्यादा कठिन रास्ता अपनाने का निर्णय किया। यहाँ के नेता लोकतंत्र के विचार के प्रति गहराई से प्रतिबद्ध थे, क्योंकि वे **राजनीति को समस्याओं के समाधान का एक तरीका मानते थे**, न कि सिर्फ सत्ता पाने का एक रास्ता।

लोकतंत्र स्थापित करने की चुनौती

एक राष्ट्र को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है और केवल **लोकतांत्रिक राजनीति** के माध्यम से ही उन चुनौतियों का सामना किया जा सकता है। प्रतिस्पर्द्धा और सत्ता राजनीति के बारे में दो सबसे अधिक दिखाई देने वाली चीजें हैं, लेकिन राजनीतिक गतिविधि का उद्देश्य सार्वजनिक हित तय करना और उसका पालन करना है एवं ऐसा होना भी चाहिए। हमारे नेताओं ने इसी रास्ते को चुनने का निर्णय किया। हमारा संविधान 26 नवम्बर, 1949 को अंगीकृत किया गया तथा **24 जनवरी, 1950** को इस पर हस्ताक्षर हुए। यह संविधान **26 जनवरी, 1950** से अमल में आया। उस वक्त देश का शासन अंतरिम सरकार चला रही थी। समय की माँग थी कि देश का शासन लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचित सरकार द्वारा चलाया जाए।

हिंदुस्तान की राजनीति में नायक पूजा जितनी बड़ी भूमिका अदा करती है, उसकी तुलना दुनिया के किसी भी देश की राजनीति में मौजूद नायक-पूजा के भाव से नहीं की जा सकती... लेकिन राजनीति में नायक-पूजा का भाव सीधे पतन की ओर ले जाता है और यह रास्ता तानाशाही की तरफ जाता है...

डॉ. भीमराव अंबेडकर (संविधान सभा में भाषण 25 नवंबर, 1949)

भारत के लोकतंत्र संबंधी प्रयोग

- **भारत निर्वाचन आयोग** का गठन जनवरी 1950 में हुआ। सुकुमार सेन पहले **निर्वाचन आयुक्त** बने। उम्मीद की जा रही थी कि देश का पहला आम चुनाव वर्ष 1950 में ही किसी वक्त हो जाएगा। निर्वाचन आयोग ने पाया कि भारत के आकार को देखते हुए एक स्वतंत्र और निष्पक्ष आम चुनाव कराना कोई आसान कार्य नहीं है।
- चुनाव कराने के लिए निर्वाचन क्षेत्रों का **परिसीमन** या सीमा निर्धारण, मतदाता सूची तैयार करना या वोट देने के पात्र सभी नागरिकों की सूची तैयार करना आवश्यक था।
- पहले आम चुनाव की तैयारी एक बहुत बड़ी कवायद थी। दुनिया में इससे पहले इतने बड़े पैमाने पर कोई चुनाव नहीं हुआ था। उस समय 17 करोड़ पात्र मतदाता थे, जिन्हें लगभग 3,200 विधायकों और 489 लोकसभा सदस्यों का चुनाव करना था। इसलिए निर्वाचन आयोग को चुनाव कराने के लिए 3 लाख से अधिक अधिकारियों और मतदान कर्मचारियों को प्रशिक्षित करना पड़ा।



चित्र 2.1: मौलाना अबुल कलाम आज़ाद (1888-1958): मूल नाम - अबुल कलाम मोहिउद्दीन अहमद; इस्लाम के विद्वान; स्वतंत्रता सेनानी और कांग्रेस नेता; हिंदू-मुस्लिम एकता के समर्थक; विभाजन का विरोध; संविधान सभा के सदस्य; स्वतंत्र भारत की पहली कैबिनेट में शिक्षा मंत्री।

- पात्र मतदाताओं में से केवल 15% ही साक्षर थे, इसलिए पहला आम चुनाव एक गरीब और अशिक्षित देश में **लोकतंत्र की पहली बड़ी परीक्षा** भी थी। उस समय तक लोकतंत्र केवल समृद्ध देशों में ही मौजूद था, मुख्य रूप से यूरोप और उत्तरी अमेरिका में, जहाँ लगभग सभी लोग साक्षर थे।
- कई यूरोपीय देशों ने महिलाओं को मताधिकार भी नहीं दिया था, इसलिए भारत का सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार का प्रयोग बहुत साहसिक और जोखिम भरा लग रहा था। एक भारतीय संपादक ने इसे **“इतिहास का सबसे बड़ा जुआ”** कहा। ऑर्गनाइजर नामक पत्रिका ने लिखा कि जवाहरलाल नेहरू जीवित रहते हुए “भारत में सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार की विफलता को देख लेंगे और पछताएँगे।” भारतीय सिविल सेवा के एक ब्रिटिश सदस्य ने दावा किया कि “भविष्य का और अधिक प्रबुद्ध युग लाखों अशिक्षित लोगों के वोट दर्ज करने के बेतुके तमाशे को आश्चर्य से देखेगा।”
- चुनाव दो बार स्थगित किए गए और अंततः अक्टूबर 1951 से फरवरी 1952 तक आयोजित किए गए। प्रचार, मतदान और मतगणना पूरी होने में छह महीने लगे। चुनाव प्रतिस्पर्द्धी थे और भागीदारी का स्तर उत्साहजनक था, क्योंकि चुनाव के दिन आधे से अधिक पात्र मतदाता मतदान करने के लिए आए थे।
- भारत का 1952 का आम चुनाव पूरे विश्व में लोकतंत्र के इतिहास में **एक मील का पत्थर** बन गया। इसने सिद्ध कर दिया, कि विश्व में कहीं भी गरीबी या अशिक्षा की स्थिति में भी लोकतंत्र का अभ्यास किया जा सकता है।

विचारणीय बिंदु

स्वतंत्रता के बाद भारत में लोकतंत्र का शासन सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार प्रदान करके लोकसभा चुनावों के माध्यम से सुनिश्चित किया गया था। हालाँकि आलोचकों को इसकी सफलता पर संदेह था, लेकिन यह सफल सिद्ध हुआ। क्या यह भारतीय सभ्यता की लोकतांत्रिक परंपरा के कारण था? क्या आप महाजनपदों से लेकर बौद्ध धर्म और वीरशैव आंदोलन तक भारतीय सभ्यता में लोकतंत्र की जड़ें खोज सकते हैं?



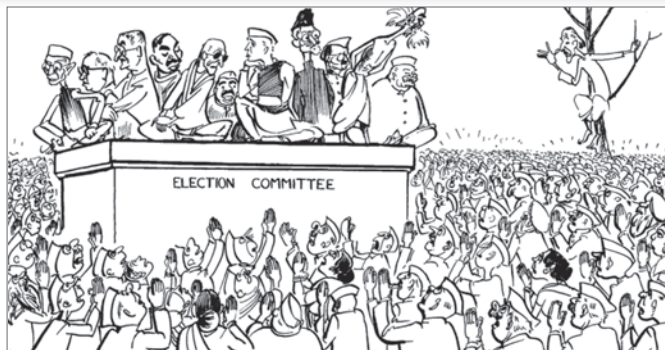
मतदान के बदलते तरीके:

वर्तमान में मतदान के लिए **इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन** का प्रयोग होता है। इसके जरिए मतदाता उम्मीदवारों के बारे में अपनी पसंद जाहिर करते हैं। लेकिन शुरू-शुरू में इसके लिए दूसरा तरीका अपनाया गया था। पहले आम चुनाव में फैसला किया गया था कि हर एक मतदान केंद्र में प्रत्येक उम्मीदवार के लिए एक मतपेटी रखी जाएगी और मतपेटी पर उम्मीदवार का चुनाव-चिह्न अंकित होगा। प्रत्येक मतदाता को एक खाली मतपत्र दिया जाएगा जिसे वह अपने पसंद के उम्मीदवार की मतपेटी में डालेगा। इस कार्य के लिए तकरीबन 20 लाख स्टील के बक्सों का प्रयोग हुआ। हर एक मतपेटी के भीतर और बाहर संबद्ध उम्मीदवार का चुनाव-चिह्न अंकित करना था एवं मतपेटी के बाहर किसी एक तरफ उम्मीदवार का नाम उर्दू, हिंदी और पंजाबी में लिखना था। इसके साथ-साथ चुनाव-क्षेत्र, चुनाव-केंद्र और मतदान-केंद्र की संख्या भी यहीं दर्ज करनी थी। उम्मीदवार के आंकिक ब्यौरे वाला एक कागजी मुहरबंद **पीठासीन पदाधिकारी** के दस्तखत के साथ मतपेटी में लगाना था। मतपेटी के ढक्कन को तार के सहारे बाँधना था और इसी जगह पर मुहरबंद लगाना था। यह संपूर्ण कार्य चुनाव की नियत तारीख से ठीक एक दिन पहले करना था। चुनाव-चिह्न और बाकी ब्यौरों को इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन दर्ज करने के लिए मतपेटी को पहले सेरेस कागज या ईंट के टुकड़े से रगड़ना पड़ता था। शुरुआती दो चुनावों के बाद यह तरीका बदल दिया गया। अब मतपत्र पर हर उम्मीदवार का नाम और चुनाव-चिह्न अंकित किया जाने लगा। मतदाता को इस मतपत्र पर अपने पसंद के उम्मीदवार के नाम पर मुहर लगानी होती थी। यह तरीका अगले चालीस वर्षों तक अमल में रहा। सन् 1990 के दशक के अंत में चुनाव आयोग ने इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ईवीएम) का प्रयोग शुरू किया। सन् 2004 तक संपूर्ण देश में ईवीएम का प्रयोग प्रारंभ हो गया।



चित्र 2.2: एक

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन



चित्र 2.3: 1951 में कांग्रेस द्वारा पार्टी उम्मीदवार चुनने के लिए बनाई गई निर्वाचन समिति पर कार्टूनिस्ट का एक नज़रिया (समिति में नेहरू के अलावा मोरारजी देसाई, रफी अहमद किदवई, डॉ. बी.सी. रॉय, कामराज नाडार, राजगोपालाचारी, जगजीवन राम, मौलाना आजाद, डी.पी. मिश्रा, पी.डी. टंडन और गोविन्द बल्लभ पंत दिखाई दे रहे हैं।)

प्रथम तीन चुनावों में कांग्रेस का प्रभुत्व

- आशा यही थी कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस इस चुनाव में जीत जाएगी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का लोकप्रचलित नाम **कांग्रेस पार्टी** था और इस पार्टी को स्वाधीनता संग्राम की विरासत प्राप्त थी। तब के दिनों में यही एकमात्र पार्टी थी, जिसका संगठन पूरे देश में था। फिर, इस पार्टी में स्वयं जवाहरलाल नेहरू थे, जो भारतीय राजनीति के सबसे करिश्माई और लोकप्रिय नेता थे।
- पार्टी ने पहली लोकसभा में 489 सीटों में से 364 सीटें जीतीं। सीटों के मामले में दूसरे स्थान पर रही भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को केवल 16 सीटें मिलीं। कांग्रेस ने राज्य चुनावों में भी बड़ी जीत हासिल की। इसने त्रावणकोर-कोचीन (आज के केरल का हिस्सा), मद्रास और उड़ीसा को छोड़कर सभी राज्यों में बहुमत सीटें जीतीं। इन राज्यों में भी कांग्रेस ने सरकार बनाई।
- वर्ष 1957 और 1962 में क्रमशः दूसरे और तीसरे आम चुनावों में, कांग्रेस ने पुनः लोकसभा में तीन-चौथाई सीटें जीतीं। राज्य विधानसभा चुनावों में इसे कुछ राज्यों में बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण राज्य वर्ष 1957 में केरल था, जब सीपीआई के नेतृत्व में गठबंधन ने सरकार बनाई थी।
- हमारी निर्वाचन प्रणाली **‘फर्स्ट पास्ट द पोस्ट सिस्टम’ (FPTP)** ने कांग्रेस की जीत को कृत्रिम रूप से बढ़ावा दिया। उदाहरण के लिए, वर्ष 1952 में कांग्रेस को कुल वोटों का 45% प्राप्त हुआ तथा वह 74% सीटें जीतने में सफल रही। वोटों के मामले में दूसरी सबसे बड़ी पार्टी सोशलिस्ट पार्टी ने पूरे देश में 10% से अधिक वोट प्राप्त किए, लेकिन वह 3% सीटें भी नहीं जीत सकी।
- हमारे देश में अपनाई गई इस निर्वाचन प्रणाली (FPTP) में, जिस पार्टी को दूसरों की तुलना में अधिक वोट मिलते हैं, उसे अपने आनुपातिक हिस्से से कहीं अधिक वोट मिलते हैं। गैर-कांग्रेसी वोट विभिन्न प्रतिद्वंद्वी दलों और उम्मीदवारों के बीच विभाजित हो गए, इसलिए कांग्रेस आसानी से जीत गई।



चित्र 2.4: राजकुमारी अमृतकौर (1889-1964): गांधीवादी स्वतंत्रता सेनानी; कपूरथला के राजपरिवार में जन्म: विरासत में माता से ईसाई धर्म मिला; संविधान सभा की सदस्य: स्वतंत्र भारत के पहले मंत्रिमंडल में स्वास्थ्य मंत्री; 1957 तक स्वास्थ्य मंत्री के पद पर रहीं।

केरल में कम्युनिस्टों की जीत:



चित्र 2.5: अगस्त 1959 में अपने मंत्रालय को बर्खास्त किए जाने के बाद त्रिवेन्द्रम में कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं के प्रदर्शन का नेतृत्व करते ई. एम. एस. नम्बूदरीपाद

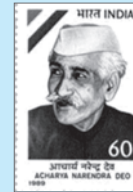
सन् 1957 में ही कांग्रेस पार्टी को केरल में हार का स्वाद चखना पड़ गया था। 1957 के मार्च महीने में जो विधानसभा के चुनाव हुए उसमें कम्युनिस्ट पार्टी को केरल की विधानसभा के लिए सबसे ज्यादा सीटें मिलीं। कम्युनिस्ट पार्टी को कुल 126 में से 60 सीटें हासिल हुईं और पाँच स्वतंत्र उम्मीदवारों का भी समर्थन इस पार्टी को प्राप्त था। राज्यपाल ने कम्युनिस्ट विधायक दल के नेता **ई. एम. एस. नम्बूदरीपाद** को सरकार बनाने का न्यौता दिया। विश्व में यह पहला अवसर था जब एक कम्युनिस्ट पार्टी की सरकार लोकतांत्रिक चुनावों के जरिए बनी। केरल में सत्ता से बेदखल होने पर कांग्रेस पार्टी ने निर्वाचित सरकार के खिलाफ **‘मुक्ति संघर्ष’** छेड़ दिया। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी सत्ता में इस वायदे के साथ आई थी कि वह कुछ क्रांतिकारी तथा प्रगतिशील नीतिगत प्रयास करेगी। कम्युनिस्टों का कहना था कि इस संघर्ष की अगुआई निहित स्वार्थ और धार्मिक संगठन कर रहे हैं। वर्ष 1959 में केंद्र की कांग्रेस सरकार ने संविधान के **अनुच्छेद 356** के अंतर्गत केरल की कम्युनिस्ट सरकार को बर्खास्त कर दिया। यह निर्णय विवादास्पद सिद्ध हुआ। **संविधान-प्रदत्त आपातकालीन शक्तियों के दुरुपयोग के प्रमुख उदाहरण** के रूप में इस निर्णय का बार-बार प्रयोग किया गया।

सोशलिस्ट पार्टी (एसपी):

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का गठन कांग्रेस के भीतर वर्ष 1934 में युवा नेताओं के एक समूह ने किया था। ये नेता कांग्रेस को ज्यादा-से-ज्यादा परिवर्तनकारी और समतावादी बनाना चाहते थे। सन् 1948 में कांग्रेस ने अपने संविधान में परिवर्तन किया। यह परिवर्तन इसलिए किया गया था, जिससे कांग्रेस के सदस्य दोहरी सदस्यता न धारण कर सकें। परिणामस्वरूप कांग्रेस के समाजवादियों को मजबूरन सन् 1948 में अलग होकर “सोशलिस्ट पार्टी” बनानी पड़ी। सोशलिस्ट पार्टी चुनावों में कुछ विशेष कामयाबी हासिल नहीं कर सकी, इससे पार्टी के समर्थकों को बड़ी निराशा हुई। हालाँकि सोशलिस्ट पार्टी की मौजूदगी हिंदुस्तान के अधिकतर राज्यों में थी लेकिन पार्टी को चुनावों में छिटपुट सफलता ही मिली।

समाजवादी **लोकतांत्रिक समाजवाद** की विचारधारा में विश्वास करते थे और इस आधार पर वे कांग्रेस तथा साम्यवादी (कम्युनिस्ट) दोनों से अलग थे। वे कांग्रेस की आलोचना करते थे कि वह पूँजीपतियों और जमींदारों का पक्ष ले रही है एवं मजदूरों-किसानों की उपेक्षा कर रही है। समाजवादियों को वर्ष 1955 में दुविधा की स्थिति का सामना करना पड़ा, क्योंकि कांग्रेस ने घोषणा कर दी, कि उसका लक्ष्य एक समाजवादी प्रतिकृति वाले समाज की रचना है। ऐसे में समाजवादियों के लिए स्वयं को कांग्रेस का कारगर विकल्प बनाकर प्रस्तुत करना मुश्किल हो गया। **राममनोहर लोहिया** के नेतृत्व में कुछ समाजवादियों ने कांग्रेस से अपनी दूरी बढ़ाई और कांग्रेस की आलोचना की।

कुछ अन्य समाजवादियों मसलन **अशोक मेहता** ने कांग्रेस से हल्के-फुल्के सहयोग की तरफदारी की। सोशलिस्ट पार्टी के कई टुकड़े हुए और कुछ मामलों में बहुधा मेल भी हुआ। इस प्रक्रिया में कई समाजवादी दल बने, इन दलों में किसान मजदूर प्रजा पार्टी, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का नाम लिया जा सकता है। जयप्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता, आचार्य नरेन्द्र देव, राममनोहर लोहिया और एस. एम. जोशी समाजवादी दलों के नेताओं में प्रमुख थे। मौजूदा हिंदुस्तान के कई दलों जैसे समाजवादी पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल, जनता दल (यूनाइटेड) और जनता दल (सेक्युलर) पर सोशलिस्ट पार्टी की छाप देखी जा सकती है।



चित्र 2.6: आचार्य नरेन्द्र देव (1889-1956): स्वतंत्रता सेनानी और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के संस्थापक; आज़ादी के आंदोलन के दौरान कई बार जेल गए; किसान आंदोलन में सक्रिय; बौद्ध धर्म के विद्वान; आज़ादी के बाद पहले सोशलिस्ट पार्टी का और बाद में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का नेतृत्व।

कांग्रेस के प्रभुत्व की प्रकृति

- कई अन्य देशों में लोकतंत्र से समझौता करके एक पार्टी का प्रभुत्व सुनिश्चित किया गया। चीन, क्यूबा और सीरिया जैसे कुछ देशों में संविधान केवल एक ही पार्टी को देश पर शासन करने की अनुमति देता है। म्यांमार, बेलारूस, मिस्र और इरीट्रिया जैसे कुछ अन्य राष्ट्र कानूनी तथा सैन्य उपायों के कारण प्रभावी रूप से एक-पक्षीय राज्य हैं। कुछ वर्ष पूर्व तक मेक्सिको, दक्षिण कोरिया और ताइवान भी प्रभावी रूप से एक-पक्षीय प्रभुत्व वाले राज्य थे।
- प्रारंभिक वर्षों में कांग्रेस का एक पार्टी का प्रभुत्व अलग था, क्योंकि यह लोकतांत्रिक परिस्थितियों में हुआ था। यह रंगभेद की समाप्ति के बाद दक्षिण अफ्रीका में ‘अफ्रीकी राष्ट्रीय कांग्रेस’ की जीत के समान था।
- कांग्रेस पार्टी की इस असाधारण सफलता की जड़ें स्वाधीनता-संग्राम की विरासत में हैं। कांग्रेस पार्टी को राष्ट्रीय आंदोलन के वारिस के रूप में देखा गया। स्वतंत्रता आंदोलन में अग्रणी रहे अनेक नेता अब कांग्रेस के उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़ रहे थे। कांग्रेस पहले से ही एक सुसंगठित पार्टी थी। अन्य दल अभी अपनी रणनीति सोच ही रहे होते थे, कि कांग्रेस अपना अभियान शुरू कर देती थी। दरअसल अनेक पार्टियों का गठन स्वतंत्रता के समय के आस-पास अथवा उसके बाद में हुआ। कांग्रेस को ‘अव्वल और एकलौता’ होने का लाभ मिला।
- स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तक यह पार्टी देश में चहुँ ओर फैल चुकी थी तथा इस पार्टी के संगठन का विस्तार स्थानीय स्तर तक हो चुका था। सबसे बड़ी बात यह थी कि कांग्रेस स्वतंत्रता के आंदोलन की अगुआ रही थी और उसकी प्रकृति सबको समेटकर एक साथ चलने की थी।

कांग्रेस एक सामाजिक और विचारधारात्मक गठबंधन के रूप में

- कांग्रेस पार्टी सन् 1885 में एक **हित समूह** से विकसित होकर एक व्यापक राजनीतिक पार्टी बन गई तथा स्वतंत्रता के बाद राजनीतिक व्यवस्था पर उसका वर्चस्व स्थापित हो गया।



चित्र 2.7: रफी अहमद क़िदवाई (1894-1954): उत्तर प्रदेश से कांग्रेस के नेता, प्रांतीय सरकार (1937) में मंत्री, 1946 में दोबारा मंत्री बने, स्वतंत्र भारत के पहले मंत्रिमंडल में संचार मंत्री; खाद्य एवं कृषि मंत्री (1952-54)

- इसकी शुरुआत अंग्रेजी बोलने वाले, उच्च जाति, उच्च मध्यम वर्ग और शहरी अभिजात वर्ग के वर्चस्व वाली पार्टी के रूप में हुई, लेकिन इसके द्वारा शुरू किए गए प्रत्येक सविनय अवज्ञा आंदोलन के साथ इसका सामाजिक आधार व्यापक होता गया। इसने विभिन्न समूहों को एक साथ लाया, जिनके हित सामान्यतः विरोधाभासी थे। किसान और उद्योगपति; शहरी निवासी और ग्रामीण; श्रमिक और मालिक; मध्यम, निम्न और उच्च वर्ग एवं विभिन्न जातियाँ सभी को कांग्रेस में जगह मिली। **धीरे-धीरे इसका नेतृत्व भी उच्च जाति और उच्च वर्ग से आगे विस्तृत हो गया।**
- स्वतंत्रता के समय तक कांग्रेस एक **सतरंगे सामाजिक गठबंधन** का रूप अख्तियार कर चुकी थी और वर्ग, जाति, धर्म, भाषा तथा अन्य हितों के आधार पर इस सामाजिक गठबंधन से भारत की विविधता की नुमाइंदगी हो रही थी।
- कांग्रेस एक **विचारधारात्मक गठबंधन** भी थी। कांग्रेस ने अपने अंदर क्रांतिकारी और उदारवादी, रूढ़िवादी और कट्टरपंथी, गरमपंथी तथा नरमपंथी, दक्षिणपंथी एवं वामपंथी के साथ अन्य विचारधाराओं के मध्यमार्गियों को भी समाहित किया। कांग्रेस एक मंच की तरह थी, जिस पर अनेक समूह, हित और राजनीतिक दल एकत्रित होकर राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेते थे।
- स्वतंत्रता के पूर्व तक अनेक संगठन और पार्टियों को कांग्रेस में रहने की इजाजत थी। हालाँकि इन संगठनों और पार्टियों के अपने-अपने संविधान थे। इनका सांगठनिक ढाँचा भी अलग था। इनमें से कुछ (मसलन कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी) बाद में कांग्रेस से अलग हो गए और विपक्षी दल बने। किसी विशेष पद्धति, कार्यक्रम या नीति को लेकर मौजूद मतभेदों को कांग्रेस पार्टी सुलझा भले न पाए, किंतु उन्हें अपने आप में मिलाए रखती थी और एक आम सहमति कायम कर ले जाती थी।



चित्र 2.8: बाबा साहब भीमराव रामजी अम्बेडकर (1891-1956): जाति विरोधी आंदोलन के नेता और दलितों को न्याय दिलाने के संघर्ष के अगुआ; विद्वान और बुद्धिजीवी; इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी के संस्थापक; शिडयूल्ड कास्ट्स फेडरेशन की स्थापना; रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया के गठन के योजनाकार; दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान वायसराय की काउंसिल में सदस्य; संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष; आजादी के बाद नेहरू के पहले मंत्रिमंडल में मंत्री; हिंदू कोड बिल के मुद्दे पर अपनी असहमति दर्ज कराते हुए 1951 में इस्तीफा; 1956 में अपने हजारों अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म अपनाया।

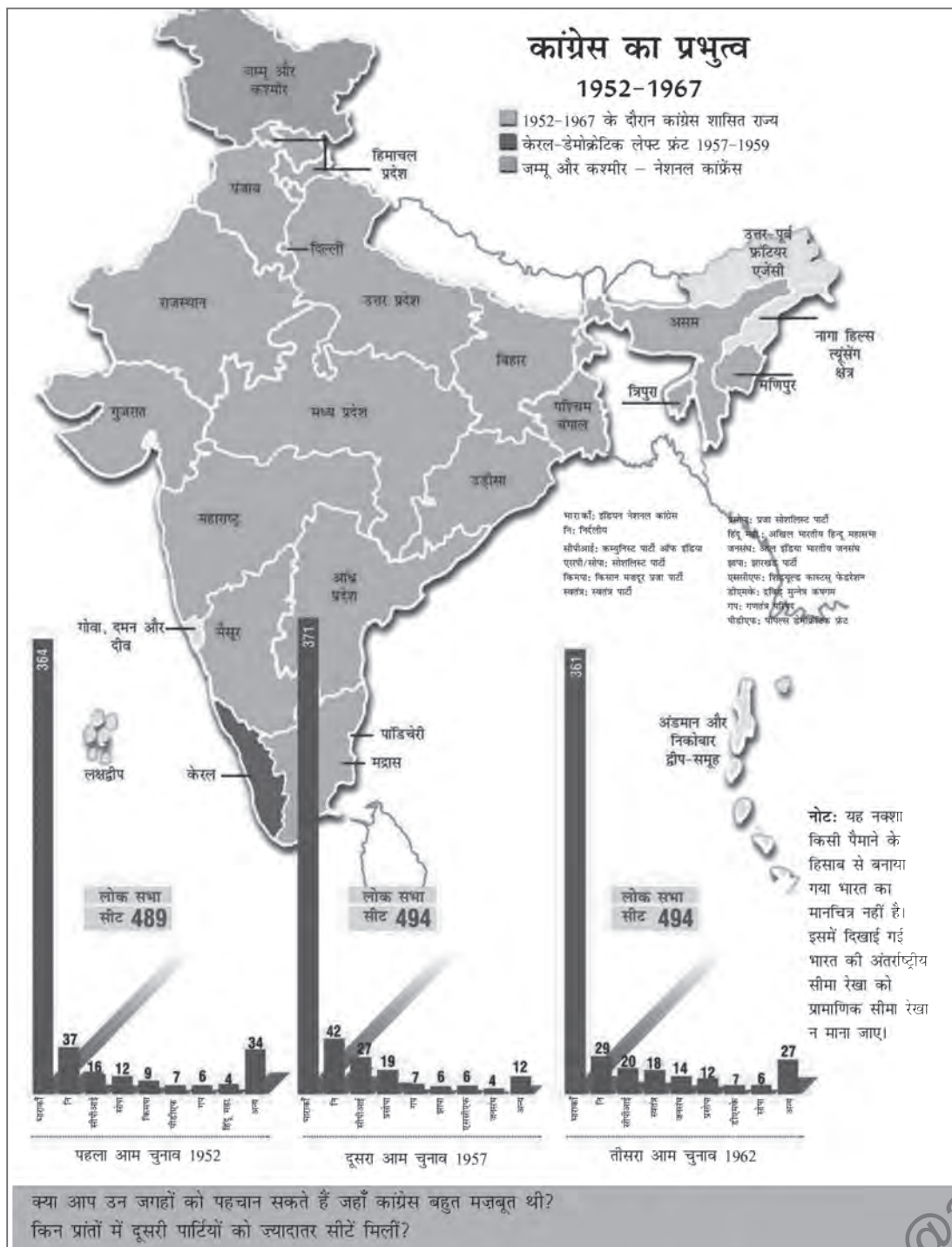
कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (सीपीआई):

1920 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में भारत के विभिन्न हिस्सों में साम्यवादी-समूह (कम्युनिस्ट ग्रुप) उभरे। ये **रूस की बोलशेविक क्रांति** से प्रेरित थे और देश की समस्याओं के समाधान के लिए साम्यवाद का मार्ग अपनाने के पक्षधर थे। सन् 1935 से साम्यवादियों ने मुख्यतः भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर रहकर कार्य किया। कांग्रेस से साम्यवादी दिसंबर 1941 में अलग हुए। इस समय साम्यवादियों ने नाजी जर्मनी के खिलाफ लड़ रहे ब्रिटेन को समर्थन देने का निर्णय किया। दूसरी गैर-कांग्रेसी पार्टियों के विपरीत कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया के पास स्वतंत्रता के समय एक सुचारु पार्टी मशीनरी और समर्पित नेता मौजूद थे। बहरहाल, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस पार्टी के भीतर कई स्वर उभरे।

कम्युनिस्ट पार्टी का विचार था कि सन् 1947 में सत्ता का जो हस्तांतरण हुआ वह वास्तविक स्वतंत्रता नहीं थी। इस विचार के साथ पार्टी ने तेलंगाना में हिंसक विद्रोह को बढ़ावा दिया। साम्यवादी अपनी बात के पक्ष में जनता का समर्थन हासिल नहीं कर सके और इन्हें सशस्त्र सेनाओं द्वारा दबा दिया गया। मजबूरन इन्हें अपने पक्ष को लेकर पुनर्विचार करना पड़ा। सन् 1951 में साम्यवादी पार्टी ने हिंसक क्रांति का रास्ता छोड़ दिया और आने वाले आम चुनावों में भाग लेने का निर्णय किया। पहले आम चुनाव में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने 16 सीटें जीतीं और वह सबसे बड़ी विपक्षी पार्टी बनकर उभरी। इस दल को ज्यादातर समर्थन आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, बिहार और केरल में मिला। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के प्रमुख नेताओं में ए. के. गोपालन, एस. ए. डांगे, ई. एम. एस. नम्बूदरीपाद, पी. सी. जोशी, अजय घोष और पी. सुंदरैया के नाम लिए जाते हैं। चीन और सोवियत संघ के बीच विचारधारात्मक अंतर आने के बाद भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी सन् 1964 में एक बड़ी टूट का शिकार हुई। सोवियत संघ की विचारधारा को उचित मानने वाले भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी में रहे, जबकि इसका विरोध करने वालों ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) या सीपीआई (एम) नाम से एक अलग दल बनाया। ये दोनों दल आज भी विद्यमान हैं।



चित्र 2.9: ए. के. गोपालन (1904-1977): केरल के कम्युनिस्ट नेता, कांग्रेस कार्यकर्ता के रूप में राजनीतिक जीवन; 1939 में कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल। 1964 में कम्युनिस्ट पार्टी के विभाजन के बाद कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (मार्क्सवादी) में शामिल और पार्टी की मजबूती के लिए कार्य, सांसद के रूप में विशेष ख्याति: 1952 से सांसद।



चित्र 2.10: कांग्रेस का प्रभुत्व (1952-1967)

गुटों में तालमेल और सहनशीलता

- कांग्रेस के पास गठबंधन जैसी आंतरिक संरचना थी, जिसने इस पार्टी को एक असाधारण शक्ति दी। सबसे पहले, इसने उन सभी लोगों को समायोजित किया जो सामाजिक या वैचारिक मतभेदों के बावजूद इसमें शामिल हुए। इस तरह कांग्रेस ने किसी भी चरमपंथी स्थिति से अपना बचाव किया और सभी समूहों के बीच संतुलन बनाए रखा।

- **मुलह-समझौते के रास्ते और सर्व समावेशिता** गठबंधन की पहचान होती है। इस रणनीति ने विपक्ष को मुश्किल में डाल दिया, क्योंकि विपक्ष जो कुछ भी कहना चाहता था, उसे कांग्रेस के कार्यक्रम और विचारधारा में आसानी से जगह मिल जाती थी।
- दूसरी बात, गठबंधन की प्रकृति वाले दल में आंतरिक मतभेदों और विभिन्न समूहों तथा नेताओं की **महत्वाकांक्षाओं के प्रति अधिक सहिष्णुता** होती है। यहाँ तक कि अगर कोई समूह दल की स्थिति या सत्ता में अपनी हिस्सेदारी से प्रसन्न नहीं था, तो वह दल के अंदर रहेगा और दल छोड़कर 'विपक्ष' बनने के बजाय अन्य समूहों से लड़ेगा। पार्टी के अंदर इन समूहों को गुट कहा जाता है। कांग्रेस पार्टी की गठबंधन प्रकृति ने विभिन्न गुटों को सहन किया और वास्तव में उन्हें प्रोत्साहित किया। यह आंतरिक गुटबाजी कांग्रेस पार्टी की सबसे बड़ी ताकत बन गई। गुटों ने अलग-अलग वैचारिक रुख अपनाया जिससे कांग्रेस एक अलग पार्टी के रूप में सामने आई।
- **एक मध्यमार्गी दल के रूप में** अन्य दलों ने मुख्य रूप से "हाशिए" से निर्णय लेने को प्रभावित करने का प्रयास किया।
- गुटों की व्यवस्था सत्तारूढ़ दल के भीतर संतुलन तंत्र के रूप में कार्य करती थी। कांग्रेस के भीतर **राजनीतिक प्रतिस्पर्धा** हुई। इस तरह चुनावी प्रतिस्पर्धा के पहले दशक में कांग्रेस ने सत्तारूढ़ दल के साथ-साथ विपक्ष की भूमिका भी निभाई, इसीलिए भारतीय राजनीति के इस दौर को **'कांग्रेस प्रणाली'** के रूप में वर्णित किया गया है।

विचारणीय बिंदु

एक पार्टी के प्रभुत्व वाली 'कांग्रेस प्रणाली' के तहत भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एकछत्र पार्टी के रूप में उभरी। इसने सभी विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं और मतभेदों को अपने में समाहित कर लिया। क्या आपको लगता है कि इससे मतभेदों का दमन हुआ क्योंकि इसने अन्य आवाजों को उभरने का मौका नहीं दिया? अथवा क्या इसने भारतीय स्वतंत्रता के शुरुआती चरण में एकजुट भारत को सुनिश्चित करने में मदद की?



भारतीय जन संघ:

भारतीय जनसंघ का गठन वर्ष 1951 में हुआ था। **श्यामा प्रसाद मुखर्जी** इसके संस्थापक-अध्यक्ष थे। इस दल की जड़ें आजादी के पहले के समय से सक्रिय **राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (RSS)** और **हिंदू महासभा** में खोजी जा सकती हैं। जनसंघ अपनी विचारधारा और कार्यक्रमों के लिहाज से बाकी दलों से भिन्न है। जनसंघ ने "एक देश, एक संस्कृति और एक राष्ट्र" के विचार पर बल दिया। इसका मानना था कि देश भारतीय संस्कृति और परंपरा के आधार पर आधुनिक, प्रगतिशील एवं शक्तिशाली बन सकता है।

जनसंघ ने भारत और पाकिस्तान को एक करके **'अखंड भारत'** बनाने की बात कही। अंग्रेजी भाषा को हटाकर हिंदी को राजभाषा बनाने के आंदोलन में यह दल सबसे आगे था। इसने धार्मिक और सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों को रियायत देने की बात का विरोध किया। चीन ने वर्ष 1964 में अपना पहला परमाणु परीक्षण किया, इसके बाद से जनसंघ ने लगातार इस बात का समर्थन किया, कि भारत भी अपने परमाणु हथियार तैयार करे। 1950 के दशक में जनसंघ चुनावी राजनीति के हाशिये पर रहा। इस पार्टी को वर्ष 1952 के चुनाव में लोकसभा की तीन सीटों पर सफलता मिली और 1957 के आम चुनावों में इसने लोकसभा की 4 सीटें जीतीं। प्रारंभिक वर्षों में इस पार्टी को हिंदी-भाषी राज्यों यथा- राजस्थान, मध्य प्रदेश, दिल्ली और उत्तर प्रदेश के नगरीय क्षेत्रों में समर्थन मिला। जनसंघ के नेताओं में श्यामा प्रसाद मुखर्जी, दीनदयाल उपाध्याय और बलराज मधोक के नाम शामिल हैं। **भारतीय जनता पार्टी** की जड़ें इसी जनसंघ में हैं।



चित्र 2.11: दीन दयाल उपाध्याय (1916-1968): 1942 से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पूर्णकालिक कार्यकर्ता; भारतीय जनसंघ के संस्थापक सदस्य; भारतीय जनसंघ में पहले महासचिव फिर अध्यक्ष; समग्र मानवतावाद सिद्धांत के प्रणेता।

विपक्षी पार्टियों का उद्भव

- **बहुदलीय लोकतंत्र** वाले अन्य राष्ट्रों की तुलना में उस वक्त भी भारत में बहुविध और जीवंत विपक्षी दल थे। इनमें से कई दल वर्ष 1952 के आम चुनावों से कहीं पहले बन चुके थे।
- ये सभी विपक्षी दल स्वतंत्रता के तुरंत बाद की अवधि में लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में केवल नाममात्र का प्रतिनिधित्व प्राप्त करने में सफल रहे, फिर भी उनकी उपस्थिति ने भारतीय राजव्यवस्था के लोकतांत्रिक चरित्र को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- इन विपक्षी दलों ने कांग्रेस पार्टी की नीतियों और प्रथाओं की निरंतर **सैद्धांतिक आलोचना** की। इसने सत्तारूढ़ दल को नियंत्रण में रखा और कांग्रेस के भीतर शक्ति संतुलन को परिवर्तित कर दिया।
- उनकी निरंतर आलोचना ने एक-पक्षीय कांग्रेस के युग को लोकतंत्र विरोधी बनने से रोका। इन विपक्षी दलों ने पूरे समय **राजनीतिक विकल्प को जीवित** रखा। उन्होंने युवा नेताओं को भी तैयार किया, जो हमारे देश को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले थे।



चित्र 2.12: 1948 में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के गवर्नर जनरल के पद की शपथ ग्रहण के बाद नेहरू मंत्रिमंडल। बैठे हुए बाएँ से दाएँ: रफी अहमद क़िदवई, बलदेव सिंह, मौलाना आजाद, प्रधानमंत्री नेहरू, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, सरदार वल्लभभाई पटेल, राजकुमारी अमृत कौर, जॉन मथाई और जगजीवन राम। खड़े हुए बाएँ से दाएँ: श्री गाडगिल, श्री नियोगी, डॉ. अम्बेडकर, श्यामा प्रसाद मुखर्जी, गोपालास्वामी आयंगर और जयरामदास दौलतराम।

- स्वतंत्रता उपरांत प्रारंभिक वर्षों में कांग्रेस और विपक्षी दलों के नेताओं के बीच पारस्परिक सम्मान का गहरा भाव था। स्वतंत्रता की उद्घोषणा के बाद अंतरिम सरकार ने देश का शासन सँभाला था। इसके मंत्रिमंडल में डॉ. अंबेडकर और श्यामा प्रसाद मुखर्जी जैसे विपक्षी नेता शामिल थे। जवाहरलाल नेहरू अक्सर सोशलिस्ट दल के प्रति अपने प्रेम को जाहिर करते थे, उन्होंने जयप्रकाश नारायण जैसे समाजवादी नेताओं को सरकार में शामिल होने का न्यौता दिया। अपने राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी से इस किस्म का निजी रिश्ता और उसके प्रति सम्मान का भाव दलगत प्रतिस्पर्द्धा के तेज होने के बाद लगातार कम होता गया।

निष्कर्ष

‘कांग्रेस प्रणाली’ शब्द का निर्माण राजनीतिशास्त्री ‘रजनी कोठारी’ ने किया था। उन्होंने इस शब्द का प्रयोग 1960 के दशक के अंत से 1980 के दशक के अंत तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC) के एक दलीय शासन के दौर को वर्णित करने के लिए किया था। हमारे देश में लोकतांत्रिक राजनीति का यह पहला चरण काफी अनूठा था। कांग्रेस के नेतृत्व में **राष्ट्रीय आंदोलन के समावेशी चरित्र** ने इसे विभिन्न वर्गों, समूहों और हितों को आकर्षित करने में सक्षम बनाया, जिससे यह एक व्यापक सामाजिक एवं वैचारिक गठबंधन बन गया। इस प्रकार स्वतंत्रता संग्राम में कांग्रेस की महत्वपूर्ण भूमिका ने इसे दूसरों पर बढ़त दिलाई। जैसे-जैसे कांग्रेस की सभी हितों और राजनीतिक सत्ता के सभी आकांक्षियों को समायोजित करने की क्षमता लगातार कम होती गई, अन्य राजनीतिक दलों का महत्त्व बढ़ने लगा। इस प्रकार कांग्रेस का प्रभुत्व देश की राजनीति में केवल एक चरण है। एकदलीय प्रभुत्व का युग वर्ष 1989 के आम चुनावों के साथ प्रभावी रूप से समाप्त हो गया, जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपना बहुमत खो दिया। तब से भारत ने अधिक विखंडित राजनीतिक परिदृश्य देखा है, जिसकी विशेषता केंद्र में गठबंधन सरकारें हैं।

महत्वपूर्ण शब्दावलि

- ❖ **इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन:** चुनावों में वोट डालने और गिनने के लिए प्रयोग की जाने वाली कम्प्यूटरीकृत मशीन।
- ❖ **एकदलीय शासन:** राजनीतिक व्यवस्था, जिसमें एक ही राजनीतिक दल महत्वपूर्ण शक्ति रखता है और सरकारी निर्णयों को नियंत्रित करता है।
- ❖ **परिसीमन:** निष्पक्ष प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए निर्वाचन सीमाओं या निर्वाचन क्षेत्रों को परिभाषित या पुनर्परिभाषित करने की प्रक्रिया।
- ❖ **गठबंधन:** सामान्य लक्ष्यों को प्राप्त करने या सामूहिक रूप से शासन करने के लिए गठित विभिन्न दलों या समूहों का राजनीतिक गठबंधन।
- ❖ **निर्वाचन क्षेत्र:** विधायी निकाय में निर्वाचित अधिकारी द्वारा प्रतिनिधित्व किया जाने वाला एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र।
- ❖ **गुटबाजी:** किसी बड़े संगठन या राजनीतिक इकाई के भीतर अलग-अलग और प्रतिस्पर्द्धी समूहों या गुटों की उपस्थिति, जो अक्सर आंतरिक संघर्ष या विभाजन का कारण बनती है।



नियोजित विकास की राजनीति

संदर्भ: इस अध्याय में NCERT पाठ्यपुस्तक की कक्षा-XII (स्वतंत्रत भारत में राजनीति-II) के अध्याय-3 का सारांश शामिल है।

परिचय

नियोजित विकास की राजनीति ने राष्ट्रों के सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस बहुआयामी अवधारणा में विशिष्ट आर्थिक और सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सरकार द्वारा रणनीतियों का जानबूझकर निर्माण एवं क्रियान्वयन शामिल है। इस प्रयास का केंद्र संसाधनों का आवंटन, समान विकास की खोज और नागरिकों के समग्र कल्याण को बढ़ाना है। जैसे-जैसे सरकारें विविध हितों, विचारधाराओं और वैश्विक गतिशीलता से जूझती हैं, नियोजित विकास की राजनीति एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बन जाती है, जहाँ नीतियों पर चर्चा होती है, निर्णय लिए जाते हैं एवं राष्ट्र का भविष्य आकार लेता है।

राजनीतिक टकराव

- लोकतंत्र में विकास की राजनीति के प्रमुख निर्णय जटिल होते हैं और इसमें विभिन्न सामाजिक समूहों तथा पीढ़ियों के हितों का संतुलन शामिल होता है।

पोस्को प्लांट: उड़ीसा के ग्रामीण विरोध पर उतारू

कार्यालय संवादाता

भुवनेश्वर: जगतसिंह जिले में प्रस्तावित पोस्को - इंडिया इस्पात संयंत्र से विस्थापन का शिकार हुए लोगों ने इस कोरियाई कंपनी के दफ्तर के सामने गुरुवार को विरोध प्रदर्शन किया। यह लोग माँग कर रहे थे कि एक साल पहले कंपनी और उड़ीसा सरकार के बीच जिस सहमति पत्र पर हस्ताक्षर हुए थे उसे रद्द कर दिया जाए। धिकिया, नुआगाँव और गढ़कुजंगा ग्राम पंचायत के 100 से भी ज्यादा स्त्री-पुरुषों ने कंपनी के दफ्तर में घुसने की कोशिश की लेकिन पुलिस ने उन्हें रोक दिया। प्रदर्शनकारियों ने नारे लगाए और कहा कि हमारी जीविका और जीवन की कीमत पर कंपनी को इस्पात संयंत्र लगाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। इस विरोध प्रदर्शन का आयोजन राष्ट्रीय युवा संगठन और नवनिर्माण समिति ने किया था।

साभार: द हिंदू (23 जून, 2006)

- ये प्रमुख निर्णय जन-प्रतिनिधियों द्वारा लिए जाते हैं, जो लोगों की भावनाओं से जुड़े होते हैं।
- स्वतंत्रता पश्चात देश में विकास के संबंध में ऐसे कई निर्णय लेने पड़े, जिनमें आर्थिक विकास और सामाजिक एवं आर्थिक न्याय दोनों शामिल थे।
- न्याय के साथ विकास सुनिश्चित करने की सरकार की भूमिका ने इसकी भागीदारी की सीमा के बारे में असहमति को जन्म दिया है, जिसके लिए राजनीतिक दलों के बीच परामर्श और सार्वजनिक स्वीकृति की आवश्यकता है। इसलिए विकास प्रक्रिया का अध्ययन भारत के राजनीतिक इतिहास को समझने हेतु आवश्यक है।

विकास की धारणाएँ

- समाज के विभिन्न वर्गों के लिए अलग-अलग अर्थों वाला विकास विरोधाभास, संघर्ष और चर्चाएँ उत्पन्न करता है।
- स्वतंत्रता के बाद के शुरुआती दौर में 'विकास' को अधिक 'आधुनिक' बनने के बराबर माना जाता था, औद्योगिक पश्चिमी देशों के समान, जिसमें पारंपरिक सामाजिक संरचनाओं का विखंडन और पूँजीवाद एवं उदारवाद का उदय शामिल था।
- विकास, भौतिक प्रगति और वैज्ञानिक तर्कसंगतता के विचारों से जुड़े इस आधुनिकीकरण ने विभिन्न देशों को विकसित, विकासशील या अविकसित के रूप में वर्गीकृत किया।

क्या है वामपंथ और क्या है दक्षिणपंथ ?

जब विभिन्न देशों की राजनीति की बात होती है, तो अक्सर वहाँ के राजनीतिक दल अथवा समूहों का हवाला देते हुए कहा जाता है कि इस या उस पार्टी या समूह की विचारधारा वामपंथी अथवा दक्षिणपंथी रुझान वाली है। आपने ऐसा जरूर ही पढ़ा होगा। 'दक्षिणपंथ' अथवा 'वामपंथ' शब्द से किसी राजनीतिक दल अथवा समूह के बारे में यह प्रकट होता है कि सामाजिक परिवर्तन को लेकर वह कौन-सा पक्ष लेगा या आर्थिक पुनर्वितरण में राज्य की भूमिका के बारे में उसके क्या विचार होंगे। 'वामपंथ' से अक्सर उन लोगों की तरफ संकेत किया जाता है जो अर्थव्यवस्था के राज्य नियंत्रण के पक्ष में हैं और मुक्त प्रतिस्पर्द्धा पर राज्य विनियमन को प्राथमिकता देते हैं। 'दक्षिणपंथ' से उन लोगों को इंगित किया जाता है जो यह मानते हैं कि खुली प्रतिस्पर्द्धा और बाजारमूलक अर्थव्यवस्था के जरिए ही प्रगति हो सकती है अर्थात् सरकार को अर्थव्यवस्था में गैर-जरूरी हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

क्या आप बता सकते हैं कि 1960 के दशक में कौन-से राजनीतिक दल वामपंथी और कौन-से दक्षिणपंथी थे। आप इस दौर की कांग्रेस पार्टी को किस तरफ़ रखेंगे?

- ❑ स्वतंत्रता के बाद, भारत में आधुनिक विकास के दो मॉडल थे-
 - यूरोप और अमेरिका के अधिकांश भाग की तरह उदार-पूँजीवादी मॉडल।
 - सोवियत संघ (USSR) की तरह समाजवादी मॉडल (भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और सोशलिस्ट पार्टी के नेताओं तथा कांग्रेस के भीतर नेहरू जैसे नेताओं द्वारा समर्थित)।
- ❑ राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान औपनिवेशिक युग के वाणिज्यिक हितों से अलग होने पर व्यापक सहमति थी, इसलिए गरीबी उन्मूलन और सामाजिक तथा आर्थिक पुनर्वितरण की प्राथमिक जिम्मेदारी सरकार को सौंपी गई।

नियोजन

- ❑ विभिन्न मतभेदों के बावजूद एक बिंदु पर सभी सहमत थे, कि विकास का कार्य निजी हाथों में नहीं सौंपा जा सकता और सरकार के लिए आवश्यक है कि वह विकास का एक खाका अथवा योजना तैयार करे।
- ❑ यूरोप में महामंदी, जापान और जर्मनी में युद्धोत्तर पुनर्निर्माण तथा 1930 और 1940 के दशकों में सोवियत संघ की उल्लेखनीय आर्थिक वृद्धि जैसे अनुभवों से यह आम सहमति और मजबूत हुई।
- ❑ भारतीय आर्थिक नियोजन का इतिहास "बंबई योजना" से शुरू होता है, जहाँ बड़े उद्योगपतियों के एक वर्ग ने वर्ष 1944 में एक साथ मिलकर देश में योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था की स्थापना के लिए एक संयुक्त प्रस्ताव का मसौदा तैयार किया था।
- ❑ भारत की स्वतंत्रता के बाद योजना आयोग की स्थापना की गई, जिसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री थे, जो भारत के विकास पथ और रणनीति को निर्धारित करने के लिए जिम्मेदार केंद्रीय एवं प्रभावशाली निकाय बन गया।

योजना आयोग

- ❑ योजना आयोग संविधान द्वारा स्थापित अन्य आयोगों अथवा दूसरे निकायों की तरह नहीं था। योजना आयोग की स्थापना मार्च 1950 में भारत सरकार ने एक सीधे-सादे प्रस्ताव के जरिए की। यह आयोग एक सलाहकार की भूमिका निभाता था और इसकी सिफारिशें तभी प्रभावकारी हो पाती थी जब मंत्रिमंडल उन्हें मंजूरी दे।
- ❑ जिस प्रस्ताव के जरिए योजना आयोग की स्थापना हुई थी, उसमें इसके कार्यों के दायरे का उल्लेख करते हुए कहा गया था: भारत के संविधान में भारत के नागरिकों को कुछ मौलिक अधिकार दिए गए हैं और राज्य के लिए नीति-निदेशक तत्वों का उल्लेख किया गया है। नीति-निदेशक तत्वों के अंतर्गत यह बात विशेष रूप से कही गई है कि राज्य एक ऐसी सामाजिक संरचना को बनाते-बचाते हुए--- लोगों के कल्याण के लिए प्रयास करेगा, जहाँ राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाएँ सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की भावना से अनुप्राणित हों--- राज्य अन्य बातों के अतिरिक्त अपनी नीतियों को इस तरह बनाएगा और अमल में लाएगा कि
 - (a) स्त्री और पुरुष, सभी नागरिकों को आजीविका के पर्याप्त साधनों का बराबर-बराबर अधिकार हो।
 - (b) समुदाय के भौतिक संसाधनों की मिल्कियत और नियंत्रण को इस तरह बाँटा जाएगा कि उससे सर्वसामान्य की भलाई हो।
 - (c) अर्थव्यवस्था का संचालन इस तरह नहीं किया जाएगा कि धन अथवा उत्पादन के साधन एकाध जगह केंद्रित हो जाएँ और जनसामान्य का कल्याण बाधित हो।

प्रारंभिक कदम

- ❑ सोवियत संघ की तरह भारत के योजना आयोग ने भी पंचवर्षीय योजनाओं (FYP) का विकल्प चुना।
- ❑ योजना के अनुसार केंद्र सरकार और सभी राज्य-सरकारों के बजट को दो हिस्सों में बाँटा गया। एक हिस्सा गैर-योजनागत व्यय का था। इसके अंतर्गत वार्षिक आधार पर दैनंदिन मदों पर खर्च शामिल था, दूसरा हिस्सा योजनागत व्यय का होता था। योजना में तय की गई प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए इसे पाँच वर्ष की अवधि में खर्च करना होता था।
- ❑ दिसंबर 1951 में लागू भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना के मसौदे ने समाज के विभिन्न वर्गों में व्यापक उत्साह और चर्चा प्रारंभ की, जो 1956 और 1961 की योजनाओं में भी जारी रही।
- ❑ पंचवर्षीय योजना वर्ष 1966 से चालू होनी थी, लेकिन इस वक्त तक नियोजन का नयापन एक हद तक मंद पड़ गया था और भारत गहन आर्थिक संकट की चपेट में आ चुका था। परिणामस्वरूप सरकार ने आर्थिक चुनौतियों के उत्तर में 'योजना अवकाश' घोषित कर दिया।

नीति आयोग:

भारत सरकार ने योजना आयोग के स्थान पर नीति आयोग (नेशनल इंस्टीट्यूशन फॉर ट्रांसफॉर्मिंग इंडिया) नामक एक नई संस्था की स्थापना की। यह 1 जनवरी, 2015 को अस्तित्व में आई। इसके उद्देश्यों और संरचना के बारे में जानने के लिए वेबसाइट <https://www.niti.gov.in/> देखें।

प्रथम पंचवर्षीय योजना

- ❑ प्रथम पंचवर्षीय योजना (वर्ष 1951-1956) का प्रयास देश को गरीबी के श्राप से बाहर निकलना था। योजना को तैयार करने में जुटे विशेषज्ञों में एक के. एन. राज थे। उन्होंने लोकतंत्र के संरक्षण को सुनिश्चित करने के लिए पहले दो दशकों के दौरान सतर्क दृष्टिकोण को अपनाने की दलील दी।
- ❑ इस योजना में बाँधों और सिंचाई में निवेश सहित कृषि क्षेत्र पर ज्यादा-से-ज्यादा जोर दिया गया था, जिसमें भाखड़ा-नांगल जैसी विशाल परियोजनाओं के लिए बड़ी धनराशि आवंटित की गई।
- ❑ भूमि वितरण प्रतिरूप को कृषि विकास में एक बड़ी बाधा के रूप में पहचाना गया, इसलिए इसने देश के विकास की कुंजी के रूप में भूमि सुधारों पर भी ध्यान केंद्रित किया।
- ❑ योजनाकारों ने व्यक्तिगत व्यय की तुलना में बचत को बढ़ावा देकर राष्ट्रीय आय को ऊँचा रखने का भी लक्ष्य रखा। 1950 के दशक में कम आधारभूत व्यय स्तरों और रोजगार योग्य जनसंख्या की तुलना में निम्न पूँजी आधार के कारण, योजना निर्माताओं ने बचत को बढ़ावा देने का प्रयास किया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना

- ❑ पी. सी. महालनोबिस के नेतृत्व में दूसरी पंचवर्षीय योजना (FYP) में भारी उद्योगों को प्राथमिकता दी गई। पहली योजना के विपरीत, जिसमें धैर्य पर बल दिया गया था, दूसरी योजना का उद्देश्य विभिन्न दिशाओं में एक साथ परिवर्तन लागू करके तेजी से संरचनात्मक परिवर्तन करना था।

- ❑ इस योजना को अंतिम रूप दिए जाने से पूर्व मद्रास के पास अपने सत्र के दौरान कांग्रेस पार्टी ने एक प्रस्ताव पारित किया, जिसमें “समाज के समाजवादी प्रतिरूप” के लक्ष्य की घोषणा की गई, जो दूसरी योजना के उद्देश्य को दर्शाता है।
- ❑ आयात शुल्क के माध्यम से सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों के उद्योगों के लिए एक संरक्षित वातावरण बनाकर औद्योगीकरण को बढ़ावा देना भारत के विकास में एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ।
- ❑ इस अवधि के दौरान बचत और निवेश दोनों ही बढ़ रहे थे, इसलिए बिजली, रेलवे, इस्पात, मशीनरी तथा संचार जैसे उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र में विकसित किया जा सकता था।
- ❑ घरेलू उद्योगों की इस सुरक्षा की निम्नलिखित कीमत चुकानी पड़ी-
 - भारत तकनीकी रूप से पिछड़ा हुआ था और विश्व बाजार से तकनीकी खरीदने में उसे अपनी बहुमूल्य विदेशी मुद्रा खर्च करनी पड़ी।
 - उद्योगों ने कृषि की अपेक्षा निवेश को ज्यादा आकर्षित किया, ऐसे में खाद्यान्न-संकट की समस्या विकट थी। भारत के योजनाकारों को उद्योग और कृषि के बीच संतुलन साधने में भारी कठिनाई आई।
 - तीसरी पंचवर्षीय योजना, योजना रणनीतियों में ‘शहरी पूर्वाग्रह’ के परिप्रेक्ष्य में दूसरी योजना के समान थी।



चित्र 3.1: पी.सी. महालनोबिस (1893-1972): अंतरराष्ट्रीय स्तर के विख्यात वैज्ञानिक एवं सांख्यिकीविद; भारतीय सांख्यिकी संस्थान (1931) के संस्थापक; दूसरी पंचवर्षीय योजना के योजनाकार; तीव्र औद्योगीकरण और सार्वजनिक क्षेत्र की सक्रिय भूमिका के समर्थक।

विचारणीय बिंदु

प्रथम पंचवर्षीय योजना में विशाल सिंचाई परियोजनाओं और भूमि सुधारों के माध्यम से कृषि विकास पर ध्यान केंद्रित किया गया था, जबकि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में योजनाबद्ध औद्योगीकरण पर ध्यान केंद्रित किया गया था। क्या आपको लगता है कि औद्योगीकरण पर अत्यधिक ध्यान केंद्रित करने से कृषि पर निवेश कम हुआ और गरीबी बढ़ी, क्योंकि अधिकांश आबादी कृषि पर निर्भर थी। क्या आपको लगता है कि यह आने वाले दशकों में खाद्यान्न की कमी का कारण भी था? या क्या द्वितीय पंचवर्षीय योजना ने आधुनिक भारत के औद्योगिक विकास का आधार निर्मित किया?



निष्कर्ष

भारतीय राजनीति में नियोजित विकास का क्रमिक विकास महामंदी और सोवियत विकास मॉडल जैसे अनुभवों से प्रेरित सरकारी हस्तक्षेप पर आम सहमति के साथ प्रारंभ हुआ। योजना आयोग ने गरीबी, कृषि और औद्योगीकरण पर ध्यान केंद्रित करते हुए भारत को पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से निर्देशित किया। फिर भी, इसे व्यापक चुनौतियों और आलोचनाओं का सामना करना पड़ा, जिससे उद्योग-कृषि संतुलन तथा ग्रामीण समुदाय के प्रभाव पर चर्चा शुरू हुई। भारत की विकास यात्रा निरंतर अनुकूलन और प्रतिबिंब की विशेषता है, जो इसकी लोकतांत्रिक प्रक्रिया की गतिशीलता को दर्शाती है।

महत्वपूर्ण शब्दावलियाँ

- ❖ **लोकतंत्र:** सरकार का एक रूप जिसमें शासक लोगों द्वारा चुने जाते हैं।
- ❖ **नियोजित विकास:** राजनीति और शहरी नियोजन में एक रणनीति, जिसमें सरकारी अधिकारी जानबूझकर शहरों, क्षेत्रों या देशों के विकास को निर्मित तथा विनियमित करते हैं, जिससे विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।
- ❖ **आर्थिक विकास:** किसी समुदाय, क्षेत्र या राष्ट्र के आर्थिक कल्याण और जीवन की गुणवत्ता में सुधार करने की प्रक्रिया। इसमें अक्सर आय बढ़ाने, रोजगार सृजित करने तथा आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने के उपाय शामिल होते हैं।
- ❖ **समाजवाद:** समाजवाद एक राजनीतिक और आर्थिक विचारधारा है, जो समाज में उत्पादन, वितरण तथा विनिमय के साधनों के सामूहिक या सरकारी स्वामित्व एवं नियंत्रण की वकालत करती है।
- ❖ **पूँजीवाद:** पूँजीवाद एक आर्थिक और राजनीतिक प्रणाली है, जिसमें उत्पादन, वितरण तथा विनिमय के साधनों का स्वामित्व एवं संचालन मुख्य रूप से निजी व्यक्तियों या निगमों द्वारा लाभ कमाने के उद्देश्य से किया जाता है।
- ❖ **बजट:** बजट आय और व्यय पर आधारित एक व्यय योजना है।



भारत के विदेश संबंध

संदर्भ: इस अध्याय में NCERT पाठ्यपुस्तक की कक्षा-XII (स्वतंत्र भारत में राजनीति-II) के अध्याय-4 का सारांश शामिल है।

परिचय

एक राष्ट्र के रूप में भारत का जन्म विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि में हुआ था। ऐसे में भारत ने अपनी विदेश नीति में अन्य सभी देशों की संप्रभुता का सम्मान करने और शांति कायम करके अपनी सुरक्षा सुनिश्चित करने का लक्ष्य सामने रखा। इस लक्ष्य की प्रतिध्वनि संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांतों में सुनाई देती है। ब्रिटिश सरकार अपने पीछे विभिन्न अंतरराष्ट्रीय विवादों की विरासत छोड़ गई और विभाजन ने अपनी चुनौतियों का एक नया समूह जोड़ दिया, जबकि गरीबी को संबोधित करने की अनिवार्यता पहले से ही दबाव की प्रक्रिया में थी।

गुटनिरपेक्षता की नीति

- ❑ शीत युद्ध काल को वैश्विक स्तर पर महाशक्तियों- अमेरिका और सोवियत संघ के नेतृत्व वाले दो गुटों के बीच राजनीतिक, आर्थिक और सैन्य टकराव के रूप में चिह्नित किया गया था।
- ❑ इसी दौर में संयुक्त राष्ट्र संघ भी अस्तित्व में आया, परमाणु हथियारों का निर्माण शुरू हुआ, चीन में कम्युनिस्ट शासन की स्थापना हुई। अनौपनिवेशीकरण की प्रक्रिया भी इसी दौर में आरंभ हुई थी।

जवाहरलाल नेहरू की भूमिका

- ❑ भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रीय एजेंडा तय करने में निर्णायक भूमिका निभाई।
- ❑ प्रधानमंत्री और विदेश मंत्री के रूप में 1946 से 1964 तक उन्होंने भारत की विदेश नीति की रचना और क्रियान्वयन पर गहरा प्रभाव डाला।
- ❑ **नेहरू की विदेश नीति के तीन बड़े उद्देश्य थे:**
 - कठिन संघर्ष से प्राप्त संप्रभुता को बचाए रखना
 - क्षेत्रीय अखंडता को बनाए रखना तथा
 - तीव्र गति से आर्थिक विकास करना।
- ❑ **दृष्टिकोण:** नेहरू इन उद्देश्यों को गुटनिरपेक्षता की रणनीति के माध्यम से प्राप्त करना चाहते थे।

गुटनिरपेक्षता: दो खेमों से दूरी

- ❑ स्वतंत्र भारत की विदेश नीति ने गुटनिरपेक्षता की नीति का समर्थन करके, शीत युद्ध के तनाव को कम करते हुए संयुक्त राष्ट्र शांति अभियानों में मानव संसाधनों का योगदान देकर शांतिपूर्ण विश्व के सपने को आगे बढ़ाया।
- ❑ वर्ष 1956 में जब ब्रिटेन ने स्वेज नहर मुद्दे पर मिस्र पर हमला किया, तो भारत ने इस नव-औपनिवेशिक आक्रमण के विरुद्ध विश्व के विरोध का नेतृत्व किया।
- ❑ पाकिस्तान अमेरिका के नेतृत्व वाले सैन्य गठबंधन में शामिल हो गया, अमेरिका भारत की स्वतंत्र पहल और गुटनिरपेक्षता की नीति से प्रसन्न नहीं था।
- ❑ अमेरिका सोवियत संघ के साथ भारत की बढ़ती साझेदारी से भी नाराज था।
- ❑ **अफ्रीकी-एशियाई एकता:** नेहरू के युग की पहचान भारत और एशिया एवं अफ्रीका के अन्य नए स्वतंत्र राज्यों के बीच संपर्कों की स्थापना से हुई।
 - नेहरू के नेतृत्व में भारत ने अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने से पाँच महीने पहले मार्च 1947 में एशियाई संबंध सम्मेलन आयोजित किया।
- ❑ **बॉण्डुंग सम्मेलन:** वर्ष 1955 में इंडोनेशिया के बॉण्डुंग शहर में आयोजित अफ्रीकी-एशियाई सम्मेलन, जिसे आमतौर पर बॉण्डुंग सम्मेलन के रूप में जाना जाता है, नव स्वतंत्र एशियाई और अफ्रीकी देशों के साथ भारत के जुड़ाव का चरमोत्कर्ष था।
 - बॉण्डुंग सम्मेलन के परिणामस्वरूप बाद में गुटनिरपेक्ष आंदोलन (NAM) की स्थापना हुई।
- ❑ NAM का पहला शिखर सम्मेलन सितंबर वर्ष 1961 में बेलग्रेड में आयोजित किया गया था, नेहरू NAM के सह-संस्थापक थे।

विचारणीय बिंदु

गुटनिरपेक्ष आंदोलन शीत युद्ध के दौर में उभरा था, जब विश्व दो खेमों में विभाजित था। इस नीति ने भारत को अपनी स्वायत्तता बनाए रखने और शीत युद्ध की राजनीति में शामिल न होने में सहायता की। सोवियत संघ के पतन के बाद विदेश नीति के रूप में गुटनिरपेक्ष आंदोलन निष्क्रिय रहा है। हालाँकि, बदलती वैश्विक व्यवस्था के साथ अमेरिका और पश्चिम बनाम रूस और चीन के बढ़ते प्रभाव ने एक बार फिर से अवरोधपूर्ण मानसिकता को जन्म दिया है। क्या आपको लगता है कि गुटनिरपेक्ष आंदोलन 2.0 समय की माँग है? या क्या भारत को एक अधिक उत्तरदायी वैश्विक शक्ति की भूमिका निभाने के लिए एक समूह का हिस्सा होना चाहिए?

**चीन के साथ शांति और संघर्ष**

- पाकिस्तान के साथ अपने संबंधों के विपरीत, स्वतंत्र भारत ने चीन के साथ अपने संबंधों की शुरुआत बहुत ही मैत्रीपूर्ण तरीके से की।
- वर्ष 1949 में चीनी क्रांति के बाद, भारत साम्यवादी सरकार को मान्यता देने वाले पहले देशों में से एक था।
- जवाहरलाल नेहरू के कुछ सहयोगी, जैसे- वल्लभभाई पटेल, भविष्य में संभावित चीनी आक्रमण के बारे में चिंतित थे, लेकिन नेहरू को लगा कि यह 'असंभव' है कि भारत को चीन के आक्रमण का सामना करना पड़ेगा।
- पंचशील: शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के पाँच सिद्धांतों यानी पंचशील की घोषणा भारत के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू और चीन के प्रमुख चाऊ एन. लाई ने संयुक्त रूप से 29 अप्रैल, 1954 में की। दोनों देशों के बीच मजबूत संबंध की दिशा में यह एक अगला कदम था।

तिब्बत का मुद्दा

- मध्य एशियाई क्षेत्र का पठार, जिसे तिब्बत कहा जाता है, ऐतिहासिक रूप से भारत और चीन के बीच तनाव का प्रमुख कारण रहा है। वर्ष 1950 में चीन ने तिब्बत पर नियंत्रण कर लिया।
- वर्ष 1954 में जब भारत और चीन के बीच पंचशील समझौते पर हस्ताक्षर हुए, तो भारत ने तिब्बत पर चीन के दावे को स्वीकार कर लिया।
- तिब्बत के पारंपरिक नेता दलाई लामा ने सीमा पारकर भारत में प्रवेश किया और 1959 में भारत से शरण माँगी। भारत ने दलाई लामा को शरण दे दी। चीन ने भारत के इस कदम का कड़ा विरोध किया।

चीन का आक्रमण, 1962

- उत्तरदायी कारक: मुख्य दो घटनाओं ने भारत-चीन संबंधों को तनावपूर्ण बना दिया -
 - चीन ने 1950 में तिब्बत पर नियंत्रण कर लिया और इस तरह दोनों देशों के बीच ऐतिहासिक बफर समाप्त हो गया।
 - तिब्बती आध्यात्मिक नेता दलाई लामा ने वर्ष 1959 में भारत में राजनीतिक शरण माँगी और प्राप्त की।
 - चीन ने आरोप लगाया कि भारत सरकार भारत के भीतर से चीन विरोधी गतिविधियों को बढ़ावा दे रही है।
 - चीन ने भारतीय क्षेत्र के भीतर दो क्षेत्रों पर दावा किया:
 - जम्मू और कश्मीर के लद्दाख क्षेत्र में अक्साई-चिन क्षेत्र तथा
 - अरुणाचल प्रदेश राज्य का अधिकांश भाग, जिसे प्रारंभ में नेफा (उत्तर-पूर्वी सीमांत) कहा जाता था।
- युद्धक्रम: चीन ने अक्टूबर 1962 में दोनों विवादित क्षेत्रों पर आक्रमण किया।
 - पहला हमला एक हफ्ते तक चला और इस दौरान चीनी सेना ने अरुणाचल प्रदेश के कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर कब्जा कर लिया।
 - हमले का अगला दौर नवंबर महीने में शुरू हुआ। लद्दाख से लगे पश्चिमी मोर्चे पर भारतीय सेना ने चीन की बढ़त रोक दी लेकिन पूर्व में चीनी सेना आगे बढ़ते हुए असम के मैदानी हिस्से के प्रवेशद्वार तक पहुँच गई।
 - आखिरकार चीन ने एकतरफा युद्ध-विराम घोषित किया और चीन की सेनाएँ अपनी प्रारंभिक स्थिति पर लौट गईं, जहाँ वे हमले से पूर्व तैनात थीं।
- युद्ध के परिणाम: चीन-युद्ध से भारत की छवि को देश और विदेश दोनों ही जगह आघात लगा। इस संकट से उबरने के लिए भारत को अमेरिका और ब्रिटेन दोनों से सैन्य मदद की गुहार लगानी पड़ी।
 - सोवियत संघ इस संकट की घड़ी में तटस्थ बना रहा। चीन युद्ध से भारतीय राष्ट्रीय स्वाभिमान को चोट पहुँची लेकिन इसके साथ-साथ राष्ट्र-भावना भी बलवती हुई।

- भारत-चीन संघर्ष का प्रभाव विपक्षी दलों पर भी हुआ। इस युद्ध और चीन-सोवियत संघ के बीच बढ़ते मतभेद से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (CPI) के अंदर बड़ी उठा-पटक मची। सोवियत संघ का पक्षधर भाग CPI में ही रहा और उसने कांग्रेस के साथ संबंध बढ़ाया। दूसरा भाग कुछ समय के लिए चीन का पक्षधर रहा और यह कांग्रेस के साथ किसी भी तरह की नजदीकी के खिलाफ था।
- भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी वर्ष 1964 में टूट गई। इस पार्टी के भीतर जो भाग चीन का पक्षधर था, उसने मार्क्सवादी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (CPI-M: माकपा) बनाई।
- चीन के साथ युद्ध ने भारतीय नेतृत्व को पूर्वोत्तर क्षेत्र की अस्थिर स्थिति के प्रति सचेत कर दिया।

पाकिस्तान के साथ युद्ध और शांति

- वर्ष 1947 में ही कश्मीर में भारतीय और पाकिस्तानी सेनाओं के बीच छद्म युद्ध प्रारंभ हो गया था, इसके बाद इस मुद्दे को संयुक्त राष्ट्र के पास भेज दिया गया।
- नदी जल बँटवारे को लेकर लंबे समय से चले आ रहे विवाद को विश्व बैंक की मध्यस्थता से सुलझाया गया। भारत-पाकिस्तान सिंधु जल संधि पर 1960 में नेहरू और जनरल अयूब खान ने हस्ताक्षर किए थे।
- अप्रैल 1965 में पाकिस्तान ने गुजरात के कच्छ के रण में सशस्त्र हमले किए। इसके बाद अगस्त-सितंबर में जम्मू-कश्मीर में बड़ा हमला हुआ।
- तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री **लाल बहादुर शास्त्री** ने भारतीय सैनिकों को पंजाब सीमा पर जवाबी हमला करने का आदेश दिया। भीषण युद्ध में भारतीय सेना लाहौर के करीब पहुँच गई।
- संयुक्त राष्ट्र के हस्तक्षेप से शत्रुता समाप्त हुई। बाद में भारतीय प्रधानमंत्री **लाल बहादुर शास्त्री** और पाकिस्तान के **जनरल अयूब खान** ने जनवरी 1966 में सोवियत संघ की मध्यस्थता में **ताशकंद समझौते** पर हस्ताक्षर किए।

बांग्लादेश युद्ध, 1971

- 1970 में पाकिस्तान के सामने एक गहरा आंतरिक संकट आ खड़ा हुआ। पाकिस्तान के प्रथम आम चुनाव में खंडित जनादेश आया। जुल्फिकार अली भुट्टो की पार्टी पश्चिमी पाकिस्तान में विजयी रही, जबकि मुजीबुर्रहमान की पार्टी 'आवामी लीग' ने पूर्वी पाकिस्तान में बहुमत प्राप्त किया।
- पाकिस्तानी शासक लोकतांत्रिक जनादेश को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे, न ही वे आवामी लीग की संघ की माँग को स्वीकार करने हेतु तैयार थे।
- इसकी जगह पाकिस्तानी सेना ने 1971 में शेख मुजीबुर्रहमान को गिरफ्तार कर लिया और पूर्वी पाकिस्तान के लोगों को हिंसक प्रताड़ना देना शुरू किया। जवाब में पूर्वी पाकिस्तान की जनता ने अपने इलाके यानी मौजूदा **बांग्लादेश** को पाकिस्तान से मुक्त कराने के लिए संघर्ष छेड़ दिया।
- वर्ष 1971 के दौरान भारत को लगभग 80 लाख शरणार्थियों का बोझ उठाना पड़ा, जो पूर्वी पाकिस्तान से भागकर भारत के पड़ोसी क्षेत्रों में शरण लिए हुए थे।
- पाकिस्तान ने आरोप लगाया कि भारत उसे तोड़ने की साजिश कर रहा है। पाकिस्तान की अमेरिका और चीन ने सहायता की।
- **अमेरिका-पाकिस्तान-चीन की धुरी** बनती देख भारत ने इसके जवाब में सोवियत संघ के साथ **1971 में शांति और मित्रता की एक 20-वर्षीय संधि** पर दस्तखत किए। संधि से भारत को इस बात का आश्वासन मिला कि युद्ध होने पर सोवियत संघ भारत की सहायता करेगा।
- दिसंबर 1971 में भारत और पाकिस्तान के बीच पूर्ण पैमाने पर युद्ध छिड़ गया। दस दिनों के भीतर भारतीय सेना ने ढाका को तीन तरफ से घेर लिया और लगभग 90,000 की पाकिस्तानी सेना को आत्मसमर्पण करना पड़ा।
- बांग्लादेश के एक स्वतंत्र देश के रूप में, भारत ने एकतरफा युद्ध-विराम की घोषणा की।
- 3 जुलाई, 1972 को इंदिरा गांधी और जुल्फिकार अली भुट्टो के बीच **शिमला समझौते** पर हस्ताक्षर ने शांति की स्थापना को औपचारिक रूप दिया।

करगिल संघर्ष

- 1999 के प्रारंभिक महीनों में भारतीय क्षेत्र की नियंत्रण सीमा रेखा (Line of Control) के कई ठिकानों जैसे- द्रास, माशकोह, काकसर और बतालिक पर अपने को मुजाहिदीन बताने वालों ने कब्जा कर लिया था।
- पाकिस्तानी सेना की इसमें योजना समझकर भारतीय सेना इस कब्जे के विरुद्ध हरकत में आयी। इससे दोनों देशों के बीच संघर्ष छिड़ गया। इसे 'करगिल संघर्ष' के नाम से जाना जाता है।
- भारत अपने अधिकतर ठिकानों पर पुनः अधिकार कर चुका था।
- करगिल की लड़ाई ने पूरे विश्व का ध्यान खींचा था, क्योंकि इससे ठीक एक वर्ष पूर्व दोनों देश परमाणु हथियार बनाने की अपनी क्षमता का प्रदर्शन कर चुके थे। बहरहाल, यह युद्ध सिर्फ करगिल के इलाके तक ही सीमित रहा।
- इस युद्ध के तुरंत बाद पाकिस्तान की हुकूमत पर जनरल परवेज मुशर्रफ की अगुवाई में पाकिस्तानी सेना ने नियंत्रण कर लिया।

भारत की परमाणु नीति

- ❑ भारत का परमाणु कार्यक्रम 1940 के दशक के अंत में **होमी जे. भाभा** के मार्गदर्शन में शुरू हुआ था। भारत शांतिपूर्ण उद्देश्यों में प्रयोग के लिए परमाणु ऊर्जा बनाना चाहता था। नेहरू परमाणु हथियारों के खिलाफ थे।
- ❑ साम्यवादी शासन वाले चीन ने अक्टूबर 1964 में परमाणु परीक्षण किया। परमाणु शक्ति संपन्न राष्ट्र यथा- संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत संघ, ब्रिटेन, फ्रांस और चीन ने, जो संयुक्त राष्ट्र संघ सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्य भी थे, विश्व के अन्य राष्ट्रों पर **1968 की परमाणु अप्रसार संधि (NPT)** को थोपना चाहा।
- ❑ भारत प्रारंभ से इस संधि को भेदभावपूर्ण मानता आया था।
- ❑ जब भारत ने मई 1974 में अपना प्रथम परमाणु परीक्षण किया, तो इसे उसने शांतिपूर्ण परीक्षण करार दिया। भारत ने मई 1998 में कई परमाणु परीक्षण किए, जिससे सैन्य उद्देश्यों के लिए परमाणु ऊर्जा का उपयोग करने की उसकी क्षमता का प्रदर्शन हुआ।
- ❑ पाकिस्तान ने भी शीघ्र ही इसका अनुसरण किया, जिससे क्षेत्र में परमाणु आदान-प्रदान की संभावना बढ़ गई।
- ❑ **प्रथम प्रयोग नहीं (नो फर्स्ट यूज):** भारत का विश्वसनीय न्यूनतम परमाणु निवारण संबंधी परमाणु सिद्धांत “प्रथम प्रयोग नहीं” की बात कहता है तथा वैश्विक, सत्यापन योग्य और गैर-भेदभावपूर्ण परमाणु निरस्त्रीकरण के प्रति भारत की प्रतिबद्धता को दोहराता है, जिससे परमाणु हथियार मुक्त विश्व का निर्माण संभव हो सके।
 - भारत ने तर्क दिया कि वह परमाणु ऊर्जा का उपयोग केवल शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए करने की नीति के प्रति प्रतिबद्ध है।

विचारणीय बिंदु

भारतीय परमाणु नीति में कहा गया है कि भारत 'नो फर्स्ट यूज' की नीति का पालन करता है। क्या आपको लगता है कि यह सही है, क्योंकि पाकिस्तान की ऐसी कोई नीति नहीं है और वह राजनीतिक अस्थिरता की ओर बढ़ रहा है?



निष्कर्ष

हालाँकि राजनीतिक दलों के बीच बाह्य संबंधों को कैसे संचालित किया जाए, इस बारे में मामूली मतभेद हैं, लेकिन भारतीय राजनीति में आमतौर पर राष्ट्रीय एकीकरण, अंतरराष्ट्रीय सीमाओं की सुरक्षा और राष्ट्रीय हित के प्रश्नों पर पार्टियों के बीच व्यापक सहमति होती है। इसलिए, हम पाते हैं कि 1962-1971 के दशक के दौरान, जब भारत ने तीन युद्धों का सामना किया, या बाद में भी जब अलग-अलग पार्टियाँ समय-समय पर सत्ता में आईं, विदेश नीति ने दलगत राजनीति में केवल सीमित भूमिका निभाई।

महत्वपूर्ण शब्दावलियाँ

- ❖ **विदेश नीति:** इस नीति के क्रियान्वयन में देशों के बीच राजनीतिक, सामाजिक-सांस्कृतिक और व्यापार तथा रक्षा संबंधों को गहरा करना शामिल है, साथ ही कई देशों की भागीदारी वाले बहुपक्षीय मंचों में भाग लेना भी शामिल है।
- ❖ **गुटनिरपेक्ष आंदोलन (NAM):** यह तटस्थता और सैन्य गुटों के साथ गठबंधन न करने पर आधारित है। यह अवधारणा शीत युद्ध के दौरान विकसित हुई और अधिकांश प्रतिभागी नए स्वतंत्र देश थे। इन देशों ने वर्ष 1955 में इंडोनेशिया के बॉण्डुंग में पंचशील प्रस्तावों पर हस्ताक्षर किए।
- ❖ **भारत की विदेश नीति के लिए संवैधानिक प्रावधान:** भारतीय संविधान का अनुच्छेद 51 ऐसी विदेश नीति अपनाने का निर्देश देता है, जो अंतरराष्ट्रीय विधि और सह-अस्तित्व को बनाए रखती है।
- ❖ **ताशकंत समझौता:** वर्ष 1965 के भारत-पाकिस्तान युद्ध को हल करने के लिए भारत और पाकिस्तान के बीच इस पर हस्ताक्षर किए गए थे।
- ❖ **नेफा (NEFA):** मूल रूप से 'नॉर्थ-ईस्ट फ्रंटियर ट्रैक्ट्स' के रूप में जाना जाने वाला नेफा ब्रिटिश भारत और बाद में 20 जनवरी, 1972 तक भारतीय गणराज्य में राजनीतिक विभाजनों में से एक था, जब यह अरुणाचल प्रदेश और असम के कुछ हिस्सों का संघ राज्यक्षेत्र बन गया।
- ❖ **बॉण्डुंग सम्मेलन:** बड़े पैमाने पर पहला अफ्रीकी-एशियाई सम्मेलन, जिसमें एशियाई और अफ्रीकी राज्य अफ्रीकी-एशियाई आर्थिक और सांस्कृतिक सहयोग को बढ़ावा देने तथा किसी भी राष्ट्र द्वारा उपनिवेशवाद या नव-उपनिवेशवाद का विरोध करने के लिए आपस में एकत्रित हुए।



कांग्रेस प्रणाली: चुनौतियाँ और पुनर्स्थापना

संदर्भ: इस अध्याय में NCERT पाठ्यपुस्तक की कक्षा-XII (स्वतंत्र भारत में राजनीति-II) के अध्याय-5 का सारांश शामिल है।

परिचय

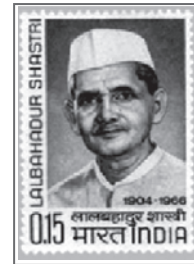
1960 के दशक के अंत और 1970 के दशक की शुरुआत में भारत के राजनीतिक परिदृश्य में अत्यधिक परिवर्तन हुए, जिसने कांग्रेस पार्टी के लिए अभूतपूर्व चुनौतियों और परिवर्तनों के युग को चिह्नित किया। इस अवधि के दौरान केंद्र में इंदिरा गांधी की सरकार थी, जिनके नेतृत्व में कांग्रेस में आंतरिक गुटीय संघर्ष प्रारंभ हुआ, सामाजिक-आर्थिक सुधारों के लिए साहसिक दृष्टिकोण और राजनीतिक चालें चली गईं, जिसने पार्टी और देश की राजनीतिक दिशा को पुनः परिभाषित किया।

राजनीतिक उत्तराधिकार की चुनौती

- मई 1964 में प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के निधन के पश्चात् दो प्रमुख प्रश्न उठे:
 - नेहरू का उत्तराधिकारी कौन होगा?
 - नेहरू के बाद भारत के लोकतांत्रिक प्रयोग का क्या होगा?
- नेहरू के बाद भारत की लोकतांत्रिक यात्रा की निरंतरता के बारे में भारत से बाहर के कई लोगों के मन में गंभीर संदेह थे।
- 1960 के दशक को **“खतरनाक दशक”** कहा जाता है क्योंकि गरीबी, असमानता, सांप्रदायिक और क्षेत्रीय विभाजन आदि के प्रश्न अभी अनसुलझे थे। संभव था कि इन सारी कठिनाइयों के कारण देश में लोकतंत्र की परियोजना असफल हो जाती अथवा राष्ट्र स्वयं ही बिखर जाता।

नेहरू के बाद शास्त्री

- नेहरू के उत्तराधिकारी का प्रश्न आसानी से हल कर लिया गया।
- नेहरू की मृत्यु के बाद कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष के. कामराज ने अपनी पार्टी के नेताओं और सांसदों से सलाह-मशविरा किया। उन्होंने पाया कि सभी लालबहादुर शास्त्री के पक्ष में हैं।
- शास्त्री, कांग्रेस संसदीय दल के निर्विरोध नेता चुने गए और इस तरह वे देश के प्रधानमंत्री बने। शास्त्री उत्तर प्रदेश के थे और नेहरू के मंत्रिमंडल में कई वर्षों तक मंत्री पद पर रहे थे।
- शास्त्री अपनी सादगी और सिद्धांत निष्ठा के लिए प्रसिद्ध थे। अपने राजनीतिक कार्यकाल के दौरान एक बार उन्होंने एक बड़ी रेल दुर्घटना की नैतिक जिम्मेदारी स्वीकार करते हुए रेलमंत्री के पद से इस्तीफा दिया था।
- उनके कार्यकाल के दौरान, भारत चीन के साथ युद्ध के बाद की आर्थिक स्थिति, भयंकर सूखे और खाद्यान्न की कमी से जूझ रहा था। इसके अलावा, वर्ष 1965 में पाकिस्तान के साथ युद्ध ने एक बड़ी चुनौती पेश की।
- उनके नेतृत्व का प्रतीक **‘जय जवान जय किसान’** का नारा था।
- प्रधानमंत्री के पद पर शास्त्री बड़े कम दिनों तक रहे। 10 जनवरी, 1966 को **ताशकंत** में अचानक उनका देहान्त हो गया। ताशकंत तब भूतपूर्व **सोवियत संघ** में था और आज यह **उज्बेकिस्तान** की राजधानी है।



चित्र 5.1: लालबहादुर शास्त्री (1904-1966): भारत के दूसरे प्रधानमंत्री; 1930 से स्वतंत्रता आंदोलन में भागीदारी की तथा उत्तर प्रदेश मंत्रिमंडल में मंत्री रहे; कांग्रेस पार्टी के महासचिव का पदभार संभाला; 1951-56 तक केंद्रीय मंत्रिमंडल में मंत्री पद पर रहे। इसी दौरान रेल-दुर्घटना की नैतिक जिम्मेदारी लेते हुए उन्होंने रेलमंत्री के पद से इस्तीफा दे दिया था। बाद में, 1957-64 के बीच भी मंत्री पद पर रहे। उन्होंने **‘जय जवान जय किसान’** का मशहूर नारा दिया था।

शास्त्री के बाद इंदिरा गांधी

- दो वर्ष के भीतर कांग्रेस के के समक्ष एक बार पुनः राजनीतिक उत्तराधिकार का प्रश्न उठ खड़ा हुआ।
- नेतृत्व के लिए मोरारजी देसाई और इंदिरा गांधी के बीच कड़ा मुकाबला था।
- कई विचार-विमर्श के बाद, पार्टी के वरिष्ठ नेताओं ने इंदिरा गांधी का समर्थन करने का निर्णय किया, हालाँकि यह निर्णय सर्वसम्मति से नहीं था।
- ऐसे में फैसले के लिए कांग्रेस के सांसदों ने गुप्त मतदान किया।
- आंतरिक दरारों के बावजूद इस शांतिपूर्ण हस्तांतरण ने भारत के लोकतंत्र की विकसित होती परिपक्वता को प्रदर्शित किया।
- हालाँकि इंदिरा गांधी लंबे समय से राजनीति में सक्रिय रहीं, लेकिन शास्त्री के अधीन उनका प्रशासनिक कार्यकाल तुलनात्मक रूप से संक्षिप्त था।
- कुछ लोगों का मानना था कि वरिष्ठ कांग्रेस नेताओं ने उनका समर्थन किया, क्योंकि उन्हें उम्मीद थी कि प्रशासनिक और राजनीतिक मामलों में कोई विशेष अनुभव न होने के कारण समर्थन और दिशा-निर्देशन के लिए वह उन पर निर्भर रहेंगी।
- हालाँकि, आर्थिक चुनौतियों का सामना करते हुए, इंदिरा गांधी ने पार्टी पर अपना नियंत्रण बढ़ाने और अपने नेतृत्व कौशल को दिखाने की कोशिश की।

इंदिरा गांधी (1917-1984): 1966 से 1977 तक और फिर 1980 से 1984 तक भारत की प्रधानमंत्री रहीं; युवा कांग्रेस कार्यकर्ता के रूप में स्वतंत्रता आंदोलन में भागीदारी; 1958 में कांग्रेस की अध्यक्ष; 1964-66 में शास्त्री मंत्रिमंडल में केंद्रीय मंत्री के पद पर रहीं। 1967, 1971 और 1980 के आम चुनावों में कांग्रेस पार्टी को अपने नेतृत्व में विजयी बनाया: 'गरीबी हटाओ' का नारा दिया; 1971 के युद्ध में जीत का श्रेय और प्रिवी पर्स की समाप्ति, बैंकों के राष्ट्रीयकरण, परमाणु परीक्षण तथा पर्यावरण संरक्षण के कदम उठाए। जवाहरलाल नेहरू की पुत्री 31 अक्तूबर, 1984 के दिन उनकी हत्या कर दी गई।



चित्र 5.2: इंदिरा गांधी

चौथा आम चुनाव, 1967: भारतीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण मोड़

चुनावों का संदर्भ

भारत के राजनीतिक और लोकतांत्रिक इतिहास में 1967 के वर्ष को अत्यन्त महत्वपूर्ण पड़ाव माना जाता है।

- **आर्थिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि:**
 - निर्वाचन से पूर्व की अवधि में दो प्रधानमंत्रियों का निधन हुआ।
 - नई प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी एक वर्ष से भी कम समय के लिए पद पर थीं और राजनीतिक रूप से उन्हें कम अनुभवी माना जाता था।
 - इस समय देश गंभीर आर्थिक संकट में था। मानसून की असफलता, व्यापक सूखा, खेती की पैदावार में गिरावट, गंभीर खाद्य संकट, विदेशी मुद्रा-भंडार में कमी, औद्योगिक उत्पादन और निर्यात में गिरावट के साथ सैन्य खर्च में भारी बढ़ोतरी हुई थी।
 - नियोजन और आर्थिक विकास के संसाधनों को सैन्य-मद में लगाना पड़ा, इन सभी कारणों से देश की आर्थिक स्थिति विकट हो गई थी।
 - इंदिरा गांधी की सरकार के शुरुआती फैसलों में एक था- रुपये का अवमूल्यन करना।
 - भारतीय रुपये के अवमूल्यन के कारण कीमतों में वृद्धि हुई, जिससे व्यापक सार्वजनिक विरोध प्रदर्शन शुरू हो गए।
- **सामाजिक और राजनीतिक आंदोलन:**
 - लोगों ने बढ़ती कीमतों, बेरोजगारी और समग्र आर्थिक स्थितियों के खिलाफ विरोध प्रदर्शन किया।
 - सरकार ने प्रायः इन विरोध प्रदर्शनों को वास्तविक चिंताओं के बजाय कानून और व्यवस्था के मुद्दों के रूप में देखा।
 - साम्यवादी और समाजवादी पार्टी ने व्यापक समानता के लिए संघर्ष छेड़ दिया और सशस्त्र कृषक-विद्रोह का नेतृत्व किया।
 - देश ने गंभीर हिंदू-मुस्लिम दंगों का भी सामना किया।

गैर-कांग्रेसवाद

- **अवधारणा:**
 - विपक्षी दलों का मानना था कि उनके वोट बंट जाने के कारण ही कांग्रेस सत्तासीन है।

- ### विधानसभा चुनाव परिणाम 1967

वे प्रदेश जहाँ कांग्रेस को 1967 के विधानसभा चुनाव में बहुमत मिला
 वे प्रदेश जहाँ कांग्रेस को 1967 के विधानसभा चुनाव में बहुमत नहीं मिला

राजस्थान (कांग्रेस को बहुमत नहीं मिला लेकिन कुछ अन्य की सहायता से सरकार बनाई)

जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर-पूर्व फ्रंटियर एजेंसी, नागा हिल्स ल्यूनसंग क्षेत्र, मणिपुर, असम, त्रिपुरा, मेघालय, गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, गोवा, दमन और दीव, मेसूर, कर्णाटक, कर्नाटक, पांडिचेरी, मद्रास, केरल, लक्षद्वीप, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह

नोट: यह नक्शा किसी पैमाने के हिसाब से बनाया गया भारत का मानचित्र नहीं है। इसमें दिखाई गई भारत की अंतर्राष्ट्रीय सीमा रेखा को प्रामाणिक सीमा रेखा न माना जाए।

क्या आज गैर-कांग्रेसवाद प्रासंगिक है? क्या मौजूदा पश्चिम बंगाल में वाममोर्चा के खिलाफ़ ऐसा ही तरीका अपनाया जा सकता है?

32%

चुनाव का जनादेश

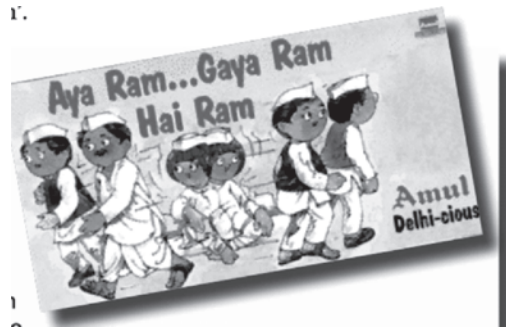
- व्यापक जन-असंतोष और राजनीतिक दलों के ध्रुवीकरण के इसी माहौल में लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के लिए 1967 के फरवरी माह में चौथे आम चुनाव हुए।
- कांग्रेस पहली बार नेहरू के बिना मतदाताओं का सामना कर रही थी।
- कांग्रेस को जैसे-तैसे लोकसभा में बहुमत तो मिल गया था, लेकिन उसको प्राप्त मतों के प्रतिशत तथा सीटों की संख्या में भारी गिरावट आई थी। अब से पहले कांग्रेस को कभी न तो इतने कम वोट मिले थे और न ही इतनी कम सीटें मिली थीं।
- इंदिरा गांधी के मंत्रिमंडल के आधे मंत्री चुनाव हार गए थे। **तमिलनाडु से कामराज, महाराष्ट्र से एस. के. पाटिल, पश्चिम बंगाल से अतुल्य घोष और बिहार से के. बी. सहाय** जैसे राजनीतिक दिग्गजों को मुँह की खानी पड़ी थी।
- कांग्रेस को सात राज्यों में बहुमत नहीं मिला तथा दो राज्यों में दल-बदल की घटनाएँ सामने आईं, परिणामस्वरूप कुल 9 राज्यों यथा- पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, मद्रास तथा केरल में कांग्रेस सरकार बनाने में असमर्थ रही।
- **मद्रास प्रांत** (अब इसे **तमिलनाडु** कहा जाता है) में एक क्षेत्रीय पार्टी द्रविड़ मुनेत्र कड़गम पूर्ण बहुमत के साथ सत्ता पाने में कामयाब रही। यह पहली घटना थी जब किसी गैर-कांग्रेसी दल को किसी राज्य में पूर्ण बहुमत मिला।

गठबंधन:

- वर्ष 1967 के चुनावों ने गठबंधन राजनीति के युग की शुरुआत की।
- अनेक गैर-कांग्रेसी पार्टियों ने एकजुट होकर संयुक्त विधायक दल बनाया और गैर-कांग्रेसी सरकारों को समर्थन दिया।
- इन गठबंधनों में विभिन्न विचारधाराओं के राजनीतिक भागीदार शामिल होते थे।

दल बदल:

- वर्ष 1967 के चुनावों की एक विशेष बात दल-बदल भी है।
- कांग्रेस को छोड़ने वाले विधायकों ने तीन राज्यों- हरियाणा, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में गैर-कांग्रेसी सरकारों को बहाल करने में अहम भूमिका निभायी।
- इस दौर में राजनीतिक निष्ठा की इस अदला-बदली से 'आया राम-गया राम' का जुमला मशहूर हुआ।
- बाद के समय में दल-बदल रोकने के लिए संविधान में संशोधन किया गया।



चित्र 5.4: “आया राम-गया राम” अनेक चुटकुलों और कार्टूनों का विषय बन गया

कांग्रेस में विभाजन

- चुनाव परिणामों ने कांग्रेस की कमजोरी को उजागर कर दिया। वर्ष 1967 के चुनावों के बाद, कांग्रेस केंद्र में सत्ता में रही, लेकिन बहुमत कम हो गया और कई राज्यों में हार गई।
- राज्यों में बनी अधिकतर गैर-कांग्रेसी गठबंधन की सरकारें ज्यादा दिनों तक नहीं टिक पाईं। इन सरकारों ने बहुमत खोया और उन्हें या तो नए सिरे से गठबंधन बनाना पड़ा अथवा राष्ट्रपति शासन लागू करना पड़ा।

इंदिरा बनाम ‘सिंडिकेट’

- इंदिरा गांधी को असली चुनौती विपक्ष से नहीं बल्कि खुद अपनी पार्टी के भीतर से मिली।
- उन्हें ‘**सिंडिकेट**’ से निपटना पड़ा। ‘सिंडिकेट’ कांग्रेस के भीतर ताकतवर और प्रभावशाली नेताओं का एक समूह था।
- ‘**सिंडिकेट**’ ने इंदिरा गांधी को प्रधानमंत्री बनवाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। उम्मीद थी कि इंदिरा गांधी उनकी सलाहों पर अमल करेंगी।
- जैसे-जैसे समय बीतता गया, इंदिरा गांधी ने सरकार और पार्टी के भीतर खुद का मुकाम बनाना शुरू किया।

विचारणीय बिंदु

नेहरू के अधीन कांग्रेस और इंदिरा के अधीन कांग्रेस दो अलग-अलग राजनीतिक दलीय प्रणालियाँ थी। क्या आप पार्टी के कार्यों और प्रधानमंत्री तथा उनके मंत्रिमंडल द्वारा निभाई गई भूमिका में अंतर के बारे में सोच सकते हैं?



- उन्होंने अपने सलाहकारों और विश्वस्तों के समूह में पार्टी से बाहर के लोगों को रखा। धीरे-धीरे और बड़ी सावधानी से उन्होंने सिंडिकेट को हाशिये पर ला खड़ा किया।
- सिंडिकेट से अपनी स्वतंत्रता स्थापित करने और कांग्रेस के लिए खोई जमीन वापस पाने की दोहरी चुनौती का सामना करते हुए, इंदिरा गांधी ने एकमात्र सत्ता संघर्ष को एक वैचारिक लड़ाई में बदल दिया।
- उन्होंने मई 1967 में “दस सूत्री कार्यक्रम” प्रस्तुत करके सरकार की नीति को वामपंथी दिशा में मोड़ दिया, जिसमें समाजवादी नीतियों पर बल दिया गया।
- हालाँकि सिंडिकेट के नेताओं ने औपचारिक तौर पर वामपंथी खेमे के इस कार्यक्रम को स्वीकृति दे दी, लेकिन इसे लेकर उनके मन में गहरे संदेह थे।

कांग्रेस ‘सिंडिकेट’

- कांग्रेसी नेताओं के एक समूह को अनौपचारिक तौर पर ‘सिंडिकेट’ के नाम से इंगित किया जाता था। इस समूह के नेताओं का पार्टी के संगठन पर नियंत्रण था।
- ‘सिंडिकेट’ के अगुवा मद्रास प्रांत के भूतपूर्व मुख्यमंत्री और फिर कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष रह चुके के. कामराज थे।
- इसमें प्रांतों के ताकतवर नेता जैसे- बंबई सिटी (अब मुंबई) के एस. के. पाटिल, मैसूर (अब कर्नाटक) के एस. निजलिंगप्पा, आंध्र प्रदेश के एन. संजीव रेड्डी और पश्चिम बंगाल के अतुल्य घोष शामिल थे।
- लालबहादुर शास्त्री और उसके बाद इंदिरा गांधी, दोनों ही सिंडिकेट की सहायता से प्रधानमंत्री के पद पर आरूढ़ हुए थे।
- इंदिरा गांधी के पहले मंत्रिपरिषद् में इस समूह की निर्णायक भूमिका रही। इसने तब नीतियों के निर्माण और क्रियान्वयन में भी अहम भूमिका निभायी थी।
- कांग्रेस के विभाजित होने के बाद सिंडिकेट के नेताओं और उनके प्रति निष्ठावान कांग्रेसी कांग्रेस (ओ) में ही रहे। चूँकि इंदिरा गांधी की कांग्रेस (आर) ही लोकप्रियता की कसौटी पर सफल रही, इसलिए भारतीय राजनीति के ये बड़े और ताकतवर नेता 1971 के बाद प्रभावहीन हो गए।

राष्ट्रपति पद का चुनाव, 1969

- वर्ष 1969 में राष्ट्रपति जाकिर हुसैन की मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी को लेकर गुटबाजी शुरू हो गई। सिंडिकेट ने इंदिरा गांधी के जाने-माने विरोधी तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष एन. संजीव रेड्डी को कांग्रेस पार्टी की तरफ से राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के रूप में खड़ा किया।
- जवाब में इंदिरा गांधी ने तत्कालीन उपराष्ट्रपति वी.वी. गिरी को स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में खड़ा होने के लिए अपना समर्थन किया।
- अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिए, उन्होंने प्रमुख नीतिगत निर्णय लिए जैसे-चौदह अग्रणी बैंकों के राष्ट्रीयकरण और भूतपूर्व राजा-महाराजाओं को प्राप्त विशेषाधिकार यानी ‘प्रिवी पर्स’ को समाप्त करने जैसे कुछ बड़ी और जनप्रिय नीतियों की घोषणा भी की। उस वक्त मोरारजी देसाई देश के उपप्रधानमंत्री और वित्तमंत्री थे। उपर्युक्त दोनों मुद्दों पर प्रधानमंत्री और उनके बीच गहरे मतभेद उभरे तथा इसके परिणामस्वरूप मोरारजी ने सरकार से किनारा कर लिया।



चित्र 5.5: यह कार्टून वी. वी. गिरी की जीत के बाद छपा था। इसमें उन्हें एक विजयी मुक्केबाज के रूप में दिखाया गया है। उनके गले में माला लटक रही है। उनका मुकाबला सिंडिकेट के उम्मीदवार से था। कार्टून में सिंडिकेट के प्रतीक के रूप में निजलिंगप्पा को घुटने टेकते दिखाया गया है।



चित्र 5.6: वर्ष 1969 में कांग्रेस पार्टी में नेतृत्व की प्रतिद्वंद्विता पर एक कार्टूनिस्ट का विचार।

- राष्ट्रपति चुनाव के नज़दीक आते ही कांग्रेस अध्यक्ष एस. निजलिंगप्पा ने एक ‘व्हिप’ जारी कर सभी कांग्रेस सांसदों और विधायकों को संजीव रेड्डी के पक्ष में वोट देने का निर्देश दिया। हालाँकि, इंदिरा गांधी ने खुलेआम ‘अंतरात्मा की आवाज’ पर वोट डालने को कहा, इसका तात्पर्य यह था कि कांग्रेस के सांसद और विधायक अपनी मनमर्जी से किसी भी उम्मीदवार को वोट डाल सकते हैं।

□ वी.वी. गिरि आधिकारिक कांग्रेस उम्मीदवार को हराकर विजयी हुए। इसके साथ ही कांग्रेस में औपचारिक विभाजन हो गया।

□ इंदिरा गांधी को कांग्रेस अध्यक्ष ने पार्टी से निष्कासित कर दिया। 1969 के नवंबर तक सिंडिकेट की अगुवाई वाले कांग्रेसी खेमे को कांग्रेस (ऑर्गनाइजेशन) और इंदिरा गांधी की अगुवाई वाले कांग्रेसी खेमे को कांग्रेस (रिक्विजिनिस्ट) कहा जाने लगा था। इन दोनों दलों को क्रमशः 'पुरानी कांग्रेस' और 'नयी कांग्रेस' भी कहा जाता था। इंदिरा गांधी ने पार्टी की इस टूट को विचारधाराओं की लड़ाई के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने इसे 'समाजवादी' और 'पुरातनपंथी' तथा गरीबों के हिमायती और अमीरों के तरफदार के बीच की लड़ाई करार दिया।

विचारणीय बिंदु

वर्ष 1969 के राष्ट्रपति चुनाव ने इंदिरा गांधी को कांग्रेस की निर्विवाद नेता के रूप में स्थापित कर दिया। क्या आप राष्ट्रपति के चुनाव की प्रक्रिया जानते हैं? निर्वाचक मंडल में कौन-कौन शामिल होते हैं?



'प्रिवी पर्स' की समाप्ति

- स्वतंत्रता पश्चात् रियासतों का एकीकरण सुनिश्चित करने के लिए उन्हें कुछ निजी संपत्ति रखने की अनुमति दी गई और उन्हें वंशानुगत सरकारी भत्ता दिया गया, जिसे 'प्रिवी पर्स' कहा जाता है।
- हालाँकि ये वंशानुगत विशेषाधिकार भारतीय संविधान में वर्णित समानता और सामाजिक-आर्थिक न्याय के सिद्धांतों से मेल नहीं खाते थे। लेकिन राष्ट्रीय एकीकरण को प्राथमिकता देने के उद्देश्य से इसे लागू किया गया था।
- समय के साथ, प्रिवी पर्स को समाप्त करने की माँग बढ़ती गई, जिसका समर्थन नेहरू और बाद में इंदिरा गांधी जैसे नेताओं ने किया। हालाँकि, मोरारजी देसाई प्रिवी पर्स की समाप्ति को नैतिक रूप से गलत मानते थे। उनका कहना था कि यह 'रियासतों के साथ विश्वासघात' के बराबर होगा।
- प्रिवी पर्स की व्यवस्था को समाप्त करने के लिए सरकार ने 1970 में संविधान में संशोधन के प्रयास किए, लेकिन राज्यसभा में यह मंजूरी नहीं पा सका।
- इंदिरा गांधी ने इसे वर्ष 1971 के चुनावों में एक बड़ा मुद्दा बनाया और इस मुद्दे पर उन्हें जन समर्थन भी खूब मिला। वर्ष 1971 में मिली भारी जीत के बाद संविधान में संशोधन हुआ और इस तरह प्रिवी पर्स की समाप्ति की राह में मौजूद कानूनी अड़चनें खत्म हो गईं।

1971 का चुनाव और कांग्रेस का पुनर्स्थापन

लोक सभा का विघटन

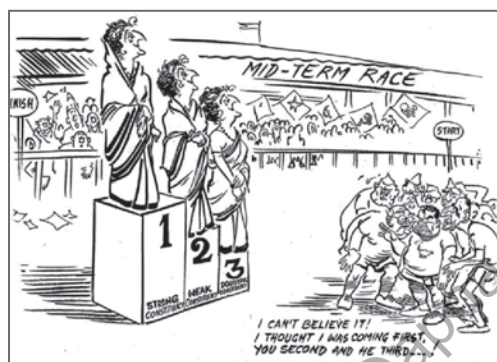
- कांग्रेस की टूट से इंदिरा गांधी की सरकार अल्पमत में आ गई। बहरहाल, डीएमके और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी समेत कुछ अन्य दलों से प्राप्त समर्थन के बल पर इंदिरा गांधी की सरकार सत्ता में बनी रही।
- अपनी स्थिति को मजबूत करने, अन्य राजनीतिक दलों पर अपनी निर्भरता समाप्त करने तथा अपनी पहल के लिए लोकप्रिय जनदेश प्राप्त करने के उद्देश्य से, उन्होंने दिसंबर 1970 में लोकसभा को भंग करने की सिफारिश की, जिसके परिणामस्वरूप फरवरी 1971 में चुनाव हुए।

चुनावी गतिशीलता:

- कांग्रेस(ओ) के पास कथित संगठनात्मक शक्ति होने के बावजूद, कई विपक्षी दलों ने "महागठबंधन" बनाया, जिसमें SSP, PSP, भारतीय जनसंघ, स्वतंत्र पार्टी और भारतीय क्रांति दल शामिल थे।
- इंदिरा की कांग्रेस (आर) का CPI के साथ गठबंधन था। इंदिरा गांधी ने सफलतापूर्वक महागठबंधन को इंदिरा विरोधी के रूप में स्थापित किया, जिसका जवाब उन्होंने गरीबों के पक्ष में नारे "गरीबी हटाओ" के साथ दिया।
 - उन्होंने सार्वजनिक क्षेत्र के विकास, भूमि हदबंदी और राजसी विशेषाधिकारों के उन्मूलन जैसी पहलों का समर्थन किया तथा भूमिहीन मजदूरों, दलितों, आदिवासियों, अल्पसंख्यकों, महिलाओं और बेरोजगार युवाओं जैसे वंचित समूहों को आकर्षित किया।

चुनावी परिणाम:

- वर्ष 1971 के चुनाव परिणाम चौंका देने वाले थे। कांग्रेस (आर) और सीपीआई ने 48.4% वोटों के साथ 375 लोकसभा सीटें प्राप्त की।
- अकेले कांग्रेस (आर) ने 352 सीटें और 44% वोट हासिल किए थे। इसके विपरीत, कांग्रेस (ओ) ने मात्र 16 सीटें जीतीं।
- महागठबंधन को 40 से भी कम सीटें प्राप्त हुईं, जिससे इंदिरा गांधी के नेतृत्व की पुष्टि हुई तथा उनके कांग्रेस गुट को भारतीय राजनीति में प्रमुख इकाई के रूप में स्थापित किया गया।



चित्र 5.7: 'द ग्रैंड फिनिश' नामक कार्टून में 1971 के आम चुनाव के परिणामों पर टिप्पणी की गई है। पराजित खिलाड़ियों के रूप में उस समय के प्रमुख विपक्षी नेताओं को दिखाया गया है।

परिणाम और इंदिरा की लोकप्रियता में वृद्धि:

- चुनावों के बाद, पूर्वी पाकिस्तान संकट भड़क उठा, जिसकी परिणति भारत-पाक युद्ध और बांग्लादेश के निर्माण में हुई।
- इन घटनाओं ने इंदिरा की लोकप्रियता को बढ़ा दिया, उन्हें वंचितों की हिमायती और निर्णायक राष्ट्रवादी नेता के रूप में चित्रित किया गया।
- विपक्ष की आवाज़ कम हो गई और उनकी पार्टी ने वर्ष 1972 के राज्य विधानसभा चुनावों में शानदार जीत हासिल की।
 - राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर लगातार जीत के साथ कांग्रेस का प्रभुत्व पुनः स्थापित हो गया।

कांग्रेस का पुनर्स्थापन:

- कांग्रेस ने अपनी प्रमुखता पुनः प्राप्त कर ली, लेकिन यह अपने पुराने अवतार का एक साधारण पुनरुत्थान नहीं था।
- पुनर्स्थापित पार्टी मुख्य रूप से इंदिरा गांधी के लोकप्रियता के इर्द-गिर्द केंद्रित थी और इसमें पहले जैसा मजबूत संगठनात्मक ढाँचा नहीं था।
- इसमें अब कई गुट शामिल नहीं थे, जिसका अर्थ था कि अलग-अलग विचारों के लिए अधिक स्थान नहीं था।
- नई कांग्रेस ने विशेष रूप से विशिष्ट सामाजिक समूहों की सेवा की, जिससे इसकी अलग पहचान बनी। मूल रूप से, इंदिरा गांधी ने कांग्रेस प्रणाली को बहाल किया, लेकिन इसकी प्रकृति को बदल दिया।

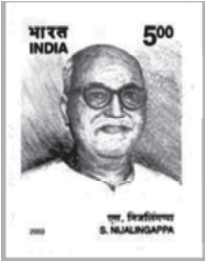
निहितार्थ:

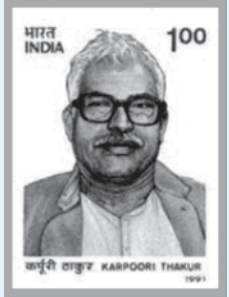
- पुनर्गठित कांग्रेस, अत्यधिक लोकप्रिय होने के बावजूद, विविध तनावों को संबोधित करने की मूल कांग्रेस जैसी क्षमता नहीं रखती थी।
- जैसे-जैसे इंदिरा गांधी का प्रभुत्व बढ़ता गया, लोकतांत्रिक अभिव्यक्ति के लिए स्थान सीमित होता गया।
- इसके कारण विकासात्मक और आर्थिक मुद्दों पर केंद्रित अशांति बढ़ती गई, जिससे भारत के संवैधानिक लोकतंत्र को खतरा पैदा करने वाली आगामी राजनीतिक चुनौतियों का मंच तैयार हुआ।



चित्र 5.8: मुख्यमंत्री चुनने की इंदिरा गांधी की शैली पर एक कार्टूनिस्ट की टिप्पणी

उल्लेखनीय नेता और उनके कार्य

प्रमुख विशेषताएँ	विवरण	प्रमुख विशेषताएँ	विवरण
 सी. नटराजन अन्नादुरई	सी. नटराजन अन्नादुरई (1909-1969): 1967 से मद्रास (तमिलनाडु) के मुख्यमंत्री; चर्चित पत्रकार, लेखक एवं वक्ता; मद्रास राज्य में जस्टिस पार्टी से संबद्ध; बाद में द्रविड़ कड़गम (1934) में शामिल; 1949 में द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम का बतौर राजनीतिक पार्टी गठन; द्रविड़ संस्कृति के समर्थक, हिंदी का विरोध एवं हिंदी विरोधी आंदोलन का नेतृत्व; राज्यों की व्यापक स्वायत्तता के समर्थक।	 एस. निजलिंगप्पा	एस. निजलिंगप्पा (1902-2000): बरिष्ठ कांग्रेस नेता; संविधान सभा के सदस्य; लोकसभा के सदस्य; तत्कालीन मैसूर प्रांत (अब कर्नाटक) के मुख्यमंत्री; आधुनिक कर्नाटक के निर्माता के रूप में प्रसिद्ध; 1968-71 के दौरान कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष।

 राम मनोहर लोहिया	राममनोहर लोहिया (1910-1967): समाजवादी नेता एवं विचारक; स्वतंत्रता सेनानी एवं कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य; मूल पार्टी में विभाजन के बाद सोशलिस्ट पार्टी एवं बाद में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के नेता; 1963 से 1967 तक लोकसभा सांसद, 'मैनकाइंड' एवं 'जन' के संस्थापक संपादक, गैर-यूरोपीय समाजवादी सिद्धांत के विकास में मौलिक योगदान; विचारधारा का संयोजन; गैर-कांग्रेसवाद के रणनीतिकार, पिछड़े वर्गों को आरक्षण की वकालत और अंग्रेजी विरोध के अलावा ऐसे राजनीतिक नेता के रूप में चर्चित, जिन्होंने नेहरू के खिलाफ मोर्चा खोला।	 कर्पूरी ठाकुर	कर्पूरी ठाकुर (1924-1988): दिसंबर 1970 - जून 1971 तथा जून 1977-अप्रैल 1979 के दौरान बिहार के मुख्यमंत्री; स्वतंत्रता सेनानी एवं समाजवादी नेता; मजदूर एवं किसान आंदोलनों में सक्रिय; लोहिया के प्रबल समर्थक; जेपी द्वारा चलाए गए आंदोलन में भागीदारी; मुख्यमंत्री के रूप में अपने दूसरे कार्यकाल के दौरान बिहार में पिछड़ों के लिए आरक्षण लागू करने वाले के रूप में पहचान; अंग्रेजी भाषा के प्रयोग के प्रबल विरोधी।
 के. कामराज	के. कामराज (1903-1975): स्वतंत्रता सेनानी और कांग्रेस के नेता; मद्रास (तमिलनाडु) के मुख्यमंत्री; मद्रास प्रांत में शिक्षा का प्रसार करने और स्कूली बच्चों को 'दोपहर का भोजन' देने की योजना लागू करने के लिए प्रसिद्ध; वर्ष 1963 में उन्होंने प्रस्ताव रखा कि सभी वरिष्ठ कांग्रेसी नेताओं को इस्तीफा दे देना चाहिए, जिससे अपेक्षाकृत युवा पार्टी कार्यकर्ता कमान संभाल सकें। यह प्रस्ताव 'कामराज योजना' के नाम से मशहूर हुआ; कांग्रेस अध्यक्ष भी रहे।	 वी.वी.गिरि	वी.वी.गिरि (1894-1980): 1969 से 1974 तक भारत के राष्ट्रपति; कांग्रेस नेता एवं आंध्र प्रदेश के मजदूर नेता; सिलोन (श्रीलंका) में भारतीय उच्चायुक्त; केंद्रीय मंत्रिमंडल में श्रम मंत्री; उत्तर प्रदेश, केरल, मैसूर (कर्नाटक) के राज्यपाल; उपराष्ट्रपति (1967 से 1969) एवं राष्ट्रपति जाकिर हुसैन के निधन के बाद कार्यकारी राष्ट्रपति; इस्तीफा एवं राष्ट्रपति निर्वाचन में स्वतंत्र प्रत्याशी; राष्ट्रपति के निर्वाचन में इंदिरा गांधी के समर्थन से विजयी।

निष्कर्ष

1960 के दशक के अंत और 1970 के दशक की शुरुआत का समय भारतीय राजनीति में एक निर्णायक मोड़ के रूप में जाना जाता है, जिसकी विशेषता इंदिरा गांधी की अदम्य भावना और रणनीतिक राजनीतिक कौशल है। गुटीय संघर्षों का सामना, सामाजिक-आर्थिक सुधारों का समर्थन और कांग्रेस पार्टी की पहचान को पुनः परिभाषित करके, उन्होंने न केवल अपनी स्थिति को मजबूत किया, बल्कि भारत के राजनीतिक विमर्श को भी नया रूप प्रदान किया। हालाँकि, जहाँ उनके नेतृत्व ने महत्वपूर्ण सुदृढ़ीकरण किया, वहीं इसने भारत के लोकतांत्रिक परिदृश्य के लिए भविष्य के राजनीतिक तनावों और चुनौतियों का भी आधार तैयार किया।

प्रमुख घटनाक्रम

वर्ष	घटना
मई 1964	जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु: भारत के प्रथम प्रधानमंत्री और भारतीय राजनीति के एक कदावर/अत्यंत उत्कृष्ट व्यक्ति जवाहरलाल नेहरू का निधन।
जून 1964 - जनवरी 1966	नेहरू से शास्त्री तक: लाल बहादुर शास्त्री ने भारत के दूसरे प्रधानमंत्री के रूप में पदभार संभाला। हालाँकि उनका कार्यकाल छोटा रहा, लेकिन उनके प्रसिद्ध नारे "जय जवान, जय किसान" की वजह से उनकी पहचान बनी।
जनवरी 1966 - मार्च 1977	शास्त्री से इंदिरा गांधी तक: इंदिरा गांधी भारत की प्रधानमंत्री बनी, जिससे भारतीय राजनीति में एक परिवर्तनकारी युग की शुरुआत हुई।
फरवरी 1967	चौथा आम चुनाव: कांग्रेस पार्टी को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा, लेकिन वह केंद्र में सरकार बनाने में सफल रही। हालाँकि, कई राज्यों में उसे सत्ता से हाथ धोना पड़ा।

वर्ष 1967 के बाद	गैर-कांग्रेसवाद का उदय: विपक्षी दलों ने "गैर-कांग्रेसवाद" के सिद्धांत के तहत लामबंद होना शुरू कर दिया, जिसका उद्देश्य कांग्रेस के प्रभुत्व को संयुक्त रूप से चुनौती देना था।
फरवरी-मार्च 1967	विधानसभा चुनाव का परिणाम: कांग्रेस को कई प्रमुख राज्यों में हार का सामना करना पड़ा, जिससे भारतीय राजनीति में पार्टी का प्रभुत्व कम हुआ।
वर्ष 1967-1969	गठबंधन और दलबदल: गठबंधन की राजनीति उभरती है, जिसमें दल-बदल एक महत्वपूर्ण मुद्दा बन जाता है।
1960 के दशक के अंत में	कांग्रेस सिंडिकेट का उदय: कांग्रेस के भीतर आंतरिक शक्ति केंद्र, जिसे "सिंडिकेट" के रूप में जाना जाता है, प्रभावशाली हो गया और उसका प्रायः प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के साथ मतभेद देखा गया।
दिसंबर 1969	'प्रिवी पर्स' की समाप्ति: इंदिरा गांधी की सरकार ने पूर्व राजपरिवारों के वंशानुगत विशेषाधिकारों को समाप्त करने के उद्देश्य से प्रिवी पर्स को समाप्त करने का साहसिक कदम उठाया।
फरवरी 1971	1971 के चुनाव और कांग्रेस की पुनर्स्थापना: अधिकांश पूर्वानुमानों के विपरीत, इंदिरा गांधी का कांग्रेस गुट लोकसभा चुनावों में भारी विजय के साथ फिर से सत्ता में आया, जिससे भारतीय राजनीति में पार्टी की प्रमुख स्थिति पुनः स्थापित हो गयी।

महत्वपूर्ण शब्दावलि

- ❖ **सिंडिकेट:** 1960 के दशक के दौरान कांग्रेस के भीतर एक प्रमुख समूह।
- ❖ **प्रिवी पर्स:** पूर्व रियासत शासकों को दिया जाने वाला अनुदान या भत्ता।
- ❖ **कांग्रेस (R):** कांग्रेस के विभाजन के बाद इंदिरा गांधी के नेतृत्व वाला गुट।
- ❖ **कांग्रेस (O):** कांग्रेस के विभाजन के बाद 'सिंडिकेट' के नेतृत्व वाला गुट।
- ❖ **पूर्वी पाकिस्तान संकट:** वर्ष 1971 में एक प्रमुख राजनीतिक और सैन्य संकट जिसके कारण बांग्लादेश का निर्माण हुआ।
- ❖ **सीपीआई (CPI):** भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी।
- ❖ **डीएमके (DMK):** द्रविड़ मुनेत्र कड़गम, एक क्षेत्रीय राजनीतिक दल।
- ❖ **भूमि सीमा:** भूमि जोत पर ऊपरी सीमा लगाने की नीति।
- ❖ **संवैधानिक लोकतंत्र:** सरकार की एक प्रणाली जिसमें कानून संविधान पर आधारित होते हैं और नेताओं का निर्वाचन लोगों के द्वारा किया जाता है।
- ❖ **समाजवादी साख:** समाजवादी सिद्धांतों को इंगित करने वाली नीतियाँ और कार्य, जो प्रायः इंदिरा गांधी के शासन से संबंधित था।



लोकतांत्रिक व्यवस्था का संकट

संदर्भ: इस अध्याय में NCERT पाठ्यपुस्तक की कक्षा-XII (स्वतंत्र भारत में राजनीति-II) के अध्याय-6 का सारांश शामिल है।

परिचय

स्वतंत्रता पश्चात् भारत की लोकतांत्रिक यात्रा चुनौतियों से परिपूर्ण रही है, जिसने इसकी विविध आबादी के लिए कई समस्याएँ और दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं। वर्ष 1967 के बाद का समय, जो मुख्य रूप से इंदिरा गांधी के नेतृत्व द्वारा चिह्नित है, भारत के लोकतंत्र के लचीलेपन और जटिलताओं का एक प्रतीक है। यह अध्याय लोकतांत्रिक व्यवस्था के संकटों को स्पष्ट करता है, जो आपातकाल की घोषणा, इसके निहितार्थ, आपातकाल के बाद के राजनीतिक परिवेश और इस युग के दौरान महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले व्यक्तियों के संदर्भ पर गहराई से प्रकाश डालता है।

आपातकाल की पृष्ठभूमि

- वर्ष 1967 के बाद से भारतीय राजनीति में जो परिवर्तन आ रहे थे, उनके विषय में हम पहले ही पढ़ चुके हैं। इस काल में इंदिरा गांधी एक महत्वपूर्ण नेता के रूप में उभरी थीं।
- इस दौर में दलगत प्रतिस्पर्धा कहीं ज्यादा तीखी और ध्रुवीकृत हो चुकी थी।
 - इस अवधि में न्यायपालिका और सरकार के आपसी रिश्तों में भी तनाव आया।
 - सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार की कई पहलों को संविधान के विरुद्ध माना।
 - कांग्रेस पार्टी का मानना था, कि न्यायालय का यह रवैया लोकतंत्र के सिद्धांतों और संसद की सर्वोच्चता के विरुद्ध है।
- कांग्रेस की टूट से इंदिरा गांधी और उनके विरोधियों के बीच मतभेद गहरे हो गए थे।

भारत में 1970 के दशक के आरंभ का आर्थिक संदर्भ

- **कांग्रेस के राजनीतिक वादे:** वर्ष 1971 में कांग्रेस पार्टी ने “गरीबी हटाओ” का नारा दिया। इस नारे के बावजूद, वर्ष 1971-72 के बाद सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ।
- **बाह्य आर्थिक चुनौतियाँ:**
 - **बांग्लादेश संकट और उसके परिणाम:** लगभग 80 लाख लोग पूर्वी पाकिस्तान की सीमा पार करके भारत आ गए थे। इसके बाद पाकिस्तान से युद्ध भी करना पड़ा।
 - **अमेरिकी सहायता बंद:** युद्ध के बाद, अमेरिका ने भारत को दी जाने वाली सभी वित्तीय सहायता बंद कर दी।
 - **वैश्विक तेल मूल्य वृद्धि:** इसी अवधि में अंतरराष्ट्रीय बाजार में तेल की कीमतों में कई गुना बढ़ोतरी हुई। इससे विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतें भी तेजी से बढ़ीं। 1973 में कीमतों में 23% और 1974 में 30% का इजाफा हुआ। इस तीव्र मूल्यवृद्धि से लोगों को भारी कठिनाई हुई।
- **घरेलू आर्थिक संघर्ष:**
 - **औद्योगिक एवं रोजगार संबंधी चुनौतियाँ:** इस अवधि में विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगिक विकास में ठहराव तथा बेरोजगारी में वृद्धि देखी गई।
 - **सरकार के मितव्ययिता संबंधी उपाय:** सरकार ने कर्मचारियों के वेतन पर रोक लगा दी, जिससे कर्मचारियों में व्यापक असंतोष फैल गया।
 - **कृषि संबंधी असफलताएँ:** 1972-73 में मानसून की विफलता के कारण खाद्यान्न उत्पादन में 8% की गिरावट आई।



अच्छा जो यहाँ होता कि 1973 का यह साल जितनी जल्दी हो सके, बीत जाता।

चित्र 6.1: आगे के मुश्किल दिन

□ सामाजिक और राजनीतिक प्रतिक्रियाएँ:

- **सामान्य असंतोष:** आर्थिक मंदी के कारण देश में असंतोष की व्यापक भावना देखी गई।
- **विद्यार्थियों का विरोध:** 1960 के दशक के उत्तरार्द्ध से विद्यार्थी अशांति, इस अवधि के दौरान तीव्र हो गई।
- **चरमपंथी गुटों का उदय:** संसदीय राजनीति पर संदेह करने वाले मार्क्सवादी समूहों ने गति पकड़ी।
 - ये समूह मार्क्सवादी-लेनिनवादी (अब माओवादी) अथवा नक्सलवादी के नाम से जाने गए।
 - ऐसे समूह पश्चिम बंगाल में सबसे ज्यादा सक्रिय थे। पश्चिम बंगाल की सरकार ने इन्हें दबाने के लिए कठोर कदम उठाए।

गुजरात और बिहार में आंदोलन तथा राष्ट्रीय राजनीति पर उनका प्रभाव

□ गुजरात में आंदोलन:

- **प्रारंभिक विरोध:** 1974 के जनवरी माह में गुजरात के विद्यार्थियों ने खाद्यान्न, खाद्य तेल तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं की बढ़ती हुई कीमत तथा उच्च पदों पर जारी भ्रष्टाचार के खिलाफ आंदोलन प्रारंभ कर दिया।
- **आंदोलन का उग्र रूप:** छात्र-आंदोलन में बड़ी राजनीतिक पार्टियाँ भी शामिल हो गईं और इस आंदोलन ने विकराल रूप धारण कर लिया।
- **विपक्ष की माँग:** विपक्षी दलों ने राज्य की विधानसभा के लिए दुबारा चुनाव कराने की माँग की।
 - मोरारजी देसाई अपने कांग्रेस के दिनों में इंदिरा गांधी के मुख्य विरोधी रहे थे। कांग्रेस (संगठन) के प्रमुख नेता मोरारजी देसाई ने कहा कि अगर राज्य में नए सिरे से चुनाव नहीं कराए गए तो मैं अनिश्चितकालीन भूख-हड़ताल पर बैठ जाऊँगा।
- **परिणाम:** विपक्षी दलों द्वारा समर्थित छात्र-आंदोलन के गहरे दबाव में 1975 के जून में विधानसभा के चुनाव हुए। कांग्रेस इस चुनाव में हार गई।

□ बिहार में आंदोलन:

- **आंदोलन की शुरुआत:** मार्च 1974 में बिहार में विद्यार्थियों ने महंगाई, खाद्यान्न की कमी, बेरोजगारी और भ्रष्टाचार के खिलाफ विरोध प्रदर्शन किया।
- **जयप्रकाश नारायण (जेपी) की भागीदारी:** विद्यार्थियों ने जेपी को आंदोलन का नेतृत्व करने के लिए आमंत्रित किया, जो एक सेवानिवृत्त राजनीतिज्ञ थे और अब सामाजिक कार्यकर्ता बन गए थे। वे अहिंसा और बिहार से परे व्यापक दायरे की शर्तों पर सहमत हुए।
- **विकसित प्रकृति:** जेपी के नेतृत्व में, आंदोलन ने राष्ट्रीय अपील और राजनीतिक चरित्र प्राप्त किया। इसमें समाज के सभी वर्गों के प्रतिभागी शामिल थे।
 - उन्होंने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में 'सम्पूर्ण क्रांति' का आह्वान किया, जिससे उन्हीं के शब्दों में 'वास्तविक लोकतंत्र' की स्थापना की जा सके।
 - बिहार की सरकार के खिलाफ लगातार घेराव, बंद और हड़ताल का एक सिलसिला चल पड़ा। बहरहाल, सरकार ने इस्तीफा देने से मना कर दिया।

□ राष्ट्रीय प्रभाव:

- **विस्तार की महत्वाकांक्षाएँ:** जयप्रकाश नारायण चाहते थे कि यह आंदोलन देश के अन्य हिस्सों में भी विस्तृत हो। जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में चल रहे आंदोलन के साथ-ही-साथ रेलवे के कर्मचारियों ने भी एक राष्ट्रव्यापी हड़ताल का आह्वान किया।
 - 1975 में जे. पी. ने संसद तक एक विशाल मार्च का नेतृत्व किया, जो राजधानी के इतिहास में सबसे बड़े मार्चों में से एक था।
- **राजनीतिक समर्थन:** जेपी को विभिन्न गैर-कांग्रेसी विपक्षी दलों जैसे भारतीय जनसंघ, कांग्रेस (ओ), भारतीय लोक दल और सोशलिस्ट पार्टी द्वारा समर्थन प्राप्त था।
 - इन दलों ने जेपी को इंदिरा गांधी के विकल्प के रूप में पेश किया। हालाँकि, जेपी के तरीकों और जनांदोलनों की रणनीति को लेकर आलोचनाएँ भी हुईं।

□ आंदोलनों की धारणा:

- गुजरात और बिहार दोनों आंदोलनों को कांग्रेस विरोधी माना गया। राज्य सरकारों के विरोध के बजाय, उन्हें इंदिरा गांधी के नेतृत्व के खिलाफ विरोध के रूप में देखा गया।
 - इंदिरा गांधी का मानना था कि ये आंदोलन उनके प्रति व्यक्तिगत विरोध से प्रेरित हैं।

1974 की रेल हड़ताल:

- जॉर्ज फर्नांडिस के नेतृत्व में रेलवे कर्मियों के संघर्ष के लिए राष्ट्रीय समन्वय समिति ने देशव्यापी रेलवे हड़ताल का आह्वान किया।
- यह हड़ताल बोनस और सेवा शर्तों की माँगों के जवाब में थी।
- हड़ताल ने श्रमिक अशांति के माहौल को और बढ़ा दिया, जिससे श्रमिकों के अधिकारों पर प्रश्न उठने लगे।
- सरकार ने हड़ताल को अवैध घोषित कर दिया, जिसके कारण 20 दिनों के बाद बिना किसी समझौते के हड़ताल समाप्त हो गई।

न्यायपालिका से संघर्ष और इसके निहितार्थ

□ संवैधानिक विवाद:

- **संसद बनाम न्यायपालिका:** तीन प्रमुख संवैधानिक मुद्दों पर लंबे समय से असहमति थी -
 - **मौलिक अधिकारों को कम करना:** सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि संसद इन अधिकारों को कम नहीं कर सकती।
 - **संपत्ति का अधिकार:** न्यायालय ने निर्णय दिया कि संसद संविधान में इस तरह से संशोधन नहीं कर सकती जिससे अधिकारों, विशेष रूप से संपत्ति के अधिकारों को कम किया जा सके।
 - **नीति निदेशक सिद्धांतों के लिए संशोधन:** नीति निदेशक सिद्धांतों के पक्ष में मौलिक अधिकारों को कम करने की अनुमति देने वाले संविधान में संसद के संशोधन के बावजूद, सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रावधान को खारिज कर दिया।

□ केशवानंद भारती वाद और मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति:

- **महत्त्व:** इस महत्वपूर्ण मामले के परिणामस्वरूप न्यायालय ने निर्णय दिया कि संविधान की कुछ बुनियादी विशेषताएँ ऐसी हैं, जिनमें संसद संशोधन नहीं कर सकती।
- **वर्ष 1973 का विवाद:** केशवानंद भारती मामले के निर्णय के बाद मुख्य न्यायाधीश का पद रिक्त हो गया।
 - सबसे वरिष्ठ न्यायाधीश की नियुक्ति की परंपरा का पालन करने के बजाय, सरकार ने तीन न्यायाधीशों की वरिष्ठता को अनदेखा कर दिया और न्यायमूर्ति ए. एन. रे को नियुक्त किया।
 - यह निर्णय राजनीतिक रूप से विवादास्पद बन गया क्योंकि सरकार ने जिन तीन न्यायाधीशों की वरिष्ठता की अनदेखी इस मामले में की थी, उन्होंने सरकार के इस कदम के विरुद्ध निर्णय दिया।
- **राजनीति और व्याख्याओं का विलय:** ऐसे में संविधान की व्याख्या और राजनीतिक विचारधाराओं में बड़ी तेजी से एकत्रण हुआ, जो लोग प्रधानमंत्री के नजदीकी थे वे एक ऐसी 'प्रतिबद्ध' न्यायपालिका तथा नौकरशाही की जरूरत के बारे में बातें करने लगे जो विधायिका और कार्यपालिका के विचारों के अनुकूल आचरण करें।



चित्र 6.2: श्रीमती गांधी की हार को दर्शाने वाले समाचार पत्र लेख

□ इंदिरा गांधी के निर्वाचन पर निर्णायक फैसला:

- इस संघर्ष का चरमबिंदु तब आया जब एक उच्च न्यायालय ने इंदिरा गांधी के निर्वाचन को अवैध घोषित कर दिया।

आपातकाल की घोषणा: 1975 का संकट और उसके निहितार्थ

□ इंदिरा गांधी का निर्वाचन अवैध घोषित:

- 12 जून, 1975 को न्यायमूर्ति जगमोहन लाल सिन्हा ने इंदिरा गांधी के लोकसभा चुनाव को उनके चुनाव प्रचार के दौरान सरकारी संसाधनों के कथित दुरुपयोग के कारण शून्य घोषित कर दिया।
- 24 जून, 1975 को सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय के इस निर्णय पर आंशिक स्थगनादेश सुनाते हुए कहा, कि जब तक इस निर्णय को लेकर की गई अपील की सुनवाई नहीं होती तब तक इंदिरा गांधी सांसद बनी रहेंगी, लेकिन वे लोकसभा की कार्यवाई में भाग नहीं ले सकती हैं।

□ राजनीतिक टकराव:

- जयप्रकाश नारायण की अगुवाई में विपक्षी दलों ने इंदिरा गांधी के इस्तीफे के लिए दबाव डाला। इन दलों ने 25 जून, 1975 को दिल्ली के रामलीला मैदान में एक विशाल प्रदर्शन किया।

□ आपातकाल की घोषणा:

- आंतरिक अशांति का हवाला देते हुए सरकार ने 25 जून, 1975 को अनुच्छेद 352 लागू किया, जिससे संघ में शक्तियों का केंद्रीकरण हो गया और मौलिक अधिकारों पर अंकुश लगा।
- प्रमुख विपक्षी नेताओं को गिरफ्तार किया गया, प्रेस सेंसरशिप लागू की गई और प्रमुख समाचार पत्रों के कार्यालयों की बिजली काट दी गई।



चित्र 6.3: आपातकाल पर समाचार पत्र लेख

□ आपातकाल के प्रभाव:

- राजनीतिक आंदोलन रुक गया और कई विपक्षी नेताओं को जेल में डाल दिया गया।
- प्रेस की आजादी पर रोक लगा दी गई, सरकार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) और जमात-ए-इस्लामी जैसे संगठनों पर प्रतिबंध लगा दिया।
- नागरिकों के मौलिक अधिकार, जिनमें उनकी बहाली के लिए न्यायिक हस्तक्षेप की माँग करना भी शामिल है, निलंबित कर दिए गए।
- निवारक निरोध के तहत कई लोगों को बिना कोई अपराध किए, केवल संदेह के आधार पर गिरफ्तार किया गया।
- आपातकाल के दौरान सर्वोच्च न्यायालय के एक विवादास्पद निर्णय ने नागरिकों से उनके जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार को छीन लिया।

प्रतिरोध के कार्य:

- असहमति के विभिन्न कृत्यों में समाचार पत्रों द्वारा रिक्त स्थानों को प्रदर्शित करना, भूमिगत समाचार पत्र निकालना, लेखकों द्वारा पुरस्कार लौटाना, तथा सरकार के विरुद्ध भूमिगत विरोध प्रदर्शन शामिल थे।

संवैधानिक परिवर्तन:

- सरकार ने यह सुनिश्चित करने के लिए संशोधन किए, कि प्रधानमंत्री जैसे प्रमुख पदों के निर्वाचन को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकेगी।
- 42वें संविधान संशोधन के तहत हुए विभिन्न संशोधनों में देश की विधायिका के कार्यकाल को 5 वर्ष से बढ़ाकर 6 वर्ष करना था।

□ आपातकाल के सबक:

- **लोकतंत्र का लचीलापन:** आपातकाल ने इस बात पर प्रकाश डाला कि यद्यपि भारत के लोकतंत्र का परीक्षण किया जा सकता है, लेकिन इसे पूरी तरह से समाप्त करना कठिन है।
 - **संवैधानिक स्पष्टीकरण:** आंतरिक आपातकाल की घोषणा के लिए अधिक कठोर शर्तों को सुनिश्चित करने के लिए आपातकाल के बाद के प्रावधानों को संशोधित किया गया।
 - **नागरिक स्वतंत्रता का मूल्य:** आपातकाल ने नागरिक स्वतंत्रता के महत्व को रेखांकित किया, जिसके बाद न्यायपालिका और विभिन्न संगठनों ने सक्रिय रूप से उनकी रक्षा करने का प्रयास किया।
- **लंबित मुद्दे:**
- लोकतांत्रिक शासन और राजनीतिक विरोध के बीच संतुलन विवाद का विषय बना हुआ है।
 - आपातकाल ने दिखाया कि कैसे पुलिस और प्रशासन को राजनीतिक उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है, यह मुद्दा आपातकाल के बाद भी जारी रहा।

विचारणीय बिंदु

1975 का आपातकाल भारतीय लोकतंत्र पर एक काला धब्बा था। इसने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का दमन किया और नागरिकों के मौलिक अधिकारों का हनन किया। अगर आपातकाल में ऐसे प्रावधान हैं जो लोकतंत्र को हानि पहुँचाते हैं, तो आपके अनुसार संविधान में आपातकाल के ऐसे प्रावधान क्यों हैं?



आपातकाल के बाद की राजनीति

आपातकाल और 1977 के चुनावों से सबक

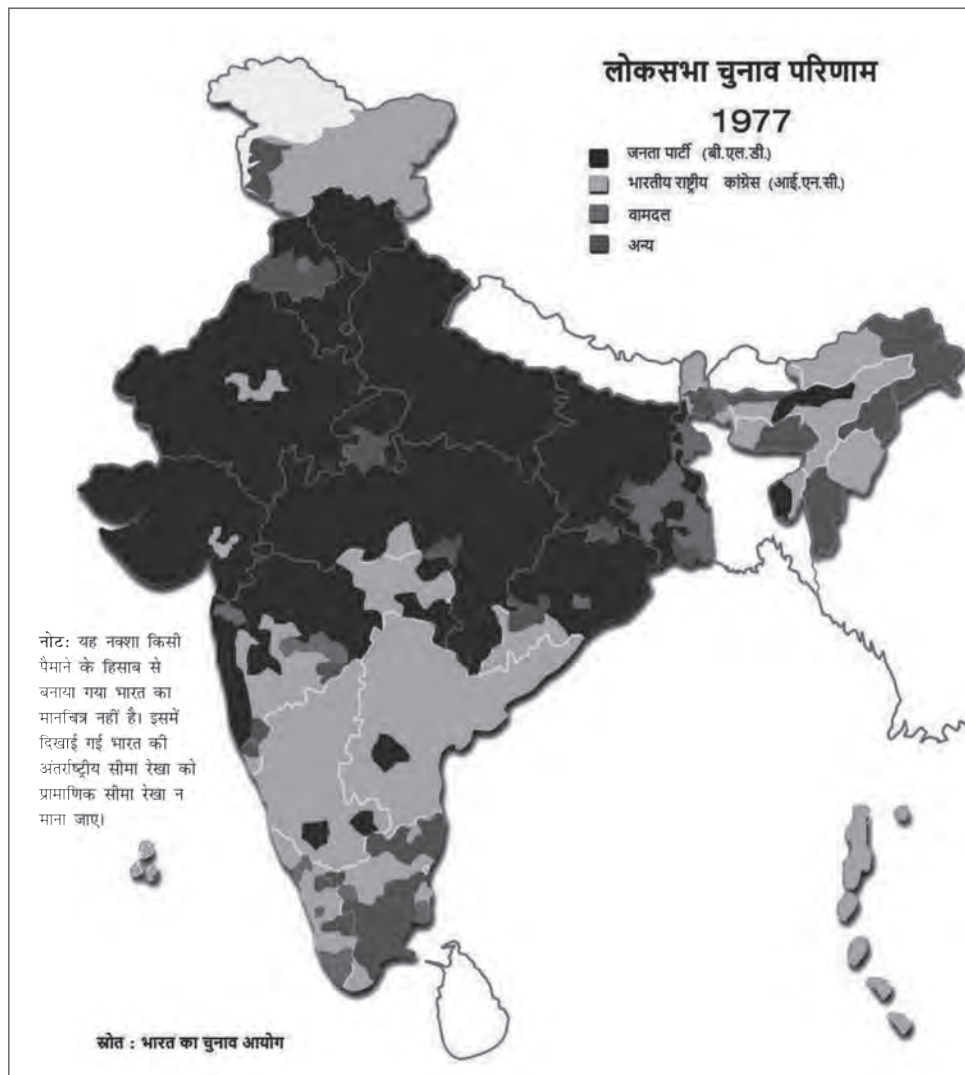
- जैसे ही आपातकाल समाप्त हुआ, लोकसभा के चुनावों की घोषणा हुई।
- उत्तर भारत में वर्ष 1977 के चुनावों ने आपातकाल के ऊपर जनमत संग्रह के समान कार्य किया।
- जनता का निर्णय आपातकाल के विरुद्ध था, जिसने भारत की लोकतांत्रिक नींव को और मजबूत किया।
- इससे जो सबक मिला वह यह था, कि लोकतंत्र विरोधी मानी जाने वाली सरकारों को मतदाताओं से कठोर प्रतिक्रिया का सामना करना पड़ता है।



चित्र 6.4: 1977 में बनी गैर-कांग्रेसी सरकार का शपथ ग्रहण समारोह (जयप्रकाश नारायण, जे. बी. कुपलानी, मोरारजी देसाई तथा अटल बिहारी वाजपेयी)

लोकसभा चुनाव (1977) का अवलोकन

- 18 महीने के आपातकाल के बाद 1977 के जनवरी माह में सरकार ने चुनाव कराने का निर्णय लिया।
- प्राथमिक विपक्षी दलों ने जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में जनता पार्टी का गठन किया।
- कांग्रेस के कुछ नेता भी, जो आपातकाल के खिलाफ थे, इस पार्टी में शामिल हुए।



चित्र 6.5: लोकसभा चुनाव परिणाम, 1977

- चुनाव आपातकाल की गैर-लोकतांत्रिक प्रकृति और उससे जुड़ी ज्यादातियों के इर्द-गिर्द केंद्रित था।
- जनता पार्टी और उसके साथी दलों को लोकसभा की कुल 542 सीटों में से 330 सीटें मिलीं। कांग्रेस केवल 154 सीटें ही जीत पाई।
- उत्तर भारत में चुनावी माहौल कांग्रेस के एकदम खिलाफ था, जिसमें इंदिरा गांधी और संजय गांधी की महत्वपूर्ण हार भी शामिल थी।
- हालाँकि, कांग्रेस ने महाराष्ट्र, गुजरात और उड़ीसा में कई सीटों पर अपना कब्जा तथा दक्षिणी भारत पर अपना दबदबा बनाए रखा।

चुनाव परिणामों में विविधता के कारण

- आपातकाल का सबसे कठोर प्रभाव उत्तरी राज्यों में महसूस किया गया।
- समय के साथ, उत्तर भारत की मध्यम जातियाँ कांग्रेस से दूर होने लगीं और जनता पार्टी के साथ जुड़ गईं।
- इस प्रकार वर्ष 1977 के चुनाव केवल आपातकाल के बारे में नहीं, बल्कि व्यापक राजनीतिक परिवर्तनों से संबंधित थे।

जनता पार्टी सरकार

- चुनाव के बाद जनता पार्टी का परिदृश्य आंतरिक विभाजन से चिह्नित था। मोरारजी देसाई को प्रधानमंत्री के रूप में चुना गया, लेकिन नेतृत्व संघर्ष जारी रहा।
- आलोचकों का मानना था कि जनता पार्टी में स्पष्ट दिशा, नेतृत्व और सुसंगत कार्यक्रम का अभाव था।
- आंतरिक संघर्षों के बाद जनता पार्टी विभाजित हो गई, जिसके परिणामस्वरूप जनवरी 1980 में एक और चुनाव हुआ, जहाँ इंदिरा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस एक शानदार बहुमत के साथ सत्ता में लौटी।

विचारणीय बिंदु

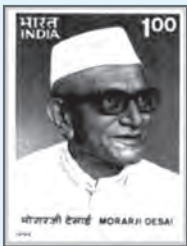
1975 के आपातकाल के बाद जब जनता पार्टी की सरकार बनी, तो उन्होंने 44वाँ संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम ने आपातकाल के संबंध में कुछ प्रावधानों में संशोधन किया। क्या आप जानते हैं कि ये बदले हुए प्रावधान क्या थे और इन्हें क्यों प्रस्तुत किया गया था?



विरासत

- वर्ष 1977 के बाद की अवधि में भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए।
- इंदिरा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस एक अधिक विचारधारा से प्रेरित पार्टी के रूप में विकसित हुई, जिसने समाजवाद और गरीब-हितैषी नीतियों पर जोर दिया।
- विपक्षी दल 'गैर-कांग्रेसवाद' के तहत एकजुट हुए और गैर-कांग्रेसी वोट में विभाजन को रोकने की कोशिश की।
- अन्य पिछड़ी जातियों का कल्याण वर्ष 1977 के बाद एक प्रमुख राजनीतिक विषय बन गया, जिसमें मंडल आयोग की महत्वपूर्ण भूमिका थी।
- आपातकाल और उसके आस-पास की घटनाओं ने भारत में संवैधानिक तथा राजनीतिक दोनों तरह के संकटों को उजागर किया।
- संसदीय लोकतंत्र के भीतर बड़े पैमाने पर विरोध प्रदर्शनों की भूमिका के इर्द-गिर्द एक महत्वपूर्ण चर्चा उभरी, जो संस्था-संचालित लोकतंत्र और सहज लोकप्रिय भागीदारी के बीच संभावित तनाव का संकेत देती है।

उल्लेखनीय नेता और उनके कार्य

नेता	उनके कार्य
 लोकनायक जयप्रकाश नारायण (JP) (वर्ष 1902-1979)	□ अपने प्रारंभिक वर्षों में जयप्रकाश नारायण एक कट्टर मार्क्सवादी थे, जिन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी तथा सोशलिस्ट पार्टी दोनों के महासचिव की भूमिका निभाई। □ वर्ष 1942 के “भारत छोड़ो आंदोलन” में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका के लिए उन्हें एक ‘नायक’ के रूप में पहचाना गया। □ उन्होंने नेहरू के मंत्रिमंडल में शामिल होने के निमंत्रण को अस्वीकार कर दिया। □ वर्ष 1955 के बाद उन्होंने गांधीवादी सिद्धांतों को अपनाते हुए स्वयं को सक्रिय राजनीति से दूर कर लिया। □ उन्होंने “भूदान आंदोलन” में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, नागा विद्रोहियों के साथ बातचीत की, कश्मीर में शांति पहल का नेतृत्व किया और चंबल में डकैतों के आत्मसमर्पण की योजना बनाई। □ बिहार आंदोलन के नेता के रूप में, उन्होंने आपातकाल के विरोध का प्रतीक बनाया और जनता पार्टी के गठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
 मोरारजी देसाई (वर्ष 1896-1995)	□ मोरारजी देसाई एक प्रतिष्ठित स्वतंत्रता सेनानी और एक प्रखर गांधीवादी नेता थे। उन्होंने खादी, प्राकृतिक चिकित्सा और शराबबंदी का जोरदार प्रचार किया। □ उनका नेतृत्व कौशल तब स्पष्ट हुआ, जब उन्होंने वर्ष 1967 से 1969 तक बॉम्बे राज्य के मुख्यमंत्री और तत्पश्चात उप-प्रधानमंत्री के रूप में कार्य किया। □ कांग्रेस पार्टी के विभाजन के बाद, वे कांग्रेस (O) गुट में शामिल हो गए। वर्ष 1977 में अपने राजनीतिक जीवन के शिखर को प्राप्त करते हुए गैर-कांग्रेसी दल से प्रधानमंत्री बनने वाले पहले व्यक्ति बने।



चौधरी चरण सिंह
(वर्ष 1902-1987)

- चौधरी चरण सिंह एक सम्मानित स्वतंत्रता सेनानी थे, जो उत्तर प्रदेश की राजनीति में गहराई से जुड़े हुए थे।
- ग्रामीण और कृषि क्षेत्रों की उन्नति के कट्टर समर्थक, उन्होंने वर्ष 1967 में भारतीय क्रांति दल की स्थापना करने के लिए कांग्रेस पार्टी छोड़ दी।
- उनकी नेतृत्व क्षमता तब और निखर कर सामने आई, जब वे दो बार उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री बने।
- वे वर्ष 1977 में जनता पार्टी के निर्माण में मूल व्यक्ति थे, जहाँ उन्होंने 1977 से 1979 के बीच उप प्रधानमंत्री और गृह मंत्री की भूमिकाएँ निभाईं।
- उन्हें लोक दल के संस्थापक के रूप में भी जाना जाता है।



जगजीवन राम (वर्ष 1908-1986)

- जगजीवन राम, एक प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी, बिहार के एक प्रमुख कांग्रेस नेता के रूप में उभरे।
- उनकी राजनीतिक यात्रा में कई मील के पत्थर शामिल हैं, जिनमें वर्ष 1977 से 1979 तक भारत के उप प्रधानमंत्री के रूप में कार्य करना एवं वर्ष 1952 से अपने निधन तक लगातार संसद सदस्य बने रहना शामिल है।
- उन्होंने स्वतंत्रता के बाद भारत के पहले मंत्रालय में श्रम मंत्री के रूप में महत्वपूर्ण योगदान दिया और 1952 से 1977 तक कई मंत्री पद संभाले।
- अपने राजनीतिक प्रयासों के अलावा, वे अपनी विद्वत्तापूर्ण खोज और असाधारण प्रशासनिक कौशल के लिए जाने जाते थे।

निष्कर्ष

वर्ष 1960 और 1970 के दशक के उत्तरार्द्ध में भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था का संकट भारत के लोकतांत्रिक परिदृश्य की कमजोरियों और मजबूतियों पर एक गहरा अनुभव रहा है। कांग्रेस पार्टी के प्रभुत्व, आपातकाल की घोषणा और उसके बाद की घटनाओं की विशेषता वाला यह दौर देश की उभरती राजनीतिक गतिशीलता को दर्शाता है। भारत की लोकतांत्रिक संस्थाओं की दृढ़ता, नागरिक स्वतंत्रता की रक्षा के लिए नागरिकों की अटूट भावना और इस अवधि के दौरान उल्लेखनीय नेताओं की भूमिकाओं ने आने वाले वर्षों में राजनीतिक विमर्श को आकार दिया है। जैसे-जैसे भारत विकसित होता जा रहा है, ये घटनाएँ लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति सतर्कता, भागीदारी और प्रतिबद्धता की आवश्यकता की एक मार्मिक याद दिलाती हैं।

विशिष्ट घटनाक्रम

वर्ष	संबंधित घटनाक्रम
1967	इंदिरा गांधी एक प्रभावशाली राजनीतिक नेता के रूप में उभरीं।
1971	'गरीबी हटाओ' कांग्रेस का प्रमुख चुनावी नारा बन गया।
1972-73	मानसून की विफलता के कारण कृषि उत्पादकता में कमी आई।
1974	गुजरात और बिहार में विद्यार्थियों का विरोध प्रदर्शन; राष्ट्रव्यापी रेलवे हड़ताल।
1975	इंदिरा गांधी का लोकसभा चुनाव अवैध घोषित; आपातकाल की घोषणा।
1976	आपातकाल के दौरान गिरफ्तारी को चुनौती न देने की क्षमता पर सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय।
1977	लोकसभा चुनाव; जनता पार्टी और उसके सहयोगियों ने स्पष्ट बहुमत प्राप्त किया।
1980	इंदिरा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस पार्टी पुनः सत्ता में लौटी।

महत्वपूर्ण शब्दावल्याँ

- ❖ **आपातकाल:** ऐसी स्थिति, जिसमें कार्यकारी शक्तियों का विस्तार किया जाता है, विशेषतः राष्ट्रीय संकट के दौरान।
- ❖ **गरीबी हटाओ:** इंदिरा गांधी द्वारा शुरू किया गया नारा और नीति, जिसका अर्थ है गरीबी को कम करना।
- ❖ **राष्ट्रपति शासन:** शासन की ऐसी स्थिति, जिसमें राज्य विधानसभाएँ निलंबित कर दी जाती हैं और केंद्र सरकार इसे प्रत्यक्ष नियंत्रण में ले लेती है।

- ❖ **संपूर्ण क्रांति:** जयप्रकाश नारायण द्वारा प्रयोग किया गया एक शब्द, जिसमें वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना के लिए विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन का आह्वान किया गया था।
- ❖ **केशवानंद भारती वाद:** एक ऐतिहासिक मामला जिसने स्थापित किया कि संसद संविधान की बुनियादी विशेषताओं (मूल ढाँचे) में संशोधन नहीं कर सकती।
- ❖ **आंतरिक आपातकाल:** आंतरिक अशांति के कारण घोषित आपातकाल का एक प्रकार।
- ❖ **जनता पार्टी:** आपातकाल और कांग्रेस पार्टी के प्रभुत्व का विरोध करने वाला एक राजनीतिक गठबंधन।
- ❖ **लोक दल:** चौधरी चरण सिंह द्वारा स्थापित एक राजनीतिक दल।
- ❖ **भूदान आंदोलन:** आचार्य विनोबा भावे द्वारा शुरू किया गया एक स्वैच्छिक भूमि सुधार आंदोलन।
- ❖ **मंडल आयोग:** भारत में सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों की पहचान करने के लिए स्थापित एक आयोग।
- ❖ **प्रेस सेंसरशिप:** मीडिया संसाधनों द्वारा प्रकाशित या प्रसारित की जाने वाली सामग्री पर सरकार का नियंत्रण या दमन।
- ❖ **संसदीय लोकतंत्र:** सरकार का एक रूप, जहाँ कार्यकारी शाखा विधायिका से वैधता और जनादेश प्राप्त करती है।
- ❖ **निवारक निरोध:** मुकदमे से पहले आरोपी व्यक्तियों को कैद करने की प्रथा।
- ❖ **संवैधानिक संकट:** एक ऐसी स्थिति, जिसे संविधान के शासी निकाय हल नहीं कर सकते।





क्षेत्रीय आकांक्षाएँ

संदर्भ: इस अध्याय में NCERT पाठ्यपुस्तक की कक्षा-XII (स्वतंत्र भारत में राजनीति-II) के अध्याय-7 का सारांश शामिल है।

परिचय

राष्ट्र निर्माण एक धीमी प्रक्रिया है, यह एक ऐसी प्रक्रिया नहीं है जिसे एक बार में और हमेशा के लिए प्राप्त किया जा सके। इसे प्राप्त करने में समय के साथ नई तथा कुछ पुरानी चुनौतियाँ भी सामने आईं, जिनका कभी पूरी तरह समाधान नहीं किया जा सका। 1980 के दशक में, विभिन्न क्षेत्र के लोगों ने स्वायत्तता के लिए अपनी आकांक्षाएँ व्यक्त करना शुरू कर दिया था, जो कभी-कभी भारतीय संघ के ढाँचे से बाहर थीं। इन आकांक्षाओं में लंबे संघर्ष और लोगों द्वारा आक्रामक और सशस्त्र दावे, सरकार द्वारा उनका दमन और विशेष रूप से असम, पंजाब, मिजोरम तथा जम्मू एवं कश्मीर में राजनीतिक और चुनावी प्रक्रियाओं का पतन इत्यादि शामिल था। इस अध्याय में हम इनसे संबंधित मामलों का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

क्षेत्र और राष्ट्र

- 1980 के दशक को स्वायत्तता के लिए क्षेत्रीय आकांक्षाओं के उदय के दशक के रूप में देखा जा सकता है, जो संवैधानिक ढाँचे के भीतर केंद्र सरकार और विभिन्न आंदोलनों का नेतृत्व करने वाले समूहों के मध्य समझौतों के माध्यम से संपन्न हुआ।
- वार्ता तथा समझौतों की यह यात्रा हमेशा उथल-पुथल भरी और सामान्य स्थितियों में हिंसक रही है।

भारत का लोकतांत्रिक दृष्टिकोण

- सांस्कृतिक विविधता के प्रति भारतीयों का दृष्टिकोण विविध यूरोपीय देशों में अपनाए गए दृष्टिकोण से भिन्न था, जहाँ वे सांस्कृतिक विविधता को राष्ट्र के लिए खतरा मानते थे।
- भारत ने विविधता के प्रश्न पर एक लोकतांत्रिक दृष्टिकोण अपनाया कि भारतीय राष्ट्र विभिन्न क्षेत्रों और भाषाई समूहों को अपनी संस्कृति बनाए रखने के अधिकारों से वंचित नहीं करेगा। भारतीय राष्ट्रवाद ने एकता और विविधता के सिद्धांतों को संतुलित करने का प्रयास किया।
- लोकतंत्र क्षेत्रीय आकांक्षाओं की राजनीतिक अभिव्यक्ति की अनुमति देता है और उन्हें राष्ट्र-विरोधी नहीं मानता। यह विभिन्न दलों और समूहों को अपनी क्षेत्रीय पहचान, आकांक्षा और विशिष्ट क्षेत्रीय समस्याओं के आधार पर लोगों को संबोधित करने की भी अनुमति देता है।
- इस प्रकार, लोकतांत्रिक राजनीति के दौरान क्षेत्रीय आकांक्षाएँ मजबूत होती हैं; साथ ही इसका यह भी अर्थ है कि नीति निर्माण प्रक्रिया में क्षेत्रीय मुद्दों और समस्याओं पर पर्याप्त ध्यान और समायोजन किया जाएगा।
- कभी-कभी, राष्ट्रीय एकता की चिंता क्षेत्रीय आवश्यकताओं और आकांक्षाओं पर हावी हो सकती है। अन्य समय में केवल क्षेत्र की चिंता हमें राष्ट्र की बड़ी जरूरतों के प्रति अंधा बना सकती है।

तनाव के दायरे

- आजादी के तुरंत बाद हमारे देश को विभाजन, विस्थापन, देसी रियासतों के विलय और राज्यों के पुनर्गठन जैसी कई चुनौतियों से जूझना पड़ा।
- देश और विदेश के अनेक पर्यवेक्षकों का अनुमान था कि भारत एकीकृत राष्ट्र के रूप में ज्यादा दिनों तक टिक नहीं पाएगा।
- अलग राज्य की माँग**
 - स्वतंत्रता के तुरंत बाद, जम्मू और कश्मीर का मुद्दा सामने आया, जो न केवल भारत और पाकिस्तान के बीच संघर्ष था बल्कि कश्मीर घाटी के लोगों की राजनीतिक आकांक्षाओं का भी प्रश्न था।

- नागालैंड और मिजोरम में भारत से अलग होने की माँग को लेकर मजबूत आंदोलन हुए।
- दक्षिण में, द्रविड़ आंदोलन के कुछ समूहों ने अलग देश की माँग पर कुछ समय तक विचार किया।
- **आंतरिक सीमाओं का पुनः निर्धारण**
 - तमिलनाडु में हिंदी को देश की आधिकारिक राष्ट्रीय भाषा बनाने के खिलाफ विरोध प्रदर्शन हुए, जबकि उत्तर में हिंदी के पक्ष में जोरदार आंदोलन हुए, जिसमें हिंदी को तुरंत आधिकारिक भाषा बनाने की माँग की गई।
 - आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और गुजरात में भाषाई राज्यों के गठन के लिए बड़े पैमाने पर आंदोलन हुए।
 - 1950 के दशक के उत्तरार्द्ध से पंजाबी भाषी लोगों ने अपने लिए अलग राज्य के लिए आंदोलन करना शुरू कर दिया। इस माँग को आखिरकार स्वीकार कर लिया गया और 1966 में पंजाब और हरियाणा राज्य बनाए गए। बाद में छत्तीसगढ़, उत्तराखंड (तत्कालीन उत्तरांचल) और झारखंड राज्य बनाए गए।

द्रविड़ आंदोलन

- “उत्तर हर दिन बढ़ता जाए, दक्षिण दिन-दिन घटता जाए”
- यह द्रविड़ आंदोलन के एक बेहद लोकप्रिय नारे का हिंदी रूपांतरण है।
- यह आंदोलन भारत के क्षेत्रीय आंदोलनों में सबसे ताकतवर आंदोलन था। भारतीय राजनीति में यह आंदोलन क्षेत्रीयतावादी भावनाओं की सर्वप्रथम और सबसे प्रबल अभिव्यक्ति था।
- हालाँकि आंदोलन के नेतृत्व वर्ग के एक हिस्से की आकांक्षा एक स्वतंत्र द्रविड़ राष्ट्र बनाने की थी, परन्तु आंदोलन ने कभी सशस्त्र संघर्ष की राह नहीं अपनाई। नेतृत्व ने अपनी माँग आगे बढ़ाने के लिए सार्वजनिक चर्चाओं और चुनावी मंच का ही प्रयोग किया।
- द्रविड़ आंदोलन की बागडोर तमिल समाज सुधारक ई. वी. रामास्वामी नायकर ‘पेरियार’ के हाथों में थी। इस आंदोलन से एक राजनीतिक संगठन ‘द्रविड़ कड़गम’ का सूत्रपात हुआ।
- यह संगठन ब्राह्मणों के वर्चस्व का विरोध करता था तथा उत्तरी भारत के राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रभुत्व को नकारते हुए क्षेत्रीय गौरव की प्रतिष्ठा पर जोर देता था।
- प्रारंभ में द्रविड़ आंदोलन समग्र दक्षिण भारतीय संदर्भ में अपनी बात रखता था, लेकिन अन्य दक्षिणी राज्यों से समर्थन न मिलने के कारण यह आंदोलन धीरे-धीरे तमिलनाडु तक ही सिमट कर रह गया।
- बाद में द्रविड़ कड़गम दो भागों में बंट गया और आंदोलन की समूची राजनीतिक विरासत “द्रविड़ मुनेत्र कड़गम” (डीएमके) के हाथों में केंद्रित हो गई।
- 1953-54 के दौरान डीएमके ने तीन-सूत्री आंदोलन के साथ राजनीति में कदम रखा। आंदोलन की तीन माँगें थी- पहली कल्लाकुडी नामक रेलवे स्टेशन का नया नाम-डालमियापुरम निरस्त किया जाए और स्टेशन का मूल नाम बहाल किया जाए। संगठन की यह माँग उत्तर भारतीय आर्थिक प्रतीकों के प्रति उसके विरोध को प्रकट करती थी।
- दूसरी माँग इस बात को लेकर थी कि स्कूली पाठ्यक्रम में तमिल संस्कृति के इतिहास को ज्यादा महत्व दिया जाए। संगठन की तीसरी माँग राज्य सरकार के शिल्पकर्म शिक्षा कार्यक्रम को लेकर थी। संगठन के अनुसार यह नीति समाज में ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण को बढ़ावा देती थी।
- डीएमके हिंदी को राजभाषा का दर्जा देने के भी खिलाफ थी। 1965 ई. के हिंदी विरोधी आंदोलन की सफलता ने डीएमके को जनता के बीच और भी लोकप्रिय बना दिया।
- राजनीतिक आंदोलनों के एक लंबे सिलसिले के बाद डीएमके को 1967 के विधानसभा चुनावों में बड़ी सफलता हाथ लगी। तब से लेकर आज तक तमिलनाडु की राजनीति में द्रविड़ दलों का वर्चस्व कायम है। डीएमके के संस्थापक सी. अन्नादुरै की मृत्यु के बाद दल दो भागों में विभाजित हो गया।
- इसमें एक दल मूल नाम यानी डीएमके को लेकर आगे चला, जबकि दूसरा दल स्वयं को “ऑल इंडिया अन्ना द्रमुक” कहने लगा। यह दल स्वयं को द्रविड़ विरासत का वास्तविक हकदार बताता था।
- तमिलनाडु की राजनीति में ये दोनों दल चार दशकों से दबदबा बनाए हुए हैं। इनमें से एक न एक दल 1996 से केंद्र में सत्तारूढ़ गठबंधन का हिस्सा रहा है। 1990 के दशक में एमडीएमके (मरुमलर्ची द्रविड़ मुनेत्र कड़गम), पीएमके (पट्टाली मक्कल कच्ची), डीएमडी के. (देसिया मुरपोक्कू द्रविड़ कड़गम) जैसे कई अन्य दल अस्तित्व में आए।
- तमिलनाडु की राजनीति में इन सभी दलों ने क्षेत्रीय गौरव के मुद्दे को किसी-न-किसी रूप में बनाए रखा है। एक समय क्षेत्रीय राजनीति को भारतीय राष्ट्र के लिए खतरा माना जाता था। लेकिन तमिलनाडु की राजनीति क्षेत्रवाद और राष्ट्रवाद के बीच सहकारिता की भावना का बेहतरीन उदाहरण प्रस्तुत करती है।

जम्मू और कश्मीर

- ❑ जम्मू और कश्मीर को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 के अंतर्गत विशेष दर्जा दिया गया था, परन्तु इसके बावजूद जम्मू-कश्मीर को हिंसा, सीमापार आतंकवाद और राजनीतिक अस्थिरता झेलनी पड़ी, परिणामस्वरूप इसके दीर्घकालिक आंतरिक और बाह्य प्रभाव सामने आए।
- ❑ कई लोग मारे गए, जिनमें निर्दोष नागरिक, सुरक्षाकर्मी और उग्रवादी शामिल थे। इसके अलावा, कश्मीर घाटी से बड़े पैमाने पर कश्मीरी पंडितों का पलायन भी हुआ।
- ❑ जम्मू और कश्मीर तीन सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों-जम्मू, कश्मीर और लद्दाख से बना हुआ है।
 - **जम्मू क्षेत्र:** इसमें छोटी पहाड़ियाँ और मैदानी भाग हैं। इसमें मुख्य रूप से हिन्दू, मुसलमान, सिख और अन्य धर्मों के लोग भी रहते हैं।
 - **कश्मीर क्षेत्र:** इसमें मुख्य रूप से कश्मीर घाटी शामिल है। यहाँ रहने वाले अधिकांश कश्मीरी मुसलमान हैं और शेष हिन्दू, सिख, बौद्ध तथा अन्य हैं।
 - **लद्दाख क्षेत्र:** यह मुख्य रूप से एक पहाड़ी क्षेत्र है। इसकी जनसंख्या बहुत कम है, जिसमें लगभग बराबर संख्या में बौद्ध और मुसलमान हैं।

केंद्र शासित प्रदेश—जम्मू एवं कश्मीर तथा लद्दाख



चित्र 7.1: संघ राज्यक्षेत्र जम्मू-कश्मीर तथा लद्दाख

विचारणीय बिंदु

जम्मू-कश्मीर के संदर्भ में प्राथमिक चिंता अनुच्छेद 370 के तहत दिया गया विशेष दर्जा था। 2019 में अनुच्छेद 370 के निरस्त होने के बाद, जम्मू-कश्मीर की स्थिति में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं। क्या आप उन संवैधानिक तथा प्रशासनिक प्रावधानों की जाँच कर सकते हैं, जो अनुच्छेद 370 को निरस्त करने में प्रस्तुत किए गए थे? इस निर्णय के पक्ष और विपक्ष को रेखांकित कीजिए।



समस्या की गड़ें

□ विभाजन और आक्रमण

- 1947 से पहले जम्मू और कश्मीर एक राजसी रियासत थी। इसके शासक, महाराजा हरि सिंह भारत या पाकिस्तान में शामिल होना नहीं चाहते थे, बल्कि अपनी रियासत के लिए स्वतंत्र दर्जा चाहते थे।
- पाकिस्तानी नेताओं ने सोचा कि कश्मीर क्षेत्र पाकिस्तान का 'हिस्सा' है, क्योंकि रियासत की अधिकांश आबादी मुसलमान थी। परंतु उस रियासत के लोगों ने इसे इस तरह नहीं देखा उन्होंने सोचा कि सबसे पहले वे कश्मीरी हैं। क्षेत्रीय अभिलाषा का यह मुद्दा कश्मीरियत कहलाता है।
- राज्य में नेशनल कॉन्फ्रेंस दल के नेता शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में चलाया गया लोकप्रिय आंदोलन राजशाही से छुटकारा पाना चाहता था। साथ ही पाकिस्तान में शामिल होने के विरुद्ध था।
- अक्तूबर 1947 में पाकिस्तान ने कश्मीर पर कब्जा करने के लिए अपनी तरफ से कबायली घुसपैठिए भेजे। इसने महाराजा को भारतीय सैनिक सहायता लेने के लिए बाध्य किया।

□ विलय

- भारत ने सैनिक सहायता दी और कश्मीर घाटी से घुसपैठियों को वापस खदेड़ दिया, परंतु यह तभी हुआ जब महाराजा ने भारत सरकार के साथ विलय पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए।

□ संयुक्त राष्ट्र मध्यस्थता

- 1947 के भारत-पाकिस्तान युद्ध के पश्चात् पाकिस्तान ने राज्य के एक बड़े हिस्से पर नियंत्रण जारी रखा, इसलिए मामले को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाया गया, जिसने दिनांक 21 अप्रैल, 1948 के अपने प्रस्ताव में मामले को निपटाने के लिए एक तीन चरणों वाली प्रक्रिया की अनुशंसा की।
 - पहला पाकिस्तान को अपने वे सभी नागरिक, जो पाकिस्तान में घुसपैठिये थे, वापस बुलाने थे।
 - दूसरा, भारत को धीरे-धीरे अपनी सेना कम करनी थी, जिससे जम्मू-कश्मीर में कानूनी व्यवस्था बनी रहे।
 - तीसरा, एक स्वतंत्र और निष्पक्ष तरीके से जनमत संग्रह कराया जाना था।

□ अनंतिम स्वायत्तता

- मार्च 1948 में शेख अब्दुल्ला जम्मू और कश्मीर के प्रधानमंत्री बन गए, जबकि भारत अनुच्छेद 370 के अंतर्गत उसे अस्थायी स्वायत्तता देने के लिए सहमत हो गया। उस समय राज्य में सरकार का मुखिया प्रधानमंत्री कहलाता था।

बाह्य एवं आंतरिक विवाद

- बाहर से पाकिस्तान ने हमेशा दावा किया कि कश्मीर घाटी पाकिस्तान का हिस्सा होनी चाहिए। उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि, पाकिस्तान ने 1947 में राज्य में कबायली हमला करवाया, जिसके परिणामस्वरूप राज्य का एक हिस्सा पाकिस्तानी नियंत्रण में आ गया। हालाँकि यह पाकिस्तान अधिकृत जम्मू-कश्मीर (POK) भारतीय क्षेत्र है, जिस पर पाकिस्तान का अवैध कब्जा है, लेकिन पाकिस्तान इस क्षेत्र को 'आजाद पाकिस्तान' कहता है।
- आंतरिक रूप से भारतीय संघ में कश्मीर के दर्जे के बारे में विवाद है। इस विशेष दर्जे ने दो विपरीत प्रतिक्रियाओं को जन्म दिया।
 - जम्मू और कश्मीर के बाहर लोगों का एक वर्ग है, जो विश्वास करता था कि अनुच्छेद 370 द्वारा प्रदत्त राज्य का विशेष दर्जा राज्य को भारत से पूर्ण रूप से एकीकृत नहीं होने देता है।
 - इस वर्ग को लगा कि अनुच्छेद 370 को रद्द कर देना चाहिए तथा जम्मू और कश्मीर को भारत के किसी भी अन्य राज्य की तरह माना जाना चाहिए।
 - दूसरे वर्ग, अधिकांश कश्मीरियों, का मानना है कि अनुच्छेद 370 द्वारा प्रदत्त स्वायत्तता पर्याप्त नहीं है। उनकी निम्नलिखित तीन मुख्य शिकायतें थीं:
 - पहली यह कि कबायली हमले से उत्पन्न परिस्थिति के सामान्य होने पर विलय मामला राज्य के लोगों को विचार करने के लिए देने का वायदा अभी तक पूरा नहीं हुआ है। इससे 'जनमत संग्रह' की माँग उठी।
 - दूसरी, यह अनुभव किया जा रहा था कि अनुच्छेद 370 द्वारा दिया गया विशेष संघीय दर्जा व्यावहारिक रूप से कम कर दिया गया है। इससे स्वायत्तता को बहाल करने या 'अधिक राज्य स्वायत्तता' की माँग उठी।
 - तीसरी, यह अनुभव किया गया कि जिस प्रकार का लोकतन्त्र शेष भारत में है, वैसा जम्मू और कश्मीर राज्य में लागू नहीं किया गया है।

1948 से राजनीति

□ राज्य और केंद्र सरकार के बीच संघर्ष

- 1948 से प्रधानमंत्री बनने के बाद, शेख अब्दुल्ला ने भूमि सुधार और अन्य नीतियाँ शुरू की जिनसे सामान्य जन को लाभ पहुँचा। परंतु कश्मीर के दर्जे पर उनकी स्थिति के विषय में उनके और केंद्र सरकार के बीच मतभेद बढ़ता गया। उन्हें 1953 में पद से हटा दिया गया और कई वर्षों तक कैद रखा गया।

- उनके बाद आई सरकारों को उतना लोकप्रिय समर्थन नहीं मिला और वह राज्य में शासन चला पाए जिसका मुख्य कारण केंद्र का समर्थन था।
- 1953 से 1974 के बीच की अवधि में कांग्रेस पार्टी ने राज्य की नीतियों पर प्रभाव डाला। नेशनल कॉन्फ्रेंस (शेख अब्दुल्ला रहित) का एक भाग कांग्रेस के सक्रिय समर्थन के साथ कुछ समय तक सत्ता में रहा परंतु बाद में यह कांग्रेस में मिल गया। विभिन्न चुनावों में अनाचार और हेरफेर संबंधी गंभीर मामले सामने आए।
- इसी बीच 1965 में जम्मू और कश्मीर के संविधान के प्रावधान में एक परिवर्तन किया गया, जिसके अंतर्गत राज्य के प्रधानमंत्री का पदनाम बदलकर मुख्यमंत्री कर दिया गया।
- इसके अनुसार, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के गुलाम मोहम्मद सादिक राज्य के पहले मुख्यमंत्री बने। 1974 में इंदिरा गांधी का शेख अब्दुल्ला के साथ एक समझौता हुआ और वे राज्य के मुख्यमंत्री बन गए।

□ नेशनल कॉन्फ्रेंस का पुनरुद्धार

- शेख अब्दुल्ला ने नेशनल कॉन्फ्रेंस को पुनर्जीवित किया जिसने 1977 के विधान सभा चुनाव में बहुमत से जीत हासिल की।
- शेख अब्दुल्ला का 1982 में निधन हो गया और नेशनल कॉन्फ्रेंस का नेतृत्व उनके पुत्र फारूक अब्दुल्ला के पास चला गया, जो मुख्यमंत्री बने। परंतु जल्द ही उन्हें राज्यपाल द्वारा पदच्युत कर दिया गया और नेशनल कॉन्फ्रेंस से अलग हुआ एक गुट एक अल्प अवधि के लिए सत्ता में आया।
- केंद्र सरकार के हस्तक्षेप से फारूक अब्दुल्ला की सरकार को पदच्युत करने पर कश्मीर में नाराजगी की भावना पैदा हुई।
- यह भावना कि केन्द्र राज्य की राजनीति में हस्तक्षेप कर रहा है तब पुष्ट हुई जब 1986 में नेशनल कॉन्फ्रेंस केंद्र में शासक दल कांग्रेस के साथ चुनावी गठबंधन करने को तैयार हो गई।

1987 के विधानसभा चुनाव

- 1987 के विधानसभा चुनाव में नेशनल कॉन्फ्रेंस और कांग्रेस के गठबंधन को भारी जीत प्राप्त हुई तथा फारूक अब्दुल्ला मुख्यमंत्री के रूप में वापस लौटे।
- यह व्यापक रूप से माना जा रहा था कि परिणामों में लोकप्रिय चयन की झलक नहीं है तथा सम्पूर्ण निर्वाचन प्रक्रिया में गड़बड़ी हुई थी।
- यह नाराजगी और अधिक बढ़ गई क्योंकि सामान्य रूप से विद्यमान भावना यह थी कि केंद्र के आदेश पर राज्य द्वारा लोकतान्त्रिक प्रक्रियाएँ कमजोर की जा रही हैं। इससे कश्मीर में राजनीतिक संकट उत्पन्न हुआ जो उग्रवाद के उठने से गहरा गया।

उग्रवाद और उसके बाद

- 1989 तक, राज्य एक पृथक कश्मीरी राष्ट्र बनाने को लेकर एक उग्रवादी आंदोलन के कब्जे में आ गया। इन विद्रोहियों को पाकिस्तान से नैतिक, आर्थिक और सैन्य समर्थन मिला। कई वर्षों तक राज्य, राष्ट्रपति शासन और प्रभावी रूप से सशस्त्र सेनाओं के नियंत्रण में रहा।
- 1990 के बाद से, जम्मू और कश्मीर ने विद्रोहियों तथा सेना की कार्रवाई से असाधारण हिंसा को झेला।
- राज्य में 1996 में ही जाकर विधानसभा चुनाव हुए, जिसमें फारूक अब्दुल्ला के नेतृत्व वाली नेशनल कॉन्फ्रेंस पार्टी जम्मू और कश्मीर के लिए क्षेत्रीय स्वायत्ता की माँग के साथ सत्ता में आई।
- अवधि के अंत में, 2002 में जम्मू और कश्मीर राज्य में चुनाव हुए। नेशनल कॉन्फ्रेंस बहुमत प्राप्त करने में विफल रही और इसके स्थान पर पीपल्स डेमोक्रेटिक पार्टी (पीडीपी) और कांग्रेस की गठबंधन सरकार बनी।

2002 और उसके बाद

- गठबंधन के समझौते के अनुसार ए.मुफ्ती मोहम्मद पहले तीन वर्ष सरकार के मुखिया रहे, जिनके बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के गुलामनबी आज़ाद मुखिया बने बने, जो जुलाई 2008 में लागू राष्ट्रपति शासन के कारण अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर पाए।
- उससे अगला चुनाव नवंबर-दिसंबर 2008 में हुआ। एक और गठबंधन सरकार (नेशनल कॉन्फ्रेंस और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से बनी) 2009 में उमर अब्दुल्ला के नेतृत्व में सत्ता में आई। परंतु, राज्य को लगातार हुरियत कॉन्फ्रेंस द्वारा पैदा की गई समस्याओं का सामना करना पड़ा।
- 2014 में, राज्य में पुनः चुनाव हुए, जिनमें पीडीपी के मुफ्ती मोहम्मद सईद के नेतृत्व में बीजेपी के साथ एक गठबंधन सरकार सत्ता में आई।
- मुफ्ती मोहम्मद सईद के निधन के बाद, उनकी बेटी महबूबा मुफ्ती अप्रैल 2016 में राज्य की पहली महिला मुख्यमंत्री बनी।
- महबूबा मुफ्ती के कार्यकाल में बाहरी और भीतरी तनाव बढ़ाने वाली बड़ी आतंकवादी घटनाएँ हुईं। जून 2018 में बीजेपी द्वारा मुफ्ती सरकार को दिया गया समर्थन वापस लेने के बाद राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया।
- 5 अगस्त, 2019 को “जम्मू और कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम, 2019” द्वारा अनुच्छेद 370 को समाप्त कर दिया गया और राज्य को पुनर्गठित कर दो संघ राज्यक्षेत्र - जम्मू और कश्मीर तथा लद्दाख बना दिए गए।

पंजाब

- 1980 के दशक में पंजाब में भी बड़े परिवर्तन आए।
- इस प्रांत की सामाजिक बुनावट विभाजन के समय पहली बार बदली थी। बाद में इसके कुछ हिस्सों से हरियाणा और हिमाचल प्रदेश राज्य अलग कर दिए गए।
- पंजाब को भाषायी आधार पर पुनर्गठित किया गया था। पंजाब के छोटे से हिस्से में सिख बहुसंख्यक थे।
- सिखों की राजनीतिक शाखा के रूप में 1920 के दशक में अकाली दल का गठन हुआ था। अकाली दल ने 'पंजाबी सूबा' के गठन का आंदोलन चलाया।

राजनीतिक संदर्भ

- पंजाब सूबे के पुनर्गठन के बाद अकाली दल ने यहाँ 1967 और इसके बाद 1977 में सरकार बनायी।
- सूबे के नए सीमांकन के बावजूद उनकी राजनीतिक स्थिति अनिश्चित बनी रही, जिसके प्रमुख कारण निम्नलिखित थे -
 - पहली बात तो यही कि उनकी सरकार को केंद्र ने कार्यकाल पूरा करने से पहले बर्खास्त कर दिया था।
 - दूसरे, अकाली दल को पंजाब के हिंदुओं के बीच कुछ खास समर्थन हासिल नहीं था।
 - तीसरे, सिख समुदाय भी दूसरे धार्मिक समुदायों की तरह जाति और वर्ग के धरातल पर बँटा हुआ था। कांग्रेस को दलितों के बीच चाहे वे सिख हों या हिंदू-अकालियों से कहीं ज्यादा समर्थन प्राप्त था।
- इन्हीं परिस्थितियों के मद्देनजर 1970 के दशक में अकालियों के एक तबके ने पंजाब के लिए स्वायत्तता की माँग उठायी।
- आनंदपुर साहिब संकल्प**
 - 1973 में, आनंदपुर साहिब में हुए एक सम्मेलन में इस आशय का प्रस्ताव पारित हुआ। आनंदपुर साहिब प्रस्ताव में क्षेत्रीय स्वायत्तता की बात उठाई थी।
 - इस प्रस्ताव में सिख 'कौम' (नेशन या समुदाय) की आकांक्षाओं पर जोर देते हुए सिखों के 'बोलबाला' (प्रभुत्व या वर्चस्व) का ऐलान किया गया। यह प्रस्ताव भारत में संघवाद को मजबूत करने की अपील करता है।
- कुछ वर्ष बाद जब 1980 में अकाली दल की सरकार बर्खास्त हो गई तो अकाली दल ने पंजाब तथा पड़ोसी राज्यों के बीच पानी के बँटवारे के मुद्दे पर एक आंदोलन चलाया। धार्मिक नेताओं के एक तबके ने स्वायत्त सिख पहचान की बात उठायी।

हिंसा का वक

- आंदोलन के उग्रवादियों ने अमृतसर स्थित सिखों के तीर्थ स्वर्णमंदिर में अपना मुख्यालय बनाया और स्वर्णमंदिर एक हथियारबंद किले में तब्दील हो गया।
- 1984 के जून माह में भारत सरकार ने 'ऑपरेशन ब्लू स्टार' चलाया। यह स्वर्णमंदिर में की गई सैन्य कार्रवाई का कूट नाम था। इस सैन्य अभियान में सरकार ने उग्रवादियों को तो सफलतापूर्वक मार भगाया लेकिन सैन्य कार्रवाई से ऐतिहासिक स्वर्णमंदिर को क्षति भी पहुँची। इससे सिखों की भावनाओं को गहरी चोट लगी। भारत और भारत से बाहर बसे अधिकतर सिखों ने सैन्य अभियान को अपने धार्मिक विश्वास पर हमला माना।
- कुछ और त्रासद घटनाओं ने पंजाब की समस्या को एक जटिल रास्ते पर ला खड़ा किया। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की 31 अक्टूबर, 1984 के दिन उनके आवास के बाहर उन्हीं के अंगरक्षकों ने हत्या कर दी। ये अंगरक्षक सिख थे और ऑपरेशन ब्लू स्टार का बदला लेना चाहते थे।
- एक तरफ पूरा देश इस घटना से शोक संतप्त था, तो दूसरी तरफ दिल्ली सहित उत्तर भारत के कई हिस्सों में सिख समुदाय के विरुद्ध हिंसा भड़क उठी।
- यह हिंसा कई हफ्तों तक जारी रही। दो हजार से ज्यादा की तादाद में सिख, दिल्ली में मारे गए। देश की राजधानी दिल्ली इस हिंसा से सबसे ज्यादा प्रभावित हुई थी। कई सिख परिवारों में कोई भी पुरुष न बचा। इन परिवारों को गहरा भावनात्मक आघात पहुँचा और आर्थिक हानि उठानी पड़ी।
- बीस वर्ष पश्चात् 2005 में संसद में अपने एक वक्तव्य में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने इन हत्याओं पर खेद व्यक्त किया और सिख विरोधी हिंसा के लिए राष्ट्र से माफ़ी माँगी।

शांति का मार्ग

- 1984 के चुनावों के बाद सत्ता में आने पर नए प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने नरमपंथी अकाली नेताओं से वार्ता की शुरुआत की। अकाली दल के तत्कालीन अध्यक्ष हरचंद सिंह लोंगोवाल के साथ 1985 के जुलाई में एक समझौता हुआ। इस समझौते को राजीव गांधी लोंगोवाल समझौता अथवा पंजाब समझौता कहा जाता है।
- पंजाब समझौता**
 - इस बात पर सहमति हुई कि चंडीगढ़ पंजाब को दे दिया जाएगा।
 - पंजाब तथा हरियाणा के बीच सीमा विवाद को सुलझाने के लिए एक अलग आयोग की नियुक्ति होगी।
 - समझौते में यह भी तय हुआ कि पंजाब-हरियाणा राजस्थान के बीच रावी-व्यास के पानी के बँटवारे के बारे में फैसला करने के लिए एक ट्रिब्यूनल (न्यायाधिकरण) बैठाया जाएगा।
 - समझौते के अंतर्गत सरकार पंजाब में उग्रवाद से प्रभावित लोगों को मुआवजा देने और उनके साथ बेहतर व्यवहार करने पर राजी हुई। साथ ही, पंजाब से विशेष सुरक्षा बल अधिनियम को वापस लेने की बात पर भी सहमति हुई।

- ❑ बहरहाल, पंजाब में समझौते के बाद भी अमन आसानी से कायम नहीं हुआ और लगभग एक दशक तक हिंसा का चक्र चलता रहा। उग्रवादी हिंसा और इस हिंसा को दबाने के लिए की गई कार्रवाइयों में मानवाधिकारों का व्यापक उल्लंघन हुआ। राजनीतिक रूप से देखें तो घटनाओं के इस चक्र में अकाली दल बिखर गया। केंद्र सरकार को राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करना पड़ा।
- ❑ 1992 में पंजाब में चुनाव हुए तो महज 24 फीसदी मतदाता वोट डालने के लिए आए।
- ❑ उग्रवाद को सुरक्षा बलों ने आखिरकार दबा दिया लेकिन पंजाब के लोगों ने, चाहे वे सिख हों या हिंदू, इस क्रम में अनगिनत दुख उठाए। 1990 के दशक के मध्यवर्ती वर्षों में पंजाब में शांति बहाल हुई।
- ❑ 1997 में अकाली दल (बादल) और भाजपा के गठबंधन को बड़ी विजय मिली।
- ❑ राज्य में एक बार फिर आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन के सवाल प्रमुख हो उठे।

विचारणीय बिंदु

पंजाब राज्य का विभाजन मूलतः भाषाई कारणों से हुआ था। क्या आप उन राज्यों के नाम बता सकते हैं जो राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 के तहत भाषा के आधार पर बनाए गए थे? इसके अलावा, भाषाई आधार पर राज्य विभाजन पर आपका क्या दृष्टिकोण है - क्या आपको लगता है कि यह देश की एकता और एकीकरण में बाधा डालता है, या क्या यह क्षेत्रीय माँगों और आकांक्षाओं को पूरा करने में मदद करता है?



पूर्वोत्तर



चित्र 7.2: पूर्वोत्तर भारत

- पूर्वोत्तर में क्षेत्रीय आकांक्षाएँ 1980 के दशक में एक निर्णायक मोड़ पर आ गई थीं।
- इस क्षेत्र में देश की कुल 4 फीसदी आबादी निवास करती है। 22 किलोमीटर लंबी एक पतली-सी राहदारी इस इलाके को शेष भारत से जोड़ती है।
- इस क्षेत्र की सीमाएँ चीन, म्याँमार और बांग्लादेश से लगती हैं तथा यह इलाका भारत के लिए एक तरह से दक्षिण-पूर्व एशिया का प्रवेश-द्वार है।
- **1947 से परिवर्तन**
 - पूर्वोत्तर के पूरे इलाके का बड़े व्यापक स्तर पर राजनीतिक पुनर्गठन हुआ है। नगालैंड को 1963 में राज्य बनाया गया।
 - मणिपुर, त्रिपुरा और मेघालय 1972 में राज्य बने, जबकि मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश को 1987 में राज्य का दर्जा दिया गया।
 - 1947 के भारत-विभाजन से पूर्वोत्तर के इलाके भारत के शेष भागों से एकदम अलग-थलग पड़ गए, जिसका इसकी अर्थव्यवस्था पर गहरा दुष्प्रभाव पड़ा।
 - भारत के शेष भागों से अलग-थलग पड़ जाने के कारण इस इलाके में विकास पर ध्यान नहीं दिया जा सका। यहाँ की राजनीति भी अपने ही दायरे में सीमित रही।
 - इसके साथ-साथ पड़ोसी राज्यों और देशों से आने वाले शरणार्थियों के कारण इलाके की जनसंख्या की संरचना में बड़ा बदलाव आया।
- **विभिन्न प्रकार की माँगें**
 - पूर्वोत्तर का अलग-थलग पड़ जाना, इस इलाके की जटिल सामाजिक संरचना और देश के अन्य हिस्सों के मुकाबले इस इलाके का आर्थिक रूप से पिछड़ा होना, जैसी कई बातों ने एक साथ मिलकर एक जटिल स्थिति पैदा की। ऐसे में पूर्वोत्तर के राज्यों से बड़ी बेतरतीब किस्म की माँगें उठीं।
 - इस इलाके में भारत की अंतरराष्ट्रीय सीमा रेखा काफी बड़ी है, लेकिन पूर्वोत्तर और भारत के शेष भागों के बीच संचार-व्यवस्था बड़ी लचर है।
 - पूर्वोत्तर के राज्यों में राजनीति संबंधी तीन प्रमुख मुद्दे प्रभावी हैं - स्वायत्तता की माँग, अलगाव के आंदोलन और 'बाहरी' लोगों का विरोध।

स्वायत्तता की माँग

- स्वतंत्रता काल में मणिपुर और त्रिपुरा को छोड़ दें तो यह पूरा इलाका असम कहलाता था।
- गैर-असमी लोगों को जब लगा कि असम की सरकार उन पर असमी भाषा थोप रही है, तो इस इलाके से राजनीतिक स्वायत्तता की माँग उठी।
- बड़े जनजाति समुदाय के नेता असम से अलग होना चाहते थे। इन लोगों ने 'ईस्टर्न इंडिया ट्राइबल यूनियन' का गठन किया, जो 1960 में कहीं ज्यादा व्यापक 'ऑल पार्टी हिल्स कॉन्फ्रेंस' में तब्दील हो गया।
- आखिरकार एक जनजातीय राज्य की जगह असम को विभाजित कर कई जनजातीय राज्य बने। केंद्र सरकार ने असम को बाँटकर मेघालय, मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश बनाया। त्रिपुरा और मणिपुर को भी राज्य का दर्जा दिया गया।
- 1972 तक पूर्वोत्तर का पुनर्गठन पूरा हो चुका था लेकिन स्वायत्तता की माँग समाप्त नहीं हुई। उदाहरण के लिए, असम के बोडो, करबी और दिमसा जैसे समुदायों ने अपने लिए अलग राज्य की माँग की। कई मामलों में ऐसा भी हुआ कि एक ही इलाके पर एक से ज्यादा समुदायों ने अपनी दावेदारी जतायी। करबी और दिमसा समुदायों को जिला परिषद् के अंतर्गत स्वायत्तता दी गई जबकि बोडो जनजाति को हाल ही में स्वायत्त परिषद् का दर्जा दिया गया है।

विचारणीय बिंदु

पूर्वोत्तर भारत अपनी उल्लेखनीय विविधता और सामरिक महत्त्व के लिए जाना जाता है। फिर भी, अपने पूरे इतिहास में, यह क्षेत्र राजनीतिक अस्थिरता से ग्रस्त रहा है, जिसका मुख्य कारण अधिक स्वायत्तता की माँग थी। क्या आप स्थिरता को बढ़ावा देने, स्वायत्तता की माँगों को संबोधित करने और क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय एकीकरण दोनों को सुनिश्चित करने के लिए अद्वितीय व्यवस्था प्रदान करने के उद्देश्य से संवैधानिक प्रावधानों की रूपरेखा बता सकते हैं?



अलगाववादी आंदोलन

- स्वायत्तता की माँगों से निपटना आसान था क्योंकि संविधान में विभिन्नताओं का समाहार संघ में करने के लिए प्रावधान पहले से मौजूद थे। किन्तु जब कुछ समूहों ने अलग राष्ट्र की माँग की, तो यह समस्या विकट हो गई।
- **मिजो हिल्स**
 - आजादी के बाद मिजो पर्वतीय क्षेत्र को असम के भीतर ही एक स्वायत्त जिला बना दिया गया था। कुछ मिजो लोगों का मानना था कि वे कभी भी 'ब्रिटिश भारत' के अंग नहीं रहे इसलिए भारत संघ से उनका कोई नाता नहीं है।
 - 1959 में मिजो पर्वतीय इलाके में भारी अकाल पड़ा। असम की सरकार इस अकाल में समुचित प्रबंधन करने में नाकाम रही। इसी के बाद अलगाववादी आंदोलन को जनसमर्थन मिलना शुरू हुआ। मिजो लोगों ने गुस्से में आकर लालडेंगा के नेतृत्व में मिजो नेशनल फ्रंट (MNF) बनाया।
 - 1966 में मिजो नेशनल फ्रंट ने भारतीय सेना और मिजो विद्रोहियों के बीच दो दशक तक चली लड़ाई की शुरुआत की। मिजो नेशनल फ्रंट ने गुरिल्ला युद्ध किया। उसे पाकिस्तान की सरकार ने समर्थन दिया था और तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान में मिजो विद्रोहियों ने अपने ठिकाने बनाए।

- भारतीय सेना ने विद्रोही गतिविधियों को दबाने के लिए जवाबी कार्रवाई की। इसमें आम जनता को भी कष्ट उठाने पड़े।
- दो दशकों तक चले बगावत में हर पक्ष को हानि उठानी पड़ी। इसी बात को भाँपकर दोनों पक्षों के नेतृत्व ने समझदारी से काम लिया। पाकिस्तान में निर्वासित जीवन जी रहे लालडेंगा भारत आए और उन्होंने भारत सरकार के साथ वार्ता शुरू की।
- 1986 में राजीव गांधी और लालडेंगा के बीच एक शांति समझौता हुआ।
- समझौते के अंतर्गत मिजोरम को पूर्ण राज्य का दर्जा मिला और उसे कुछ विशेष अधिकार दिए गए। मिजो नेशनल फ्रंट अलगाववादी संघर्ष की राह छोड़ने पर राजी हो गया और लालडेंगा मुख्यमंत्री बने।

□ नागालैंड

- अंगामी जापू फ्रिजो के नेतृत्व में नगा लोगों के एक तबके ने 1951 में स्वयं को भारत से आजाद घोषित कर दिया। फ्रिजो ने केंद्र सरकार से वार्ता के कई प्रस्ताव ठुकराए।
- हिंसक विद्रोह के एक दौर के बाद नगा लोगों के एक तबके ने भारत सरकार के साथ एक समझौते पर दस्तखत किए लेकिन अन्य विद्रोही तबकों ने इस समझौते को नहीं माना।

बाहरी लोगों के खिलाफ आंदोलन

- पूर्वोत्तर में बड़े पैमाने पर अप्रवासी आए हैं। इससे एक खास समस्या पैदा हुई है। स्थानीय जनता इन्हें 'बाहरी' समझती है और 'बाहरी' लोगों के खिलाफ उसके मन में गुस्सा है। भारत के दूसरे राज्यों अथवा किसी अन्य देश से आए लोगों को यहाँ की जनता रोजगार के अवसरों और राजनीतिक सत्ता की दृष्टि से एक प्रतिद्वंद्वी के रूप में देखती है।

□ 1979 - 1985 के दौरान 'बाहरी लोगों' के खिलाफ आंदोलन

- असमी लोगों को संदेह था कि बांग्लादेश से आकर बहुत-सी मुस्लिम आबादी असम में बसी हुई है। लोगों के मन में यह भावना घर कर गई थी कि इन विदेशी लोगों को पहचानकर उन्हें अपने देश नहीं भेजा गया तो स्थानीय असमी जनता अल्पसंख्यक हो जाएगी।
- असम में तेल, चाय और कोयले जैसे प्राकृतिक संसाधनों की मौजूदगी के बावजूद व्यापक गरीबी थी। यहाँ की जनता ने माना कि असम के प्राकृतिक संसाधन बाहर भेजे जा रहे हैं और असमी लोगों को कोई फायदा नहीं हो रहा है।
- 1979 में ऑल असम स्टूडेंट्स यूनियन (आसू-AASU) ने विदेशियों के विरोध में एक आंदोलन चलाया। 'आसू' एक छात्र संगठन था और इसका जुड़ाव किसी भी राजनीतिक दल से नहीं था।

□ विदेशी विरोधी आंदोलन

- 'आसू' का आंदोलन अवैध अप्रवासी, बंगाली और अन्य लोगों के दबदबे तथा मतदाता सूची में लाखों अप्रवासियों के नाम दर्ज कर लेने के खिलाफ था।
- आंदोलन की माँग थी कि 1951 के बाद जितने भी लोग असम में आकर बसे हैं उन्हें असम से बाहर भेजा जाए।
- इस आंदोलन ने कई नए तरीकों को आजमाया और असमी जनता के हर तबके का समर्थन हासिल किया।
- इस आंदोलन को पूरे असम में समर्थन मिला। आंदोलन के दौरान हिंसक और त्रासद घटनाएँ भी हुईं बहुत से लोगों को जान गंवानी पड़ी और धन-संपत्ति का नुकसान हुआ।
- आंदोलन के दौरान रेलगाड़ियों की आवाजाही तथा बिहार स्थित बरौनी तेलशोधक कारखाने को तेल आपूर्ति रोकने की भी कोशिश की गई।

सिक्किम का विलय

- स्वतंत्रता के समय सिक्किम को भारत की 'शरणागति' प्राप्त थी। इसका अर्थ यह है, कि तब सिक्किम भारत का अंग तो नहीं था लेकिन वह पूरी तरह संप्रभु राष्ट्र भी नहीं था। सिक्किम की रक्षा और विदेशी मामलों की जिम्मेदारी भारत सरकार की थी, जबकि सिक्किम के आंतरिक प्रशासन की बागडोर यहाँ के राजा चोग्याल के हाथों में थी।
- यह व्यवस्था कारगर साबित नहीं हो पाई, क्योंकि सिक्किम के राजा स्थानीय जनता की लोकतांत्रिक आकांक्षाओं को पूर्ण नहीं कर सके।
- सिक्किम की आबादी में एक बड़ा हिस्सा नेपालियों का था। नेपाली मूल की जनता के मन में यह भाव घर कर गया, कि चोग्याल अल्पसंख्यक लेपचा भूटिया के एक छोटे-से अभिजन तबके का शासन उन पर लाद रहा है। चोग्याल विरोधी दोनों समुदाय के नेताओं ने भारत सरकार से मदद माँगी और भारत सरकार का समर्थन प्राप्त किया।
- सिक्किम विधानसभा के लिए पहला लोकतांत्रिक चुनाव 1974 में हुआ और इसमें सिक्किम कांग्रेस को भारी विजय मिली। यह दल सिक्किम को भारत के साथ जोड़ने के पक्ष में था। सिक्किम विधानसभा ने पहले भारत के 'सह-प्रान्त' बनने की कोशिश की और इसके बाद 1975 के अप्रैल में एक प्रस्ताव पारित किया।

- इस प्रस्ताव में भारत के साथ सिक्किम के पूर्ण विलय की बात कही गई थी। इस प्रस्ताव के तुरंत बाद सिक्किम में जनमत-संग्रह कराया गया और जनमत-संग्रह में जनता ने विधानसभा के निर्णय पर अपनी मुहर लगा दी।
- भारत सरकार ने सिक्किम विधानसभा के अनुरोध को तत्काल मान लिया और सिक्किम भारत का 22वाँ राज्य बन गया।
- चोग्याल ने इस निर्णय को नहीं माना और उसके समर्थकों ने भारत सरकार पर साजिश रचने तथा बल-प्रयोग करने का आरोप लगाया। बहरहाल, भारत संघ में सिक्किम के विलय को स्थानीय जनता का समर्थन प्राप्त था। इस कारण यह मामला सिक्किम की राजनीति में कोई विभेदकारी मुद्दा न बन सका।

□ शांति समझौते पर हस्ताक्षर

- छह वर्ष की सतत अस्थिरता के बाद राजीव गांधी के नेतृत्व वाली सरकार ने 'आसू' नेताओं के साथ वार्ता की, जिसके परिणामस्वरूप 1985 में एक समझौता हुआ।
- समझौते के अंतर्गत तय किया गया कि जो लोग बांग्लादेश युद्ध के दौरान अथवा उसके बाद के वर्षों में असम आए हैं, उनकी पहचान की जाएगी और उन्हें वापस भेजा जाएगा।

□ राजनीति में बदलाव

- आंदोलन की कामयाबी के बाद 'आसू' और असम गण संग्राम परिषद् ने साथ मिलकर स्वयं को एक क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टी के रूप में संगठित किया। इस पार्टी का नाम 'असम गण परिषद्' रखा गया।
- असम गण परिषद् 1985 में इस वायदे के साथ सत्ता में आई थी कि विदेशी लोगों की समस्या को सुलझा लिया जाएगा और एक 'स्वर्णिम असम' का निर्माण किया जाएगा।

□ आब्रजन अभी भी एक मुद्दा

- असम-समझौते से शांति कायम हुई और प्रदेश की राजनीति का चेहरा भी बदला लेकिन 'अप्रवास' की समस्या का समाधान नहीं हो पाया।
- 'बाहरी' का मसला अब भी असम और पूर्वोत्तर के अन्य राज्यों की, राजनीति में जीवंत है।
- यह समस्या त्रिपुरा में ज्यादा गंभीर है क्योंकि यहाँ के मूल निवासी खुद अपने ही प्रदेश में अल्पसंख्यक बन गए हैं।
- मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश के लोगों में भी इसी भय के कारण चकमा शरणार्थियों को लेकर गुस्सा है।

समाहार और राष्ट्रीय अखंडता

- 1980 के बाद के दौर में भारतीय राजनीति निरंतर तनाव के घेरे में रही तथा समाज के विभिन्न तबकों की माँगों से संतुलन बनाने का प्रयास करती रही।

इन उदाहरणों से सीख

1. **क्षेत्रीय आकांक्षाएँ** - क्षेत्रीय आकांक्षाएँ लोकतांत्रिक राजनीति का अभिन्न अंग हैं। ग्रेट ब्रिटेन जैसे छोटे देश में भी स्कॉटलैंड, वेल्स और उत्तरी आयरलैंड में क्षेत्रीय आकांक्षाएँ उभरी हैं। स्पेन में बास्क लोगों और श्रीलंका में तमिलों ने अलगाववादी माँग की।
2. **लोकतांत्रिक वार्ता**: इन मुद्दों को केवल कानून और व्यवस्था की समस्या मानने के बजाय, सरकार ने क्षेत्रीय आंदोलनों के साथ समझौता किया। इससे एक ऐसा समझौता हुआ जिसने कई क्षेत्रों में मौजूद तनाव को कम किया।
3. **सत्ता का बँटवारा**: सिर्फ लोकतांत्रिक ढाँचा खड़ा कर लेना ही काफी नहीं है। इसके साथ ही विभिन्न क्षेत्रों के दलों और समूहों को केंद्रीय राजव्यवस्था में हिस्सेदार बनाना भी जरूरी है। ठीक इसी तरह यह कहना भी काफी नहीं है, कि किसी प्रदेश अथवा क्षेत्र को उसके मामलों में स्वायत्तता दी गई है। क्षेत्रों को मिलाकर ही पूरा देश बनता है। इसी कारण देश की नियति के निर्धारण में क्षेत्रों की बातों पर गौर किया जाना आवश्यक है।
4. **क्षेत्रीय असंतुलन**: आर्थिक विकास में क्षेत्रीय असंतुलन क्षेत्रीय भेदभाव की भावना में योगदान देता है। क्षेत्रीय असंतुलन भारत के विकास के अनुभव का एक तथ्य है। यदि कुछ राज्य गरीब बने रहते हैं और अन्य तेजी से विकास करते हैं, तो इससे क्षेत्रीय असंतुलन और अंतर-क्षेत्रीय पलायन होता है।
5. **हमारे संविधान निर्माताओं की दूरदर्शिता**: हमारे संविधान निर्माता विविधता के सवाल से निपटने में दूरदर्शी थे। यद्यपि अधिकांश राज्यों को समान शक्तियाँ प्राप्त हैं, फिर भी कुछ राज्यों के लिए विशेष प्रावधान हैं।
 - संविधान की छठी अनुसूची विभिन्न जनजातियों को अपनी प्रथाओं और प्रथागत कानूनों को संरक्षित करने की पूर्ण स्वायत्तता प्रदान करती है।
 - भारत में संवैधानिक ढाँचा बहुत अधिक लचीला और समायोजनात्मक है। इसलिए, क्षेत्रीय आकांक्षाओं को अलगाववाद को बढ़ावा देने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता है।

गोवा की मुक्ति

- वर्ष 1947 में भारत में अंग्रेजी साम्राज्य का खात्मा हो गया था, लेकिन पुर्तगाल ने गोवा, दमन और दीव से अपना शासन हटाने से मना कर दिया था। यह क्षेत्र सोलहवीं सदी से ही औपनिवेशिक शासन के नियंत्रण में था।
- अपने लंबे शासनकाल में पुर्तगाल ने गोवा की जनता का दमन किया था। उसने यहाँ के लोगों को नागरिक अधिकारों से वंचित रखा और बलात् धर्म-परिवर्तन कराया।
- आज़ादी के बाद भारत सरकार ने बड़े धैर्यपूर्वक पुर्तगाल को गोवा से अपना शासन हटाने पर रजामंद करने की कोशिश की। गोवा में आज़ादी के लिए एक मजबूत जन आंदोलन चला। इस आंदोलन को महाराष्ट्र के समाजवादी सत्याग्रहियों ने बल प्रदान किया।
- आखिरकार दिसंबर 1961 में भारत सरकार ने गोवा में अपनी सेना भेजी। दो दिन की कार्रवाई में भारतीय सेना ने गोवा को मुक्त करा लिया।
- जल्द ही एक और समस्या उठ खड़ी हुई। महाराष्ट्रवादी गोमांतक पार्टी के नेतृत्व में एक तबके ने माँग रखी कि गोवा को महाराष्ट्र में मिला दिया जाए, क्योंकि यह मराठी भाषी क्षेत्र है।
- बहरहाल, बहुत-से गोवा निवासी गोवा की पहचान और संस्कृति की स्वतंत्र अहमियत बनाए रखना चाहते थे। कोंकणी भाषा के लिए भी इनके मन में आग्रह था। इस तबके का नेतृत्व यूनाइटेड गोअन पार्टी (यूजीपी) ने किया।
- 1967 के जनवरी में केंद्र सरकार ने गोवा में एक विशेष जनमत सर्वेक्षण कराया। इसमें गोवा के लोगों से पूछा गया कि आप लोग महाराष्ट्र में शामिल होना चाहते हैं अथवा अलग बने रहना चाहते हैं।
- इस विषय पर सरकार ने जनता की इच्छा को जानने के लिए जनमत-संग्रह जैसी प्रक्रिया अपनायी थी। अधिकतर लोगों ने महाराष्ट्र से अलग रहने के पक्ष में मत डाला। इस तरह गोवा संघशासित प्रदेश बना रहा। अंततः 1987 में गोवा भारत संघ का एक राज्य बना।

उल्लेखनीय नेता एवं उनके कार्य

नाम	उनके कार्य
 ई. वी. रामास्वामी नायकर (1879-1973 ई.)	पेरियार के नाम से प्रसिद्ध; ऊनीश्वरवाद के प्रबल समर्थक; जाति-विरोधी आंदोलन एवं द्रविड़ अस्मिता के उद्भावक; राजनीतिक जीवन की शुरुआत कांग्रेस कार्यकर्ता के रूप में; आत्मसम्मान आंदोलन के जनक (1925); ब्राह्मण विरोधी आंदोलन का नेतृत्व; जस्टिस पार्टी के कार्यकर्ता और द्रविड़ कड़गम की स्थापना; हिंदी और उत्तर भारतीय वर्चस्व का विरोध: “उत्तर भारतीय लोग एवं ब्राह्मण द्रविड़ों से अलग आर्य हैं” इस मत का प्रतिपादन।
 शेख मोहम्मद अब्दुल्ला (1905-1982 ई.)	जम्मू एवं कश्मीर के नेता; जम्मू-कश्मीर की स्वायत्तता एवं धर्मनिरपेक्षता के समर्थक; राजशाही के खिलाफ जन आंदोलन का नेतृत्व; धर्मनिरपेक्षता के आधार पर पाकिस्तान का विरोध तथा नेशनल कॉन्फ्रेंस के नेता; भारत में विलय के बाद जम्मू-कश्मीर के प्रधानमंत्री (1947); भारत सरकार द्वारा बर्खास्तगी और कारावास (1953-1964); पुनः कारावास (1965-1968); 1974 में इंदिरा गांधी के साथ समझौता, राज्य के मुख्यमंत्री पद पर आरुढ़।
 मास्टर तारा सिंह (1885-1967 ई.)	प्रमुख सिख धार्मिक एवं राजनीतिक नेता; शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी (SGPC) के शुरुआती नेताओं में से एक; अकाली आंदोलन के नेता; स्वतंत्रता आंदोलन के समर्थक लेकिन सिर्फ मुस्लिमों के साथ समझौते की कांग्रेस नीति के विरोधी; स्वतंत्रता के बाद अलग पंजाब राज्य के निर्माण के समर्थक।

 संत हरचंद सिंह लोंगोवाल (1932-1985 ई.)	सिखों के धार्मिक एवं राजनीतिक नेता; छठे दशक के दौरान अकाली नेता के रूप में राजनीतिक जीवन की शुरुआत; 1980 में अकाली दल के अध्यक्ष; अकालियों की प्रमुख माँगों को लेकर प्रधानमंत्री राजीव गांधी से समझौता; अज्ञात सिख युवक द्वारा हत्या।
 लालबहादूर (1937-1990 ई.)	मिजो नेशनल फ्रंट के संस्थापक और नेता; 1959 के अकाल के बाद विद्रोही बन गए; भारत के खिलाफ दो दशक तक सशस्त्र संघर्ष का नेतृत्व; 1986 में प्रधानमंत्री राजीव गांधी के साथ सुलह और एक समझौते पर हस्ताक्षर; नव-निर्मित मिज़ोरम के मुख्यमंत्री।
 अंगामी जापू फिजो (1904-1990 ई.)	नगालैंड की आजादी के आंदोलन के नेता; नगा नेशनल काउंसिल के अध्यक्ष; भारत सरकार के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष की शुरुआत; पाकिस्तान में शरण ली; जीवन के अंतिम तीन दशक ब्रिटेन में गुजारे।
 काजी लैदुप दोरजी खांगसरपा (1904 ई.)	सिक्किम के लोकतंत्र स्थापना आंदोलन के नेता; सिक्किम प्रजामंडल एवं सिक्किम राज्य कांग्रेस के संस्थापक; 1962 में सिक्किम नेशनल कांग्रेस की स्थापना; चुनावों में विजय के उपरान्त सिक्किम के भारत में विलय के समर्थक; एकीकरण के बाद सिक्किम कांग्रेस का भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में विलय।
 राजीव गांधी (1944-1991 ई.)	1984 से 1989 के बीच भारत के प्रधानमंत्री; इंदिरा गांधी के पुत्र; 1980 के बाद राजनीति में सक्रिय; पंजाब के आतंकवादियों, मिजो-विद्रोहियों तथा असम में छात्र संघ से समझौता; खुली अर्थव्यवस्था एवं कंप्यूटर प्रौद्योगिकी के समर्थक; सिंहली-तमिल समस्या को सुलझाने के लिए भारतीय शांति सेना को श्रीलंका की सरकार के अनुरोध पर श्रीलंका भेजा; संदिग्ध LTTE आत्मघाती द्वारा हत्या।

निष्कर्ष

राष्ट्र निर्माण एक सतत प्रक्रिया है जिसे रातों-रात पूरा नहीं किया जा सकता। भारत के विभिन्न हिस्सों की क्षेत्रीय माँगों और विविधताएँ एकता के सिद्धांत का उदाहरण हैं। कई मामलों में देश ने आंतरिक सीमाओं को पार कर इन चुनौतियों का सामना किया है। फिर भी, इन समस्याओं का समाधान हमेशा संभव नहीं हुआ और यह एक निरंतर प्रक्रिया है। इन मुद्दों से हमें जो परिस्थितियाँ और अस्थिरताएँ मिली हैं, वे न केवल हमारे अतीत के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण हैं, बल्कि भारत के भविष्य को समझने के लिए भी जरूरी हैं। आज भी, राष्ट्रीय एकीकरण के कुछ पहलू पूरी तरह से साकार नहीं हो पाए हैं। राज्य का दर्जा, आर्थिक विकास, स्वायत्तता, और अन्य

क्षेत्रीय आकांक्षाएँ लगातार उठती रहती हैं। भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण लोकतंत्र को इन मुद्दों से निपटना चाहिए। इस प्रकार, भारत की राजनीति लोकतांत्रिक और संघीय तरीके से समस्याओं का समाधान करने में कठिनाई का सामना कर रही है।

महत्वपूर्ण घटनाक्रम

वर्ष	प्रमुख घटनाएँ
1925	आत्म-सम्मान आंदोलन
1963	नागालैंड का निर्माण
1966	पंजाब का निर्माण
1972	मणिपुर, त्रिपुरा और मेघालय का निर्माण
जून 1984	ऑपरेशन ब्लू स्टार
जुलाई 1985	पंजाब समझौता
1987	मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश का निर्माण
2016	महबूबा मुफ्ती जम्मू-कश्मीर की पहली महिला मुख्यमंत्री बनीं
5 अगस्त, 2019	अनुच्छेद 370 को समाप्त किया गया

महत्वपूर्ण शब्दावल्याँ

- ❖ **क्षेत्रीय आकांक्षाएँ:** यह किसी विशिष्ट क्षेत्र की अधिक स्वायत्तता की इच्छा को संदर्भित करता है, जो अक्सर देश के किसी समूह से सांस्कृतिक, भाषाई, आर्थिक या ऐतिहासिक मतभेदों पर आधारित होती है।
- ❖ **लोकतंत्र:** सरकार का एक रूप जिसमें राज्य की शक्ति राज्य के लोगों में निहित होती है। यह क्षेत्रीय आकांक्षाओं की राजनीतिक अभिव्यक्ति की अनुमति देता है।
- ❖ **आधिकारिक भाषा:** यह किसी देश के अधिकारियों द्वारा आधिकारिक रूप से निर्दिष्ट भाषा है। इस भाषा का उपयोग केंद्र और राज्य सरकार के आधिकारिक उद्देश्यों के लिए किया जाता है।
- ❖ **विलय का साधन:** यह प्रत्येक रियासत को भारत या पाकिस्तान के नव निर्मित डोमिनियन में शामिल होने की अनुमति देने के लिए एक कानूनी साधन था।
- ❖ **जनमत संग्रह:** वोट जिसके द्वारा पूरे देश या उसके किसी हिस्से के लोग किसी प्रस्ताव के पक्ष या विपक्ष में अपने विचार व्यक्त करते हैं।
- ❖ **नेशनल कॉन्फ्रेंस:** शेख अब्दुल्ला द्वारा स्थापित एक राजनीतिक पार्टी।
- ❖ **ऑपरेशन ब्लू स्टार:** जून 1984 में स्वर्ण मंदिर में भारतीय सेना द्वारा किया गया ऑपरेशन।
- ❖ **सात बहनें:** यह पूर्वोत्तर के सात राज्यों को संदर्भित करता है जिसमें अरुणाचल प्रदेश, असम, मेघालय, मणिपुर, मिजोरम, नागालैंड और त्रिपुरा शामिल हैं।
- ❖ **अखिल असम छात्र संघ (AASU):** एक छात्र समूह, जिसने 1979 में विदेशी-विरोधी आंदोलन का नेतृत्व किया।



भारतीय राजनीति: नए बदलाव

संदर्भ: इस अध्याय में NCERT पाठ्यपुस्तक की कक्षा-XII (स्वतंत्र भारत में राजनीति-II) के अध्याय-8 का सारांश शामिल है।

परिचय

इस अध्याय में पिछले दो दशकों में भारत के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य का व्यापक विश्लेषण किया गया है। अपनी विविधताओं के बावजूद, प्रमुख राजनीतिक घटनाओं और विवादों का उल्लेख किया गया है। अध्याय में स्वतंत्रता के बाद से भारत को आकार देने वाले महत्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तनों को समझने हेतु आवश्यक जानकारी और विचार भी साझा किए गए हैं।

1990 का दशक

1980 के दशक के अंतिम वर्षों में देश में ऐसे कुछ बड़े बदलाव आए, जिनका हमारी भविष्य की राजनीति पर गहन प्रभाव पड़ा।

- इंदिरा गांधी की 1984 में उनके ही अंगरक्षकों द्वारा हत्या कर दी गई थी।
- इंदिरा गांधी की हत्या के कुछ दिनों बाद ही 1984 में लोकसभा के चुनाव हुए। राजीव गांधी की अगुवाई में कांग्रेस को इस चुनाव में भारी विजय मिली।
- 1980 के दशक के अंत और 1990 के दशक की शुरुआत में देश में मुख्य पाँच ऐसी घटनाएँ घटित हुईं, जिन्होंने भारतीय राजनीति में दूरगामी परिणाम पैदा किए।

1990 के दशक में भारतीय राजनीति में पाँच प्रमुख घटनाक्रम

□ कांग्रेस प्रणाली का अंत

- जिस पार्टी ने 1984 में लोकसभा की 415 सीटें जीती थीं वह इस चुनाव में महज 197 सीटें ही जीत सकी। 1991 में एक बार फिर मध्यावधि चुनाव हुए और कांग्रेस इस बार अपना आँकड़ा सुधारते हुए सत्ता में आयी। बहरहाल, 1989 में ही उस परिघटना की समाप्ति हो गई थी, जिसे राजनीति विज्ञानी अपनी खास शब्दावली में 'कांग्रेस प्रणाली' कहते हैं। यह बात तो प्रकट ही है कि कांग्रेस एक महत्वपूर्ण पार्टी के रूप में कायम रही और 1989 के बाद भी देश पर किसी अन्य पार्टी के बजाय उसका शासन ज्यादा दिनों तक रहा। हालाँकि 1989 के चुनावों में कांग्रेस की हार भारतीय राजनीति में एक बड़े बदलाव का सूचक था। अपने महत्त्व के बावजूद, कांग्रेस ने पार्टी प्रणाली के भीतर केंद्रीयता में गिरावट का अनुभव किया।

□ मंडल मुद्दे का उदय (1990)

- दूसरा बड़ा बदलाव राष्ट्रीय राजनीति में 'मंडल मुद्दे' का उदय था। 1990 में राष्ट्रीय मोर्चा की नयी सरकार ने मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू किया। इन सिफारिशों के अंतर्गत प्रावधान किया गया कि केंद्र सरकार की नौकरियों में 'अन्य पिछड़ा वर्ग' को आरक्षण दिया जाएगा। सरकार के इस फैसले से देश के विभिन्न भागों में मंडल-विरोधी हिंसक प्रदर्शन हुए। अन्य पिछड़ा वर्ग को मिले आरक्षण के समर्थक और विरोधियों के बीच चले विवाद को 'मंडल मुद्दा' कहा जाता है। इसने 1989 के बाद की राजनीति में अहम भूमिका निभाई।

□ नई आर्थिक नीति

- तीसरा, विभिन्न सरकारों ने इस दौर में जो आर्थिक नीतियाँ अपनायीं, वे बुनियादी तौर पर बदल चुकी थीं। इसे ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम अथवा नए आर्थिक सुधार के नाम से जाना गया। इनकी शुरुआत राजीव गांधी की सरकार के समय हुई और 1991 तक ये बदलाव बड़े पैमाने पर प्रकट हुए। नयी आर्थिक नीतियों की विभिन्न आंदोलनों और संगठनों की तरफ से भरपूर आलोचना हुई। बहरहाल इस अवधि में जितनी सरकारें बनीं, सबने नयी आर्थिक नीति पर कार्य जारी रखा।

□ अयोध्या विवाद, 1992

- अयोध्या में राम जन्मभूमि मंदिर पर शताब्दियों से चले आ रहे विधिक एवं राजनीतिक विवाद ने भारत की राजनीति को प्रभावित करना आरम्भ किया, जिसने अनेक राजनीतिक परिवर्तनों को जन्म दिया। राम जन्मभूमि आंदोलन के केंद्रीय विषय बनने से धर्म निरपेक्षता और लोकतंत्र के विमर्श की दिशा बदल गई।

इन परिवर्तनों की परिणति सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ के निर्णय (जिसकी घोषणा 9 नवम्बर, 2019) के उपरान्त अयोध्या में राम मन्दिर निर्माण के रूप में हुई।

❑ राजीव गांधी की हत्या, 1991

- मई 1991 में राजीव गांधी की हत्या कर दी गई और इसके परिणामस्वरूप कांग्रेस पार्टी के नेतृत्व में परिवर्तन हुआ। राजीव गांधी चुनाव अभियान के लिए तमिलनाडु के दौरे पर थे, तभी लिट्टे से जुड़े श्रीलंकाई तमिलों ने उनकी हत्या कर दी। 1991 के चुनावों में कांग्रेस सबसे बड़ी विजयी पार्टी के रूप में सामने आयी। राजीव गांधी की मृत्यु के बाद कांग्रेस पार्टी ने नरसिंह राव को प्रधानमंत्री चुना।

गठबंधन का युग

- ❑ 1989 के चुनावों में कांग्रेस पार्टी की हार हुई थी, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि किसी दूसरी पार्टी को इस चुनाव में बहुमत मिल गया था।
- ❑ 1989 के चुनावों ने कांग्रेस प्रणाली के अंत को चिह्नित किया।
- ❑ राष्ट्रीय मोर्चे को (यह मोर्चा जनता दल और कुछ अन्य क्षेत्रीय दलों को मिलाकर बना था) परस्पर विरुद्ध दो राजनीतिक समूहों भाजपा और वाम मोर्चे ने समर्थन दिया।



चित्र. 8.1: वी. पी. सिंह के नेतृत्व वाली राष्ट्रीय मोर्चा सरकार को वाम मोर्चा (यहाँ प्रतीक रूप में ज्योति बसु) और भाजपा (यहाँ प्रतीक रूप में एल. के. आडवाणी) ने समर्थन दिया था।

- ❑ इस समर्थन के आधार पर राष्ट्रीय मोर्चा ने एक गठबंधन सरकार बनायी, लेकिन इसमें भाजपा और वाम मोर्चे ने शिरकत नहीं की।

कांग्रेस का पतन

- ❑ कांग्रेस की हार के साथ भारत की दलीय व्यवस्था से उसका दबदबा खत्म हो गया।
- ❑ इस दौर में कांग्रेस के दबदबे के खात्मे के साथ बहुदलीय शासन प्रणाली का युग शुरू हुआ।
- ❑ क्षेत्रीय दलों ने राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी शुरू कर दी।

गठबंधन की राजनीति

- नब्बे का दशक कुछ ताकतवर पार्टियों और आंदोलनों के उभार का साक्षी रहा। इन पार्टियों और आंदोलनों ने दलित तथा पिछड़े वर्ग (अन्य पिछड़ा वर्ग या ओबीसी) के उदय में योगदान दिया।
- इन दलों में से अनेक ने क्षेत्रीय आकांक्षाओं का भी नेतृत्व किया।
- 1996 में बनी संयुक्त मोर्चे की सरकार में इन पार्टियों ने अहम किरदार निभाया।
- संयुक्त मोर्चा 1989 के राष्ट्रीय मोर्चे के ही समान था, क्योंकि इसमें भी जनता दल और कई क्षेत्रीय पार्टियाँ शामिल थीं। इस बार भाजपा ने सरकार को समर्थन नहीं दिया।
- 1989 में भाजपा और वाम मोर्चा दोनों ने राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार को समर्थन दिया था, क्योंकि ये दोनों कांग्रेस को सत्ता से बाहर रखना चाहते थे।
- इस बार वाम मोर्चा ने गैर-कांग्रेसी सरकार को अपना समर्थन जारी रखा, लेकिन संयुक्त मोर्चा की सरकार को कांग्रेस पार्टी ने भी समर्थन दिया। दरअसल, कांग्रेस और वाम मोर्चा दोनों इस बार भाजपा को सत्ता से बाहर रखना चाहते थे।
- बहरहाल इन्हें ज्यादा दिनों तक सफलता नहीं मिली और भाजपा ने 1991 तथा 1996 के चुनावों में अपनी स्थिति लगातार मजबूत की। 1996 के चुनावों में यह सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरी। इस नाते भाजपा को सरकार बनाने का न्यौता मिला।
- इस तरह 1989 के चुनावों से भारत में गठबंधन की राजनीति के एक लंबे दौर की शुरुआत हुई। इसके बाद से केंद्र में 11 सरकारें बनीं। ये सभी या तो गठबंधन की सरकारें थीं अथवा दूसरे दलों के समर्थन पर टिकी अल्पमत की सरकारें थी, जो इन सरकारों में शामिल नहीं हुए।



चित्र 8.2: एक पार्टी के प्रभुत्व के दौर से लेकर बहुदलीय गठबंधन प्रणाली तक के सफ़र पर एक कार्टूनिस्ट की नज़र

विचारणीय बिंदु

‘कांग्रेस प्रणाली’ के पतन के बाद गठबंधन सरकारों का युग शुरू हुआ। एक पार्टी की प्रमुख प्रणाली स्थिरता और निर्णायक शासन प्रदान कर सकती है, लेकिन यह सत्तावादी प्रवृत्ति भी प्रदर्शित कर सकती है, जैसा कि इंदिरा गांधी के शासन के दौरान देखा गया था। क्या आप 1996 से 2014 की अवधि के दौरान भारत में गठबंधन सरकारों के लाभ और हानि को रेखांकित कर सकते हैं?



अन्य पिछड़ा वर्ग का राजनीतिक उदय

- यह अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति से अलग एक वर्ग है, जिसमें शैक्षणिक और सामाजिक रूप से पिछड़े समुदायों की गणना की जाती है। इन समुदायों को ‘पिछड़ा वर्ग’ भी कहा जाता है।
- पिछड़ी जातियों के अनेक तबके कांग्रेस से दूर जा रहे थे। उनमें कांग्रेस के लिए समर्थन कम होता जा रहा था। ऐसे में गैर-कांग्रेसी दलों के लिए एक जगह पैदा हुई और इन दलों ने इस तबके का समर्थन हासिल किया।

- जनता पार्टी के कई घटक मसलन भारतीय क्रांतिदल और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का ग्रामीण इलाकों के अन्य पिछड़े वर्ग में शक्तिशाली जनाधार बना।



चित्र 8.3: वर्ष 1989 के बाद भारत की केंद्रीय गठबंधन सरकार

- भारत के कई हिस्सों में, दलित राजनीति और अन्य पिछड़ा वर्ग राजनीति स्वतंत्र रूप से और एक-दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा में विकसित होने लगी।

मंडल आयोग

- दक्षिण के राज्यों में अगर बहुत पहले से नहीं तो भी कम-से-कम 1960 के दशक से अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण का प्रावधान चला आ रहा था। बहरहाल, यह नीति उत्तर भारत के राज्यों में लागू नहीं थी। 1978 में, केंद्र सरकार ने पिछड़े वर्गों की जीवन स्थितियों का आकलन करने और उन्हें बेहतर बनाने के लिए एक आयोग की स्थापना की।

- आजादी के बाद से यह दूसरा अवसर था, जब सरकार ने ऐसा आयोग नियुक्त किया। इसी कारण आधिकारिक रूप से इस आयोग को 'दूसरा पिछड़ा वर्ग आयोग' कहा गया। आमतौर पर इस आयोग को इसके अध्यक्ष बिन्देश्वरी प्रसाद मंडल के नाम पर 'मंडल कमीशन' कहा जाता है।
- इस निर्णय का देश के सामाजिक ताने-बाने पर गहरा प्रभाव पड़ा, जिससे समावेशिता और विविधता को बढ़ावा मिला।
- इस आयोग से इस बात की अपेक्षा की गई, कि यह पिछड़ेपन को समाप्त करने के तरीकों पर अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करेगा।
- आयोग ने 1980 में अपनी सिफारिशें प्रस्तुत कीं।



चित्र. 8.4: बी.पी. मंडल (1918-1982 ई.) - 1967 से 1970 तथा 1977 से 1979 में बिहार से सांसद चुने गए; दूसरा पिछड़ा वर्ग आयोग की अध्यक्षता की; इस आयोग ने अन्य पिछड़ा वर्ग को आरक्षण देने की सिफारिश की; बिहार के समाजवादी नेता; 1968 में डेढ़ माह तक बिहार के मुख्यमंत्री पद पर रहे; 1977 में जनता पार्टी में शामिल हुए।

मंडल आयोग की सिफारिशें

- पिछड़ी जातियों की शिक्षण संस्थानों तथा सरकारी नौकरियों में बड़ी कम मौजूदगी है।
- आयोग ने इन समूहों के लिए शिक्षण संस्थानों तथा सरकारी नौकरियों में 27% सीट आरक्षित करने की सिफारिश की।
- मंडल आयोग ने अन्य पिछड़ा वर्ग की स्थिति सुधारने के लिए कई और समाधान सुझाए जिनमें भूमि-सुधार भी एक था।
- 1990 के अगस्त में राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार ने मंडल आयोग की सिफारिशों में से एक को लागू करने का फैसला किया। यह सिफारिश केंद्रीय सरकार और उसके उपक्रमों की नौकरियों में अन्य पिछड़ा वर्ग को आरक्षण देने के संबंध में थी। सरकार के फैसले से उत्तर भारत के कई शहरों में हिंसक विरोध का स्वर उमड़ा।
- सरकार के फैसले के खिलाफ अदालत में जिन लोगों ने अर्जी दायर की थी, उनमें एक नाम इंद्रा साहनी का भी था। 1992 के नवंबर में सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार के निर्णय को सही ठहराते हुए अपना फैसला सुनाया।

राजनीतिक परिणाम

- 1980 के दशक में दलित जातियों के राजनीतिक संगठनों का भी जन्म हुआ।
- 1978 में 'बामसेफ' (बैकवर्ड एंड माइनॉरिटी कम्युनिटीज एम्पलाइज फेडरेशन) का गठन हुआ।
- इस संगठन ने 'बहुजन' यानी अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और अल्पसंख्यकों की राजनीतिक सत्ता का जबरदस्त समर्थन किया।
- इसी का परवर्ती विकास 'दलित-शोषित समाज संघर्ष समिति' है, जिससे बाद के समय में बहुजन समाज पार्टी का उदय हुआ। इस पार्टी की अगुआई कांशीराम ने की।
- बहुजन समाज पार्टी (बसपा) अपने शुरुआती दौर में एक छोटी पार्टी थी तथा इसे पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के दलित मतदाताओं का समर्थन प्राप्त था।
- आजाद भारत में यह पहला अवसर था, जब कोई राजनीतिक दल मुख्यतः दलित मतदाताओं के समर्थन के आधार पर ऐसी राजनीतिक सफलता हासिल कर पाया था।



चित्र 8.5: कांशीराम (1934-2006 ई.) - बहुजन समाज के सशक्तीकरण के प्रतिपादक और बहुजन समाज पार्टी (बसपा) के संस्थापक; सामाजिक और राजनीतिक कार्य के लिए केंद्र सरकार की नौकरी से इस्तीफा; बामसेफ डीएस-4 और अंततः 1984 में बसपा की स्थापना: कुशाग्र रणनीतिकार; राजनीतिक सत्ता को सामाजिक समानता का आधार मानते थे: उत्तर भारत के राज्यों में दलित राजनीति के संगठनकर्ता।

सांप्रदायिकता, धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र

- ❑ इस अवधि में आया एक दूरगामी परिवर्तन, धार्मिक पहचान पर आधारित राजनीति का प्रत्यक्ष उदय रहा, जिसने धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र के बारे में बहस को दिशा दी।
- ❑ जनता पार्टी के पतन और बिखराव के बाद पूर्ववर्ती जनसंघ के समर्थकों ने 1980 में भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) बनाई। आरंभ में भाजपा ने जनसंघ की अपेक्षा कहीं अधिक बड़ा राजनीतिक पटल अपनाया।
- ❑ भाजपा ने राजनीतिक लामबंदी के लिए हिन्दुत्व की राजनीति को भी अपनाया। हिन्दुत्व को विनायक दामोदर सावरकर ने भारतीय राष्ट्रियता के आधार के रूप में लोकप्रिय किया था। इसका मूल आशय यह था कि एक भारतीय होने के लिए आवश्यक है कि वह भारतभूमि को अपनी 'पितृभूमि' और साथ ही 'पुण्यभूमि' भी स्वीकार करे।
- ❑ हिंदुत्व के विश्वासियों का तर्क है कि एक सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण एक संगठित राष्ट्रीय संस्कृति के आधार पर संभव है। वे यह भी मानते हैं कि भारत के सन्दर्भ में हिन्दुत्व, यह आधार प्रदान कर सकता है।

शाहबानो मामला, 1985

- ❑ इस प्रकरण में एक 62 वर्षीय तलाकशुदा मुस्लिम महिला ने अपने भूतपूर्व पति से गुजारा भत्ता की माँग की थी। सर्वोच्च न्यायालय ने शाहबानो के पक्ष में निर्णय दिया। पुरातन पंथी मुसलमानों ने सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को 'मुस्लिम पर्सनल लॉ' में हस्तक्षेप माना।
- ❑ कुछ मुस्लिम नेताओं की माँग पर सरकार ने मुस्लिम महिला (तलाक से जुड़े अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986 पारित किया जिसने सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निरस्त कर दिया।
- ❑ भाजपा ने कांग्रेस सरकार के इस कार्य को अल्पसंख्यक समुदाय को दी गयी अनावश्यक छूट और उसका तुष्टिकरण बताकर आलोचना की।

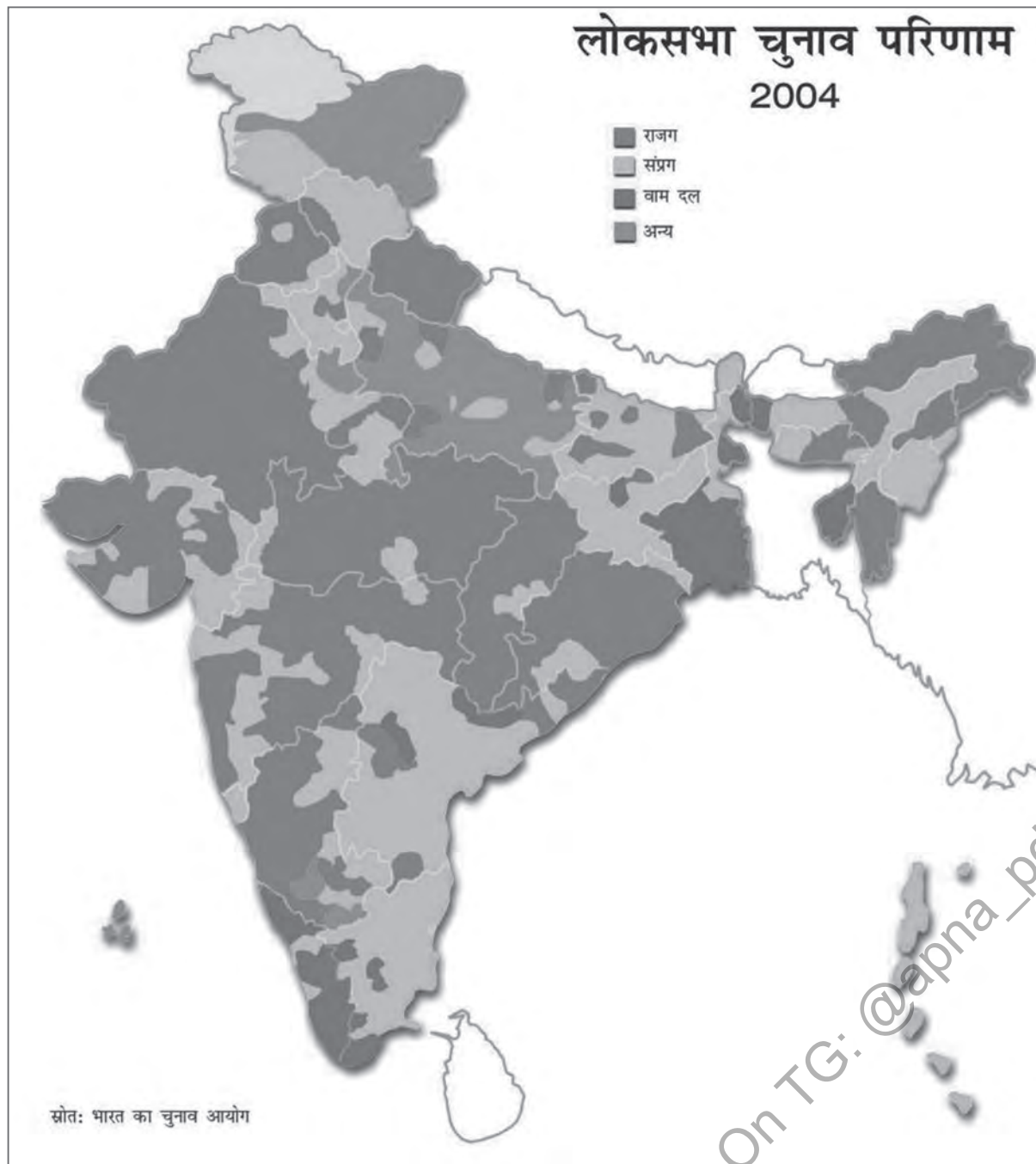
अयोध्या विवाद

- ❑ 1986 में फैजाबाद (अब अयोध्या) जिला न्यायालय के एक निर्णय से तीन गुम्बद ढाँचे की स्थिति में एक महत्वपूर्ण मोड़ आया जिसमें ढाँचे का ताला खोल दिया गया और लोगों को वहाँ पूजा की अनुमति दे दी गई।
- ❑ इस फैसले ने हिंदुओं को उस स्थान पर प्रार्थना करने का अधिकार दिया, जिसे वे मंदिर मानते थे। बाबरी मस्जिद अयोध्या में 16वीं शताब्दी की मस्जिद थी और इसे मुगल सम्राट बाबर के सेनापति मीर बाकरी ने बनवाया था।
- ❑ हिंदुओं का मानना है कि इसे भगवान राम के मंदिर को ध्वस्त करने के बाद बनाया गया था, जिसे उनका जन्मस्थान माना जाता है। 1940 के दशक के अंत में, चल रही कानूनी कार्यवाही के कारण मस्जिद बंद रही।
- ❑ जब बाबरी मस्जिद को आखिरकार खोला गया, तो इसने विवाद के दोनों पक्षों में लामबंदी के प्रयासों को गति दी।
- ❑ भाजपा ने इस मुद्दे को अपना प्रमुख चुनावी और राजनीतिक मुद्दा बनाया। उन्होंने गुजरात के सोमनाथ से उत्तर प्रदेश के अयोध्या तक रथयात्रा नामक एक विशाल मार्च निकाला।

विध्वंस और उसके बाद

- ❑ दिसंबर 1992 में मंदिर निर्माण का समर्थन करने वाले संगठनों ने राम मंदिर निर्माण के लिए भक्तों द्वारा स्वैच्छिक सेवा कारसेवा का आयोजन किया।
- ❑ 6 दिसंबर, 1992 को हज़ारों लोग अयोध्या में एकत्र हुए और मस्जिद को ध्वस्त कर दिया। इससे देश भर में हिंदू-मुस्लिम संघर्ष शुरू हो गया।
- ❑ अंततः 9 नवंबर, 2019 को सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ के 5-0 के निर्णय के फलस्वरूप अयोध्या विवाद का समाधान हो गया।

एक नई सहमति का उदय



चित्र 8.6: लोकसभा चुनाव परिणाम, 2004

- 1989 के बाद की अवधि को कभी-कभार कांग्रेस के पतन और भाजपा के अभ्युदय की भी अवधि कहा जाता है।
- नब्बे के दशक के दौरान राजनीतिक प्रतिस्पर्धा भाजपा के नेतृत्व वाले गठबंधन और कांग्रेस के नेतृत्व वाले गठबंधन के बीच विभाजित थी।

लोकसभा चुनाव, 2004

- 2004 के चुनावों में कांग्रेस भी पूरे जोर के साथ गठबंधन में शामिल हुई। राजग की हार हुई और संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (संप्रग) की सरकार बनी। इस गठबंधन का नेतृत्व कांग्रेस ने किया। संप्रग को वाम मोर्चा ने समर्थन दिया।
- 2004 के चुनावों में एक हद तक कांग्रेस का पुनरुत्थान भी हुआ। 1991 के बाद इस बार पार्टी की सीटों की संख्या एक बार फिर बढ़ी। बहरहाल, 2004 के चुनावों में राजग और संप्रग को मिले कुल वोटों का अंतर बड़ा कम था। इस तरह दलीय प्रणाली सत्तर के दशक की तुलना में एकदम ही बदल गई है।
- 1990 के दशक के बाद, राजनीति ने चार पार्टी समूहों को उजागर किया: कांग्रेस सहयोगी, भाजपा सहयोगी, वाम मोर्चा और गैर-गठबंधन दल।

बढ़ती आम सहमति

17वीं लोकसभा में विभिन्न दलों की स्थिति



■ भारतीय जनता पार्टी (भाजपा)	303	■ जनता दल यूनाईटेड (जद-यू)	16
■ इंडियन नेशनल कांग्रेस	52	■ बीजू जनता दल (बीजेडी)	12
■ द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम (डी.एम.के.)	24	■ बहुजन समाज पार्टी (बसपा)	10
■ शिवसेना	18	■ अन्य पार्टियाँ	108

चित्र 8.7: 17वीं लोकसभा में विभिन्न दलों की स्थिति

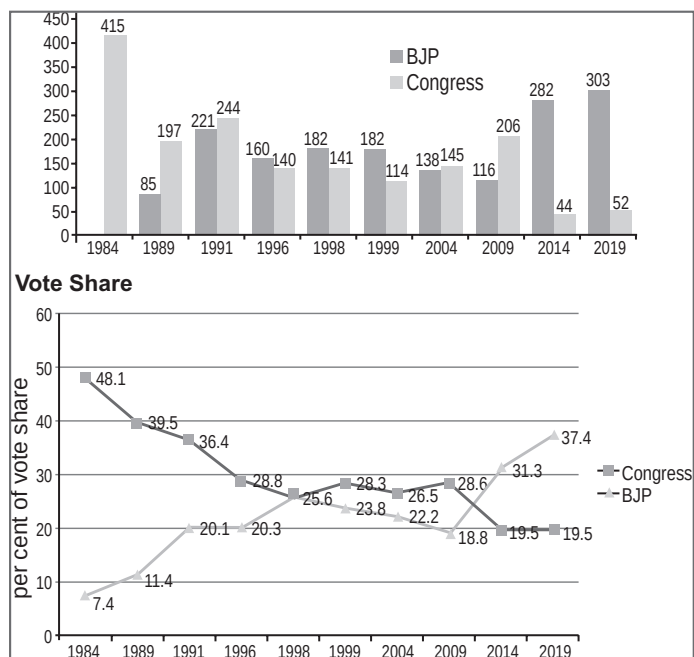
1990 के बाद, अनेक महत्वपूर्ण मुद्दों पर अधिकतर दलों के बीच एक व्यापक सहमति थी। कड़े मुकाबले और बहुत-से संघर्षों के बावजूद अधिकतर दलों के बीच एक सहमति उभरती सी जान पड़ रही थी, जिसकी महत्वपूर्ण बातें निम्न थी -

□ नई आर्थिक नीति पर समझौता।

- कई समूह नयी आर्थिक नीति के खिलाफ थे, लेकिन ज्यादातर राजनीतिक दल इन नीतियों के पक्ष में थे। अधिकतर दलों का मानना है कि नई आर्थिक नीतियों से देश समृद्ध होगा और भारत, विश्व की एक आर्थिक शक्ति बनेगा।

□ पिछड़े वर्गों के राजनीतिक और सामाजिक दावों की स्वीकृति

- राजनीतिक दलों ने पहचान लिया था, कि पिछड़ी जातियों के सामाजिक और राजनीतिक दावे को स्वीकार करने की जरूरत है। इस कारण आज सभी राजनीतिक दल शिक्षा और रोजगार में पिछड़ी जातियों के लिए सीटों के आरक्षण के पक्ष में हैं। राजनीतिक दल यह भी सुनिश्चित करने के लिए तैयार हैं कि 'अन्य पिछड़ा वर्ग' को सत्ता में समुचित भागीदारी मिले।



चित्र 8.8: कांग्रेस और भाजपा की चुनावी जीत-हार (बदलता परिदृश्य)

- ❑ देश के शासन में राज्य स्तरीय दलों की भूमिका को स्वीकार करना
 - देश के शासन में प्रांतीय दलों की भूमिका की स्वीकृति प्रांतीय दल और राष्ट्रीय दल का भेद अब लगातार कम होता जा रहा था।
- ❑ वैचारिक स्थिति और वैचारिक सहमति के बिना राजनीतिक गठबंधन के बजाय व्यावहारिक विचारों पर जोर
 - गठबंधन की राजनीति के इस दौर में राजनीतिक दल विचारधारागत अंतर की जगह सत्ता में हिस्सेदारी की बातों पर जोर दे रहे हैं, उदाहरणस्वरूप अधिकांश दल भाजपा की हिंदुत्व की विचारधारा से सहमत नहीं थे फिर भी उसके साथ गठबंधन कर सरकार बनाने हेतु सहमति प्रदान की।

निष्कर्ष

1990 के बाद भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, जो देश की राजनीतिक विचारधारा को एक नई दिशा देने वाले रहे। इस अवधि में राष्ट्रीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों का प्रभाव बढ़ा, जिससे गठबंधन सरकारों का दौर शुरू हुआ। 1991 में आर्थिक सुधारों के बाद देश में वैश्वीकरण और निजीकरण की प्रक्रिया ने राजनीतिक निर्णयों को प्रभावित किया। इसके साथ ही संवैधानिक और सांस्कृतिक पहचान पर चर्चा तेज हुई तथा धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा में परिवर्तन आया। दलित, पिछड़े और अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकारों के लिए संघर्ष तेज हुआ, जिससे समाज में नई राजनीतिक चेतना का उदय हुआ। भाजपा के नेतृत्व में हिंदूवादी राजनीति का उदय हुआ और 1990 के दशक में अयोध्या में बाबरी मस्जिद विध्वंस जैसी घटनाओं ने समाज में ध्रुवीकरण को बढ़ावा दिया। इस प्रकार, 1990 के बाद भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयता, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय को लेकर अनेक परिवर्तन देखने को मिले।

महत्वपूर्ण शब्दावलि

- ❖ **बामसेफ:** यह पिछड़ा और अल्पसंख्यक वर्ग कर्मचारी महासंघ को संदर्भित करता है, जिसका गठन 1978 में दलितों के राजनीतिक संगठन के उदय को चिह्नित करने के लिए किया गया था।
- ❖ **कारसेवा:** अयोध्या में राम मंदिर निर्माण के लिए भक्तों द्वारा स्वैच्छिक सेवा।
- ❖ **मंडल आयोग:** यह आयोग वर्ष 1978 में समाज के विभिन्न वर्गों के मध्य शैक्षिक और सामाजिक पिछड़ेपन की सीमा की जाँच करने और इन 'पिछड़े वर्गों' की पहचान करने के विभिन्न तरीकों की सिफारिश करने के लिए स्थापित किया गया था।
- ❖ **ओबीसी:** यह अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के अलावा अन्य पिछड़े वर्गों को दर्शाता है जो शैक्षिक, सामाजिक और आर्थिक पिछड़ेपन से पीड़ित हैं।

Join Telegram: @apna_library

विश्व इतिहास

Search On TG: @apna_pdf

Join Telegram: @apna_library

Search On TG: @apna_pdf



प्रारंभिक समाज

संदर्भ: इस अध्याय में NCERT पाठ्यपुस्तक की कक्षा-XI (विश्व इतिहास के कुछ विषय) के अध्याय-1 का सारांश शामिल है।

परिचय

इस अध्याय में, हम प्रारंभिक समाज से संबंधित विषय के बारे में पढ़ेंगे, जो प्रायः लाखों वर्ष पूर्व सुदूर अतीत से मानव अस्तित्व की शुरुआत के बारे में है। आप सीखेंगे कि कैसे सर्वप्रथम अफ्रीका में मानव प्रणालियों का प्रादुर्भाव हुआ।

पुरातत्व विज्ञानियों ने आरंभिक मानव के जीवन के बारे में पुनर्निर्माण करने के प्रयत्न किए हैं। उन्होंने यह जानने की कोशिश की है कि वे कैसे घरों में रहते थे, वे पेड़-पौधों से उत्पन्न कंदमूल और बीजों को इकट्ठा करके तथा जानवरों का शिकार करके अपना भरण-पोषण कैसे करते थे एवं वे किन तरीकों से अपने भावों व विचारों को अभिव्यक्त करते थे। आप यह भी पढ़ेंगे कि मानव द्वारा आग और भाषा का प्रयोग कब तथा कैसे शुरू हुआ एवं अंत में आप यह देखेंगे कि आज की दुनिया में भी जो लोग शिकार व पेड़-पौधों से प्राप्त खाद्य-सामग्रियों से अपना भरण-पोषण करते हैं क्या उनके जीवन का अध्ययन करने से अतीत के बारे में जानकारी मिल सकती है।

कुछ प्रारंभिक नगरों जैसे- मेसोपोटामिया (वर्तमान इराक) आदि नगरों का विकास मंदिरों के आस-पास हुआ। ये नगर सुदूर व्यापार के केंद्र थे। सबसे दूरगामी परिवर्तनों में से एक खानाबदोश जीवन से धीरे-धीरे स्थायी कृषि की ओर बदलाव था, जो लगभग 10,000 साल पहले शुरू हुआ था।

- ❑ कृषि को अपनाने से पहले, लोग भोजन के स्रोत के रूप में पौधों की उपज को संग्रह करते थे। धीरे-धीरे, उन्होंने विभिन्न प्रकार के पौधों के बारे में अधिक जानकारी एकत्र की। वे कहाँ उगते हैं, किस मौसम में वे फल देते हैं वगैरह। इससे, उन्होंने पौधे उगाना सीखा।
- ❑ पश्चिम एशिया में गेहूँ और जौ, मटर एवं कई तरह की दालें उगाई जाती थीं। पूर्व और दक्षिण-पूर्व एशिया में ज्वार, बाजरा तथा धान आसानी से उगाई जाने वाली फसलें थीं। ज्वार - बाजरा अफ्रीका में भी उगाया जाता था।
- ❑ लगभग उसी समय, लोगों ने भेड़, बकरी, गाय, सूअर और गधे जैसे जानवरों को पालना सीखा। कपास और सन जैसे पौधों के रेशों तथा ऊन जैसे जानवरों के रेशों से अब कपड़ा बुना जाने लगा।
- ❑ कुछ समय बाद, पालतू पशुओं जैसे कि गाय और गधे को हल एवं गाड़ियों में जोतना शुरू कर दिया गया। इन घटनाक्रमों के फलस्वरूप अनेक परिवर्तन भी हुए।
- ❑ जब लोग फसल उगाते थे, तो उन्हें फसल पकने तक एक ही जगह पर रहना पड़ता था। इसलिए, स्थायी जीवन अधिक आम हो गया। और इसके साथ ही, लोगों ने रहने के लिए अधिक स्थायी इमारतें (more permanent structures) बनाई। यह वह समय भी था जब कुछ समुदायों ने मिट्टी के बर्तन (अतिरिक्त भोजन संग्रहीत करने के लिए) बनाना सीखा।
- ❑ पत्थर के औजार बनाने के तरीकों में भी बदलाव आया। जबकि औजार बनाने के पुराने तरीके जारी रहे, कुछ औजारों और उपकरणों को अब घिसाई की एक विस्तृत प्रक्रिया द्वारा चिकना तथा चमकाया गया। नए उपकरणों में अनाज को संसाधित करने और पीसने के लिए मोर्तार तथा मूसल, साथ ही पत्थर की कुल्हाड़ियाँ एवं कुदालें शामिल थीं, जिनका उपयोग खेती के लिए भूमि को साफ करने के साथ-साथ बीज बोने के लिए मिट्टी खोदने के लिए किया जाता था।
- ❑ कुछ क्षेत्रों में लोगों ने तांबे और टिन जैसी धातुओं के अयस्कों का उपयोग करना सीखा। कभी-कभी तांबे के अयस्कों को इकट्ठा किया जाता था और उनके विशिष्ट नीले-हरे रंग के लिए उन्हें इस्तेमाल किया जाता था। इससे बाद में आभूषणों और औजारों के लिए धातु के अधिक व्यापक उपयोग का मार्ग प्रशस्त हुआ।
- ❑ दूरस्थ स्थानों (और समुद्रों) से आने वाली अन्य प्रकार की उपजों से भी परिचितता बढ़ रही थी, जिनमें लकड़ी, पत्थर, बहुमूल्य और अर्ध-कीमती पत्थर, धातुएँ और सीपियाँ, तथा ओब्सिडियन (कठोर) ज्वालामुखी का पक्का जमा हुआ लावा शामिल थे।
- ❑ **स्पष्टतः** लोग एक जगह से दूसरी जगह जा रहे थे, अपने साथ वस्तुओं और विचारों को लेकर जा रहे थे। व्यापार बढ़ने, गाँवों और कस्बों के विकास एवं लोगों की आवाजाही के साथ, पहले के लोगों के छोटे समुदायों की जगह अब छोटे-छोटे राज्य विकसित हो गए।

- हालाँकि ये परिवर्तन धीरे-धीरे हुए, लेकिन कई हजार सालों में, पहले शहरों के विकास के साथ इनकी गति तेज हो गई। साथ ही, इन परिवर्तनों के दूरगामी परिणाम भी हुए। कुछ विद्वानों ने इसे एक क्रांति के रूप में वर्णित किया है, क्योंकि लोगों के जीवन में संभवतः पहचान से परे परिवर्तन हुए।
- यहाँ, विस्तृत अध्ययन के लिए प्रारंभिक समाज के केवल कुछ उदाहरण लिए गए हैं। हालाँकि अन्य प्रकार के प्रारंभिक समाज भी थे, जिनमें कृषक समुदाय और चरवाहे अर्थात् ग्वाले, शिकारी-संग्राहक आदि लोग शामिल थे। कालक्रम के आधार पर यहाँ उन समाज और लोगों के बारे में कुछ संकेत दिए जा रहे हैं।

कालक्रम एक (6 लाख वर्ष पूर्व (MYA) से 1 ईसा पूर्व तक)

यह कालक्रम मनुष्यों के उद्भव और पौधों एवं पशुपालन व बसने की प्रक्रिया पर केंद्रित है। यहाँ पर कुछ प्रौद्योगिकी विकास जैसे- आग का आविष्कार, धातु की खोज, हल का प्रयोग, और पहिया के उपयोग सहित कृषि कार्यों पर प्रकाश डाला गया है। दिखाए गए अन्य प्रक्रियाओं में शहरों का उद्भव और लेखन का उपयोग शामिल है। आपको कुछ प्राचीनतम साम्राज्यों का भी उल्लेख मिलेगा, जिनकी विषयवस्तु विस्तार से कालक्रम में दी जाएगी।

तिथि	अफ्रीका	यूरोप
6 लाख वर्ष पूर्व-500,000 वर्ष वर्तमान से पूर्व	ऑस्ट्रेलोपिथेकस के जीवाश्म (वर्तमान से 56 लाख वर्ष पूर्व) आग के प्रयोग के साक्ष्य मिले (वर्तमान से 14 लाख वर्ष पूर्व)	
500,000-150,000 वर्तमान से पूर्व	प्राज्ञ मानव (होमो सेपियंस) के जीवाश्म (195,000 वर्तमान से पूर्व)	आग के प्रयोग के साक्ष्य (400,000 वर्तमान से पूर्व)
150,000-50,000 वर्तमान से पूर्व		
50,000-30,000		प्राज्ञ मानव या होमो सेपियंस जीवाश्म (40,000)
30,000-10,000	गुफाओं/ गुफा आवासों में चित्रकारी (27,500)	गुफाओं/गुफा आवासों में चित्रकारी (विशेष रूप से फ्रांस और स्पेन में)
8000-7000 ई.पू.		
7000-6000	पशुओं और कुत्तों को पालतू बनाया गया	
6000-5000		गेहूँ और जौ की खेती (यूनान)
5000-4000		
4000-3000	गधे को पालतू बनाया गया , ज्वार - बाजरे की खेती, तांबे का प्रयोग	तांबे का प्रयोग (क्रीट)
3000-2000	हल द्वारा कृषि, प्रथम राजवंशों, नगरों, पिरामिडों, कैलेंडर, चित्रात्मक लिपि, पैपाइरस पर लेखन (मिस्र)	घोड़े को पालतू बनाया गया (पूर्वी यूरोप)
2000-1900		शहर, महल, कांस्य का प्रयोग , कुम्हार के चाक, व्यापार का विकास (क्रीट)
1900-1800		
1800-1700		
1700-1600		लिपि का विकास (क्रीट)
1600-1500		
1500-1400	काँच की बोतलों का प्रयोग (मिस्र)	
1400-1300		
1300-1200		
1200-1100		
1100-1000		
1000-900		लोहे का प्रयोग हुआ

900-800	पश्चिमी एशिया से आए फोनीशियन लोगों द्वारा उत्तरी अफ्रीका में कार्थेज शहर की स्थापना की गई; भूमध्यसागरिय क्षेत्र में व्यापार का विस्तार	
800-700	लोहे का प्रयोग (सूडान)	प्रथम ओलंपिक खेल (यूनान 776 ई.पू.)
700-600	लोहे का प्रयोग (मिस्र)	
600-500		सिक्कों का प्रयोग (ग्रीस); रोमन गणराज्य की स्थापना (510 ई.पू.)
500-400	फारसियों ने मिस्र पर आक्रमण किया	एथेंस (ग्रीस) में 'प्रजातंत्र' की स्थापना
400-300	मिस्र में सिकंदरिया (Alexandria) की स्थापना (332 ई.पू.), जो ज्ञान का एक प्रमुख केंद्र बना	मकदूनिया(Macedonia) के सिकंदर ने मिस्र और पश्चिम एशिया के कुछ हिस्सों पर विजय प्राप्त की (336-323 ई.पू.)
300-200		
200-100		
100-1 ई.पू.		
तिथि	एशिया	दक्षिण एशिया
6 लाख -500,000 वर्तमान से पूर्व	आग का प्रयोग (700,000, वर्तमान से पूर्व, चीन)	रिवाट में पाषाण युग का स्थल (1,900,000 वर्तमान से पूर्व, पाकिस्तान)
500,000-150,000 वर्तमान से पूर्व		
150,000-50,000 वर्तमान से पूर्व	प्राज्ञ मानव या होमो सेपियंस के जीवाश्म (100,000 वर्तमान से पूर्व, पश्चिम एशिया)	
50,000-30,000 वर्तमान से पूर्व		
30,000-10,000 वर्तमान से पूर्व	कुत्तों को पालतू बनाया (14,000, पश्चिम एशिया)	भीमबेटका के गुफा चित्र (मध्य प्रदेश); होमो सेपियंस के जीवाश्म (25,500 वर्तमान से पूर्व, श्रीलंका)
8000-7000 ई.पू.	भेड़ और बकरियों को पालतू बनाया गया, गेहूँ और जौ की खेती (पश्चिम एशिया)	
7000-6000	सूअर और पशुओं को पालतू बनाया गया (पश्चिम और पूर्वी एशिया)	प्रारंभिक कृषि बस्तियाँ (बलूचिस्तान)
6000-5000	कुक्कुट -पालन, ज्वार-बाजरा और अरबी (yam) की खेती (पूर्वी एशिया)	
5000-4000	कपास की खेती (दक्षिण एशिया); तांबे का उपयोग (पश्चिम एशिया)	
4000-3000	कुम्हार के चाक का प्रयोग, परिवहन के लिए पहिया (3600 ई.पू.), लेखन का प्रयोग, (3200 ई.पू., मेसोपोटामिया), कांस्य का प्रयोग	तांबे का प्रयोग
3000-2000	हल कृषि, शहर (मेसोपोटामिया); रेशम निर्माण (चीन); घोड़ा पालन (मध्य एशिया); चावल की खेती (दक्षिण पूर्व एशिया)	हड़प्पाकालीन संस्कृति के नगर, लिपि का प्रयोग* (लगभग 2700 ई.पू.)

2000-1900	खास पानी में रहने वाली भैंस को पालतू बनाया गया (पूर्वी एशिया)	
1900-1800		
1800-1700		
1700-1600		
1600-1500	नगरों, लेखन, राज्यों (शांग राजवंश), काँसे का प्रयोग हुआ (चीन)*	
1500-1400	लोहे का प्रयोग (पश्चिम एशिया)	ऋग्वेद की रचना
1400-1300		
1300-1200		
1200-1100		लोहे का प्रयोग, महापाषाण (मेगालिथ) (दक्कन और दक्षिण भारत)
1100-1000		
1000-900	एक कोहान (कूबड़) वाले ऊँट को पालतू बनाया गया (अरब)	
900-800		
800-700		
700-600		
600-500	सिक्कों का प्रयोग (तुर्की); फारसी साम्राज्य (546 ई.पू.) जिसकी राजधानी पर्सेपोलिस थी; चीनी दार्शनिक कन्फ्यूशियस (लगभग 551 ई.पू.)	कई क्षेत्रों में नगरों और राज्यों की स्थापना, पहली बार सिक्कों का प्रयोग, जैन धर्म और बौद्ध धर्म का प्रसार
500-400		
400-300		मौर्य साम्राज्य की स्थापना (लगभग 321 ई.पू.)
300-200	चीन में एक साम्राज्य की स्थापना (221 ईसा पूर्व), चीन की विशाल दीवार के निर्माण कार्य का प्रारंभ	
200-100		
100-1 ई.पू.		
तिथि	अमेरिका	ऑस्ट्रेलिया/प्रशांत महासागरीय द्वीप
6 लाख -500,000 वर्तमान से पूर्व		
500,000-150,000 वर्तमान से पूर्व		
150,000-50,000 वर्तमान से पूर्व		
50,000-30,000 वर्तमान से पूर्व		प्राज्ञ मानव (होमो सेपियंस) के जीवाश्म, समुद्री यात्रा के प्राचीनतम संकेत (45,000 वर्ष वर्तमान से पूर्व)

30,000-10,000 वर्तमान से पूर्व	होमो सेपियंस के जीवाश्म (12,000 वर्तमान से पूर्व)	चित्रकला (20,000 वर्ष वर्तमान से पूर्व)
8000-7000 ई.पू.		
7000-6000	कुम्हड़ा (Squash) स्क्वैश की खेती	
6000-5000		
5000-4000	सेम की खेती	
4000-3000	कपास और लौकी की खेती	
3000-2000	गिनी पिग, टर्की को पालतू बनाया, मक्का की खेती	
2000-1900	आलू, मिर्च, कैसावा, मूँगफली की खेती, लामा और एल्पेका को पालतू बनाया	
1900-1800		
1800-1700		
1700-1600		
1600-1500		
1500-1400		
1400-1300		
1300-1200		
1200-1100	मेक्सिको की खाड़ी के चारो ओर ओल्मेक लोगों की बस्तियाँ, प्रारंभिक मंदिर और मूर्ति-शिल्प	पोलिनेशिया और माइक्रोनेशिया में बस्तियाँ
1100-1000		
1000-900	चित्रात्मक लिपि का विकास	

मेसोपोटामिया की सभ्यता:

- शहरी जीवन की शुरुआत मेसोपोटामिया में हुई, जो फरात (यूफ्रेट्स) और टिगसिस नदियों के बीच की भूमि है (चित्र 1.1 देखें) जो अब इराक गणराज्य का हिस्सा है। यह अपनी समृद्धि, शहरी जीवन, अपने विशाल और समृद्ध साहित्य तथा अपने गणित एवं खगोल विज्ञान के लिए जाना जाता है।
- मेसोपोटामिया की लेखन प्रणाली और उसका साहित्य 2000 ईसा पूर्व के बाद पूर्वी भूमध्य सागर, उत्तरी सीरिया और तुर्की तक फैल गया, जिससे उस पूरे क्षेत्र के राज्य एक-दूसरे को तथा मिस्र के फिरोन (फराओ) को मेसोपोटामिया की भाषा एवं लिपि में पत्र लिखने लगे।
- लगभग 1100 ईसा पूर्व से, जब असीरियायियों ने उत्तर में अपना राज्य स्थापित किया, तब इस क्षेत्र को असीरिया के नाम से जाना जाने लगा। इस भूमि की पहली ज्ञात भाषा सुमेरियन थी। लगभग 2400 ईसा पूर्व में जब अक्कादी भाषी लोग यहाँ आए, तो धीरे-धीरे इसकी जगह अक्कादियन ने ले ली। यह भाषा सिकंदर के समय (336-323 ईसा पूर्व) तक कुछ क्षेत्रीय परिवर्तनों के साथ फली-फूली।
- मेसोपोटामिया में पुरातत्वीय खोजों की शुरुआत 1840 के दशक में हुई। मेसोपोटामिया यूरुपियों के लिए इसलिए महत्वपूर्ण था, क्योंकि बाइबल के पहले भाग ओल्ड टेस्टामेंट में इसका उल्लेख मिलता है। उदाहरण के लिए, ओल्ड टेस्टामेंट बुक ऑफ जेनेसिस (Book of Genesis) में 'शिमर', का उल्लेख है, जिसका अर्थ सुमेर, अर्थात जिसे ईटों से बने शहरों की भूमि के रूप में संदर्भित किया गया है।



चित्र 1.1: मेसोपोटामिया का क्षेत्र

- 1873 में, एक ब्रिटिश समाचार पत्र ने बाइबिल में वर्णित जलप्लावन (flood) की कहानी बताने वाली पत्रिका की खोज के लिए ब्रिटिश संग्रहालय के एक अभियान को वित्त पोषित किया।

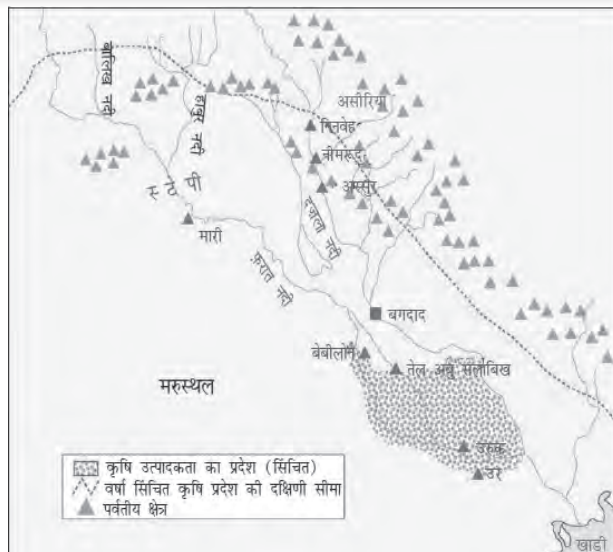
क्या आप जानते हैं?

- बाइबिल के अनुसार यह जलप्लावन पृथ्वी पर संपूर्ण जीवन को नष्ट करने वाला था। किंतु परमेश्वर ने जलप्लावन के बाद भी जीवन को पृथ्वी पर सुरक्षित रखने के लिए नोआ (Noah) नाम के एक मनुष्य को चुना। नोआ ने एक बहुत विशाल नाव बनायी और उसमें सभी जीव-जंतुओं का एक-एक जोड़ा रख लिया और जब जलप्लावन हुआ तो बाकी सब कुछ नष्ट हो गया पर नाव में रखे सभी जोड़े सुरक्षित बच गए। ऐसी ही एक कहानी मेसोपोटामिया के परंपरागत साहित्य में भी मिलती है; इस कहानी के मुख्य पात्र को 'ज़िउसूद्र' (Ziusudra) या 'उतनापिष्टिम' (Utnapishtim) कहा जाता था।

मेसोपोटामिया और उसका भूगोल:

मेसोपोटामिया में 7000 से 6000 ईसा पूर्व के बीच कृषि शुरू हुई। उत्तर में, एक ऊँचा इलाका, है जिसे स्टेपी कहा जाता है, जहाँ पशुपालन लोगों को कृषि से बेहतर आजीविका प्रदान करता है- सर्दियों की बारिश के बाद, भेड़ और बकरियाँ यहाँ उगने वाली घास और छोटी झाड़ियों को खाती हैं।

- पूर्व में, टिगरिस की सहायक नदियाँ ईरान के पहाड़ों तक संचार मार्ग उपलब्ध कराती हैं।
- यह रेगिस्तान शहरों को सहारा दे सकता है, क्योंकि उत्तरी पहाड़ों से निकलने वाली नदियाँ दजला व फरात (यूफ्रेट्स और टिगरिस) (चित्र 1.2 देखें) अपने साथ बहुत सारा गाद (बारीक मिट्टी) ले जाती हैं। जब उनमें बाढ़ आती है या जब उनका पानी खेतों में छोड़ा जाता है, तो उपजाऊ गाद जमा हो जाती है।
- फरात नदी के रेगिस्तान में प्रवेश करने के बाद, इसका पानी छोटी-छोटी नहरों में बह जाता है। ये नहरें अपने किनारों पर पानी भरती हैं और अतीत में सिंचाई नहरों के रूप में काम करती थीं।



चित्र 1.2: मेसोपोटामिया: पहाड़, मैदान, रेगिस्तान, दक्षिण का

विचारणीय बिंदु

- आप क्या सोचते हैं कि मेसोपोटामिया की भौगोलिक विशेषताएँ, विशेष रूप से टिगरिस और यूफ्रेट्स नदियों की उपस्थिति, इस क्षेत्र में कृषि और शहरीकरण के विकास को कैसे प्रभावित करती हैं? क्या आप इस बात पर कोई समानता बता सकते हैं कि सिंधु नदी ने सिंधु घाटी सभ्यता को कैसे प्रभावित किया?



- दक्षिणी मेसोपोटामिया की कृषि सबसे अधिक उत्पादक थी, भले ही इस क्षेत्र में फसल उगाने के लिए पर्याप्त वर्षा नहीं होती थी।
- खेती के अलावा, मेसोपोटामिया की भेड़ और बकरियाँ, जो मैदानों, उत्तर-पूर्वी मैदानों और पहाड़ी ढलानों (अर्थात्, नदियों के बाढ़ और उर्वरक के लिए बहुत ऊँचे इलाकों) पर चरती थीं, प्रचुर मात्रा में मांस, दूध और ऊन का उत्पादन करती थीं।

शहरीकरण का महत्व

क्या आप जानते हैं?

- मेसोपोटामिया के सबसे पुराने शहर कांस्य युग, लगभग 3000 ईसा पूर्व के हैं। कांसा मुख्यतः तांबे और टिन की एक मिश्र धातु है। कांस्य का उपयोग करने का मतलब था इन धातुओं को अक्सर बहुत दूर से प्राप्त करना। सटीक बढ़ईगरी, मोतियों की ड्रिलिंग, पत्थर की मुहरों को तराशने, जड़े हुए फर्नीचर के लिए खोल काटने आदि के लिए धातु के औजार आवश्यक थे। मेसोपोटामिया के हथियार भी कांस्य के थे।
- नगरीय अर्थव्यवस्था में खाद्य उत्पादन के अलावा व्यापार, विनिर्माण और सेवाएँ शामिल होती हैं। इस प्रकार, नगर के लोग आत्मनिर्भर नहीं रह पाते और उन्हें दूसरे (नगर या गाँव) लोगों के उत्पादों या सेवाओं पर आश्रित होना पड़ता है। उनके बीच लगातार लेन-देन व जुड़ाव बना रहता है।

- उदाहरण के लिए, काँसे के औजार बनाने वाला खुद धातु, ताँबा और टिन लाने के लिए बाहर नहीं जाता। इसके अलावा, उसे ईंधन के लिए नियमित रूप से चारकोल की आपूर्ति की आवश्यकता होती है। श्रम का विभाजन शहरी जीवन की पहचान है। इसके अलावा, वहाँ एक सामाजिक संगठन भी होना चाहिए।
- काँसे का इस्तेमाल करने का मतलब था इन धातुओं को प्रायः बहुत दूर से लाना। सटीक बढ़ईगिरी, मोतियों की ड्रिलिंग, पत्थर की मुहरों को तराशने, जड़े हुए फर्नीचर के लिए सीप काटने आदि के लिए धातु के औजार ज़रूरी थे। मेसोपोटामिया के शस्त्र भी काँसे के बने होते थे।

उदाहरण के लिए, भालों की नोकें।

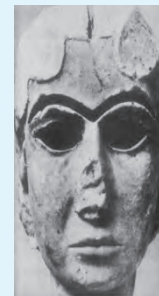
- शहरी निर्माताओं के लिए, ईंधन, धातु, विभिन्न पत्थर, लकड़ी आदि ज़रूरी चीज़ें, कई अलग-अलग जगहों से आते हैं। इसलिए, संगठित व्यापार और भंडारण की भी आवश्यकता होती है।

शहरों में माल की आवाजाही:

- मेसोपोटामिया के खाद्य संसाधन चाहे कितने भी समृद्ध रहे हों, उनके यहाँ खनिज संसाधनों का अभाव था। दक्षिण के अधिकांश भागों में औजारों, मुहरों और आभूषणों के लिए पत्थरों की कमी थी; इराकी खजूर और पोपलर के पेड़ों की लकड़ी गाड़ियों, गाड़ी के पहियों या नावों के लिए कोई खास अच्छी नहीं थी; और औजारों, बर्तनों, पात्रों या आभूषणों के लिए कोई धातु वहाँ उपलब्ध नहीं थी।

वार्का शीर्ष

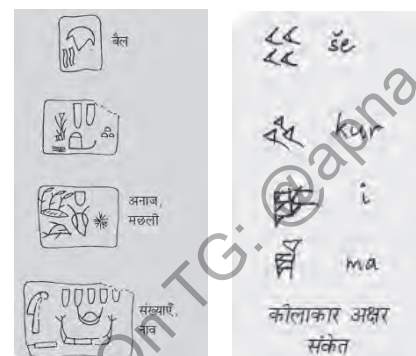
- 3000 ई.पू. उरुक नगर में स्त्री का यह सिर एक सफ़ेद संगमरमर को तराशकर बनाया गया था। इसकी आँखों और भौंहों में क्रमशः नीले लाजवर्द (Lapis lazuli) तथा सफ़ेद सीपी और काले डामर (Bitumen) की जड़ाई की गई होगी। सिर के ऊपर एक खाँचा बना हुआ है जो शायद गहना पहनने के लिए बनाया गया था। यह मूर्तिकला का एक विश्व-प्रसिद्ध नमूना है, इसके मुख, ठोड़ी और गालों की सुकोमल-सुंदर बनावट के लिए इसकी प्रशंसा की जाती है। यह एक ऐसे कठोर पत्थर में तराशा गया है जिसे काफी अधिक दूरी से लाना पड़ा होगा।
- पत्थर लाने से लेकर इस मूर्ति के निर्माण में और किन विशेषज्ञों का योगदान रहा होगा। उनकी सूची बनाइए।



- प्राचीन मेसोपोटामियावासी अपने प्रचुर वस्त्र और कृषि उपज का व्यापार लकड़ी, ताँबा, टिन, चाँदी, सोना, शंख तथा विभिन्न पत्थरों के बदले तुर्की एवं ईरान या खाड़ी के पार से करते थे।
- नियमित आदान-प्रदान इन वस्तुओं का नियमित आदान-प्रदान केवल तभी संभव है जब कोई सामाजिक संगठन हो। जो विदेशी अभियानों और विनियमों को निर्देशित करने तथा आदान-प्रदान करने की दिशा में दक्षिणी मेसोपोटामिया के लोगों द्वारा की गई थी। शिल्प, व्यापार और सेवाओं के अलावा, कुशल परिवहन भी शहरी विकास के लिए महत्वपूर्ण है।
- परिवहन का सबसे सस्ता तरीका, सर्वत्र जलमार्ग ही होता है। नदी की नावें या अनाज की बोरियों से लदी हुई नावें या बजरे, नदी की धारा अथवा हवा के वेग से चलते हैं, जिसमें कोई खर्चा नहीं लगता, लेकिन जब जानवर सामान ले जाते हैं, तो उन्हें चारा खिलाने की ज़रूरत होती है। प्राचीन मेसोपोटामिया की नहरें और प्राकृतिक चैनल वास्तव में बड़ी एवं छोटी बस्तियों के बीच माल परिवहन के मार्ग थे।

लेखन कला का विकास:

- सभी समाज के पास अपनी एक भाषा होती है, जिसमें उच्चारित ध्वनियाँ अपना अर्थ प्रकट करती हैं। इसे मौखिक संचार या शाब्दिक भावाभिव्यक्ति कहते हैं। लिखना, मौखिक भाव्यभिव्यक्ति से उतना अलग नहीं है जितना अक्सर हम समझ बैठते हैं। जब हम लेखन या लिपि के बारे में बात करते हैं, तो हमारा मतलब है कि बोली जाने वाली आवाज़ें दृश्यमान संकेतों में दर्शाई जाती हैं।
- लगभग 3200 ईसा पूर्व लिखी गई पहली मेसोपोटामिया की पट्टिकाएँ (टेबलेट) में चित्र जैसे चिह्न और संख्याएँ दी गयी थीं। वहाँ बैलों, मछलियों, रोटियों आदि की लगभग 5,000 सूचियाँ मिली हैं, जो वहाँ के दक्षिण के शहर उरुक के मंदिरों में आने वाली और वहाँ से बाहर जाने वाली चीज़ों की होंगी। (चित्र 1.3 देखें)
- मेसोपोटामिया के लोग मिट्टी की पट्टियों पर लिखते थे (चित्र 1.4 देखें)। एक लिपिक चिकनी मिट्टी को गीला करके उसे गूँधकर और थापकर एक हाथ में आराम से पकड़ने लायक पट्टी का आकार दे देता था। वह इसकी सतह को सावधानीपूर्वक चिकना करता था।



चित्र 1.3: चिकनी मिट्टी की पट्टिकाएँ:

लगभग 3200 ई.पू.

- जिसे वह आसानी से अपने एक हाथ में पकड़ सके। वह सावधानीपूर्वक उसकी सतहों को चिकना बना लेता था फिर सरकंडे की तीली की तीखी नोक से वह उसकी नम चिकनी सतह पर कीलाकार चिह्न (cuneiform) बना देता था। जब ये पट्टिकाएँ धूप में सूख जाती थीं तो पक्की हो जाती थीं और वे मिट्टी के बर्तनों जैसी ही मजबूत हो जाती थीं।
- जब उन पर लिखा हुआ कोई हिसाब, जैसे धातु के टुकड़े सौंपने का हिसाब असंगत या गैर-जरूरी हो जाता तो उस पट्टिका को फेंक दिया जाता था। ऐसी पट्टी जब एक बार सूख जाती थी तो उस पर कोई नया चिह्न या अक्षर नहीं लिखा जा सकता था।
- इस प्रकार प्रत्येक सौदे के लिए चाहे वह कितना ही छोटा हो, एक अलग पट्टिका की जरूरत होती थी। इसीलिए मेसोपोटामिया के खुदाई स्थलों पर सैकड़ों पट्टिकाएँ मिली हैं। और इस स्रोत-संपदा के कारण ही आज हम मेसोपोटामिया के बारे में इतना कुछ जानते हैं।
- सुमेरियन, मेसोपोटामिया की सबसे पुरानी ज्ञात भाषा थी, जिसे 2400 ईसा पूर्व के बाद धीरे-धीरे अक्कादियन भाषा ने बदल दिया। अक्कादियन भाषा में क्यूनिकॉर्म लेखन पहली शताब्दी ई. तक, यानी 2,000 से अधिक वर्षों तक होता रहा।



चित्र 1.4: मिट्टी की एक पट्टिका जिसके दोनों ओर कीलाकार आकृति में लिखा हुआ है। यह एक गणितीय अभ्यास है - आप विपरीत पक्ष के शीर्ष पर एक त्रिभुज और त्रिभुज के आर-पार रेखाएँ देख सकते हैं। आप देख सकते हैं कि अक्षरों को मिट्टी में दबा दिया गया है।

लेखन प्रणाली:

- जिस ध्वनि के लिए कीलाक्षर या कीलाकार चिह्न का प्रयोग किया जाता था वह एक अकेला व्यंजन या स्वर नहीं होता था (जैसे अंग्रेजी वर्णमाला में m या a) लेकिन अक्षर (Syllables) होते थे (जैसे अंग्रेजी में -put-, या-la-या-in-)। इस प्रकार, मेसोपोटामिया के लिपिक को सैकड़ों चिह्न सीखने पड़ते थे और उसे गीली पट्टी पर उसके सूखने से पहले ही लिखना होता था।
- लेखन कार्य के लिए बड़ी कुशलता की आवश्यकता होती थी, इसलिए लिखने का काम अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता था। इस प्रकार, किसी भाषा विशेष की ध्वनियों को एक दृश्य रूप में प्रस्तुत करना एक महान बौद्धिक उपलब्धि माना जाता था।

साक्षरता:

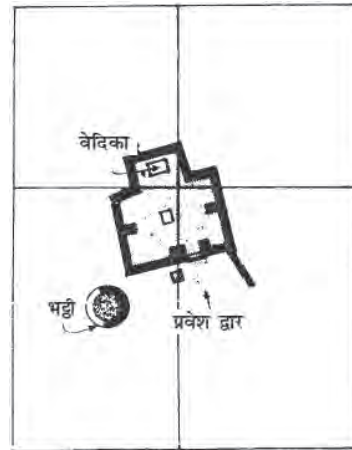
- मेसोपोटामिया के बहुत कम लोग पढ़-लिख सकते थे। न केवल प्रतीकों या चिह्नों की संख्या सैकड़ों में थी, बल्कि ये कहीं अधिक पेचीदा थे। अगर राजा स्वयं पढ़ सकता था तो वह यह चाहता था कि प्रशस्तिपूर्ण अभिलेखों में उन तथ्यों को उल्लेख अवश्य किया जाए। अधिकतर लिखावट बोलने के तरीके को दर्शाती थी।
- एक अधिकारी द्वारा राजा को लिखा गया पत्र उसे पढ़कर सुनाया जाता था, इसलिए उसकी शुरुआत इस तरह की जाती थी: “मेरे ‘अमुक’ मालिक को..... उनका ‘अमुक’ सेवक निवेदन करता है.... मुझे सौंपे गए काम को मैंने पूरा कर दिया है.....।”
- सृष्टि के बारे में लिखे गए एक लंबे पौराणिक काव्य के अंत में यह लिखा गया है:
- “इन काव्य पंक्तियों को सदा याद रखा जाए और बड़े-बूढ़े लोग इन्हें छोटों को (यहाँ तक कि) ग्वालों के कान भी इन पंक्तियों को सुनने के लिए पढ़ाएँ;
- बुद्धिमान और विद्वान लोग इन पर चर्चा करें; पिता इन्हें अपने पुत्रों के लिए बार-बार दोहराएँ; (यहाँ तक कि) ग्वालों के कान भी इन पंक्तियों को सुनने के लिए सदा खुले रहें।”

लेखन का प्रयोग:

- शहरी जीवन, व्यापार और लेखन के बीच संबंध को उरुक के एक प्राचीन शासक एन्मर्कर (Enmerkar) के बारे में एक लंबी सुमेरियन महाकाव्य में स्पष्ट किया गया है। मेसोपोटामिया की परंपरागत कथाओं के अनुसार, उरुक एक अत्यंत सुंदर शहर था, जिसे प्रायः शहर कहकर ही पुकारा जाता था।
- सुमेर के व्यापार की पहली घटना को एन्मर्कर के साथ जोड़ा जाता है: उस महाकाव्य में कहा गया है कि प्रारंभिक दिनों में, ‘व्यापार के बारे में पता नहीं था’। एन्मर्कर को शहर के मंदिर के सौंदर्यीकरण के लिए लापीस लाजुली और कीमती धातुएँ चाहिए थीं तथा उन्होंने अपने दूत को अरट्टा (Aratta) नामक एक बहुत दूर के देश के शासक से उन्हें लाने के लिए भेजा।
- उसने पाँच पर्वतमालाएँ, छह पर्वतमालाएँ, सात पर्वतमालाएँ उसने पार कीं...’ दूत अरट्टा के प्रमुख से लाजवर्द या चनाड़ी चाँदी नहीं ला पाया, और उसे उरुक के राजा की धमकियाँ एवं आश्वासन लेकर बार-बार लंबी यात्रा करनी पड़ी।
- सूचना संगृहीत करने और दूर-दूर तक संदेश भेजने के साधन के अलावा, लेखन को मेसोपोटामिया की शहरी संस्कृति की श्रेष्ठता के प्रतीक के रूप में देखा जाता था।

दक्षिणी मेसोपोटामिया का शहरीकरण — मंदिर और राजा

- 5000 ईसा पूर्व से, दक्षिणी मेसोपोटामिया में बस्तियों का विकास होने लगा था। इनमें से कुछ बस्तियों ने ही प्राचीन शहरों का रूप ले लिया। ये विभिन्न प्रकार के थे: वे जो धीरे-धीरे मंदिरों के चारों ओर विकसित हुए; वे जो व्यापार के केंद्रों के रूप में विकसित हुए; और शेष शाही शहर। (चित्र 1.5 देखें)।
- यहाँ पहले दो प्रकार के शहरों पर चर्चा की जाएगी। शुरुआती बसने वालों (उनकी उत्पत्ति अज्ञात है) ने अपने गाँवों में चयनित स्थानों पर मंदिरों का निर्माण और पुनर्निर्माण करना शुरू किया। सबसे पहला ज्ञात मंदिर कच्ची ईंटों से बना एक छोटा सा मंदिर था। मंदिर विभिन्न देवताओं के निवास स्थान थे। उर के चंद्र देवता, या प्रेम और युद्ध की देवी इनना के।
- ईंटों से निर्मित मंदिर समय के साथ बड़े होते गए, जिनमें खुले प्रांगणों के चारों ओर कई कमरे थे। लेकिन मंदिरों की बाहरी दीवारें हमेशा नियमित अंतर पर अंदर-बाहर होती थीं, जो किसी भी साधारण इमारत में कभी नहीं होती थी।
- देवता पूजा का केंद्र बिंदु होता था: उनके लिए लोग अन्न, दही और मछली लाते थे (पुराने ज़माने के कुछ मंदिरों के फर्श पर मछली की हड्डियों की परतें जमी हुई मिली हैं)।
- आराध्य देव सैद्धांतिक रूप से खेतों, मत्स्य क्षेत्रों और स्थानीय लोगों के पशुधन का स्वामी माना जाता था। समय आने पर, उपज को उत्पादित वस्तुओं में बदलने की प्रक्रिया (जैसे, तेल निकालना, अनाज पीसना, कटाई करना और ऊनी कपड़ों को बुनना) भी मंदिर में किया जाता था।
- मंदिर ने धीरे-धीरे अपनी गतिविधियों को विकसित किया और मुख्य शहरी संस्था का रूप ले लिया। प्रागैतिक मेसोपोटामिया के ग्रामीण इलाकों में भूमि और जल को लेकर बार-बार संघर्ष हुआ। समय के साथ, विजयी सरदारों ने देवताओं को कीमती लूट की वस्तुएँ अर्पित करना शुरू कर दिया और इस तरह समुदाय के मंदिरों को सुशोभित किया।
- वे देवता और समुदाय के लाभ के लिए अच्छे पत्थर और धातु लाने के लिए लोगों को दूर-दूर तक भेजते थे तथा मंदिर की संपत्ति के वितरण को कुशल तरीके से व्यवस्थित करते थे, जिसमें आने-जाने वाली चीजों का हिसाब रखा जाता था।
- उरुक, जो उस समय सबसे पुराने मंदिर नगरों में से एक था, वहाँ से हमें सशस्त्र नायकों और उनसे हताहत हुए शत्रुओं के चित्रण मिलते हैं।
- सावधानीपूर्वक किए गए पुरातात्विक सर्वेक्षणों से पता चला है कि लगभग 3000 ईसा पूर्व के आस-पास जब उरुक नगर का 250 हेक्टेयर भूमि में विस्तार हो गया था- जो बाद की शताब्दियों में मोहनजोदड़ों से दोगुना बड़ा था। दर्जनों छोटे गाँव वीरान हो गए थे। वहाँ एक बड़ा जनसंख्या परिवर्तन (major population shift) हुआ था। महत्वपूर्ण बात यह है कि उरुक में बहुत पहले ही एक रक्षात्मक दीवार भी बन गई थी। (चित्र 1.6 देखें)।
- कृषि कर के बजाय यह अनिवार्य था। जिन लोगों को काम पर लगाया जाता था, उन्हें राशन दिया जाता था। सैकड़ों राशन सूचियाँ मिली हैं, जिनमें लोगों के नाम के आगे उन्हें आवंटित अनाज, कपड़ा या तेल की मात्रा दी गई है।



चित्र 1.5: दक्षिणी मेसोपोटामिया का सबसे प्राचीन ज्ञात मंदिर, लगभग 5000 ईसा पूर्व (नक्शा)



चित्र 1.6: लगभग 3000 ई.पू. में निर्मित एक मंदिर जिसका खुला हुआ आँगन और बाहरी-भीतरी मुख भाग (उत्खनित रूप में) चित्र में दिखाया गया है।

मोहर: एक शहरी शिल्प-कृति

- भारत में, प्राचीन काल में पत्थर की मोहरें होती थीं जिनपर चिह्न अंकित किए गए होते थे। लेकिन मेसोपोटामिया में, पहली सहस्राब्दी ई.पू. के अंत तक पत्थर की बेलनाकार मोहरें, जो बीच में आर-पार छिदी होती थीं, एक तीली लगाकर गीली मिट्टी के ऊपर घुमाई जाती थीं और इस प्रकार उनसे लगातार चित्र बनता जाता था। वे अत्यंत कुशल कारीगरों द्वारा उकेरी जाती थीं और कभी-कभी उनमें ऐसे लेख होते थे; जैसे मालिक का नाम, उसके इष्टदेव का नाम और उसकी अपनी पदीय स्थिति, आदि। किसी कपड़े की गठरी या बर्तन के मुँह को चिकनी मिट्टी से लीप-पोतकर उसपर वह मोहर घुमाई जाती थी जिससे उसमें अंकित लिखावट मिट्टी की सतह पर छप जाती थी; इससे उस गठरी या बर्तन में रखी वस्तुओं को मोहर लगाकर सुरक्षित किया जा सकता था। जब इस मोहर को मिट्टी की बनी पट्टिका पर लिखे पत्र पर घुमाया जाता था तो वह मोहर उस पत्र की प्रामाणिकता की प्रतीक बन जाती थी। इस प्रकार मुद्रा सार्वजनिक जीवन में नगरवासी की भूमिका को दर्शाती थी।



चित्र 1.7: पाँच पुरानी बेलनाकार मोहरें और उनके छापे।

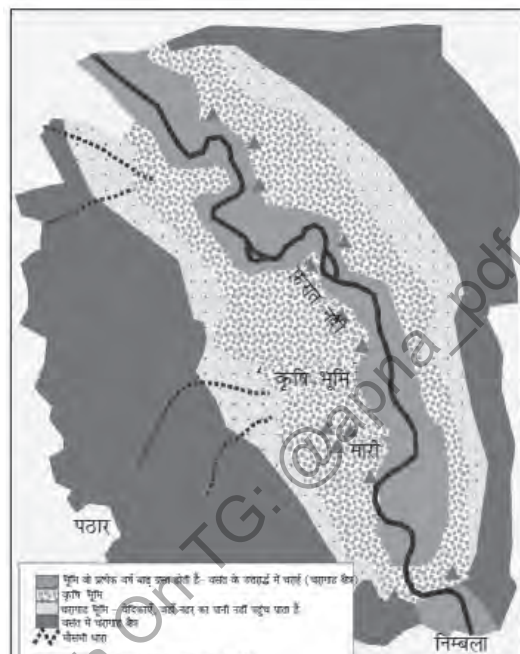
- अनुमान लगाया गया है कि एक मंदिर को बनाने में 1,500 लोगों ने पाँच साल तक प्रतिदिन 10 घंटे काम किया था। शासकों ने लोगों को पत्थर या धातु अयस्क लाने, आकर ईंटें बनाने या मंदिर के लिए ईंटें बिछाने या उपयुक्त सामग्री लाने के लिए दूर देश जाने का आदेश दिया था।
- इसकी वजह से 3000 ई.पू. के आस-पास उरुक में खूब तकनीकी प्रगति भी हुई। अनेक प्रकार के शिल्पों के लिए काँसे के औजारों का प्रयोग होता था। वास्तुविदों ने ईंटों के स्तंभों को बनाना सीख लिया था, क्योंकि उन दिनों बड़े-बड़े कमरों की छतों के बोझ को सँभालने के लिए शहतीर बनाने उपयुक्त लकड़ी नहीं मिलती थी।
- कांस्य उपकरण विभिन्न शिल्पों के लिए उपयोग में लाया गया। वास्तुकारों ने ईंट के स्तंभों का निर्माण करना सीख लिया था, क्योंकि बड़े-बड़े कमरों की छतों के बोझ को सँभालने के लिए शहतीर बनाने हेतु उपयुक्त लकड़ी नहीं मिलती थी। सैकड़ों लोगों को मिट्टी के शंकु बनाने और पकाने के काम पर लगाया जाता था, इन शंकुओं को भिन्न-भिन्न रंगों में रंगकर मंदिरों की दीवारों में लगाया जाता था जिससे वे दीवारें विभिन्न रंगों से सुशोभित हो जाती थीं।
- मूर्तिकला में, इस कला के सुंदर नमूने आसानी से उपलब्ध होने वाली चिकनी मिट्टी की अपेक्षा अधिकतर आयातित पत्थरों से तैयार किए जाते थे। तभी प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी एक युगांतरकारी परिवर्तन आया जो शहरी अर्थव्यवस्था के लिए अत्यंत उपयुक्त साबित हुआ और वह था: कुम्हार के चाक का निर्माण। आगे चलकर इस चाक से कुम्हार की कार्यशाला में एक साथ बड़े पैमाने पर दर्जनों एक जैसे बर्तन आसानी से बनाए जाने लगे।



चित्र 1.8: उर नगर का एक रिहायशी इलाका, लगभग उ. 2000 ई.पू। क्या आप चित्र में टेढ़ी-मेढ़ी गलियों के अलावा, दो या तीन बंद गलियाँ भी खोज सकते हैं?

शहरी जीवन:

- समाज के एक छोटे से वर्ग (शासक अभिजात वर्ग) के पास धन का बड़ा हिस्सा था। इस तथ्य को और कुछ भी उतना स्पष्ट नहीं करता जितना कि उर में कुछ राजाओं और रानियों के पास रखी सजावटी खंजर, आदि।
- मेसोपोटामिया के समाज में एकल परिवार को ही आदर्श माना जाता था, हालाँकि एक शादीशुदा बेटा और उसका परिवार अक्सर अपने माता-पिता के साथ रहा करते थे।
- पिता परिवार का मुखिया होता था। हम विवाह की प्रक्रियाओं के बारे में थोड़ा जानते हैं। विवाह करने की इच्छा के बारे में घोषणा की जाती थी, और वधू के माता-पिता उसके विवाह के लिए अपनी सहमति देते थे। फिर वर पक्ष द्वारा वधू को कुछ उपहार दिया जाता था।
- जब विवाह की रस्म संपन्न हो जाती थी, तो दोनों पक्षों की ओर से उपहारों का आदान-प्रदान किया जाता था, वे एक साथ बैठकर भोजन करते थे और मंदिर में जाकर भेंट चढ़ाते थे।
- जब उसकी सास उसे लेने आती थी, तो वधू को उसके पिता द्वारा उसकी दाय का हिस्सा दे दिया जाता था। पिता का घर, पशुधन, खेत आदि उसके पुत्रों को मिलते थे।
- उर एक ऐसा शहर था जिसके साधारण घरों की 1930 के दशक में व्यवस्थित तरीके से खुदाई की गई थी। संकरी घुमावदार गलियाँ दर्शाती हैं कि पहिए वाली गाड़ियाँ कई घरों तक नहीं पहुँच सकती थीं। अनाज और जलाऊ लकड़ी की बोरियाँ गधे की पीठ पर लादकर लाई जाती होंगी। संकरी घुमावदार गलियाँ और घरों के भूखंडों की अनियमित आकृतियाँ भी नगर नियोजन की अनुपस्थिति का संकेत देती हैं। (चित्र 1.7 देखें)।
- समकालीन मोहनजोदड़ो में जिस तरह की नालियाँ मिलती हैं, वैसी नालियाँ वहाँ नहीं थीं। इसके बजाय उर घरों के भीतरी आँगनों में नालियाँ और मिट्टी के पाइप पाए गए तथा ऐसा माना जाता है कि घरों की छतें अंदर की ओर झुकी हुई थीं एवं बारिश का पानी नाली के पाइपों के ज़रिए भीतरी आँगनों में बने गड्ढों में जाता था।



चित्र 1.9: निम्बाला बाढ़ ग्रस्त क्षेत्र

- कमरों में रोशनी खिड़कियों से नहीं बल्कि उन दरवाजों से आती थी जो आँगन की ओर खुला करते थे। इससे घरों के परिवारों में गोपनीयता (privacy) भी बनी रहती थी। घरों के बारे में कई तरह के अंधविश्वास प्रचलित थे, जिनके विषय में उर में पाई गई शकुन-अपशकुन संबंधी बातें पट्टिकाओं पर लिखी मिली हैं; जैसे- घर की देहली ऊँची उठी हुई हो तो वह धन-दौलत लाती है; सामने का दरवाजा अगर किसी दूसरे के घर की ओर न खुले तो वह सौभाग्य प्रदान करता है; लेकिन अगर घर का लकड़ी का मुख्य दरवाजा (भीतर की ओर न खुलकर) बाहर की ओर खुले तो पत्नी अपने पति के लिए यंत्रणा का कारण बनेगी।
- उर में नगरवासियों के लिए एक कब्रिस्तान था, जिसमें शासकों तथा जन-साधारण की समाधियाँ पाई गईं; लेकिन कुछ लोग साधारण घरों के फ़ों के नीचे भी दफ़नाए हुए पाए गए थे।

पशुचारक क्षेत्र में एक व्यापारिक नगर:

- 2000 ईसा पूर्व के बाद मारी नगर शाही राजधानी के रूप में खूब फला-फूला। मारी अपने अत्यधिक उत्पादक कृषि के साथ दक्षिणी मैदान पर नहीं बल्कि यूफ्रेट्स के बहुत ऊपर की ओर स्थित है।
- मारी राज्य के समुदायों में वैसे तो किसान और पशुचारक दोनों थे, लेकिन इसका अधिकांश क्षेत्र भेड़ और बकरियों को चराने के लिए इस्तेमाल किया जाता था। (चित्र 1.8 देखें)
- पशुचारकों जब को अनाज, धातु के औजारों आदि की जरूरत पड़ती थी तो वे तब पशुओं, पनीर, चमड़े और माँस का आदान-प्रदान कर इनको प्राप्त करते थे। बाड़े में बाँधे जाने वाले पशुओं की खाद किसानों के लिए भूत उपयोगी होती थी। फिर भी, किसानों और गड़रियों के बीच झगड़े हो जाते थे।
- एक गड़रिया अपने झुंड को पानी पिलाने के लिए बोए गए खेतों से गुज़ारकर ले जाता था, जिससे फसल को नुकसान पहुँचता था। ये गड़रिये खानाबदोश होने के कारण किसानों के गाँवों पर हमला कर देते थे और उनके संगृहीत सामान को लूट लेते थे। अपने हिस्से के लिए, बसे हुए समूह गड़रियों को एक निश्चित मार्ग के साथ नदी और नहर के पानी तक पहुँच से वंचित कर देते थे।
- मेसोपोटामिया के इतिहास पर नज़र डालने से ज्ञात होता है कि, पश्चिमी रेगिस्तान के खानाबदोश समुदाय समृद्ध कृषि क्षेत्र में झुंड के झुंड आकर बस गए। गड़रिये गर्मियों में अपने झुंडों को बोए गए क्षेत्र में ले आते थे। ऐ समूह गड़रिये, फसल काटने वाले मजदूर या भाड़े के सैनिक के रूप में आते थे, समृद्ध होकर यहीं बस जाते थे। (चित्र 1.9 देखें)
- कुछ लोगों ने अपना शासन स्थापित करने की शक्ति प्राप्त कर ली थी। इनमें अक्कदी, एमोराइट्स, असीरियन और आर्मेनियन शामिल थे।
- मारी के राजा एमोराइट समुदाय के थे, जिनकी पोशाक मूल निवासियों से भिन्न थी और जो न केवल मेसोपोटामिया के देवताओं का सम्मान करते थे, बल्कि उन्होंने मारी क्षेत्र के देवता डैगन (Dagan) के लिए एक मंदिर भी बनवाया।
- इस प्रकार मेसोपोटामिया का समाज और संस्कृति विभिन्न लोगों तथा संस्कृतियों के लिए खुली थी, एवं सभ्यता की जीवंतता शायद इस परस्पर मिश्रण के कारण थी। इस प्रकार मारी व्यापार पर समृद्ध शहरी केंद्र का एक अच्छा उदाहरण है।
- पीसने वाले पत्थर, लकड़ी, शराब और तेल के बर्तन ले जाने वाली नावें दक्षिणी शहरों की ओर जाते समय मारी में रुकती थीं।
- सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि पट्टियाँ साइप्रस के द्वीप 'अलाशिया' से ताँबे का उल्लेख करती हैं, जो ताँबे के लिए जाना जाता है, और टिन भी व्यापार की एक वस्तु थी।
- चूँकि कांस्य औजारों और हथियारों के लिए मुख्य औद्योगिक सामग्री थी, इसलिए यह व्यापार बहुत महत्वपूर्ण था। इस प्रकार, हालाँकि मारी का साम्राज्य सैन्य रूप से मजबूत नहीं था, लेकिन यह असाधारण रूप से समृद्ध था।

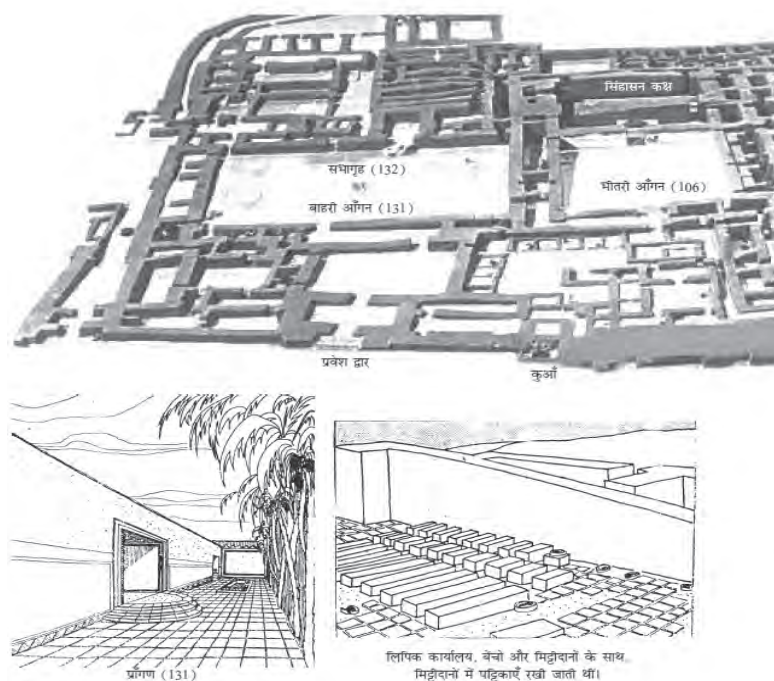


चित्र 1.10: एक योद्धा अपने हाथों में एक लंबा भाला और एक खपच्ची की ढाल पकड़े हुए है। एमोराइट लोगों की एक खास किस्म की पोशाक देखिए जो (पृष्ठ अ पर दिखाई गई) सुमेरियन योद्धा की पोशाक से भिन्न होती थी। यह चित्र एक सोपी पर उकेरा गया था, लगभग 2600 ई.पू।

मेसोपोटामिया संस्कृति में शहरों का महत्व:

- मेसोपोटामिया के लोग शहरी जीवन को महत्व देते थे, जिसमें कई समुदायों और संस्कृतियों के लोग एक साथ रहते थे। युद्ध में शहरों के नष्ट हो जाने के बाद, वे अपने काव्यों के जरिए उन्हें याद किया करते थे।

- मेसोपोटामिया के लोगों को अपने शहरों पर कितना गर्व था, इसका सबसे मार्मिक स्मरण हमें गिलगेशि (Gilgamesh) महाकाव्य के अंत में मिलता है, जिसे बारह पट्टियों पर लिखा गया था।



चित्र 1.11: राजा जिमरिलिम का मारी स्थित राजमहल (1810-1760 ई.पू.)

- कहा जाता है कि गिलगेशि (Gilgamesh) ने एन्मर्कर के कुछ समय बाद उरुक नगर पर शासन किया था। एक महान नायक जिसने दूर-दूर तक लोगों को अपने अधीन कर लिया था, लेकिन उसे तब झटका लगा जब उसका वीर मित्र अचानक मर गया। इससे दुखी होकर वह अमरत्व की खोज में निकाल पड़ा, दुनिया को घेरने वाले पानी को पार करते हुए।

जिमरीलिम का मारी स्थित राजमहल (1810-1760 ई.पू.)

- मारी का विशाल राजमहल वहाँ के शाही परिवार का निवास स्थान तो था ही, साथ ही वह प्रशासन और उत्पादन, विशेष रूप से कीमती धातुओं के आभूषणों के निर्माण का मुख्य केंद्र भी था। अपने समय में वह इतना अधिक प्रसिद्ध था कि उसे देखने के लिए ही उत्तरी सीरिया का एक छोटा राजा आया; वह अपने साथ मारी के राजा जिमरीलिम के नाम उसके एक अन्य राजा का परिचय पत्र लेकर वहाँ आया था। दैनिक सूचियों से पता चलता है कि राजा के भोजन की मेज पर हर रोज भारी मात्रा में खाद्य पदार्थ पेश किए जाते थे—आटा, रोटी, मांस, मछली, फल, मदिरा और वीयर। वह संभवतः अपने अन्य साथियों के साथ सफेद पत्थर जड़े आंगन (106) में बैठकर बाकायदा भोजन करता था। नक्शा देखने से आपको पता चलेगा कि राजमहल का सिर्फ एक ही प्रवेश द्वार था जो उत्तर की ओर बना हुआ था। उसके विशाल, खुले प्रांगण (जैसे 131) सुंदर पत्थरों से जड़े हुए थे। राजा विदेशी अतिथियों और अपने प्रमुख लोगों से कमरा-132 में मिलता था जहाँ के भित्ति-चित्रों को देखकर आगंतुक लोग हतप्रभ रह जाते थे। राजमहल 2.4 हैक्टेयर के क्षेत्र में स्थित एक अत्यंत विशाल भवन था जिसमें 260 कक्ष बने हुए थे।
- वीरतापूर्ण प्रयास के बाद, गिलगेशि असफल हो गया और उरुक लौट आया। वहाँ, उसने शहर की चहारदीवारी के पास आगे-पीछे चहलकदमी कर खुद को सांतवना दी। उसने पकी हुई ईंटों से बनी नींव की प्रशंसा की जिसकी उसने नींव डाली थी। इस प्रकार उरुक की शहर की दीवार पर वीरता और साहस की लंबी कहानी का अंत हो गया।

लेखन कला की देन:

- हालाँकि मर्मस्पर्शी कहानियों—किस्सों और तरह-तरह के वर्णन को तो मौखिक रूप से एक-दूसरों को सुनाते हुए जीवित रखा जा सकता है, पर विज्ञान को जीवित रखने के लिए लिखित दस्तावेजों एवं किताबों की ज़रूरत पड़ती है ताकि विद्वानों की आगे आने वाली पीढ़ियाँ उन्हें पढ़ सकें। संभवतः मेसोपोटामिया की विद्वत्तापूर्ण परंपरा है। को सबसे बड़ी देन है उसकी कालगणना और गणित की।

- 1800 ई.पू. के आस-पास की कुछ पट्टिकाएँ मिली हैं जिनमें गुणा और भाग की तालिकाएँ, वर्ग तथा वर्गमूल एवं चक्रवृद्धि ब्याज की सारणियाँ दी गई हैं। उनमें 2 का वर्गमूल यह दिया गया है:

$$1 + 24/60 + 51/60^2 + 10/60^3$$

- यदि आप इसकी गणना करते हैं, तो आप पाएँगे कि उत्तर 1.41421296 है, जो सही उत्तर 1.41421356 से थोड़ा ही अलग है। छात्रों को इस प्रकार के सवाल हल करने होते थे: अगर एक खेत का क्षेत्रफल इतना - इतना है और वह एक अंगुल पानी में डूबा हुआ है तो संपूर्ण पानी का आयतन बताओ।
- पृथ्वी के चारों ओर चंद्रमा की परिक्रमा के अनुसार एक पूरे वर्ष का 12 महीनों में विभाजन, एक महीने का चार सप्ताह में विभाजन, दिन का 24 घंटे में और घंटे का 60 मिनट में विभाजन - यह सब जो आज हमारी रोजमर्रा की जिंदगी का अचेतन हिस्सा है - हमें मेसोपोटामिया के लोगों से मिला है।

एक पुराकालीन पुस्तकालय

- लौहयुग में, उत्तरी प्रदेशों के असीरियाई लोगों ने एक साम्राज्य की स्थापना की जो 720 से 610 ई.पू. तक अपनी उन्नति के शिखर पर रहा। यह साम्राज्य मिस्र तक फैला हुआ था। राज्य की अर्थव्यवस्था उन दिनों लूटमार की हो गई थी क्योंकि अधीनस्थ प्रजाजनों को दबाकर उनसे खाद्य सामग्री, पशु, धातु तथा शिल्प की वस्तुओं के रूप में बेगार और नज़राना जबरदस्ती लिया जाता था।
- बड़े-बड़े असीरियाई शासक जो बाहर से आकर बसे थे, दक्षिणी क्षेत्र बेबीलोनिया को उच्च संस्कृति का केंद्र मानते थे। उनमें से आखिरी राजा असुरबनिपाल (Assurbanipal, 668-627 ई.पू.) ने उत्तर में स्थित अपनी राजधानी निनवै (Nineveh) में एक पुस्तकालय की स्थापना की। उसने इतिहास, महाकाव्य, शकुन साहित्य, ज्योतिष विद्या, स्तुतियों और कविताओं की पट्टिकाओं को इकट्ठा करने का बहुत प्रयत्न किया और उसमें सफल रहा। उसने अपने लिपिकों को दक्षिण में पुरानी पट्टिकाओं का पता लगाने के लिए भेजा। क्योंकि दक्षिण में लिपिकों को विद्यालयों में पढ़ना-लिखना सिखाया जाता था, जहाँ उन्हें दर्जनों की संख्या में पट्टिकाओं की नकलें तैयार करनी होती थीं। बेबीलोनिया में ऐसे भी नगर थे जो पट्टिकाओं के विशाल संग्रह तैयार किए जाने और प्राप्त करने के लिए मशहूर थे। हालाँकि लगभग 1800 ई.पू. के बाद सुमेरियन भाषा बोली जानी बंद हो गई थी, लेकिन विद्यालयों में वह शब्दावलियों, संकेत-सूचियों, द्विभाषी (सुमेरी और अक्कादी) पट्टिकाओं आदि के माध्यम से अब भी पढ़ाई जाती थी। इसलिए 650 ई.पू. में भी, 2000 ई.पू. तक पुरानी कीलाकार अक्षरों में लिखी पट्टिकाएँ पढ़ी और समझी जा सकती थीं और असुरबनिपाल के आदमी यह जानते थे कि पुरानी पट्टिकाओं और उनकी प्रतिकृतियों को कहाँ खोजा और प्राप्त किया जा सकता है।
- इन समय विभाजनों को सिकंदर के उत्तराधिकारियों ने अपनाया और वहाँ से रोमन जगत, फिर इस्लाम जगत और उसके बाद मध्ययुगीन यूरोप में स्थानांतरित किया गया (यह कैसे हुआ, इसके लिए विषय 5 देखें)।
- मेसोपोटामियावासियों की इन महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक भी उपलब्धि संभव नहीं होती यदि लेखन की कला और विद्यालयों जैसी उन संस्थाओं का अभाव होता जहाँ विद्यार्थीगण पुरानी लिखित पट्टिकाओं को पढ़ते और उनकी नकल करते थे और जहाँ कुछ छात्रों को साधारण प्रशासन का हिसाब-किताब रखने वाले लेखाकार न बनाकर, ऐसा प्रतिभासंपन्न व्यक्ति बनाया जाता था जो अपने पूर्वजों की बौद्धिक उपलब्धियों को आगे बढ़ा सकें।
- यह सोचना गलत होगा कि मेसोपोटामिया के शहरी लोग आधुनिक तौर-तरीकों से परिचित नहीं थे। अंत में, हमें उन दो प्रकार के प्रारंभिक प्रयत्नों का अवलोकन करना चाहिए जिनके द्वारा अतीत के प्रलेखों एवं परंपराओं को खोजने और सुरक्षित रखने की कोशिश की गई थी।

तिथि क्रम	
लगभग 7000-6000 ई.पू.	उत्तरी मेसोपोटामिया के मैदानों में खेती की शुरुआत
लगभग 5000 ई.पू.	दक्षिणी मेसोपोटामिया में सबसे पुराने मंदिरों का बनना
लगभग 3200 ई.पू.	मेसोपोटामिया में लेखन-कार्य की शुरुआत
लगभग 3000 ई.पू.	उरुक का एक विशाल नगर के रूप में विकास: कांस्य औजारों के इस्तेमाल में बढ़ोतरी
लगभग 2700-2500 ई.पू.	प्रारंभिक राजा, जिनमें संभवतः महान शासक गिलगेश भी शामिल है
लगभग 2600 ई.पू.	कीलाकर (क्यूनिफॉर्म) लिपि का विकास
लगभग 2400 ई.पू.	सुमेरियन के स्थान पर अक्कादी भाषा का प्रयोग
2370 ई.पू.	सरगोन, अक्काद सम्राट
लगभग 2000 ई.पू.	सीरिया, तुर्की और मिस्र तक कोलाकार लिपि का प्रसार; महत्वपूर्ण शहरी केंद्रों के रूप में मारी बेबीलोन का उद्भव
लगभग 1800 ई.पू.	गणितीय मूलपाठों की रचना; अब सुमेरियन बोलचाल की भाषा नहीं रही
लगभग 1100 ई.पू.	असीरियाई साम्राज्य की स्थापना

लगभग 1000 ई.पू.	लोहे का उपयोग
720-610 ई.पू.	असीरियाई साम्राज्य
668-627 ई.पू.	असुरबानिपाल का शासन
331 ई.पू.	सिकंदर ने बेबीलोन पर विजय प्राप्त की
लगभग पहली शताब्दी (ईस्वी)	अक्कादियन और कीलाकार लिपि प्रयोग में रहीं
1850	कीलाकार लिपि के अक्षरों को पहचाना व पढ़ा गया

निष्कर्ष

प्रारंभिक समाज का उद्भव एक महत्वपूर्ण अध्याय है जो मानव सभ्यता की उल्लेखनीय यात्रा को स्पष्ट करता है। प्रारंभिक समाज की कहानी मानव नवाचार और अनुकूलन की है। इन प्राचीन समुदायों ने भूमि पर खेती की, संसाधनों व खनिज तत्वों का दोहन किया और भाषा, कला एवं संस्कृति के जटिल ताने-बाने बनाए। कृषि का विकास, लिखित भाषा का विकास और स्मारकीय वास्तुकला का निर्माण इस उल्लेखनीय यात्रा की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। ऐसे ही उदाहरणों पर हम विश्व इतिहास में भी प्रारंभिक समाज के उद्भव के दौरान विचार करते हैं, हम उनके द्वारा दिए गए अमूल्य पाठों को पहचानते हैं- अनुकूलन, सहयोग और बाधाओं को दूर करने के लिए मानव आत्मा की असीम क्षमता के महत्त्व को समझते हैं।

महत्वपूर्ण शब्दावलियाँ

- ❖ **अक्कादियन:** एक प्राचीन सेमिटिक भाषा जिसने 2400 ईसा पूर्व के आसपास मेसोपोटामिया में धीरे-धीरे सुमेरियन की जगह ले ली। यह 2,000 से ज़्यादा सालों तक इस्तेमाल में रही।
- ❖ **सुमेरियन:** मेसोपोटामिया की सबसे पुरानी ज्ञात भाषा। 2400 ईसा पूर्व के बाद धीरे-धीरे इसका स्थान अक्कादियन भाषा ने ले लिया।
- ❖ **असीरिया:** मेसोपोटामिया का एक क्षेत्र जो 1100 ईसा पूर्व के आसपास असीरियन साम्राज्य की स्थापना के बाद असीरिया के नाम से जाना जाने लगा।
- ❖ **श्रम विभाजन:** शहरी जीवन की एक विशेषता जहाँ विभिन्न व्यक्ति या समूह विभिन्न कार्यों या कौशल में महारत प्राप्त करते हैं, जैसे धातुकर्म या कृषि।
- ❖ **पट्टिकाएँ (Tablets):** मिट्टी या पत्थर की पट्टिकाएँ जिन पर मेसोपोटामिया की महत्वपूर्ण लिपि (क्यूनिफॉर्म लिपि) अंकित थी। इनका इस्तेमाल रिकॉर्ड रखने और संचार सहित विभिन्न उद्देश्यों के लिए किया जाता था।
- ❖ **क्यूनिफॉर्म:** लेखन की एक प्रणाली जिसमें मिट्टी की पट्टियों पर पच्चर के आकार के चिह्नों को दबाया जाता था। इसका उपयोग मेसोपोटामिया में विभिन्न भाषाओं को लिखने के लिए किया जाता था।
- ❖ **सेमाइट्स:** प्राचीन निकट पूर्व में रहने वाले लोगों का एक समूह, जिसमें अक्कादियन भी शामिल थे, जो सेमिटिक भाषाएँ बोलते थे।



साम्राज्य का उदय

संदर्भ: इस अध्याय में NCERT पाठ्यपुस्तक की कक्षा-XI (विश्व इतिहास के कुछ विषय) के अध्याय-2 व 3 का सारांश शामिल है।

परिचय

मेसोपोटामिया का इतिहास विभिन्न सभ्यताओं के विकास के साथ एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक केंद्र के रूप में कार्य करता है। असीरियाई साम्राज्य पर ईरानियों के नियंत्रण से लेकर मेसीडोन के अलेक्जेंडर द्वारा इसे समाप्त करने तक, इस क्षेत्र ने साम्राज्य की शक्ति के उत्थान और पतन को देखा। रोमन साम्राज्य के अंतिम समय में सैन्य चुनौतियों, सामाजिक बदलावों और ईसाई धर्म को अपनाने जैसी महत्वपूर्ण घटनाओं ने इसके अंतिम दिनों को आकार दिया। साथ ही चंगेज खान के नेतृत्व में मंगोल साम्राज्य ने विजय और विनाश का एक नया प्रतिरूप निर्मित किया, जिसने मध्य एशिया के सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य को नया रूप दिया। चंगेज खान की सैन्य रणनीति ने खानाबदोश समुदायों को एक सशक्त साम्राज्य में बदल दिया, जिसने एक ऐसी धरोहर छोड़ी, जो विभिन्न दृष्टिकोणों को चुनौती देती है। राजनीतिक बदलावों के बीच, व्यापार और धर्मों जैसे- ईसाई और इस्लाम धर्म का एकीकरण विशेष भूमिका निभाता है।

एक अवलोकन

- मेसोपोटामिया में साम्राज्य स्थापित होने के दो सहस्राब्दी बाद तक उस क्षेत्र तथा उसके पूर्व और पश्चिम में साम्राज्य निर्माण के विविध प्रयत्न होते रहे। जिसमें ईरानियों ने 6वीं शताब्दी ईसा पूर्व तक असीरियन साम्राज्य पर नियंत्रण स्थापित कर लिया था। 4वीं शताब्दी ईसा पूर्व के अंत में मेसीडोन के अलेक्जेंडर की विजय के उपरांत इसमें एक महत्वपूर्ण मोड़ आया, जिसने उत्तरी अफ्रीका, पश्चिम एशिया और ईरान में हेलेनिस्टिक संस्कृति को फैलाया। रोमन गणराज्य ने सिकंदर के विखंडित साम्राज्य के बाद के अवसरों का लाभ उठाते हुए उत्तरी अफ्रीका और पूर्वी भूमध्य सागर में अपने प्रभाव का विस्तार किया। भाषायी विविधता और धार्मिक बदलावों से चिह्नित रोमन साम्राज्य को आंतरिक संघर्षों तथा बाहरी दबावों का सामना करना पड़ा, जिसके कारण 5वीं शताब्दी ई.पू. तक पश्चिम में इसका पतन हो गया।
- पश्चिमी रोमन साम्राज्य के पतन से पैदा हुए खालीपन को 9वीं शताब्दी ई. में पवित्र रोमन साम्राज्य के उदय से भरा गया, जिसने निरंतरता का दावा किया। इस बीच, पूर्वी रोमन साम्राज्य 7वीं से 15वीं शताब्दी तक अरब और इस्लामी साम्राज्यों के प्रभाव में आ गया, जिससे ग्रीक तथा इस्लामी परंपराओं के बीच एक समृद्ध संपर्क को बढ़ावा मिला।
- इन भू-राजनीतिक बदलावों के दौरान, व्यापार नेटवर्क ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसने साम्राज्य-निर्माण और संसाधन नियंत्रण की खोज को बढ़ावा दिया। सभ्यता के विकास के साथ ही अनेक साम्राज्यों का उदय और पतन हुआ, जो प्रायः उत्तरी भाग में चरवाहे लोगों के साथ संघर्षों से प्रभावित थे। फ़ारसी, ग्रीक, लैटिन और अरबी जैसी भाषाओं की प्रमुखता ने क्षेत्र में विविध सांस्कृतिक समामेलन (Cultural amalgamation) को दर्शाया।



चित्र 2.1: कोरींथ के यूनानी नगर के भग्नावशेष

विचारणीय बिंदु

आपके अनुसार पाँचवीं शताब्दी में पश्चिमी रोमन साम्राज्य के पतन और विखंडन के मुख्य कारण क्या थे? लेकिन आपको क्यों लगता है कि पूर्वी रोमन साम्राज्य (बाईजेंटिन साम्राज्य) बरकरार रहा और समृद्ध हुआ?



- ईसाई धर्म और इस्लाम जैसे धर्म इन विशाल साम्राज्यों के भीतर विभिन्न जातियों एवं भाषाओं को आकर्षित करते हुए, एकीकृत शक्तियों के रूप में उभरे। साम्राज्यों की स्थिरता अलग-अलग थी, मंगोल साम्राज्य चरवाहों के नेतृत्व में एक सफल उदाहरण के रूप में सामने आया।
- यह ऐतिहासिक चित्रमाला (historical panorama) विजय, सांस्कृतिक समावेशन और धार्मिक गतिशीलता के जटिल अंतर्संबंध को उजागर करती है, जिसने सदियों से मेसोपोटामिया क्षेत्र में साम्राज्यों के विकास की दिशा को आकार दिया।

कालक्रम दो: (लगभग 100 ईसा पूर्व से 1300 ईसवी)

इस कालक्रम के केंद्र बिंदु राज्य और साम्राज्य हैं। इनमें से कुछ, जैसे कि रोमन साम्राज्य, बहुत बड़े थे और तीन महाद्वीपों में फैले हुए थे। इस समय प्रमुख धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराएँ विकसित हुईं तथा बौद्धिक गतिविधियों से जुड़ी संस्थाओं का उदय हुआ। पुस्तकें लिखी गईं और विचार महाद्वीपों के आर-पार फैलने लगे। कई ऐसी वस्तुएँ जो आज हमारे दैनिक जीवन का हिस्सा हैं, इस काल में पहली बार प्रयोग में आईं।

तालिका 2.1: कालक्रम: अफ्रीका और यूरोप

तिथि	अफ्रीका	यूरोप
100-50 ई.पू.	दक्षिण पूर्व एशिया से केले पूर्वी अफ्रीका तक समुद्री मार्ग से लाए गए।	स्पार्टेकस 100,000 गुलामों का नेतृत्व करते हैं।
50-1	क्लियोपेट्रा, मिस्र की रानी (51-30 ई.पू.)	रोम के कोलस्सम का निर्माण (73 ई.पू.)
1-50 ई.		
50-100		
100-150	सिकंदरिया के नायक ने भाप पर चलाने वाली मशीन बनाई।	रोमन साम्राज्य शिखर पर
150-200	सिकंदरिया के टॉलेमी ने भूगोल पर एक पुस्तक लिखी।	
200-250		
250-300		
300-350	एक्सम (Axum) (330) में ईसाई धर्म की शुरुआत हुई।	कॉन्स्टेंटाइन सम्राट बनते हैं, और कुस्तुन्तुनिया शहर की स्थापना करते हैं।
350-400		रोमन साम्राज्य का पूर्व और पश्चिम दो बराबर भागों में विभाजन।
400-450	यूरोप के वैडल लोगों द्वारा उत्तरी अफ्रीका में राज्य की स्थापना (429)	उत्तर और मध्य यूरोप के कबीलों का रोमन साम्राज्य पर आक्रमण किया।
450-500		गॉल (फ्रांस) के क्लोविस का ईसाई धर्म को अपनाना (496)
500-550		इटली में सेंट बेडिक्ट द्वारा एक मठ की स्थापना (526). इंग्लैंड में सेंट ऑगस्टीन द्वारा ईसाई धर्म की शुरुआत (596), गौगो महान (590) द्वारा रोमन कैथोलिक चर्च की नींव रखना।
550-600		
600-650	कुछ मुसलमानों का अबीसीनिया (615) से प्रवास (हिजरा)	
650-700	अरबी मुसलमान की मिस्र के दक्षिण में स्थित नूबिया से संधि (652)	बेडे द्वारा इंग्लिश चर्च और व्यक्तियों का इतिहास लिखा गया
700-750		
750-800		
800-850	घाना में राज्य का उदय	फ्रैंक्स के राजा शार्लमेन को पवित्र रोमन सम्राट की उपाधि (800)
850-900		कीव और नोवगोरोड में प्रथम रूसी राज्यों की स्थापना
900-950		पश्चिमी यूरोप पर समुद्री दस्युओं के आक्रमण
950-1000		
1000-50		सालेर्नो, इटली में मेडिकल स्कूल की स्थापना (1030)
1050-1100	अलमोरविद राज्य (1056-1147) घाना से दक्षिणी स्पेन तक विस्तार।	नॉर्मांडी के विलियम का इंग्लैंड पर आक्रमण और फिर शासक बनना (1066); प्रथम धर्मयुद्ध की घोषणा (1095)

1100-50	जिम्बाब्वे का सोने और तांबे की शिल्पकृतियों के उत्पादन और लंबी दूरी के व्यापार के केंद्र के रूप में उदय (1120-1450)।	
1150-1200	इथियोपिया में ईसाई चर्च की स्थापना (1200), पश्चिमी अफ्रीका में माली राज्य में टिम्बुकटू एक शिक्षा के केंद्र के रूप में	नोर्ते दम कैथेड्रल का निर्माण शुरू हुआ (1163)
1200-50		संवेदना और सादगी पर बल देते हुए असीसी के सेंट फ्रांसिस द्वारा एक मठ संगठन की स्थापना (1209); मैमाकार्टा पर हस्ताक्षर करने वाले राजा के विरुद्ध इंग्लैण्ड के लॉर्ड्स का विद्रोह, राजा कानून के अनुसार शासन करने को सहमत।
1250-1300		ऑस्ट्रिया में वर्ष 1918 तक राज्य करने वाले हेप्सबर्ग वंश की स्थापना

तालिका 2.2: कालक्रम: एशिया और दक्षिण एशिया

तिथि	एशिया	दक्षिण एशिया
100-50 ई.पू.	चीन में हान साम्राज्य, एशिया से यूरोप तक रेशम मार्ग का विकास	शक और बाख्त्री यूनानियों द्वारा उत्तर-पश्चिम में राज्यों की स्थापना; दक्कन में सातवाहनों का उदय।
50-1		दक्षिण एशिया, दक्षिण-पूर्व, पूर्व एशिया और यूरोप में बढ़ता व्यापार।
1-50 ई.	रोम साम्राज्य के एक प्रांत जूडिया में ईसा, अरब पर रोमन आक्रमण (24)	
50-100		उत्तर पश्चिम और मध्य एशिया में कुषाण राज्य की स्थापना।
100-150	चीन में कागज का आविष्कार (118); प्रथम भूकंप-लेखी का निर्माण (132)	
150-200		
200-250	हान साम्राज्य का अंत (221); फ्रांस में ससानियों का राज्य (226)	
250-300	राजमहल में चाय, चीन (262), चुंबकीय कुतुबनुमा का प्रयोग, चीन (270)	
300-350	चीनियों द्वारा घुड़सवारी करते समय रकाब का उपयोग।	
350-400		गुप्त वंश की स्थापना (320)
400-450		फा-शियन की चीन से भारत की यात्रा (399)
450-500		आर्यभट्ट, खगोलज्ञ और गणितज्ञ
500-550		
550-600	जापान में बौद्ध धर्म का आगमन (594); चीन में अनाज के आवागमन के लिए 34 वर्षों में 5,000,000 श्रमिकों की मदद से ग्रेंड कैनाल का निर्माण (584-618)	एहोल और बादामी में चालुक्य मंदिरों का निर्माण
600-650	चीन में तांग वंश (618); हजरत मोहम्मद का मदीना की ओर प्रस्थान, हिजरी युग का आरंभ (622); ससानी साम्राज्य का पतन (642)	जुआंग जांग का चीन से भारत की ओर प्रस्थान, नालंदा का शिक्षा के एक महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में उदय
650-700	उमय्या खिलाफत (661-750)	

700-750	उमय्या की एक शाखा द्वारा स्पेन पर विजय, चीन में तांग वंश की स्थापना	अरबों की सिंध पर विजय (712)
750-800	अब्बासी खिलाफत की स्थापना और बगदाद का एक मुख्य सांस्कृतिक और वाणिज्यिक केंद्र बनना	
800-850	कंबोडिया में खमेर राज्य की स्थापना (802)	
850-900	प्रथम मुद्रित पुस्तक, चीन (868)	
900-950		
950-1000	चीन में कागजी मुद्रा का प्रयोग।	
1000-50	इब्न सिना; एक फारसी डॉक्टर चिकित्सा के ऊपर एक पुस्तक लिखता है जिसका अनुसरण सदियों तक किया जाता है।	महमूद गज़नी का उत्तर-पश्चिम पर आक्रमण; अलबरूनी का भारत आगमन, तंजौर में राजराजेश्वर मंदिर का निर्माण।
1050-1100	अल्प अरसालान द्वारा तुर्की साम्राज्य की स्थापना (1075)	
1100-50	चीन में आतिशबाजी के प्रदर्शन का पहला लिखित विवरण।	कल्हण द्वारा राजतरंगिणी की रचना की गई।
1150-1200	कंबोडिया का अंकोर साम्राज्य अपनी चरम सीमा पर (1180), अंकोर वाट में मंदिर प्रांगण।	
1200-50	चंगेज़ खान द्वारा सत्ता को दृढ़ करना (1206)	दिल्ली सल्तनत की स्थापना (1206)
1250-1300	चंगेज़ खान का पोता, कुबलई खान चीन के सम्राट बनते हैं।	अमीर खुसरो (1253-1325) ने कविता और संगीतके नये रूपों की शुरुआत की; कोणार्क का सूर्य मंदिर।

तालिका 2.3: कालक्रम: अमेरिका और प्रशांत द्वीप समूह

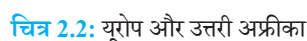
तिथि	अमेरिका	ऑस्ट्रेलिया/प्रशांत द्वीप समूह
100-50 ई.पू.		
50-1		
1-50 ई.		
50-100		
100-150		
150-200		
200-250		
250-300		
300-350		मेक्सिको में टीयोटीहुकान (Teotihuacan) नगर-राज्य की स्थापना, माया के आनुष्ठानिक केंद्र, खगोल शास्त्र का विकास, चित्रमय लिपि।
350-400		
400-450		
450-500		
500-550		
550-600		
600-650		
650-700		
700-750		
750-800		
800-850		
850-900		
900-950		
950-1000	उत्तर अमेरिका में प्रथम नगर का निर्माण (लगभग 990)	पोलीनेशिया के मोरी मार्ग निर्देशक द्वारा न्यूजीलैंड की खोज

तीन महाद्वीपों में फैला हुआ साम्राज्य

पाँचवीं शताब्दी और उसके बाद के समय से पश्चिम में साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया, लेकिन अपने पूर्वी आधे भाग में अखंड और अत्यंत समृद्ध बना रहा। खिलाफत इसी समृद्धि की नींव पर स्थापित हुआ और उसने इसकी शहरी तथा धार्मिक परंपराओं को विरासत में प्राप्त किया।

रोम और ईरान: प्राचीन काल की महाशक्तियाँ

- ❑ ईसा मसीह के जन्म से लेकर 7वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक के काल में, दो शक्तिशाली साम्राज्यों, रोम और ईरान, का यूरोप, उत्तरी अफ्रीका तथा मध्य पूर्व तक के विशाल क्षेत्रों पर प्रभुत्व था।



- उनके साम्राज्य एक-दूसरे के बिल्कुल पास थे, उन्हें भूमि की एक संकरी पट्टी जिसके किनारे फ़रात नदी बहा करती थी, अलग करती थी। इन साम्राज्यों की भौगोलिक निकटता, ने प्रतिद्वंद्विता और संघर्ष के दीर्घकालिक इतिहास को बढ़ावा दिया।
- रोमन साम्राज्य का हृदय भूमध्य सागर था, जो स्पेन से लेकर सीरिया तक फैला हुआ था, रोम उत्तरी और दक्षिणी दोनों दिशाओं में आस-पास के क्षेत्रों पर नियंत्रण रखता था। सीमाएँ उत्तर में राइन और डेन्यूब नदियों तथा दक्षिण में सहारा रेगिस्तान तक फैली हुई थीं। दूसरी ओर, ईरान का प्रभाव कैस्पियन सागर के दक्षिण से लेकर पूर्वी अरब तक फैला हुआ था और कभी-कभी इसमें अफ़ग़ानिस्तान के महत्वपूर्ण हिस्से भी शामिल थे। (चित्र 2.2 देखें)
- इन दो महाशक्तियों ने प्रभावी रूप से विश्व का विभाजन कर दिया, जिसे चीनियों द्वारा कहा जाता है, जो पश्चिमी क्षेत्रों को दर्शाता है।

रोमन इतिहास के स्रोत:

रोम के इतिहासकारों के पास स्रोत सामग्री का विशाल भंडार है। इस संपूर्ण स्रोत सामग्री को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:

(क) पाठ्य सामग्री (ख) प्रलेख या दस्तावेज़ और (ग) भौतिक अवशेष। पाठ्य स्रोतों में शामिल हैं: समकालीन व्यक्तियों द्वारा लिखा गया उस काल का इतिहास (जिसे 'वर्ष-वृत्त' (Annals) कहा जाता था, क्योंकि ये वृत्तान्त प्रतिवर्ष लिखे जाते थे), पत्र, व्याख्यान, प्रवचन, कानून, आदि। दस्तावेज़ी स्रोत मुख्य रूप से उत्कीर्ण अभिलेखों या पैपाइरस पेड़ के पत्तों आदि पर लिखी गई पांडुलिपियों के रूप में मिलते हैं।

उत्कीर्ण अभिलेख आमतौर पर पत्थर की शिलाओं पर खोदे जाते थे, इसलिए वे नष्ट नहीं हुए और बहुत बड़ी मात्रा में यूनानी एवं लातिनी में पाए गए हैं। पैपाइरस एक सरकंडा जैसा पौधा था जो मिस्र में नील नदी के किनारे उगा करता था और उसी से लेखन सामग्री तैयार की जाती थी। रोज़मर्रा की जिंदगी में उसका व्यापक इस्तेमाल किया जाता था। हजारों की संख्या में संविदापत्र, लेख, संवादपत्र और सरकारी दस्तावेज़ आज भी 'पैपाइरस' पत्र पर लिखे हुए पाए गए हैं तथा पैपाइरोलोजिस्ट यानी पैपाइरस शास्त्री कहे जाने वाले विद्वानों द्वारा प्रकाशित किए गए हैं।

भौतिक अवशेषों में अनेक प्रकार की चीज़ें शामिल हैं, जो मुख्य रूप से पुरातत्त्वविदों को (खुदाई और क्षेत्र सर्वेक्षण आदि के जरिए) अपनी खोज में मिलती हैं; जैसे इमारतें, स्मारक और अन्य प्रकार की संरचनाएँ, मिट्टी के बर्तन, सिक्के, पच्चीकारी का सामान, यहाँ तक कि संपूर्ण भू-दृश्य (जैसे, हवाई छायांकन द्वारा प्राप्त)। इनमें से प्रत्येक स्रोत हमें अतीत के बारे में एक प्रकार की ही जानकारी देते हैं। इन जानकारियों को मिलाकर देखना अत्यंत उपयोगी हो सकता है, लेकिन कितनी अच्छी तरह से इतिहासकार इन स्रोतों के तथ्यों में अंतर्संबंध बनाता है यह उसकी कुशलता पर निर्भर करता है।



चित्र 2.3: पैपाइरस पत्र

साम्राज्य का आरंभिक काल:

रोमन साम्राज्य को मोटे तौर पर दो चरणों में बाँटा जा सकता है, जिन्हें 'पूर्ववर्ती' और 'परवर्ती' चरण कह सकते हैं। इन दोनों चरणों के बीच तीसरी शताब्दी का समय आता है जो उन्हें दो ऐतिहासिक भागों में विभाजित करता है। दूसरे शब्दों में कहें तो तीसरी शताब्दी के मुख्य भाग तक की संपूर्ण अवधि को 'पूर्ववर्ती साम्राज्य' और उसके बाद की अवधि को 'परवर्ती साम्राज्य' कहा जा सकता है।

सम्राट त्राजान का स्वप्न भारत की विजय?

भयंकर भूकंप से पीड़ित एंटीऑक में सर्दियों के बाद (115/16), 116 में त्राजान फ़रात नदी के रास्ते आगे की ओर बढ़ता हुआ पार्थियन की राजधानी टेसीफून तक चला गया और फिर वहाँ फ़ारस की खाड़ी के सिरे पर पहुँच गया। (इतिहासकार) कैसियस डियो (Cassius Dio) के अनुसार वहाँ पर वह भारत की ओर जाने वाले किसी वाणिज्यिक पोत को लालायित नज़रों से देख रहा था और चाह रहा था कि काश वह सिकंदर जैसा जवान होता।

स्थिरता और गृह युद्ध: प्रथम दो शताब्दी

रोमन साम्राज्य की पहली दो शताब्दियाँ अपेक्षाकृत स्थिर थीं, तथा उनमें कोई गृह युद्ध नहीं हुआ।

- सिंहासन, जो अक्सर पारिवारिक वंशक्रम पर आधारित था, ने इस स्थिरता में योगदान दिया। जबकि इस अवधि में बाहरी युद्ध हुए, टिबेरियस (ऑगस्टस के दत्तक पुत्र) द्वारा विरासत में मिले विशाल साम्राज्य के साथ, 'ऑगस्टन युग' को आंतरिक संघर्ष और सदियों की सैन्य विजय के बाद शांति लाने के लिए याद किया जाता है।
- प्रारंभिक साम्राज्य में, 113-17 ई. में यूफ्रेट्स के पार विस्तार करने का त्राजान का प्रयास एक उल्लेखनीय अभियान के रूप में जाना जाता है। हालाँकि, इस क्षेत्र को अंततः उसके उत्तराधिकारियों द्वारा छोड़ दिया गया, जिससे आगे के साम्राज्य विस्तार की सीमाओं पर प्रकाश डाला गया।



चित्र 2.4: रोम के फोरम जूलियम की दुकानें। पुराने रोमन फोरम के विस्तार के लिए 51 ई. पू. के बाद स्तम्भों वाले इस चौक (पिआज़ा) को बनाया गया।

अवशोषण के माध्यम से रोमन विस्तार:

- रोमन शासन की विशेषता यह थी कि अनेक 'आश्रित' राज्यों को रोमन प्रांतीय क्षेत्र में सम्मिलित करके प्रत्यक्ष नियंत्रण का क्रमिक विस्तार किया जाता था।

निकटवर्ती पूर्व

रोमन साम्राज्य के भूमध्य सागरीय क्षेत्र में रहने वाले लोगों की दृष्टि से निकटवर्ती पूर्व का मतलब था भूमध्यसागर के बिल्कुल पूर्व का इलाका; मुख्य रूप से सीरिया, फ़िलिस्तीन और मेसोपोटामिया के प्रांत जो रोमन साम्राज्य के हिस्से थे और मोटे तौर पर आसपास के क्षेत्र, जैसे अरब।

राज्य (kingdom)

ये स्थानीय राज्य थे जो रोम के 'आश्रित' थे। रोम को भरोसा था कि ये शासक अपनी सेनाओं का प्रयोग रोम के समर्थन में करेंगे और बदले में रोम ने उनका अलग अस्तित्व स्वीकार कर लिया।

- दूसरी शताब्दी के प्रारंभ तक, फ़रात नदी के पश्चिम के अधिकांश राज्य (निकट पूर्व ऐसे राज्यों से आच्छादित था) रोम में समाहित हो चुके थे, जिससे यह पता चलता है कि रोम ने विविध क्षेत्रों को अपने में समाहित कर लिया था।
- इनमें से कुछ राज्य बहुत ही धनी थे, उदाहरण के लिए, हेरोदेस के राज्य में प्रति वर्ष 5.4 मिलियन दीनार के बराबर धन मिलता था, जो 125,000 किलोग्राम सोने के बराबर था! दीनार एक रोमन चांदी का सिक्का था, जिसमें लगभग 4 ½ ग्राम शुद्ध चांदी होती थी।

बदलती पावर डायनेमिक्स: इटली बनाम प्रांत

- दूसरी और तीसरी शताब्दियों के दौरान, अधिकतर प्रशासक तथा सैनिक अफ़सर इन्हीं उच्च प्रांतीय वर्गों में से होते थे।
- इस प्रकार उनका एक नया संभ्रांत वर्ग बन गया जो कि सैनेट के सदस्यों की तुलना में कहीं अधिक शक्तिशाली था, क्योंकि उसे सम्राटों का समर्थन प्राप्त था।
- सम्राट गैलेनियस (253-68): जैसे-जैसे यह नया समूह उभर कर सामने आया, सम्राट गैलीनस (253-68) ने सैनेटरों को सैनिक कमान से हटा कर इस नए वर्ग के उदय को सुदृढ़ बना दिया। ऐसा कहा जाता है कि गैलीनस ने सैनेटरों को सेना में सेवा करने अथवा इस तक पहुँच रखने पर पाबंदी लगा दी थी ताकि साम्राज्य का नियंत्रण उनके हाथों में न जाने पाए।

राजनीतिक ढाँचा:

प्रिंसिपेट (शासन) और सीनेट

- 27 ईसा पूर्व में ऑगस्टस द्वारा स्थापित प्रिंसिपेट (शासन) ने शासन के अग्रभाग का प्रतिनिधित्व किया, जिसमें सम्राट को पूर्ण शासक के बजाय 'प्रमुख नागरिक' (लैटिन में प्रिन्सेप्स) के रूप में चित्रित किया गया था।

गणतंत्र

गणतंत्र एक ऐसी व्यवस्था का नाम था जिसमें सत्ता की वास्तविकता सीनेट के पास थी, जो धनी परिवारों के एक छोटे समूह द्वारा संचालित एक निकाय था, जो 'कुलीन वर्ग' का गठन करते थे। व्यवहार में, गणतंत्र कुलीन वर्ग की सरकार का प्रतिनिधित्व करता था, जिसका संचालन सीनेट नामक निकाय के माध्यम से होता था। गणतंत्र 509 ईसा पूर्व से 27 ईसा पूर्व तक चला, जब इसे ऑक्टेवियन ने उखाड़ फेंका, जो जूलियस सीज़र का दत्तक पुत्र और उत्तराधिकारी था, जिसने बाद में अपना नाम बदलकर ऑगस्टस रख लिया। सीनेट की सदस्यता आजीवन थी, और धन और पद-धारण जन्म से अधिक मायने रखता था।

- ❑ इस निर्माण का उद्देश्य सीनेट के प्रति सम्मान बनाए रखना था, जो एक ऐतिहासिक निकाय था जिसने पहले रोम को नियंत्रित किया था, उन दिनों में जब वह एक गणतंत्र था।
- ❑ सीनेट रोम में सदियों से अस्तित्व में थी और अभिजात वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था थी।
- ❑ सम्राट की केंद्रीय सत्ता के बावजूद, सीनेट एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी, और सम्राटों का मूल्यांकन अक्सर इस निकाय के साथ उनके संबंधों के आधार पर किया जाता था।

प्रमुख संस्थाएँ: सम्राट, सीनेट और सेना

- ❑ रोमन साम्राज्य का राजनीतिक परिदृश्य तीन मुख्य संस्थाओं के इर्द-गिर्द घूमता था- सम्राट, सीनेट और सेना।
- ❑ सम्राट अंतिम अधिकारी होने के बावजूद, उसे सीनेट के साथ संबंधों को संतुलित करना पड़ता था। रोमनों के पास एक वेतनभोगी पेशेवर सेना थी, जहाँ सैनिकों को कम से कम 25 साल की सेवा देनी होती थी।
- ❑ पेशेवर रोमन सेना, भर्ती किए गए फ़ारसी समकक्ष से अलग, एक शक्तिशाली और कभी-कभी अप्रत्याशित बल के रूप में उभरी, जिसने सम्राटों के भाग्य को प्रभावित किया। सैनिक लगातार बेहतर वेतन और सेवा शर्तों के लिए आंदोलन करते रहते थे।
- ❑ सीनेट में सेना के प्रति शत्रुता और आशंका बनी रहती थी, क्योंकि इसकी प्रकृति अप्रत्याशित तथा संभावित रूप से हिंसक थी, एवं यह आशंका तीसरी शताब्दी में बढ़ते सैन्य खर्चों को वित्तपोषित करने के लिए बढ़ाए गए कराधान के कारण आर्थिक तनाव से और भी बढ़ गई थी।

आर्थिक विस्तार:**प्रादेशिक संगठन और कराधान**

- ❑ इटली को छोड़कर, सभी साम्राज्य क्षेत्रों को प्रांतों में संगठित किया गया और उन पर कर लगाया गया।
- ❑ दूसरी शताब्दी में अपने चरम पर, रोमन साम्राज्य स्कॉटलैंड से आर्मेनिया तक तथा सहारा से फ़रात नदी तक फैला हुआ था।

डॉक्टर गैलेन के अनुसार रोमन शहरों का ग्रामीण क्षेत्रों के साथ बर्ताव

कई प्रांतों में लगातार कई वर्षों से पड़ रहे अकाल ने साधारण से साधारण बुद्धिवाले आदमी को भी यह बता दिया कि लोगों में कुपोषण के कारण बीमारियाँ हो रही हैं। शहर में रहने वाले लोगों का फ़सल कटाई के शीघ्र बाद अगले पूरे वर्ष के लिए पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न अपने भंडारों में भर लेना एक रिवाज था। सारा गेहूँ, जौ, सेम तथा मसूर और दालों का काफी बड़ा हिस्सा शहरियों द्वारा ले जाने के बाद भी कई प्रकार की दालें किसानों के लिए बची रह गई थीं। सर्दियों के लिए जो कुछ भी बचा था, उसे खा-पीकर खत्म कर देने के पश्चात् देहाती लोगों को वसंत ऋतु में अस्वास्थ्यकर खाद्यों पर निर्भर रहना पड़ा; उन्होंने पेड़ों की टहनियाँ, छालें, जड़ें, झाड़ियाँ, अखाद्य पेड़-पौधे और पत्ते खाकर किसी तरह अपने प्राणों को बचाए रखा।

गैलेन, ऑन गुड एण्ड बैड डाइट

- ❑ आधुनिक सरकारी ढाँचे के अभाव के बावजूद, साम्राज्य के शहरीकरण ने प्रशासन और कराधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

प्रशासनिक केंद्र के रूप में शहरीकरण:

- ❑ कार्थेज, अलेक्जेंड्रिया और एंटीओक जैसे महान शहरी केंद्रों ने शाही व्यवस्था की नींव रखी।
- ❑ इन शहरों ने 'सरकार' को प्रांतीय ग्रामीण इलाकों पर कर लगाने में सक्षम बनाकर शासन को सुविधाजनक बनाया, जिससे अत्यधिक धन अर्जित हुआ।
- ❑ अपने क्षेत्रों के प्रशासन और कर लगाने में रोमन राज्य के साथ स्थानीय उच्च वर्गों का सहयोग एक महत्वपूर्ण पहलू था।

सामाजिक व्यवस्था

शहरी जीवन और सामाजिक लाभ

- रोमन अर्थ में शहर, मजिस्ट्रेट, नगर परिषदों और उनके अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत गाँवों वाले क्षेत्रों के साथ शहरी केंद्र के रूप में कार्य करते थे।
- खाद्यान्न की कमी और अकाल के दौरान शहर में जीवन यापन करना आसान व लाभदायक था।
- सार्वजनिक स्नान-गृह रोम के शहरी जीवन की एक खास विशेषता थी (जब एक ईरानी शासक ने ऐसे स्नान-गृहों को ईरान में शुरू करने का प्रयत्न किया तो उसे वहाँ के पुरोहित वर्ग के क्रोध का सामना करना पड़ा! जल एक पवित्र वस्तु थी और सार्वजनिक-स्नान में उन्हें, जल का अपवित्रीकरण दिखता था)।
- शहरी लोगों को उच्च-स्तर के मनोरंजन उपलब्ध थे। उदाहरणार्थ, एक कैलेंडर से हमें पता चलता है कि एक वर्ष में कम से कम 176 दिन वहाँ कोई-न-कोई मनोरंजक कार्यक्रम या प्रदर्शन (Spectacula) अवश्य होता था!



चित्र 2.5: नाइम्स के पास पान दु गार्ड, फ्रांस, प्रथम सदी ई. रोम के इंजीनियरों ने तीन महाद्वीपों के पार पानी ले जाने के लिए विशाल जलसेतुओं (Aqueducts) का निर्माण किया।

सांस्कृतिक प्रथाओं का टकराव:

- ईरान में सार्वजनिक स्नानघर शुरू करने के प्रयास को पादरी वर्ग के प्रतिरोध का सामना करना पड़ा क्योंकि माना जाता था कि इससे पवित्र तत्व का अपमान होगा।
- सांस्कृतिक प्रथाओं के टकराव ने रोमन साम्राज्य की विविध प्रकृति को प्रदर्शित किया।

सांस्कृतिक विविधता: रोम बनाम ईरान

- ईरान के विपरीत, रोमन साम्राज्य में उल्लेखनीय सांस्कृतिक विविधता देखने को मिली। जबकि पार्थियन और बाद में सासानी लोगों ने मुख्य रूप से ईरानी आबादी पर शासन किया, रोमन साम्राज्य में शासन की एक सामान्य प्रणाली द्वारा एक साथ बंधे हुए क्षेत्रों और संस्कृतियों का मिश्रण शामिल था।
- लैटिन और ग्रीक साम्राज्य की भाषायी विविधता पर केंद्रित, प्राथमिक प्रशासनिक भाषाएँ थीं। रोमन साम्राज्य में, पूर्व में कुलीन वर्ग ग्रीक में बोलता और लिखता था, जबकि पश्चिम में कुलीन वर्ग लैटिन में बोलता एवं लिखता था।
- भाषायी विभाजन भूमध्य सागर तक फैला हुआ था, अफ्रीका में त्रिपोलिटानिया मुख्य रूप से लैटिन का उपयोग करता था, जबकि साइरेनिका में ग्रीक प्रचलित थी, जो भाषा क्षेत्रों के बीच की सीमा को चिह्नित करती थी। फिर भी, हर कोई, भाषा की परवाह किए बिना, एक ही सम्राट के शासन के अधीन था।



चित्र 2.6: रोमन छावनी, विन्दोनिंसा (Vindonissa), आधुनिक स्विट्जरलैंड एक रंगशाला, प्रथम शताब्दी ई. इसका प्रयोग सैन्य कवायद और से मनोरंजन के आयोजन हेतु किया जाता था।

नागरिकता में परिवर्तन और इटली के प्रभाव में गिरावट:

- संक्षेप में, पहली शताब्दी के बाद वाले वर्षों में और दूसरी शताब्दी के दौरान तथा तीसरी शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में सेना एवं प्रशासन में अधिकाधिक लोग प्रांतों से लिए जाने लगे, क्योंकि इन क्षेत्रों के लोगों को भी नागरिकता मिल चुकी थी जो पहले इटली तक ही सीमित थी।
- सैनेट पर तीसरी शताब्दी तक इतालवी मूल के लोगों का प्रभुत्व बना रहा, लेकिन बाद में प्रांतों से लिए गए सैनेटर बहुसंख्यक हो गए।
- इन प्रवृत्तियों से यह पता चलता है कि साम्राज्य में, राजनीतिक और आर्थिक दोनों ही दृष्टियों से, इटली का पतन हो चला था तथा भूमध्य सागर के अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध एवं शहरीकृत भागों, जैसे स्पेन के दक्षिणी हिस्सों, अफ्रीकी व पूर्वी भागों में नए संभ्रांत वर्गों का उदय हो रहा था।

विचारणीय बिंदु

हमने देखा कि रोमन साम्राज्य में महिलाओं की कानूनी स्थिति समकालीन मानकों की तुलना में अपेक्षाकृत मजबूत थी। रोमन साम्राज्य में महिलाओं के कुछ अधिकारों और भूमिकाओं पर चर्चा करें? ईरानी साम्राज्य में महिलाओं की भूमिकाओं की तुलना में ये कैसे थे?



तीसरी सदी का संकट:

- यदि पहली और दूसरी शताब्दियाँ कुल मिला कर शांति, समृद्धि तथा आर्थिक विस्तार की प्रतीक थीं, तो तीसरी शताब्दी आंतरिक तनाव के पहले बड़े संकेत लेकर सामने आई। 230 के दशक से साम्राज्य ने स्वयं को कई मोर्चों पर जूझता पाया। ईरान में, 225 ईस्वी में अपेक्षाकृत एक अधिक आक्रामक वंश उभर कर सामने आया (इस वंश के लोग स्वयं को 'ससानी' कहते थे) और केवल 15 वर्षों के भीतर यह तेजी से फ़रात की दिशा में फैल गया।
- तीन भाषाओं में खुदे एक प्रसिद्ध शिलालेख में, ईरान के शासक शापुर प्रथम ने दावा किया था कि उसने 60,000 रोमन सेना का सफ़ाया कर दिया है और रोम साम्राज्य की पूर्वी राजधानी एंटीऑक पर कब्ज़ा भी कर लिया है। इस बीच, कई जर्मन मूल की जनजातियों, अथवा राज्य समुदायों (जिनमें से प्रमुख एलमन्नाइ, फ्रैंक और गोथ थे) ने राइन तथा डैन्यूब नदी की सीमाओं की ओर बढ़ना शुरू कर दिया; और 233 से 280 तक की समूची अवधि में उन प्रांतों की पूरी सीमा पर बार-बार आक्रमण हुए जो काला सागर से लेकर आल्प्स एवं दक्षिणी जर्मनी तक फैले हुए थे।
- रोमवासियों को डैन्यूब से आगे का क्षेत्र छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा, जबकि इस काल के सम्राट उन लोगों के विरुद्ध लगातार युद्ध करते रहे, जिन्हें रोमवासी 'विदेशी बर्बर' (Barbarian) कहा करते थे।
- तीसरी शताब्दी में थोड़े-थोड़े अंतर से अनेक सम्राट (47 वर्षों में 25 सम्राट) सत्तासीन हुए जो इस तथ्य का स्पष्ट सूचक है कि इस अवधि में साम्राज्य को बेहद तनाव की स्थिति से गुजरना पड़ा।

परवर्ती साम्राज्य

आर्थिक विस्तार

- साम्राज्य में बंदरगाहों, खानों, खदानों, ईंट-भट्टों, जैतून के तेल की फैक्ट्रियों आदि की संख्या काफी अधिक थी, जिनसे उसका आर्थिक आधारभूत ढाँचा काफी मजबूत था। गेहूँ, अंगूरी शराब तथा जैतून का तेल मुख्य व्यापारिक मर्दें थीं जिनका अधिक मात्रा में उपयोग होता था और ये मुख्यतः स्पेन, गैलिक प्रांतों, उत्तरी अफ्रीका, मिस्र तथा अपेक्षाकृत कम मात्रा में इटली से आती थीं, जहाँ इन फसलों के लिए सर्वोत्तम स्थितियाँ उपलब्ध थीं।
- गेहूँ, शराब और जैतून के तेल का व्यापार तथा उपभोग बड़े पैमाने पर किया जाता था, मुख्य रूप से स्पेन, गैलिक प्रांतों, उत्तरी अफ्रीका, मिस्र एवं कुछ हद तक इटली से प्राप्त होता था।
- तरल पदार्थों की आवाजाही 'एम्फोरा' नामक पात्रों द्वारा सुगम बनायी जाती थी, तथा पुरातात्विक साक्ष्यों से उनके आकार, उत्पत्ति और सामग्री के पुनर्निर्माण में मदद मिलती है।
- स्पैनिश जैतून का तेल, विशेष रूप से ड्रेसल 20 कंटेनर में, एक प्रमुख वाणिज्यिक उद्यम बन गया, जो 140-160 के वर्षों में अपने शीर्ष पर पहुँच गया।
- एम्फोरा वितरण मानचित्रों सहित पुरातात्विक खोजों से पता चला है कि स्पैनिश उत्पादकों ने इतालवी समकक्षों के साथ सफलतापूर्वक प्रतिस्पर्धा की, तथा व्यापक बाजारों पर कब्ज़ा किया।
- बाद में, उत्तरी अफ्रीका का प्रभुत्व पूर्व की ओर स्थानांतरित हो गया, और एजियन, दक्षिणी एशिया माइनर, सीरिया तथा फिलिस्तीन जैसे क्षेत्र शराब एवं जैतून के तेल के प्रमुख निर्यातक बन गए।



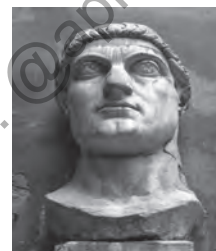
चित्र 2.7: फ्रांस के दक्षिणी तट के पास पोतभंग (पहली शती ई.)। ये एम्फोरा इतालवी हैं जिन पर फोंडी झील के निकट के उत्पादक की मुहर लगी हुई है।

क्षेत्रीय असमानताएँ:

- साम्राज्य के भीतर कुछ क्षेत्र, जैसे इटली में कैम्पेनिया, सिसिली, मिस्र में फयूम, गैलिली, बाइज़ेशियम (ट्यूनीशिया), दक्षिणी गॉल और बेएटिका (दक्षिणी स्पेन), शराब तथा गेहूँ जैसी वस्तुओं के निर्यात के माध्यम से अपनी असाधारण उर्वरता एवं समृद्धि के लिए जाने जाते थे।
- जबकि कुछ क्षेत्रों, जैसे आधुनिक अल्जीरिया में न्यूमिडिया (जहाँ ट्रांसह्यूमन्स का प्रचलन था) और स्पेन के अल्प विकसित उत्तरी भाग को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा।

प्रौद्योगिकी प्रगति:

- रोमन अर्थव्यवस्था में जल शक्ति के विविध अनुप्रयोग, जल-चालित मिलिंग प्रौद्योगिकी में प्रगति, स्पैनिश खानों में हाइड्रोलिक खनन तकनीक और रोमन खनन कार्यों के औद्योगिक पैमाने (विशेष रूप से सोने और चाँदी की खानों में) जैसी परिष्कृत विशेषताओं को प्रतिबिंबित किया।
- सुव्यवस्थित वाणिज्यिक और बैंकिंग नेटवर्क के अस्तित्व के साथ-साथ मुद्रा के व्यापक उपयोग ने रोमन आर्थिक प्रणालियों की परिष्कृतता पर और अधिक बल दिया।
- श्रम और दासता के मुद्दे ने इस आर्थिक जटिलता को बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।



चित्र 2.8: सम्राट कॉन्स्टेन्टाइन, 313 ई. की एक विशाल मूर्ति का हिस्सा।

परवर्ती पुराकाल

साम्राज्य की मौद्रिक प्रणाली:

- परवर्ती साम्राज्य में प्रथम तीन शताब्दियों से प्रचलित चाँदी-आधारित मौद्रिक प्रणाली समाप्त हो गई, क्योंकि स्पेन को खानों से चाँदी मिलनी बंद हो गई थी और सरकार के पास चाँदी की मुद्रा के प्रचलन के लिए पर्याप्त चाँदी नहीं रह गई थी।
- कांस्टेन्टाइन ने सोने पर आधारित नयी मौद्रिक प्रणाली स्थापित की और परवर्ती समूचे पुराकाल में इन मुद्राओं का भारी मात्रा में प्रचलन रहा।

श्रमिकों पर नियंत्रण:

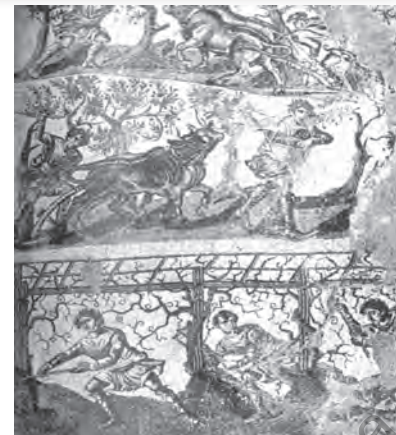
एक आर्थिक संस्था के रूप में दासता

- परवर्ती साम्राज्य में दासता, गहराई से जमी हुई यह प्रथा प्राचीन विश्व में रोमन साम्राज्य में कायम रही, यद्यपि अर्थव्यवस्था में इसकी व्यापकता भिन्न-भिन्न रही।
- चौथी शताब्दी में राज्य धर्म के रूप में ईसाई धर्म के उदय के बावजूद, गुलामी की संस्था बिना किसी गंभीर चुनौती के बनी रही। जबकि इटली का बड़ा हिस्सा दास श्रम पर निर्भर था, युद्ध में गिरावट के कारण दासों की आपूर्ति में कमी आई, जिससे दास प्रजनन (slave breeding) या मजदूरी श्रम जैसे सस्ते विकल्पों का उपयोग करने के लिए प्रेरित किया गया।
- जैसे-जैसे शांति स्थापित हुई, मजदूरी अधिक आम हो गई, विशेष रूप से सार्वजनिक कार्यों में जहाँ दासों के रखरखाव की लागत निषेधात्मक थी।
- दासों और स्वतंत्र लोगों को अक्सर व्यापार प्रबंधक के रूप में नियुक्त किया जाता था।
- कृषि लेखकों ने श्रम प्रबंधन पर जोर दिया, जिसमें निरंतर उत्पादन पर ध्यान दिया गया तथा स्वतंत्र श्रमिकों और दासों दोनों के लिए पर्यवेक्षण के महत्त्व पर बल दिया गया।
- बाद की शताब्दियों में मजदूरी श्रम अधिक व्यापक हो गया, जिसमें उच्च मजदूरी के कारण तीव्र निर्माण परियोजनाओं के लिए श्रमिकों को आकर्षित किया गया।
- ऋण अनुबंधों का उपयोग और यहाँ तक कि बच्चों को दासता में बेचने की प्रथाएँ भी प्रलेखित हैं। माता-पिता कभी-कभी अपने बच्चों को 25 साल की अवधि के लिए दासता में बेच देते थे।
- सम्राट अनस्टेसियस पाँचवीं शताब्दी में, उच्च मजदूरी की पेशकश करके दारा शहर के निर्माण के लिए विभिन्न क्षेत्रों से श्रमिकों को आकर्षित किया। पपीरी से मिले साक्ष्य बताते हैं कि छठी शताब्दी तक भूमध्यसागरीय क्षेत्र के कुछ हिस्सों में मजदूरी (wage labor) प्रचलित थी।

दासों के प्रति व्यवहार

कुछ ही समय बाद शहर के शासक ल्यूसियस पेडेनियस सेकंडस का उसके एक दास ने कत्ल कर दिया। कत्ल के पश्चात, पुराने रिवाज के अनुसार यह आवश्यक था कि एक ही छत के नीचे रहने वाले प्रत्येक दास को फाँसी दे दी जाए। परन्तु बहुत से निर्दोष लोगों को बचाने के लिए भीड़ एकत्र हो गई और दंगे शुरू हो गए। सैनेट भवन को घेर लिया गया हालाँकि सैनेट भवन में अत्यधिक कठोरता का विरोध किया जा रहा था। परन्तु अधिकांश सदस्यों ने परिवर्तन किए जाने का विरोध किया। जो सैनेट फाँसी देने के पक्ष में थे, उनकी बात मानी गई। परन्तु पत्थर और जलती हुई मशालें लिए भारी भीड़ ने इस आदेश को कार्यान्वित किए जाने से रोका। नीरो ने अभिलेख द्वारा इन लोगों को फटकार लगाई, उन सारे मार्गों पर सेना लगा दी गई जहाँ सैनिकों के साथ दोषियों को फाँसी पर चढ़ाने के लिए ले जाया जा रहा था।

— टैसिटस (55-117), आरंभिक साम्राज्य का इतिहासकार।



चित्र 2.9: सामने के पृष्ठ पर: आरंभिक तीसरी शती ई. चर्चल, अल्जीरिया की पच्चीकारी। यहाँ कृषि के दृश्य: ऊपर- बीज बोना च हल चलाना। नीचे- अंगूर के बागानों में काम करना।

सामाजिक श्रेणियाँ

रोमन साम्राज्य की सामाजिक संरचना:

- इतिहासकार टैसिटस ने प्रारंभिक साम्राज्य के प्रमुख सामाजिक समूहों का वर्णन इस प्रकार किया है: सैनेटर (पैट्रेस, शाब्दिक अर्थ: पिता); अश्वारोही वर्ग के प्रमुख सदस्य; जनता का सम्माननीय वर्ग, जिनका संबंध महान घरानों से था; फूहड़ निम्नतर वर्ग यानी कमीनकारू (प्लेब्स सोर्डिडा), जो उनके अनुसार, सर्कस और थिएटर तमाशे देखने के आदी थे; और अंततः दास। तीसरी शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में सैनेट की सदस्य संख्या लगभग 1,000 थी और कुल सैनेटरों में लगभग आधे सैनेटर अभी भी इतालवी परिवारों के थे।
- साम्राज्य के अंतिम वर्षों में सीनेटर और इक्विट्स (equites) एक एकीकृत अभिजात वर्ग में विलीन हो गए, जिसमें अफ्रीकी या पूर्वी मूल के परिवारों की संख्या बढ़ती गई। इक्विट्स ('शूरवीर' या 'घुड़सवार') पारंपरिक रूप से दूसरा सबसे शक्तिशाली और धनी समूह था। मूल रूप से, वे ऐसे परिवार थे, जिनकी संपत्ति उन्हें घुड़सवार सेना में सेवा करने के योग्य बनाती थी, इसलिए उन्हें इक्विट्स कहा जाता था।
- मध्यम वर्ग में नौकरशाही, सेना, समृद्ध व्यापारी और किसान जैसे शाही सेवा से जुड़े लोग शामिल थे। यह "सम्मानजनक" मध्यम वर्ग अक्सर सरकारी सेवा पर निर्भर था और राज्य द्वारा पोषित था।

- निम्नतर वर्ग, जिसे ह्यूमिलियोरेस (शाब्दिक अर्थ 'निम्न') कहा जाता था, में ग्रामीण श्रमिक, औद्योगिक श्रमिक, प्रवासी मजदूर, स्वरोजगार कारीगर, आकस्मिक मजदूर और दास शामिल थे।
- उत्तर रोमन अभिजात वर्ग, धनी होते हुए भी, गैर-कुलीन पृष्ठभूमि से आने वाले सैन्य अभिजात वर्ग की तुलना में कम शक्तिशाली था।
- पाँचवीं शताब्दी के प्रारंभिक काल के एक इतिहासकार ओलिंपिओडोरस (Olympiodorus) ने, जो एक राजदूत भी था, लिखा है कि रोम नगर में रहने वाले कुलीन परिवारों को उनकी संपदाओं से वार्षिक आय 4000 पाउंड सोने के बराबर होती थी; इसमें वह उपज शामिल नहीं थी जिसका उपभोग वे सीधे कर लेते थे।
- रोमन राज्य एक सत्तावादी शासन (authoritarian regime) के रूप में संचालित होता था, फिर भी चौथी शताब्दी तक रोमन कानून की एक मजबूत परंपरा उभर चुकी थी।
- रोमन कानून ने शाही शक्ति पर अंकुश लगाने का काम किया, जिससे एम्ब्रोस जैसे प्रभावशाली व्यक्तियों को चौथी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए कठोर सम्राटों से सामना करने का अवसर मिला।

पारिवारिक संरचना: रोमन एकल परिवार और कानूनी स्वतंत्रता

- रोमन समाज में, एक आधुनिक विशेषता एकल परिवार का प्रचलन था।
- वयस्क बेटे आमतौर पर अपने परिवार के साथ नहीं रहते थे, और वयस्क भाइयों का एक ही घर में रहना असामान्य था। हालाँकि, दासों को परिवार का हिस्सा माना जाता था।
- गणतंत्र के अंत तक, विवाह के एक सामान्य रूप ने पत्नियों को अपने पैतृक परिवार की संपत्ति में पूर्ण अधिकार बनाए रखने की अनुमति दे दी।
- रोमन महिलाओं को काफी कानूनी अधिकार प्राप्त थे, वे स्वतंत्र रूप से संपत्ति का स्वामित्व और प्रबंधन कर सकती थीं। तलाक अपेक्षाकृत आसान था, पति या पत्नी में से किसी को केवल नोटिस देने की आवश्यकता होती थी।
- जबकि रोमन पुरुष अपनी बीस वर्ष की आयु में या तीस वर्ष के करीब की उम्र के विवाह कर लेते थे, महिलाओं की शादी प्रायः उनकी किशोरावस्था के अंत में या बीस वर्ष की उम्र के आरंभ में कर दी जाती थी, जिसके परिणामस्वरूप आयु में अंतर आ जाता था।
- विवाह आमतौर पर तय (arranged) किया जाता था और कानूनी आजादी के बावजूद महिलाओं को अक्सर अपने पतियों के वर्चस्व का सामना करना पड़ता था। सेंट ऑगस्टाइन (महान कैथोलिक बिशप) द्वारा बताए गए घरेलू हिंसा के उदाहरण इस संबंध में रोमन महिलाओं के सामने आने वाली चुनौतियों को दिखाते हैं।
- पिता के पास अपने बच्चों पर अत्यधिक कानूनी नियंत्रण का अधिकार होता था, यहाँ तक कि अवांछित बच्चों के मामले में उन्हें जिंदा रखने या मार डालने तक का अधिकार प्राप्त था।
- इस प्रथा में शिशुओं को टंड में मरने के लिए छोड़ दिया जाता था, जिससे पैतृक अधिकार की एक आश्चर्यजनक प्रथा उजागर होती है।

साक्षरता दर: विविध स्तर

- रोमन साम्राज्य के विभिन्न भागों में साक्षरता दर काफी अलग-अलग थी।
- पोम्पेई में व्यापक कामचलाऊ साक्षरता व्यापक रूप में विद्यमान थी, जो दीवारों पर लगे विज्ञापनों और शहर भर में की गई भित्तिचित्रकारी में स्पष्ट है। (चित्र 2.10 देखें)
- मिस्र में, जहाँ पैपाइरस अब भी बचे हुए हैं, औपचारिक दस्तावेज अक्सर व्यावसायिक लिपिकों द्वारा लिखे जाते थे, जो निम्न साक्षरता दर को दर्शाता है।
- साक्षरता कुछ वर्गों, जैसे सैनिकों, फौजी अधिकारियों और संपदा प्रबंधकों के बीच अधिक व्यापक थी।

सांस्कृतिक परिवर्तन: परवर्ती पुराकाल

सांस्कृतिक विविधता: भाषा, धर्म और रीति-रिवाज

- रोमन साम्राज्य की सांस्कृतिक विविधता विभिन्न तरीकों से प्रकट हुई, जिसमें धार्मिक पंथों और स्थानीय देवताओं, बोली जाने वाली भाषाओं, वेशभूषा शैलियों, खान-पान की आदतों तथा सामाजिक संगठन की विविधता शामिल है।
- विभिन्न क्षेत्रों की अपनी अलग-अलग भाषाएँ थीं, जैसे निकट पूर्व में अरामाईक, मिस्र में कॉप्टिक, उत्तरी अफ्रीका में प्यूनिक और बरबर, तथा स्पेन और उत्तर-पश्चिम में केल्टिक।
- कई भाषायी संस्कृतियाँ लिपियों के आविष्कार तक पूर्णतः मौखिक रहीं, जबकि लैटिन के प्रसार ने अन्य भाषाओं, विशेष रूप से केल्टिक के लिखित रूपों को विस्थापित कर दिया।



चित्र 2.10: पोम्पेई: एक मंदिरा व्यापारी का भोजन कक्ष। कमरे की दीवारों पर मिथक पशु बनाए गए हैं।

चौथी शताब्दी में सांस्कृतिक और राज्य परिवर्तन:

- रोमन साम्राज्य में “परवर्ती पुरातन काल” की अवधि, जो चौथी से सातवीं शताब्दी तक फैली थी, सांस्कृतिक और आर्थिक परिवर्तनों की साक्षी रही।
- चौथी शताब्दी में धार्मिक जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, जिनमें कॉन्स्टेंटाइन द्वारा ईसाई धर्म को आधिकारिक मान्यता देना तथा सातवीं शताब्दी में इस्लाम का उदय शामिल था।
- डायोक्लेटियन का (284 ई. - 305 ई. के दौरान सम्राट) कॉन्स्टेंटाइन द्वारा जारी रखे गए सुधारों में क्षेत्रीय समायोजन, सीमाओं की किलेबंदी, तथा नागरिक और सैन्य कार्यों को अलग करना शामिल था।
- कॉन्स्टेंटाइन ने सोलिडस सिक्का चलाया और कॉन्स्टेंटिनोपल को दूसरी राजधानी के रूप में स्थापित किया, जिससे आर्थिक विकास, ग्रामीण निवेश तथा शहरी समृद्धि को बढ़ावा मिला।



चित्र 2.11: एडेसा में पच्चीकारी (दूसरी शती ई.)। सीरिया के इस अभिलेख से पता चलता है कि यहाँ जो लोग दिखाए गए हैं वे राजा अबगर की पत्नी तथा परिवार के सदस्य हैं।

शहरी समृद्धि और सांस्कृतिक विकास:

- मौद्रिक स्थिरता और जनसंख्या वृद्धि ने ग्रामीण प्रतिष्ठानों, नई प्रौद्योगिकियों तथा लंबी दूरी के व्यापार में निवेश के साथ आर्थिक विकास (economic growth) में महत्वपूर्ण योगदान दिया।
- शासक अभिजात वर्ग पहले से कहीं अधिक धनी और शक्तिशाली था जैसा कि मिस्र में देखा गया है, जहाँ पैपाइरस से पता चलता है कि वहाँ अपेक्षाकृत समृद्ध समाज सोने के रूप में भारी आय अर्जित कर रहा था।

धार्मिक और सांस्कृतिक परिवर्तन:

- ग्रीस और रोम की शास्त्रीय दुनिया ने बहुदेववादी धार्मिक परंपराओं को अपनाया, जिसमें विविध पंथों द्वारा रोमन/इतालवी देवताओं जैसे बृहस्पति, जूनो, मिनर्वा और मंगल की पूजा की जाती थी, साथ ही साम्राज्य भर में मंदिरों तथा मठ में विभिन्न ग्रीक और पूर्वी देवताओं की भी पूजा की जाती थी।
- यहूदी धर्म (Judaism) एक अन्य महत्वपूर्ण परंपरा, जो प्राचीन काल में अपने समुदायों के भीतर विविधता प्रदर्शित करती थी।
- चौथी और पाँचवीं शताब्दी में साम्राज्य का ईसाईकरण एक क्रमिक और जटिल प्रक्रिया के रूप में हुआ।
- बहुदेववाद (Polytheism) खास तौर पर पश्चिमी प्रांतों में, धार्मिक भेदभाव कायम रहा, जिसके कारण ईसाई बिशपों ने ईसाई धर्मावलंबियों की तुलना में इन मान्यताओं का अधिक जोरदार तरीके से विरोध किया। चौथी सदी में धार्मिक सीमाएँ अस्थिर थीं, लेकिन बाद में शक्तिशाली बिशपों द्वारा कठोर मान्यताओं को लागू करने के प्रयासों ने इन भेदभावों को और मजबूत कर दिया।



79 ई. में बना कोलोसियम जहाँ तलवारियों (तलवार चलाने में निपुण योद्धा) जंगली जानवरों का मुकाबला करते थे। यहाँ एक साथ 60,000 दर्शक बैठ सकते थे।

राजनीतिक विखंडन और मध्यकालीन राज्यों का उदय

- जनता में आम खुशहाली, खासतौर पर, पूर्वी भागों में अधिक फैली जहाँ आबादी छठी सदी के मुख्य भाग तक बढ़ती रही थी, हालाँकि वहाँ प्लेग की महामारी का प्रकोप हो चुका था, जिसके कारण 540 के दशक में लगभग संपूर्ण भूमध्यसागरीय प्रदेश प्रभावित हो गया था। इसके विपरीत, पश्चिम में साम्राज्य राजनीतिक दृष्टि से विखंडित हो गया, क्योंकि उत्तर से आने वाले जर्मन मूल के समूहों (गोथ, बैंडल, लॉंबार्ड आदि) ने सभी बड़े प्रांतों को अपने कब्जे में ले लिया था और अपने-अपने राज्य स्थापित कर लिए थे, जिन्हें ‘रोमोत्तर’ (Post-Roman) राज्य कहा जा सकता है। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण राज्य थे स्पेन में विसिगोथों (Visigoths) का राज्य (जिसे अरबों ने 711 से 720 के बीच नष्ट कर दिया); गॉल में फ्रैंकों का राज्य (लगभग 511-687) और इटली में लॉंबार्डों का राज्य (568-774)।

चित्र 2.12: 79 ई. में निर्मित कोलोसियम, जहाँ तलवार चलाने में निपुण योद्धा (ग्लैडीएटर) जंगली जानवरों से लड़ते थे। यहाँ एक साथ 60,000 दर्शक बैठ सकते थे।

- पूर्वी भाग में, जहाँ साम्राज्य संयुक्त बना रहा, जस्टीनियन का शासनकाल समृद्धि और शाही महत्वाकांक्षा के उच्च स्तर का द्योतक था। जस्टीनियन ने 533 ई. में अफ्रीका को वैंडलों (Vandals) के कब्जे से छुड़ा लिया, लेकिन इटली (ओस्ट्रोगोथों से पुनः प्राप्त) पर अधिकार कर लिया। इससे देश तहस-नहस हो गया और लोम्बार्ड के आक्रमण का मार्ग प्रशस्त हो गया।
- सातवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों तक आते-आते रोम और ईरान के बीच लड़ाई फिर छिड़ गई। ससानी लोगों ने मिस्र सहित प्रमुख पूर्वी प्रांतों पर बड़े पैमाने पर आक्रमण करना शुरू कर दिया।
- बाइजेंटीयम, रोमन साम्राज्य के रूप में 620 ई. में इन प्रांतों पर पुनः कब्जा कर लिया गया, लेकिन उसे दक्षिण-पूर्व की ओर से एक अंतिम बड़ा झटका लगा जिसे वह सहन नहीं कर सका।

इस्लाम का उदय और अरब विजय:

- सातवीं शताब्दी में अरब से इस्लाम के विस्तार के कारण पूर्वी रोमन और ससानी साम्राज्य अरबों के कब्जे में आ गए।
- इस्लाम का विस्तार, जिसे “प्राचीन विश्व के इतिहास में सबसे बड़ी राजनीतिक क्रांति” माना जाता है, पैगंबर मुहम्मद की मृत्यु के एक दशक बाद, लगभग 642 ई. में शुरू हुआ।
- अरब विजय ने तेजी से पूर्वी रोमन और ससानी साम्राज्यों के बड़े हिस्से पर कब्जा कर लिया।
- अरब और सीरियाई रेगिस्तान में उभरते इस्लामी राज्य द्वारा अरब जनजातियों को ही पराजित करने से हुई और यह विजय अभियान अंततः स्पेन, सिंध एवं मध्य एशिया जैसे सुदूर क्षेत्रों तक फैल गया।
- अरब प्रायद्वीप और उसकी जनजातियों के एकीकरण ने इस्लाम के क्षेत्रीय विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।



चित्र 2.13: पश्चिम एशिया

तालिका 2.4

शासक	घटनाएँ
27 ईसा पूर्व-14 ईसवी	27 ई.पू. ऑक्टोवियन द्वारा स्थापित 'प्रिंसिपेट', वह अब अपने आपको ऑगस्टस कहने लगा था
ऑगस्टस, प्रथम रोमन सम्राट 14-37	लगभग 24-79 वरिष्ठ प्लिनी का जीवन; विसूवियस नामक ज्वालामुखी के फटने से उसकी मृत्यु: विसूवियस ने रोमन नगर पोम्पेई को भी अपने लार्व में दफन कर लिया था
	66-70 विशाल यहूदी विद्रोह और रोमन सेनाओं का जेरूसलम पर कब्जा
टिबेरियस 98-117	
त्राजान 117-38 हैड्रियन	लगभग 115 त्राजान की पूर्व में विजयों के बाद, रोमन साम्राज्य का अधिकतम विस्तार
	212 साम्राज्य के सभी मुक्त निवासियों को रोमन नागरिक का दर्जा दे दिया गया
	224 ईरान में नया वंश स्थापित, जिसे उनके पूर्वज ससान के नाम पर ससानी कहा गया
193-211 सेप्टिमियस सेवेरस	250 का दशक 258 फ़ारसवासियों ने फ़रात के पश्चिम में स्थित रोमन प्रदेशों पर आक्रमण किया कार्थेज के साइप्रसवासी विशप को मृत्युदंड
241-72 ईरान में शापुर प्रथम का शासन	260 का दशक गैलीनस ने फिर से सेना संगठित की
	273 पामाएरा का कारवाँ नगर रोमवासियों द्वारा नष्ट किया गया
	297 डायोक्लीशियन ने 100 प्रांतों में साम्राज्य का पुनर्गठन किया
253-68 गैलेनियस	लगभग 310 कॉन्स्टेनटाइन ने सोने का नया सिक्का (सॉलिडस) चलाया
	312 कॉन्स्टेनटाइन ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया

284-305 'टेटार्की' (चतुस्तंत्र) (डायोक्लेटियन मुख्य शासक)	324	कॉन्स्टेन्टाइन अब साम्राज्य का एकमात्र शासक बन गया। उसने कुंस्तुनतुनिया नगर की स्थापना की
	354-430	हिप्पो के बिशप ऑगस्टीन का जीवन-काल
	378	गोथ लोगों ने ऐड्रियनोपोल में रोमन सेनाओं को करारी मात दी
312-37 कॉन्स्टेंटाइन	391	सिकंदरिया में सेरपियम (सेरापिस के मंदिर) नष्ट किए गए
309-79 ईरान में शापुर द्वितीय का शासनकाल	410	विसीगोथों में रोम का विध्वंस कर दिया
	428	वैडल लोगों ने अफ्रीका के प्रदेश पर कब्जा कर लिया
408-50 थियोडोसियस द्वितीय (प्रसिद्ध 'थियोडोसियन कोड' के संकलनकर्ता)	434-53	अट्टिला नामक हूण का साम्राज्य
	493	ऑस्ट्रोगोथों ने इटली में राज्य स्थापित किया
	533-50	जस्टीनियन द्वारा अफ्रीका और इटली को मुक्त करा लेना
	541-70	ब्यूबोनिक प्लेग का प्रकोप
	568	लींबार्ड लोगों ने इटली पर आक्रमण किया
490-518 अनैस्टैसियस	लगभग 570	पैगंबर मुहम्मद का जन्म
527-65 जस्टीनियन	614-19	फ़ारस के शासक खुसरो द्वितीय ने पूर्वी रोम प्रदेशों पर आक्रमण करके उन पर कब्जा कर लिया
	622	पैगंबर मुहम्मद और उनके साथी मक्का छोड़कर मदीना चले गए
531-79 ईरान में खुसरो प्रथम का शासन	633-42	अरब विजयों का पहला और महत्वपूर्ण चरण; मुस्लिम सेनाओं ने सीरिया, फिलिस्तीन, मिस्र, इराक और ईरान के कुछ हिस्सों पर कब्जा कर लिया
610-41 हेराक्लियस	661-750	सीरिया में उमय्या वंश
	698	अरबों ने कार्थेज को जीत लिया
	711	स्पेन पर अरबों का आक्रमण

अब आइए मंगोलों के नज़रिए से “खानाबदोश साम्राज्यों” की अवधारणा पर, खास तौर पर चंगेज खान के नेतृत्व में, गहराई से विचार करें। हालाँकि यह धारणा शुरू में विरोधाभासी लग सकती है, लेकिन खानाबदोश जीवनशैली और साम्राज्यों को दी जाने वाली स्थिरता को देखते हुए, मंगोल इन विरोधी तत्वों को जोड़ने में सफल रहे। मध्य एशिया से निकलकर, उन्होंने तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी में यूरोप तथा एशिया में फैले एक अंतरमहाद्वीपीय साम्राज्य का निर्माण किया। अपनी खानाबदोश परंपराओं के लिए जाने जाने वाले मंगोलों ने एक शक्तिशाली सेना और शासन की एक जटिल प्रणाली स्थापित करने के लिए अनुकूलन एवं नवाचार किया। इसलिए, हम यह पता लगाएंगे कि कैसे मंगोलों ने विविध क्षेत्रों पर शासन करने की चुनौती का सामना करते हुए, महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तनों से गुज़रते हुए यूरोशियन इतिहास पर एक स्थायी प्रभाव छोड़ा।

यायावर साम्राज्य

- यायावर समाजों, खास तौर पर मंगोलों के बारे में हमारी समझ मुख्य रूप से इतिहास, यात्रा वृत्तांतों और नगरीय लेखकों द्वारा बनाए गए दस्तावेजों पर निर्भर करती है। ये लेखक अक्सर यायावर जीवन के पक्षपाती और अज्ञानी दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। हालाँकि, मंगोल साम्राज्य की सफलता ने विभिन्न पृष्ठभूमियों से साहित्यकारों को आकर्षित किया, जिससे अधिक सूक्ष्म और कभी-कभी सहानुभूतिपूर्ण चित्रण सामने आए। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में रूसी विद्वानों ने मंगोल इतिहास पर शोध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, लेकिन उनका काम औपनिवेशिक संदर्भ में किया गया था। बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में, मार्क्सवादी इतिहासलेखन ने मंगोल अध्ययनों को प्रभावित किया, चंगेज खान को आदिवासी से सामंती समाजों में संक्रमण से जोड़ा। बोरिस याकोवलेविच व्लादिमीरत्सोव जैसे रूसी विद्वानों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया, जबकि वसीली व्लादिमीरोविच बार्टोल्ड जैसे अन्य लोगों को मंगोलों के सकारात्मक मूल्यांकन के लिए संसरशिप का सामना करना पड़ा। चीनी, मंगोलियन, फ़ारसी और अरबी सहित स्रोतों की विशाल भाषाई विविधता मंगोल अध्ययनों में जटिलता जोड़ती है। विद्वान अक्सर अर्थ और सांस्कृतिक बारीकियों को समझने के लिए इतिहासकार और भाषाशास्त्री दोनों के रूप में कार्य करते हैं।

चंगेज खान (मृत्यु 1227 ई.), 13वीं शताब्दी की शुरुआत में, मंगोलों को संगठित किया। पर चंगेज खान की राजनैतिक दूरदर्शिता मध्य-एशिया के स्टेपी-प्रदेश, मंगोल जातियों का एक महासंघ मात्र बनाने से कहीं अधिक दूरगामी थी। उसे ईश्वर से विश्व पर शासन करने का आदेश प्राप्त था। यद्यपि उसका अपना जीवन मंगोल जातियों पर कब्जा जमाने में और साम्राज्य संलग्न क्षेत्र जैसे उत्तरी चीन, तुर्गान (ट्रांसओक्सिआना), अफ़ग़ानिस्तान, पूर्वी ईरान, रूसी स्टेपी प्रदेशों के विरुद्ध युद्ध अभियानों के नेतृत्व और प्रत्यक्ष संचालन में बीता; तथापि उसके वंशजों ने इस क्षेत्र से और आगे जाकर चंगेज खान के स्वप्न को सार्थक किया एवं दुनिया के सबसे विशाल साम्राज्य का निर्माण किया।



चित्र 2.14: मंगोल साम्राज्य

- चंगेज खान के आदर्शों के मुताबिक उसके पोते, मोन्के (1251-60) ने फ्रांस के शासक लुई नौवें (1226-70) को यह चेतावनी दी, 'स्वर्ग में केवल एक शाश्वत आकाश है और पृथ्वी का केवल एक अधिपति, चंगेज खान, स्वर्ग पुत्र... जब शाश्वत स्वर्ग की शक्ति से संपूर्ण विश्व, सूर्य के उदय से लेकर अस्त होने तक, आनंदित और शांति में रहेगा, तब यह स्पष्ट होगा कि हम क्या करने जा रहे हैं।
- फ्रांसीसी शासक लुई IX को भेजे गए संदेश में मोन्के ने चंगेज खान के दैवीय आदेश (divine mandate) पर जोर दिया और प्रतिरोध के खिलाफ चेतावनी दी। इसके बाद, चंगेज खान के एक और पोते बाटू (Batu) के नेतृत्व में अभियान ने रूसी भूमि, पोलैंड तथा हंगरी में तबाही मचाई एवं वियना तक पहुँच गया। 13वीं शताब्दी के दौरान चीन, मध्य पूर्व और यूरोप के कई हिस्सों में मंगोल विजय को अक्सर "ईश्वर का गुस्सा" के रूप में व्याख्यायित किया जाता था, जो क्रयामत के दिन की शुरुआत थी।

मंगोलों की सामाजिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि

मंगोलों की आंतरिक विविधता:

- मंगोल, एक विविध जनसमुदाय था जो पूर्व में तातार, खितान और मंचू के साथ-साथ पश्चिम में तुर्की कबीलों के साथ भाषायी समानताओं के कारण जुड़े हुए थे।
- उनमें से कुछ लोग पशुपालक थे, जो मध्य एशिया के मैदानों में, विशेष रूप से आधुनिक मंगोलिया में, घोड़ों, भेड़ों और अन्य पशुओं को पालते थे।
- अन्य लोग उत्तर में साइबेरियाई जंगलों में शिकारी-संग्राहक थे।
- इस क्षेत्र की जलवायु चुनौतीपूर्ण थी, जिसमें कठोर सर्दियाँ, संक्षिप्त ग्रीष्मकाल और समय-समय पर प्राकृतिक आपदाएँ आती रहती थीं।
- मंगोल लोग तंबुओं और जरों में रहते थे और अपने पशुधन के साथ शीतकालीन निवास स्थल से ग्रीष्मकालीन चारण भूमि की ओर चले जाते थे।

विचारणीय बिंदु

चंगेज खान के विश्व पर शासन करने के दैवीय आदेश की अवधारणा उल्लेखनीय है। आपको क्या लगता है कि इस विश्वास ने मंगोल साम्राज्य के कार्यों और अभियानों को कैसे प्रभावित किया? क्या आपको लगता है कि इस दैवीय आदेश से जुड़े विशिष्ट धार्मिक या आध्यात्मिक तत्व थे? यदि हाँ, तो क्या आप उनका नाम बता सकते हैं?



मंगोलों की सामाजिक संरचना

- जातीय और भाषायी संबंधों ने मंगोलों को एकजुट किया, लेकिन संसाधनों की कमी के कारण समाज पितृसत्तात्मक वंशों में विभाजित हो गया, जिसमें अमीर परिवारों का प्रभाव अधिक था।
- कठोर सर्दियों या सूखे जैसी प्राकृतिक आपदाओं के कारण अक्सर चरागाह भूमि पर संघर्ष और पशुधन के लिए शिकारी हमले होते थे। चंगेज खान का मंगोल और तुर्की जनजातियों का संघ, आकार में अतिला के संघ से प्रतिद्वंद्वी होने के बावजूद विशाल और अधिक टिकाऊ था, जिसने एक स्थिर राजनीतिक व्यवस्था स्थापित की जो अपने संस्थापक के बाद भी कायम रही।

स्थायी राजनीतिक व्यवस्था:

- चंगेज खान की राजनीतिक व्यवस्था स्थायी थी और अपने संस्थापक के बाद भी अधिक समय तक कायम रही।
- यह व्यवस्था इतनी स्थायी थी कि चीन, ईरान और पूर्वी युरोपीय देशों की उन्नत शस्त्रों से लैस विशाल सेनाओं का मुकाबला करने में सक्षम थी।
- मंगोलों ने अपने निवास स्थान से दूर क्षेत्रों में जटिल कृषि अर्थव्यवस्था और शहरी बस्तियाँ स्थापित कीं।

खानाबदोश-कृषि संबंध:

- खानाबदोश और कृषि प्रधान समाजों के बीच सामाजिक तथा राजनीतिक संगठन में अंतर के बावजूद, मंगोल चीन में अपने स्थायी पड़ोसियों के साथ व्यापार एवं वस्तु विनिमय में लगे हुए थे।
- अतः उनका व्यापार परस्पर रूप से लाभकारी सिद्ध हुआ, जिसमें चीन से कृषि उपज और लोहे के बर्तनों के बदले में मैदानी इलाकों (स्टेपी) से घोड़े, फर का शिकार करना शामिल था।
- हालाँकि, वाणिज्य भी तनाव से मुक्त नहीं था, क्योंकि कभी-कभी लाभ बढ़ाने के लिए सैन्य दबाव भी डाला जाता था।
- जब मंगोलों में अव्यवस्था फैलने लगी, तो संबंधों में बदलाव आया, जिससे मैदानी इलाकों (स्टेपी) में चीनी प्रभाव बढ़ गया।

यायावरों के हमले और चीन की महान दीवार का महत्त्व

- यायावरों और स्थायी समाजों के बीच सीमावर्ती युद्ध स्थायी समाजों के लिए अधिक दुर्बल करने वाले थे, जिससे कृषि बाधित हुई तथा शहरों में लूटपाट हुई।
- चीन ने अपने पूरे इतिहास में व्यापक यायावर हमले का सामना किया है, जिसके कारण रक्षात्मक किलेबंदी का निर्माण किया गया, और अंततः प्रतिष्ठित “चीन की महान दीवार” (चित्र 2.14 देखें) का निर्माण हुआ, जो उत्तर में कृषि समाजों पर यायावर हमलों के कारण उत्पन्न अशांति और भय का प्रमाण है।



चित्र 2.15: चीन की महान दीवार

चंगेज खान का जीवन- वृत्त

आरंभिक जीवन, संघर्ष और उत्थान:

- चंगेज खान का जन्म 1162 ई. के आसपास आधुनिक मंगोलिया के उत्तरी भाग में ओनोन नदी के निकट हुआ था। उसका प्रारंभिक नाम तेमुजिन था। उसके पिता का नाम येसूजेई (Yesugei) था जो कियात कबीले का मुखिया था। यह एक परिवारों का समूह था और बोरजिगिद (Borjigid) कुल से संबंधित था।
- उसके पिता की अल्पायु में ही हत्या कर दी गई थी और उसकी माता ओलुन-इके (Oelun-ike) ने तेमुजिन तथा उसके सगे तथा सौतेले भाइयों का लालन-पालन बड़ी कठिनाई से किया था। 1170 का दशक विपर्यायों से भरा था तेमुजिन का अपहरण कर उसे दास बना लिया गया और उसकी पत्नी बोरटे (Borte) का भी विवाह के उपरांत अपहरण कर लिया गया एवं अपनी पत्नी को छुड़ाने के लिए उसे लड़ाई लड़नी पड़ी। विपत्ति के इन वर्षों में भी वह अनेक मित्र बनाने में कायमाब रहा।
- इन चुनौतियों के बावजूद, उसने महत्वपूर्ण गठबंधन बनाए, जिनमें से एक गठबंधन उनके सगे भाई जमूका और केरेयिट्स के शासक तुगरिल/ओंग खान के साथ था।
- 1180 और 1190 के दशक में वह ओंग खान का सहयोगी बना रहा और उसने जमूका जैसे शत्रुओं को पराजित किया।
- 1206 में नैमन लोगों और जमूका पर विजय प्राप्त करने के बाद, चंगेज खान को एक कुरिलताई में ‘मंगोलों का महान खान’ घोषित किया गया, तथा उसने चंगेज खान की उपाधि अपना ली।

चीन की विजय से लेकर मध्य एशिया में विस्तार तक:

- चंगेज खान ने 1206 के कुरिलताई से ठीक पहले मंगोल लोगों को एक प्रभावी सैन्य बल के रूप में पुनर्गठित किया, जिससे उनके भावी अभियानों के लिए मंच तैयार हो गया।

मंगोलों द्वारा किए गए विनाश का आकलन

- चंगेज खान के अभियानों के विषय में प्राप्त समस्त विवरण इस पर सहमत हैं कि जिन नगरों ने उनका प्रभुत्व स्वीकार नहीं किया उन पर अधिकार जमाने के बाद वहाँ रहने वाले बहुत से लोगों को उसने मौत के घाट उतार दिया। इनकी संख्या बहुत चौका देने वाली है। 1220 ई. में निशापुर पर आधिपत्य करने में 17,47,000, जबकि 1222 ई. हिरात पर आधिपत्य करने में 1600.000 और 1258 में बगदाद पर आधिपत्य करते समय 8,00,000 लोगों का वध किया गया। छोटे नगरों में सापेक्षिक रूप से कम नरसंहार हुआ। नासा में 70.000, बैहाक जिले में 70,000 और कुहिस्तान प्रांत के तून नगर में 12,000 लोगों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा।
- मध्यकालीन इतिवृत्तकारों ने मृतकों की संख्या का अनुमान कैसे लगाया? इलखानों के फ़ारसी इतिवृत्तकार जुवैनी ने बताया कि मर्व में 13,00,000 लोगों का वध किया गया। उसने इस संख्या का अनुमान इस प्रकार लगाया कि तेरह दिन तक 1,00,000 शव प्रतिदिन गिने जाते थे।

- उसकी पहली प्रमुख चिंता चीन पर विजय प्राप्त करना था, जो तीन भागों में विभाजित था।
- 1209 तक, शी हिंसिया पराजित हो गया और 1213 में 'चीन की महान दीवार' को तोड़ दिया गया।
- 1215 में पेकिंग पर कब्ज़ा कर लिया गया और चीन के खिलाफ लड़ाई 1234 तक जारी रही।
- इसके बाद चंगेज खान ने अपना ध्यान ट्रान्सोक्सियाना और ख्वारिज्म की ओर लगाया।
- 1219 से 1221 तक के अभियानों में, उसने प्रमुख शहरों पर विजय प्राप्त की और विरोध करने वालों को नष्ट कर दिया। 1227 में उसकी मृत्यु हो गई, और वह सैन्य उपलब्धियों की विरासत छोड़ गया।

सैन्य नवाचार:

- चंगेज खान की सैन्य सफलता का श्रेय उसकी नवीन तकनीकों से युद्ध लड़ने और मैदानी युद्ध में परिवर्तन लाने की क्षमता को दिया जाता है।
- मंगोल और तुर्क घुड़सवार सेना के कौशल, जिसमें घोड़े पर बैठकर तेजी से तीर चलाने की कला भी शामिल थी, ने सैनिक-गतिविधियों को तेज कर दिया।
- उन्होंने इन कौशलों का ज्ञान पशुओं के आखेट करने के दौरान प्राप्त किया, जो क्षेत्रीय युद्धाभ्यास का भी काम करते थे।
- चंगेज खान ने सर्दियों में अभियान चलाने, बर्फ से जमी हुई नदियों को राजमार्ग के रूप में उपयोग करने जैसे नवाचारों की शुरुआत की।
- उन्होंने घेराबंदी -यंत्र (Siege-engine) और नेफ्था बमबारी के महत्त्व को भी पहचाना, तथा किलेबंद शिविरों के विरुद्ध प्रभावी घेराबंदी के लिए हल्के चल उपस्कर (Light portable equipment) विकसित किए।
- उसने मंगोलों द्वारा अपनाई गई प्रभावी सैन्य रणनीतियों के रूप में एक स्थायी विरासत छोड़ी।

तालिका 2.5: मंगोलों का कालक्रम

लगभग 1167	तेमुजिन का जन्म
1160-70 के दशक	दासता और संघर्ष के वर्ष
1180-90 का दशक	संधि संबंधों का काल
1203-27	विस्तार और विजय
1206	तेमुजिन को चंगेज खान, यानी मंगोलो का 'सार्वभौम शासक' घोषित किया
1227	चंगेज खान की मृत्यु
1227-60	तीन महान खानों का शासन और मंगोल-एकता की स्थापना
1227-41	चंगेज खान के पुत्र ओगोदेई का शासन-काल
1246-49	ओगोदेई के पुत्र गुयूक का काल
1251-60	मोंके, चंगेज खान के पौत्र और तुलू (Tuluy) के पुत्र का काल
1236-42	बाटू के अधीन रूस, हंगरी, पोलैंड और आस्ट्रिया पर आक्रमण। बाटू, चंगेज खान के सबसे बड़े पुत्र जोची (Jochi) का पुत्र था।
1253-55	मोंके के अधीन ईरान और चीन में पुनः आक्रमण
1258	बगदाद पर अधिकार और अब्बासी खिलाफत का अंत। मोंके के छोटे भाई हुलेगु के अधीन ईरान में इल-खानी राज्य की स्थापना। जोचिद और इल-खान के मध्य संघर्ष का प्रारंभ

1260	पेकिंग में 'महान खान' के रूप में कुबलई खान (Qubilai Khan) का राज्यारोहण। चंगेज खान के उत्तराधिकारियों में संघर्ष। मुगल राज्य अनेक स्वतंत्र भागों में अनेक वंशों में विभक्त तोलुई (Toluy), चघताई (Chaghatai), और जोची (ओगोदेई का वंश पराजित हो गया तथा तोलुयिद में मिल गए) तोलुयिद: चीन का यूआन वंश और ईरान का इल-खानी राज्य चघताई: उत्तरी-तूरान के स्टेपी-क्षेत्र और तुर्किस्तान में रूसी स्टेपी-क्षेत्र में जोचिद वंश थे। उन्हें पर्यवेक्षक 'गोल्डन होर्ड' के नाम से वर्णन करते थे
1257-67	बाटू के पुत्र बर्क का राज्यकाल। सुनहरा गिरोह (Golden Horde) का नेस्टोरियन ईसाई धर्म से इस्लाम धर्म की ओर पुनः प्रवृत्त होना। 1350 के दशक में उनका इस्लाम में निश्चयात्मक रूप से धर्मांतरण हुआ। इल-खान के विरुद्ध गोल्डन होर्ड और मिस्र देश की मैत्री का प्रारंभ
1295-1304	ईरान में इल-खानी शासक गजन खान का शासन-काल। उसके बौद्ध धर्म से इस्लाम में धर्मांतरण के बाद धीरे-धीरे अन्य इल-खानी सरदारों का भी धर्मांतरण होने लगा
1368	चीन में युआन राजवंश का अंत
1370-1405	तैमूर का शासन। बरलास तुर्क होते हुए उसने चघताई वंश के आधार पर अपने को चंगेज खान का वंशज बताया। उसने स्टेपी-साम्राज्य की स्थापना की। टोलू राज्य चघताई और जोची राज्यों के कुछ हिस्सों (चीन को छोड़कर) को सम्मिलित करते हुए उसने स्टेपी-क्षेत्र में एक साम्राज्य का गठन किया। उसने अपने को 'गुरेगेन' (Guregen) 'शाही-दामाद' की उपाधि से विभूषित किया और चंगेज खान के कुल की एक राजकुमारी से विवाह किया।
1495-1530	जहीरुद्दीन बाबर जो तैमूर और चंगेज खान का वंशज था, फ़रगना तथा समरकंद के तैमूरी क्षेत्र का उत्तराधिकारी बना। वहाँ से खदेड़ा गया। काबुल पर कब्ज़ा किया और सन् 1526 में दिल्ली तथा आगरा पर अधिकार जमाया; भारत में मुगल साम्राज्य की नींव रखी।
1500	जोची के कनिष्ठ पुत्र शिबान का वंशज शयबानी खान द्वारा तूरान पर आधिपत्य। तान में शयबानी सत्ता (शयबानियों को उज्ज्वेग भी कहा जाता था जिनके नाम से ही वर्तमान उज्बेकिस्तान का नाम पड़ा) को सुदृढ़ किया और इस क्षेत्र से बाबर एवं तैमूर के वंशजों को खदेड़ दिया।
1759	चीन के मंचुओं ने मंगोलिया पर विजय प्राप्त कर ली
1921	मंगोलिया का गणराज्य

चंगेज खान के उपरांत मंगोल

- चंगेज खान की मृत्यु के बाद मंगोल साम्राज्य के विस्तार को दो चरणों में विभाजित किया जा सकता है।
- प्रथम चरण (1236-42) रूसी के स्टेपी क्षेत्र, बुल्घार, कीव, पोलैंड और हंगरी में भारी सफलता प्राप्त की गई।
- दूसरा चरण (1255-1300) इसके परिणामस्वरूप चीन (1279), ईरान, इराक और सीरिया पर विजय प्राप्त हुई, जिससे साम्राज्य की सीमा में स्थिरता आयी। हालाँकि, 1260 के दशक के बाद, पश्चिम में अभियानों का आवेग कम हो गया।
- मंगोल परिवार के भीतर उत्तराधिकार की आंतरिक राजनीति (चित्र 2.16), विशेष रूप से जोची और ओगोदेई के वंशजों के बीच संघर्ष ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- तोलुयिद शाखा मॉन्के के नेतृत्व में, चीन की विजय को प्राथमिकता देते हुए, जोची और ओगोदेई वंशों को हाशिये पर धकेल दिया गया।
- इस बदलाव के साथ-साथ रूसी-ईरानी सीमा पर संघर्षों ने पश्चिम में मंगोल विस्तार के अंत को चिह्नित किया।
- आंतरिक अशांति के बावजूद, चीन में मंगोल अभियान जारी रहे, जिसके परिणामस्वरूप देश का मंगोल शासन के अधीन पुनः एकीकरण हुआ।
- अगले खंड में मंगोल राजनीतिक उद्यम की सफलताओं और बाधाओं दोनों में योगदान देने वाले कारकों का पता लगाया जाएगा।



चित्र 2.16: चंगेज खान का वंश वृक्ष

सामाजिक, राजनीतिक और सैनिक संगठन

- चंगेज खान द्वारा अपने साम्राज्य को संगठित करने के दृष्टिकोण में पारंपरिक स्टेपी सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन की विशेषता थी।
- उन्होंने विविध मंगोल जनजातियों को एकजुट किया और नए सदस्यों को शामिल किया, जिससे एक अत्यंत विषमजातीय सैन्य बल (heterogeneous military force) का निर्माण हुआ।
- पुरानी कबीलाई पहचान को मिटाने के लिए, उन्होंने सेना को दशमलव इकाइयों में पुनर्गठित किया, कबीलाई समूहों को समाप्त कर दिया और सदस्यों को पुनर्वितरित किया।
- इससे सामाजिक संरचना में परिवर्तन हुआ तथा विभिन्न वंशों और कुलों को चंगेज खान से प्राप्त एक नई पहचान के तहत एकीकृत कर दिया गया।
- उसके चार बेटों और चुने हुए कप्तानों ने विजित क्षेत्रों पर शासन किया। उलुस, जो शुरू में प्रदेशों को संदर्भित करता था, अलग-अलग क्षेत्रीय प्रभुत्व का पर्याय बन गया।
- चंगेज खान ने संचार के लिए हरकारा पद्धति (कूरियर सिस्टम) की स्थापना की और विजित क्षेत्रों को व्यापार मार्गों के माध्यम से जोड़ा गया, जिससे मंगोल विजय (पैक्स मंगोलिका) का निर्माण हुआ। हालाँकि, अभियानों के दौरान विजित लोगों को कष्ट सहना पड़ा, शहरों को नष्ट कर दिया गया और कृषि भूमि को नुकसान पहुँचाया गया।
- चंगेज खान के वंशजों ने अलग-अलग उलुस पर शासन किया और उत्तराधिकार संघर्ष के कारण अलग-अलग वंशों का जन्म हुआ।



चित्र 2.17: मंगोलों के अभियान

गजन खान का भाषण

- गजन खान (1295-1304) पहला इल-खानी शासक था जिसने धर्म-परिवर्तन कर इस्लाम ग्रहण किया। उसने अपने मंगोल-तुर्की यायावर सेनापतियों को निम्न भाषण दिया जिसे संभवतः उसके इरानी वज़ीर रशीदुद्दीन ने लिखा था और जिसे मंत्री के पत्रों में शामिल किया गया था: “मैं फ़ारस के कृषक वर्ग के पक्ष में नहीं हूँ। यदि उन सबको लूटने का कोई उद्देश्य है, तो ऐसा करने के लिए मेरे से अधिक शक्तिशाली और कोई नहीं है, चलो हम सब मिल कर उन्हें लूटते हैं।
- लेकिन अगर आप निश्चित रूप से भविष्य में अपने भोजन के लिए अनाज और भोज्य-सामग्री इकट्ठा करना चाहते हैं तो मुझे आपके साथ कठोर होना पड़ेगा। आपको तर्क और बुद्धि से काम लेना सिखाना पड़ेगा। यदि आप कृषकों का अपमान करेंगे, उनसे उनके बैल और अनाज के बीज छीन लेंगे और उनकी फसलों को कुचल डालेंगे, तो आप भविष्य में क्या करेंगे? एक आज्ञाकारी कृषक वर्ग और एक विद्रोही कृषक वर्ग में अंतर समझना आवश्यक है.....”

- ❑ विजित समाजों के नागरिक प्रशासकों ने दूरस्थ प्रभुत्व वाले राज्यों को एकीकृत करने में सहायता की।
- ❑ मंगोलों ने विभिन्न क्षेत्रों से साहित्यकारों की भर्ती की, जिससे यायावर और गतिहीन तत्त्वों के बीच विरोधाभास कम हो गया।
- ❑ चंगेज खान के वंशजों के अलग-अलग वंश समूहों में क्रमिक विभाजन के कारण पारिवारिक परंपराओं के साथ उनके संबंध बदल गए।
- ❑ चंगेज खान की विरासत जटिल थी, और उसके उत्तराधिकारियों ने महान खान (the Great Khan) की स्मृति को आकार दिया।
- ❑ यासा, जिसका आरंभ में प्रशासनिक नियमों से संबंध था जो “चंगेज खान की विधि संहिता” के रूप में विकसित हुआ। इसने मंगोल लोगों को एकजुट करने वाली शक्ति के रूप में कार्य किया, उनकी विशिष्ट पहचान पर जोर दिया और उनके पूर्वजों द्वारा दिए गए पवित्र कानून का दावा किया।
- ❑ यासा ने मंगोलों को सशक्त बनाया, जिससे उन्हें अपनी जातीय पहचान बनाए रखने की अनुमति मिली, जबकि विजित विषयों पर अपना कानून लागू किया, जिससे मंगोल सार्वभौमिक प्रभुत्व (Mongol universal dominion) के निर्माण में योगदान मिला।

यास

- ❑ 1221 में बुखारा पर विजय प्राप्त करने के बाद चंगेज खान ने वहाँ के अमीर मुसलमान निवासियों को ‘उत्सव मैदान’ में एकत्रित कर उनकी भर्त्सना की। उसने उनको पापी कहा और चेतावनी दी कि इन पापों के प्रायश्चित्स्वरूप उनको अपना छिपा हुआ धन उसै देना पड़ेगा। यह वर्णन करने योग्य एक नाटकीय घटना थी जिसको लोगों ने लंबे समय तक याद रखा और उस पर चित्र बनाए।
- ❑ सोलहवीं शताब्दी के अंत में चंगेज खान के सबसे बड़े पुत्र जोची का एक दूर का वंशज अब्दुल्लाह खान बुखारा के उसी उत्सव मैदान में गया। चंगेज खान के विपरीत अब्दुल्लाह खान वहाँ छुट्टी की नमाज़ अदा करने गया। उसके इतिहासकार हफ़ीज़-ए-तानीश ने अपने स्वामी की इस मुस्लिम धर्म-परायणता का विवरण अपने इतिवृत्त में दिया और साथ में यह चौंका देने वाली टिप्पणी भी की: ‘कि यह चंगेज खान के यास के अनुसार था’।

विश्व इतिहास में चंगेज खान और मंगोलों का स्थान

- ❑ जबकि चंगेज खान को अक्सर शहरों के विनाश और हजारों लोगों की मौत के लिए जिम्मेदार एक विजेता के रूप में याद किया जाता है, मंगोलों के लिए उसकी विरासत एक अलग महत्त्व रखती है।
- ❑ उनके लिए, चंगेज खान को अब तक का सबसे महान नेता माना जाता है। उसने मंगोल लोगों को एकजुट किया, जनजातीय युद्धों और चीनी शोषण को समाप्त किया, समृद्धि लाई तथा एक विशाल अंतरमहाद्वीपीय साम्राज्य का निर्माण किया।
- ❑ तेरहवीं शताब्दी में मंगोल शासन असाधारण रूप से विविधतापूर्ण था, जिसमें विभिन्न धर्मों और जातियों के लोग शामिल थे।
- ❑ मंगोल खान स्वयं भी विभिन्न धर्मों का पालन करता था, जिनमें शमनवाद, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म और अंततः इस्लाम शामिल थे।
- ❑ इस धार्मिक विविधता के बावजूद, मंगोल शासकों ने विभिन्न धार्मिक और जातीय पृष्ठभूमि से प्रशासकों तथा सशस्त्र टुकड़ियों की भर्ती की, जिससे एक बहु-जातीय, बहुभाषी एवं बहु-धार्मिक शासन का निर्माण हुआ। यह अनूठा दृष्टिकोण, जहाँ व्यक्तिगत विश्वास सार्वजनिक नीति को निर्धारित नहीं करते थे, बाद के शासनों, जैसे कि भारत के मुगलों के लिए एक वैचारिक मॉडल के रूप में कार्य किया।
- ❑ मंगोलों से संबंधित सभी उपलब्ध दस्तावेजों के कारण, विखंडित समूहों के संघ के पीछे की प्रेरणा को पूरी तरह से समझना चुनौतीपूर्ण हो जाता है, जिसका उद्देश्य एक साम्राज्य का निर्माण करना था।
- ❑ मंगोल साम्राज्य में विभिन्न परिवेशों में परिवर्तन हुए, लेकिन संस्थापक की प्रेरणा एक शक्तिशाली शक्ति बनी रही। यहाँ तक कि तैमूर जैसे शासक भी खुद को राजा घोषित करने में हिचकिचाते थे, जब तक कि वे चंगेज खान के वंशज न हों, जो चंगेज खान के स्थायी प्रभाव को दर्शाता है।
- ❑ आधुनिक समय में मंगोलिया दशकों तक सोवियत नियंत्रण के बाद, भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में अपनी पहचान को फिर से बना रहा है। चंगेज खान को मंगोलों के एक राष्ट्रीय नायक के रूप में लिया गया है, और सार्वजनिक रूप से उसका सम्मान किया जाता है, एवं उसकी उपलब्धियों को गर्व के साथ याद किया जाता है।
- ❑ मंगोलिया के इतिहास में चंगेज खान एक महत्वपूर्ण शासक है, जो एक आराध्य व्यक्ति के रूप में उभरकर सामने आया है, जो एक महान अतीत की स्मृतियों को जागृत कर राष्ट्रीय पहचान बनाने की दिशा में शक्ति प्रदान करने के साथ-साथ राष्ट्र को भविष्य को ओर ले जायेगा।



चित्र 2.18: मंगोलों द्वारा बगदाद पर कब्जा। रशीद अल-दीन, तबरेज़ का इतिवृत्त में दिया गया चौदहवीं शताब्दी का एक लघुचित्र।

निष्कर्ष

उत्तरवर्ती रोमन साम्राज्य और मंगोल साम्राज्य दोनों ही सामाजिक परिवर्तन की जटिलता के उदाहरण हैं। रोमन साम्राज्य का दूसरा भाग आंतरिक संघर्षों से जूझता रहा भाषा, अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक संरचनाओं में परिवर्तन देखा। इस बीच, चंगेज खान के रणनीतिक दर्शन ने मंगोलों को यायावर जातीय समूहों से पेशेवर राजवंशों में बदल दिया। इसके पीछे जीत की भावना के बावजूद, चंगेज खान मंगोलों के बीच एक एकीकृत शक्ति बना रहा। दोनों कथाएँ जटिल ऐतिहासिक परिवर्तनों को दिखाती हैं, एकाग्र दृष्टिकोणों को चुनौती देती हैं और अपने-अपने देशों की पहचान को परिभाषित करती हैं। ये कथाएँ विजय और नवीनता के साथ बुनी गई हैं, जो यायावर परंपराओं और गतिहीन शासन के बीच सूक्ष्म अंतःक्रियाओं को प्रकट करती हैं।

महत्वपूर्ण शब्दावलियाँ:

- ❖ **बर्बर:** शब्द 'बर्बेरियन' ग्रीक शब्द बारबरोस (barbaros) से लिया गया है, जिसका अर्थ था गैर-यूनानी, ऐसा व्यक्ति जिसकी भाषा बेतरतीब आवाज की तरह लगती थी: 'बार बर'।
- ❖ **उत्तर पुरातनकाल:** यह चौथी से सातवीं शताब्दी की अवधि को संदर्भित करता है, जो रोमन साम्राज्य के विकास और सांस्कृतिक परिवर्तनों के अंतिम चरण को दर्शाता है।
- ❖ **बहुदेववादी:** कई देवताओं में पारंपरिक धार्मिक विश्वास का वर्णन करता है, जो रोमन और यूनानी देवताओं सहित शास्त्रीय दुनिया की विशेषता है।
- ❖ **ईसाईकरण:** ईसाई धर्म को आधिकारिक धर्म के रूप में अपनाने की क्रमिक प्रक्रिया, विशेष रूप से रोमन साम्राज्य में चौथी और पाँचवीं शताब्दी में स्पष्ट हुई।
- ❖ **बैजन्टियम:** पूर्वी रोमन साम्राज्य के बाद के काल के लिए एक वैकल्पिक नाम, विशेष रूप से बैजन्टिन साम्राज्य में।
- ❖ **सॉलिडस:** कॉन्स्टेंटाइन द्वारा चलाया गया एक स्वर्ण सिक्का, जो रोमन साम्राज्य के अंतिम समय में एक स्थिर मुद्रा के रूप में कार्य करता था।
- ❖ **अनिवार्य सेना (Conscripted Army):** अनिवार्य सेना वह होती है जिसे बलपूर्वक भर्ती किया जाता है; जनसंख्या के कुछ समूहों या श्रेणियों के लिए सैन्य सेवा अनिवार्य होती है।
- ❖ **ड्यूसेज़ (Duces):** सैन्य कमांडर जिन्हें डायोक्लेटियन द्वारा रोमन साम्राज्य के पुनर्गठन के दौरान अधिक स्वायत्तता प्राप्त हुई।
- ❖ **दर्पमर्दन वर्ग (Humiliores):** रोमन समाज में निम्न वर्ग, जिसमें ग्रामीण मजदूर, औद्योगिक श्रमिक और दास शामिल थे।
- ❖ **गृहयुद्ध:** गृहयुद्ध से तात्पर्य विभिन्न देशों के बीच संघर्षों के विपरीत, एक ही देश के भीतर सत्ता के लिए सशस्त्र संघर्ष से है।
- ❖ **एकाग्रम:** वस्तुतः यह पत्थर का एक बड़ा खंड है, लेकिन इस अभिव्यक्ति का प्रयोग किसी भी ऐसी चीज (उदाहरण के लिए समाज या संस्कृति) को संदर्भित करने के लिए किया जाता है जिसमें विविधता का अभाव हो और जो सभी एक ही प्रकार की हों।
- ❖ **गोथ, वैंडल, लोम्बार्ड:** पश्चिमी रोमन साम्राज्य के राजनीतिक विखंडन में शामिल जर्मनिक समूह।
- ❖ **कॉन्स्टेंटिनोपल:** कॉन्स्टेंटाइन द्वारा स्थापित नई राजधानी, जिसने पूर्वी रोमन साम्राज्य की आर्थिक और सांस्कृतिक जीवंतता में योगदान दिया।
- ❖ **यायावर परंपराएँ:** यायावर समाजों से जुड़ी सांस्कृतिक प्रथाएँ और जीवनशैलियाँ, मंगोल ऐतिहासिक कथा का एक प्रमुख पहलू है।
- ❖ **गतिहीन शासन (Sedentary Governance):** शासन और प्रशासन की प्रणाली जो बसे हुए, शहरी समाजों की विशेषता है, जो खानाबदोश परंपराओं के विपरीत है और जिसका उदाहरण उत्तरवर्ती रोमन साम्राज्य में मिलता है।



बदलती हुई सांस्कृतिक परंपराएँ

संदर्भ: इस अध्याय में NCERT पाठ्यपुस्तक की कक्षा-XI (विश्व इतिहास के कुछ विषय) के अध्याय-4, 5, 6 व 7 का सारांश शामिल है।

परिचय

नौवीं शताब्दी तक एशिया में ऐसे साम्राज्यों का उदय हुआ, जो खानाबदोश और शहरी दोनों प्रकार के थे तथा जिनकी विशालता ने उन्हें पहले के साम्राज्यों से अलग बना दिया, जो सामान्यतः महाद्वीपों तक फैले होते थे। ये साम्राज्य अचानक विकसित हुए, लेकिन उनके विकास में लंबे समय से चलने वाली परिवर्तन की प्रक्रियाएँ शामिल थी। पश्चिमी यूरोप में 9वीं से 17वीं शताब्दी तक धीरे-धीरे महत्वपूर्ण बदलाव हुए, जिनमें विज्ञान और तकनीकी की ओर बढ़ाव, सरकारी संरचनाओं का विकास, उद्योग और व्यापार में तकनीकी प्रगति तथा यूरोप के बाहर इन परिवर्तनों का विस्तार शामिल था। इसके परिणामस्वरूप, पश्चिमी रोमन साम्राज्य 5वीं शताब्दी तक छिन्न-भिन्न हो गया, जिसके बाद इसके अवशेषों को यूरोप में उभरते नए राज्यों की प्रशासनिक आवश्यकताओं के अनुसार रूपांतरित किया गया, हालाँकि पश्चिम में शहरी केंद्र पूर्व की तुलना में छोटे ही बने रहे।

बदलती परंपराएँ

सामंतवाद, धर्म और यूरोपीय व्यापार का विकास

- ❑ 9वीं शताब्दी में, पश्चिमी यूरोप में ऐक्स, लंदन, रोम और सियना जैसे छोटे लेकिन महत्वपूर्ण वाणिज्यिक एवं शहरी केंद्र उभरे।
- ❑ इन सभी परिवर्तनों की अंतर्क्रियाओं के फलस्वरूप 'सामंती व्यवस्था' अस्तित्व में आई। सामंतवाद की पहचान थी दुर्गों व मेनर-भवन के इर्द-गिर्द कृषि उत्पादन। यह भूमि मेनर के लॉर्डों की थी जिस पर कृषक (कृषिदास) कार्य करते थे। ये वफ़ादार होने के साथ माल और सेवा प्रदान करने के प्रति वचनबद्ध होते थे।
- ❑ कैथलिक चर्च (जिसका केंद्र बिंदु पोप और उनकी व्यवस्था थी) सामंतवाद को समर्थन देता था और उनके पास अपनी भूमि भी थी। ऐसे संसार में जहाँ पर जीवन की अनिश्चितताएँ, औषधियों का अल्प ज्ञान और निम्न जीवन-प्रत्याशा आम बात थी, चर्च ने लोगों को व्यवहार का ऐसा तरीका सिखाया जिससे मृत्यु के बाद का जीवन सहनीय बन सके।
- ❑ वेनिस और जेनेवा के भूमध्यसागरीय उद्यमियों से प्रेरित होकर (बारहवीं सदी से) सामंती व्यवस्था पर, वाणिज्य और नगरों का प्रभाव बढ़ता व बदलता गया। इन उद्यमियों के जहाज मुस्लिम राज्यों एवं पूर्व में बचे हुए रोमन साम्राज्य के साथ व्यापार करते रहे।
- ❑ इन क्षेत्रों की सम्पत्ति के लोभ में तथा ईसा के जीवन से जुड़े 'पवित्र स्थलों' को मुसलमानों से आजाद कराने की भावना से प्रेरित होकर यूरोपीय राजाओं ने 'धर्म-युद्ध' के दौरान भूमध्यसागर के पार के स्थानों से संबंध मजबूत किए। यूरोप के आंतरिक व्यापार में सुधार हुआ (जो मेलों और बाल्टिक समुद्र के बंदरगाहों पर केंद्रित था और बढ़ती हुई जनसंख्या द्वारा प्रेरित था)।



चित्र 3.1: दक्षिण फ्रांस में चौदहवीं शताब्दी के शहर एविग्नॉन में पोप का महल।

यूरोपीय विस्तार और सांस्कृतिक मेलजोल:

- मध्य युग के अंत और पुनर्जागरण काल में, यूरोप ने जीवन के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन एवं अन्वेषण की प्यास का अनुभव किया।
- वाणिज्य-विस्तार के ये अवसर जीवन के मूल्य के प्रति बदलते हुए रवैये से मेल खाते थे। इस्लामी कला और साहित्य में मानव तथा अन्य प्राणियों के प्रति प्रचुरता से दिखाई पड़ने वाला सम्मान एवं बाइजेंटाइन के व्यापार द्वारा यूरोप में आने वाली यूनानी कला व विचारों ने यूरोप को संसार देखने का एक नया नज़रिया प्रदान किया।
- चौदहवीं सदी से (जिसे पुनर्जागरण कहा जाता है) विशेष रूप से उत्तरी इटली के नगरों में रईस लोग मृत्योपरान्त जीवन की अपेक्षा इस जीवन से अधिक वास्ता रखने लगे।
- पंद्रहवीं सदी के अंत तक, इस तरह की परिस्थितियों ने यात्रा और खोजों को अभूतपूर्व ढंग से बढ़ावा दिया। कई खोज यात्राएँ शुरू हुईं।
- स्पेनवासी और पुर्तगाली जो उत्तरी अफ्रीका के साथ व्यापार करते थे, पश्चिमी अफ्रीका के तट पर और दक्षिण में जाने लगे। इस तरह उत्तमाशा अंतरीप (Cape of Good Hope) होते हुए वे भारत पहुँचे जो यूरोप में मसालों के एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में प्रसिद्ध था।
- कोलंबस ने भारत के लिए एक पश्चिमी मार्ग खोजने का प्रयास किया और 1492 ई. में एक द्वीप पर पहुँचा जिसे यूरोपवासियों ने वेस्टइंडीज कहा।
- दूसरे खोजकर्ताओं ने आर्कटिक की ओर से भारत और चीन के लिए उत्तरी मार्ग खोजने का प्रयास किया।
- यूरोप के यात्रियों को अपनी यात्रा के दौरान भौति-भौति के लोग मिले। कुछ हद तक वे उनसे सीखने के इच्छुक थे।
- पोप और कैथलिक चर्च ने भूगोलवेत्ता एवं पर्यटक हसन-अल-वज़ज़ान (Hassan-al-Wazzan, यूरोप में लियो अफ्रीकानस के नाम से विदित) के काम को प्रोत्साहित किया।
- जेसुइट चर्च के सदस्यों ने सोलहवीं सदी में जापान के बारे में जाना और उसके बारे में लिखा।
- सत्रहवीं सदी में एक अंग्रेज व्यक्ति विल एडम्स (Will Adams), जापानी शोगुन, तोकोगावा ईयास (Tokugawa Ieyasu) का मित्र एवं सलाहकार बन गया। अमेरिका पहुँचने पर यूरोपीय लोगों का वहाँ के मूल निवासियों से संपर्क हुआ। हसन अल-वज़ज़ान की तरह ही इन लोगों ने यूरोपीय लोगों में दिलचस्पी ली और कभी-कभी उनके लिए काम भी किया। उदाहरण के लिए, एज़टेक (Aztec) की एक महिला ने जो बाद में डोना मेरिना (Dona Marina) नाम से जानी गई मेक्सिको के स्पेनी विजेता कोर्टेस (Cortes) सेप लिए दुभाषिये का काम किया और कई तरह के प्रबंध करवाये।
- यूरोपवासी नये लोगों के साथ सामना होने की स्थिति में कभी-कभी सचेत, अनात्मशंसी और चौकन्ने होते थे।
- यहाँ तक कि जब वे व्यापारिक एकाधिकार स्थापित करने और हथियारों के बल पर अपनी सत्ता थोपने के लगातार प्रयास करते रहे।
- दूसरी ओर कभी-कभी वे दबंग, आक्रामक एवं क्रूर थे और जिनसे भी वे मिले उन्हें अज्ञानी मान कर उन्होंने अपने श्रेष्ठ होने का भाव प्रदर्शित किया। कैथलिक चर्च ने दोनों रवैयों को प्रोत्साहन दिया। चर्च, दूसरी सभ्यताओं और भाषाओं के लिए अध्ययन का केंद्र था, लेकिन उसने उन लोगों पर होने वाले हमलों को बढ़ावा दिया जिन लोगों को वह गैर-ईसाई मानता था।
- गैर-यूरोपवासियों की दृष्टि से, यूरोप के साथ उनके संपर्क संघर्ष अलग-अलग तरह के थे। अधिकांश इस्लामी क्षेत्रों और भारत तथा चीन के लिए यूरोपवासी सत्रहवीं सदी के अंत तक एक कौतूहल का विषय थे। वे ऐसे हष्ट-पुष्ट व्यापारियों तथा नाविकों के रूप में देखे जाते थे जो बृहत्तर दुनिया के बारे में पूर्वी लोगों की समझ में बहुत योगदान नहीं कर सकते थे। फिर भी जापानियों ने उनकी प्रौद्योगिकी के कुछ लाभ जल्द ही सीख लिए। उदाहरण के लिए सोलहवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक उन्होंने बड़े पैमाने पर बंदूकों का उत्पादन शुरू कर दिया। उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका में, एज़टेक साम्राज्य के शत्रुओं ने यूरोपवासियों का उपयोग एज़टेकों की शक्ति चुनौती देने में किया।
- साथ ही साथ यूरोपवासियों के साथ आई बीमारियों ने जनसंख्या का विनाश कर दिया। सोलहवीं सदी के अंत तक कुछ क्षेत्रों में नब्बे प्रतिशत जनसंख्या मृत्यु के आगोश में समा गई।



चित्र 3.2: वेनिस में डोगे का महल, पंद्रहवीं शताब्दी।

विचारणीय बिंदु

क्या आप 9वीं से 17वीं शताब्दी तक एशिया में साम्राज्यों और पश्चिमी यूरोप में विकास के विपरीत प्रक्षेपवक्रों पर चर्चा कर सकते हैं, उन कारकों पर विचार करते हुए जिनके कारण एशिया में विशाल साम्राज्यों का उदय हुआ और यूरोप में सामंतवाद, व्यापार विकास और सांस्कृतिक मुठभेड़ों सहित क्रमिक परिवर्तन हुए?



कालक्रम (लगभग 1300 से 1700)

- यूरोप में विचाराधीन काल में अनेक महत्वपूर्ण विकास हुए जिसमें कृषि और किसानों के जीवन में अनेक प्रकार के परिवर्तनों को देखा गया। इसके अलावा अनेक सांस्कृतिक परिवर्तन भी हुए। इस कालरेखा से ज्ञात होता है कि महाद्वीपों के आपसी संबंधों ने व्यापार को प्रोत्साहित किया।

- इन संपर्कों ने अनेक क्षेत्रों को प्रभावित किया और विचारों, आविष्कारों तथा वस्तुओं का आदान-प्रदान एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप में होने लगा। भूमि पर नियंत्रण, स्रोत और व्यापार के क्षेत्रों पर नियंत्रण रखने के लिए राज्यों में परस्पर लगातार संघर्ष हो रहे थे जिसके कारण महिलाओं एवं पुरुषों को यदि उनकी हत्या न कर दी गई हो तो उन्हें उनके निवास स्थानों से निकाल कर उन्हें दास बनाया जा रहा था।
 - इस तरह लोगों का जीवन अनेक रूपों में इतना अधिक बदल गया था कि उसे पहचानना बहुत कठिन हो गया था। अक्सर पुरुषों और महिलाओं को विस्थापन, दासता या यहाँ तक कि विनाश का सामना करना पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप लोगों के जीवन में गहरा परिवर्तन होता है।
- नीचे दी गई तालिका 13वीं - 17वीं शताब्दी के बीच अफ्रीका, यूरोप, एशिया, दक्षिण एशिया, अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया/प्रशांत द्वीप समूहों में घटित महत्वपूर्ण घटनाओं पर प्रकाश डालती है।

समय	अफ्रीका	यूरोप
1300-25		स्पेन में अल्हाम्ब्रा और ग्रेनाडा महत्वपूर्ण सांस्कृतिक केंद्र के रूप में उभरते हैं
1325-50	मिस्र में प्लेग (1348-55)	इंग्लैंड और फ्रांस के बीच सौ साल का युद्ध (1337-1453); ब्लैक डेथ (प्लेग का एक रूप) पूरे यूरोप में फैल गया (1348)
1350-75	इब्न बतूता ने सहारा की खोज की	फ्रांस के किसानों ने उच्च करों का विरोध किया (1358)
1375-1400		ब्रिटेन में किसान विद्रोह (1381); जेफ्री चौसर द कैंटरबरी टेल्स लिखते हैं, जो अंग्रेजी की सबसे प्रारंभिक रचनाओं में से एक है (1388)
1400-25		
1425-50	पुर्तगालियों ने दास व्यापार शुरू किया (1442)	
1450-75	पश्चिमी अफ्रीका में सोंगहाई साम्राज्य की स्थापना सहारा भर में व्यापारिक नेटवर्क के आधार पर हुई; अफ्रीका के पश्चिमी तट पर पुर्तगाली अभियान और बस्तियाँ (1471 से आगे)	पहली मुद्रित पुस्तक यूरोप में छपी; लियोनार्डो दा विंची (1452-1519), इटली में चित्रकार, वास्तुकार, आविष्कारक
1475-1500	पुर्तगालियों ने बोकोंगो के राजा को ईसाई धर्म में परिवर्तित किया	इंग्लैंड में ट्यूडर राजवंश की स्थापना (1485)
1500-25	अफ्रीकी दासों को अमेरिका में चीनी बागानों में काम करने के लिए ले जाया गया (1510); ऑटोमन तुर्कों ने मिस्र पर विजय प्राप्त की (1517)	दक्षिण अमेरिका की कॉफी पहली बार यूरोप में पी गई (1517) और तम्बाकू, चॉकलेट, टमाटर और टर्की भी पेश किए गए; मार्टिन लूथर ने कैथोलिक चर्च में सुधार का प्रयास किया (1517)
1525-50		कॉपरनिकस ने सौर मंडल के बारे में सिद्धांत प्रतिपादित किया (1543)
1550-75		विलियम शेक्सपियर (1564-1616), इंग्लैंड में नाटककार
1575-1600		जकारियास जानसेन ने माइक्रोस्कोप का आविष्कार किया (1590)
1600-25	नाइजीरिया का ओयो साम्राज्य अपनी शक्ति के चरम पर, धातु-कर्म का केंद्र	पहले उपन्यासों में से एक, डॉन क्विक्सोट, स्पेनिश में लिखा गया (1605)
1625-50		विलियम हार्वे ने प्रदर्शित किया कि शरीर में रक्त हृदय द्वारा पंप किया जाता है (1628)
1650-75	पुर्तगालियों ने कांगो साम्राज्य को नष्ट कर दिया (1662)	लुई XIV, फ्रांस के राजा (1638-1715)
1675-1700		पीटर द ग्रेट (1682-1725) ने रूस को आधुनिक बनाने का प्रयास किया

समय	एशिया	दक्षिण एशिया
1300-25		
1325-1350		विजयनगर साम्राज्य की स्थापना* (1336)
1350-75	चीन में मिंग राजवंश (1368 से आगे)	
1375-1400		
1400-25		क्षेत्रीय सल्तनतों का उदय
1425-50		
1450-75	ओटोमन तुर्कों ने कॉन्स्टेंटिनोपल पर कब्जा कर लिया (1453)	
1475-1500		वास्कोडिगामा भारत पहुँचा (1498)
1500-25	चीन में पुर्तगालियों के प्रवेश का विरोध, मकाओ में खदेड़ दिया गया (1522)	
1525-50		बाबर ने उत्तर भारत पर मुगल नियंत्रण स्थापित किया, पानीपत की पहली लड़ाई (1526)
1550-75		अकबर (1556-1605) ने मुगल शासन को सुदृढ़ किया
1575-1600	जापान में प्रथम काबुकी नाटक का मंचन (1586); फारस के शाह अब्बास (1587-1629) ने सैन्य प्रशिक्षण के यूरोपीय तरीकों को शुरू किया	
1600-25	जापान में तोकुगावा शोगुनेट की स्थापना (1603)	ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना (1600)
1625-50	डचों को छोड़कर सभी यूरोपीय व्यापारियों को जापान के साथ व्यापार करने से मना किया गया (1637); चीन में मांचू शासन, (1644 से आगे) जो लगभग 300 वर्षों तक चला; यूरोप में चीनी चाय और रेशम की बढ़ती माँग	ताज महल का निर्माण (1632-53)
1650-75		
1675-1700		

समय	अमेरिका	ऑस्ट्रेलिया/प्रशांत द्वीप समूह
1300-25	मेक्सिको के टेनोचिट्लान में एज़टेक की राजधानी (1325), मंदिरों का निर्माण, सिंचाई प्रणालियों और लेखा प्रणाली (क्वपु) का विकास”	
1325-50		
1350-75		
1375-1400		
1400-25		
1425-50		

समय	अमेरिका	ऑस्ट्रेलिया/प्रशांत द्वीप समूह
1450-75	इंका ने पेरू पर नियंत्रण स्थापित किया (1465)	
1475-1500	कोलंबस ने वेस्ट इंडीज पर कब्जा किया (1492)	
1500-25	स्पेन ने मेक्सिको पर विजय प्राप्त की (1521)	स्पेनिश नाविक मैगेलन प्रशांत महासागर में पहुँचे (1519)
1525-50	फ्रांसीसी खोजकर्ता कनाडा पहुँचे (1534)	
1550-75	स्पेन द्वारा पेरू पर विजय (1572)	
1575-1600		डच नाविक दुर्घटनावश ऑस्ट्रेलिया पहुँचे
1600-25	इंग्लैंड ने उत्तरी अमेरिका में अपनी पहली कॉलोनियाँ स्थापित की (1607); पश्चिमी अफ्रीका से वर्जीनिया में पहले दास लाए गए (1619)	स्पेनिश नाविक ताहिती पहुँचे (1606)
1625-50	डच लोगों ने न्यू एम्स्टर्डम की खोज की, जिसे अब न्यूयॉर्क कहा जाता है (1626); मैसाचुसेट्स में पहली प्रिंटिंग प्रेस स्थापित की गई (1635)	डच नाविक एबेल तस्मान ने बिना सोचे-समझे ऑस्ट्रेलिया का चक्कर लगा लिया। फिर वह वैन डिमैन की भूमि पर उतरे, जिसे बाद में तस्मानिया कहा गया। वह न्यूजीलैंड भी पहुँचता है, लेकिन सोचता है कि यह एक विशाल भूभाग का हिस्सा है!
1650-75	वेस्ट इंडीज में पहली गन्ने की खेती की गई (1654)	
1675-1700	फ्रांसीसी लोगों ने मिसिसिपी बेसिन को उपनिवेश बनाया, जिसका नाम राजा लुई XIV के नाम पर लुइसियाना रखा गया (1682)	

इस अध्याय में हम 9वीं से 16वीं शताब्दी तक पश्चिमी यूरोप में हुए सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों पर गौर करेंगे।

तीन वर्ग

- ❑ रोमन साम्राज्य के पतन के पश्चात पूर्वी एवं मध्य यूरोप के अनेक जर्मन मूल के समूहों ने इटली, स्पेन और फ्रांस के क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया था।
- ❑ किसी भी संगठित राजनीतिक बल के अभाव में प्रायः युद्ध होते थे और अपनी भूमि की रक्षा के लिए संसाधन जुटाना अति आवश्यक हो गया था। इस प्रकार से सामाजिक ढाँचे का केंद्र-बिंदु भूमि पर नियंत्रण था। इसकी विशेषताएँ जर्मन रीति-रिवाजों और शाही रोम की परंपराओं से लो गई थीं। ईसाई धर्म, जो चौथी सदी से रोमन साम्राज्य का राजकीय धर्म था, रोम के पतन के पश्चात भी बचा रहा और धीरे-धीरे मध्य एवं उत्तरी यूरोप में फैल गया। चर्च भी यूरोप में एक मुख्य भूमिधारक और राजनीतिक शक्ति बन गया था।
- ❑ तीन वर्ग- जो इस अध्याय का केंद्र बिंदु हैं, से हमारा अभिप्राय तीन सामाजिक श्रेणियों से है: ईसाई पादरी, भूमिधारक अभिजात वर्ग और कृषक। इन तीन वर्गों के बीच बदलते संबंध कई सदियों तक यूरोप के इतिहास को गढ़ने वाले महत्वपूर्ण कारक थे।

ब्लॉक का सामंतवाद पर अध्ययन

- ❑ सामंतवाद पर सर्वप्रथम काम करने वाले विद्वानों में से एक फ्रांस के मार्क ब्लॉक (Mare Bloch) थे।
- ❑ मार्क ब्लॉक (1886-1944) फ्रांस के विद्वानों के उस वर्ग से थे जिनका यह तर्क था कि इतिहास की विषयवस्तु राजनीतिक इतिहास, संबंध और महान व्यक्तियों की जीवनियों से कुछ अधिक है। उन्होंने भूगोल के महत्व द्वारा मानव इतिहास को गढ़ने पर जोर दिया जिससे कि लोगों के समूहों का व्यवहार और रुख समझा जा सके।
- ❑ ब्लॉक का सामंती समाज यूरोपियों, विशेषकर 900 से 1300 के मध्य फ्रांसीसी समाज के सामाजिक संबंधों और श्रेणियों, भूमि प्रबंधन एवं उस काल की जन संस्कृति का असाधारण विवरण देता है।
- ❑ द्वितीय विश्वयुद्ध में नाज़ियों द्वारा गोली मारकर हत्या करने के कारण उनके द्वारा किए जा रहे शोध व अध्यापन कार्य पर अचानक ही विराम लग गया।

सामंतवाद का परिचय:

- ❑ इतिहासकारों द्वारा 'सामंतवाद' (fuedalism) शब्द का प्रयोग मध्यकालीन यूरोप के आर्थिक, विधिक, राजनीतिक और सामाजिक संबंधों का वर्णन करने के लिए किया जाता रहा है।
- ❑ यह जर्मन शब्द "फ्र्यूड" से बना है जिसका अर्थ 'एक भूमि का टुकड़ा है' और यह एक ऐसे समाज को इंगित करता है जो मध्य फ्रांस तथा बाद में इंग्लैंड एवं दक्षिणों दक्षिणी इटली में भी विकसित हुआ।

-

- ❑ गॉल (Gaul), जो रोमन साम्राज्य का एक प्रांत था, में दो विस्तृत तट-रेखाएँ, पर्वत-श्रेणियाँ, लंबी नदियाँ, वन और कृषि करने के लिए उपयुक्त विस्तृत मैदान थे।
- ❑ जर्मनी की एक जनजाति, फ्रैंक (Franks) ने गॉल को अपना नाम देकर उसे फ्रांस बना दिया। छठी सदी से यह प्रदेश फ्रैंकिश अथवा फ्रांस के ईसाई राजाओं द्वारा शासित राज्य था। फ्रांसीसियों के चर्च के साथ प्रगाढ़ संबंध थे जो पोप द्वारा राजा शॉर्लमेन से समर्थन प्राप्त करने के लिए उसे पवित्र रोमन सम्राट की उपाधि दिए जाने पर और अधिक मजबूत हो गए।
- ❑ एक सैकड़े जलमार्ग के पार स्थित इंग्लैंड स्काटलैंड द्वीपों को ग्यारहवीं सदी में फ्रांस के एक प्रांत नारमंडी (Normandy) के राजकुमार द्वारा जीत लिया गया था।

❑ मेसोपोटामिया के सबसे पुराने शहर कांस्य युग, लगभग 3000 ईसा पूर्व के हैं। कांसा मुख्यतः तांबे और टिन की एक मिश्र धातु है। कांस्य का उपयोग करने का मतलब था इन धातुओं को अक्सर बहुत दूर से प्राप्त करना। सटीक बढ़ईगिरी, मोतियों की ड्रिलिंग, पत्थर की मुहरों को तराशने, जड़े हुए फर्नीचर के लिए खोल काटने आदि के लिए धातु के औजार आवश्यक थे। मेसोपोटामिया के हथियार भी कांस्य के थे।

फ्राँस का प्रारंभिक इतिहास	
481	क्लोविस फ्रैंक लोगों का राजा बना
486	क्लोविस और फ्रैंक ने उत्तरी गॉल का विजय अभियान प्रारंभ किया
496	क्लोविस और फ्रैंक लोग धर्म परिवर्तन करके ईसाई धर्म बने
714	चार्ल्स मार्टल महल के मेयर बने
751	मार्टल का पुत्र पेपिन फ्रैंक लोगों के शासक को बना और उसने एक अलग वंश की स्थापना की। विजय आकार दुगुना कर दिया
768	पेपिन का स्थान उसके पुत्र शार्लमेन/चार्ल्स महान द्वारा लिया गया
800	पोप लियो III ने शार्लमेन को पवित्र रोमन सम्राट का ताज पहनाया गया
840	नार्वे से वाइकिंग लोगों के हमले

- ❑ कैथोलिक चर्च के अपने नियम थे, राजा द्वारा दी गई जमीनें थीं जिनसे वे कर उगाह सकते थे। इसलिए यह एक शक्तिशाली संस्था थी जो राजा पर निर्भर नहीं थी।
- ❑ पश्चिमी चर्च के अध्यक्ष पोप थे, जो रोम में रहते थे। यूरोप में ईसाई समाज का मार्गदर्शन बिशपों तथा पादरियों द्वारा किया जाता था जो प्रथम वर्ग के अंग थे। अधिकतर गाँवों में अपने चर्च हुआ करते थे जहाँ पर प्रत्येक रविवार को लोग पादरी के धर्मोपदेश सुनने तथा सामूहिक प्रार्थना करने के लिए इकट्ठा होते थे।

- प्रत्येक व्यक्ति पादरी नहीं हो सकता था जैसे कृषि-दास पर, प्रतिबंध था शारीरिक रूप से बाधित व्यक्तियों पर और स्त्रियों पर भी प्रतिबंध था। जो पुरुष पादरी बनते थे वे शादी नहीं कर सकते थे।
- धर्म के क्षेत्र में बिशप अभिजात माने जाते थे। बिशपों के पास भी लॉर्ड की तरह विस्तृत जागीरें थीं और वे शानदार महलों में रहते थे।
- चर्च को एक वर्ष के अंतराल में कृषक से उसकी उपज का दसवाँ भाग लेने का अधिकार था जिसे 'टीथ' (Tithe) कहते थे। अमीरों द्वारा अपने कल्याण और मरणोपरांत अपने रिश्तेदारों के कल्याण हेतु दिया जाने वाला दान भी आय का एक स्रोत था।
- चर्च के औपचारिक रीति-रिवाज की कुछ महत्वपूर्ण रस्में, सामंती कुलीनों की नकल थीं। प्रार्थना करते वक्त, हाथ जोड़कर और सिर झुकाकर घुटनों के बल झुकना, नाइट द्वारा अपने वरिष्ठ लॉर्ड के प्रति वफ़ादारी की शपथ लेते वक्त अपनाए गए तरीके की नकल था। इसी प्रकार ईश्वर के लिए लॉर्ड शब्द का प्रचलन एक उदाहरण था जिसके द्वारा सामंती संस्कृति चर्च के उपासना कक्षों में प्रवेश करने लगी। इस प्रकार अनेक सांस्कृतिक सामंती रीति-रिवाजों और तौर-तरीकों को चर्च की दुनिया में अपना लिया गया था।

क्या आप जानते हैं?

शब्द 'मठ' ग्रीक शब्द 'मोनोस' से लिया गया है, जिसका अर्थ है कोई ऐसा व्यक्ति जो अकेला रहता हो।

शिक्ष:

- चर्च के अतिरिक्त कुछ विशेष श्रद्धालु ईसाइयों की एक दूसरी तरह की संस्था थी। कुछ अत्यधिक धार्मिक व्यक्ति, पादरियों के विपरीत जो लोगों के बीच में नगरों और गाँवों में रहते थे, एकांत जिंदगी जीना पसंद करते थे। वे धार्मिक समुदायों में रहते थे जिन्हें ऐबी (Abbeys) या मोनेस्ट्री (monastery) मठ कहते थे और जो अधिकतर मनुष्य की आम आबादी से बहुत दूर होते थे।
- दो सबसे अधिक प्रसिद्ध मठों में एक मठ 529 में इटली में स्थापित सेंट बेनेडिक्ट (St. Benedict) था और दूसरा 910 में बर्गंडी (Burgundy) में स्थापित क्लूनी (Cluny) था।
- भिक्षु अपना सारा जीवन आँबे में रहने और समय प्रार्थना करने, अध्ययन एवं कृषि जैसे शारीरिक श्रम में लगाने का व्रत लेता था। पादरी-कार्य के विपरीत भिक्षु की जिंदगी पुरुष और स्त्रियाँ दोनों ही अपना सकते थे ऐसे पुरुषों को मॉक (Monk) तथा स्त्रियाँ नन (Nun) कहलाती थीं। कुछ आँबों को छोड़कर ज्यादातर में एक ही लिंग के व्यक्ति रह सकते थे। पुरुषों और महिलाओं के लिए अलग-अलग आँबे थे।
- पादरियों की तरह, भिक्षु और भिक्षुणियाँ भी विवाह नहीं कर सकती थी।
- दस या बीस पुरुष स्त्रियों के छोटे समुदाय से बढ़कर मठ अब सैकड़ों की संख्या के समुदाय बन गए जिसमें बड़ी इमारतें और भू-जागीरों के साथ-साथ स्कूल या कॉलेज एवं अस्पताल संबद्ध थे। इन समुदायों ने कला के विकास में योगदान दिया।
- आबेस हिल्डेगार्ड एक प्रतिभाशाली संगीतज्ञ था, जिसने चर्च की प्रार्थनाओं में सामुदायिक गायन की प्रथा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। तेरहवीं सदी से भिक्षुओं के कुछ समूह जिन्हें फ्रायर (friars) कहते थे उन्होंने मठों में न रहने का निर्णय लिया। वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूम-घूम कर लोगों को उपदेश देते और दान से अपनी जीविका चलाते थे।
- चौदहवीं सदी तक आते-आते, मठवाद के महत्त्व और उद्देश्य के बारे में कुछ शंकाएँ व्याप्त होने लगीं। इंग्लैंड में, लैंगलैंड (Langland) की कविता पियर्स प्लाउमैन (1360-70 ई.) में कुछ भिक्षुओं के आरामदायक एवं विलासितापूर्ण जीवन की साधारण कृषकों, गड़ियों और गरीब मजदूरों के 'विशुद्ध विश्वास' से तुलना की गई है। इंग्लैंड में भी चॉसर ने कैंटरबरी टेल्स लिखी (नीचे बॉक्स में उद्धरण देखिए) जिसमें भिक्षुणी (nun), भिक्षु (monk) और फ्रायर का हास्यास्पद चित्रण किया गया है।



चित्र 3.4: इंग्लैंड के फ़ार्नबोरो में सेंट माइकल बेनेडिक्टिन मठ।



चित्र 3.5: पांडुलिपि पर कार्य करते हुए एक बेनेडिक्टीन भिक्षु का काष्ठचित्र

बेनेडिक्टिन मठ:

बेनेडिक्टिन (Benedictine) मठों में, भिक्षुओं के लिए एक हस्तलिखित पुस्तक होती थी जिसमें नियमों के 73 अध्याय थे। इसका पालन भिक्षुओं द्वारा कई सदियों तक किया जाता रहा। इस पुस्तक के कुछ नियम इस प्रकार हैं:

- **अध्याय-6:** भिक्षुओं को बोलने की आज्ञा कभी-कभी ही दी जानी चाहिए।
- **अध्याय-7:** चिनम्रता का अर्थ है आज्ञा पालन।
- **अध्याय-33:** किसी भी भिक्षु को निजी संपत्ति नहीं रखनी चाहिए।
- **अध्याय-47:** आलस्य आत्मा का शत्रु है, इसलिए भिक्षु और भिक्षुणियों को निश्चित समय में शारीरिक श्रम एवं निश्चित घंटों में पवित्र पाठ करना चाहिए।
- **अध्याय-48:** मठ इस प्रकार बनाने चाहिए कि आवश्यकता की समस्त वस्तुएँ-जल, चक्की, उद्यान, कार्यशाला सभी उसकी सीमा के अंदर हों।

वर्ग और समाज:

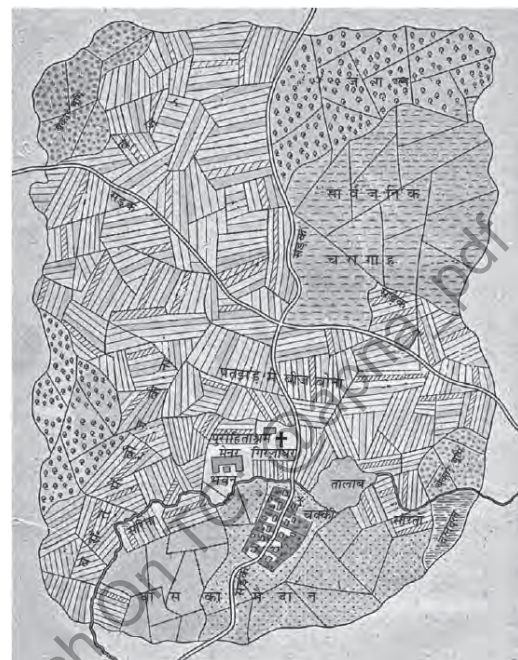
- यद्यपि यूरोपवासी ईसाई बन गए थे पर उन्होंने अभी भी कुछ हद तक चमत्कार और रीति-रिवाजों से जुड़े अपने पुराने विश्वासों को नहीं छोड़ा था।
- चौथी सदी से ही क्रिसमस और ईस्टर कैलेंडर की महत्वपूर्ण तिथियाँ बन गए थे। 25 दिसंबर को मनाए जाने वाले ईसा मसीह के जन्मदिन ने एक पुराने पूर्व-रोमन त्योहार का स्थान ले लिया। इस तिथि की गणना सौर-पंचांग (solar calendar) के आधार पर की गई थी।
- ईस्टर ईसा के शूलारोपण और उनके पुनर्जीवित होने का प्रतीक था। परंतु उसकी तिथि निश्चित नहीं थी, क्योंकि इसने चंद्र-पंचांग (lunar calendar) पर आधारित एक प्राचीन त्योहार का स्थान लिया था जो लंबी सर्दी के पश्चात बसंत के आगमन का स्वागत करने के लिए मनाया जाता था। परंपरागत रूप में, उस दिन प्रत्येक गाँव के व्यक्ति अपने गाँव की भूमि का दौरा करते थे। ईसाई धर्म के आने पर भी उन्होंने इसे जारी रखा पर अब वे उसे ग्राम के स्थान पर 'पैरिश' (Parish - एक पादरी की देखरेख में आने वाला क्षेत्र) कहने लगे।
- काम से दबे कृषक इन पवित्र दिनों/छुट्टियों (Holy days/Holidays) का स्वागत इसलिए करते थे, क्योंकि इन दिनों उन्हें कोई काम नहीं करना पड़ता था। वैसे तो यह दिन प्रार्थना करने के लिए था परंतु लोग सामान्यतः इसका अधिकतर समय मौज-मस्ती करने और दावतों में बिताते थे।
- तीर्थयात्रा, ईसाइयों के जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा थी, और बहुत से लोग शहीदों की समाधियों या बड़े गिरजाघरों की लंबी यात्राओं पर जाते थे।

दूसरा वर्ग: अभिजात वर्ग

- पादरियों ने स्वयं को प्रथम वर्ग में तथा अभिजात वर्ग को दूसरे वर्ग में रखा था। परंतु वास्तव में, सामाजिक प्रक्रिया में अभिजात वर्ग की महत्वपूर्ण भूमिका थी। ऐसा भूमि पर उनके नियंत्रण के कारण था। यह वैसलेज (Vassalage) नामक एक प्रथा के विकास के कारण हुआ।
- फ्रांस के शासकों का लोगों से जुड़ाव एक प्रथा के कारण था जिसे 'वैसलेज' कहते थे और यह प्रथा जर्मन मूल के लोगों, जिनमें से फ्रैंक लोग भी एक थे, में समान रूप से विद्यमान थी। बड़े भू-स्वामी और अभिजात वर्ग राजा के अधीन होते थे जबकि कृषक भू-स्वामियों के अधीन होते थे।
- अभिजात वर्ग राजा को अपना स्वामी (Seigneur-शाब्दिक अर्थ अंग्रेजी का Senior) मान लेता था और वे आपस में वचनबद्ध होते थे- सेन्योर लॉर्ड (लॉर्ड एक ऐसे शब्द से निकला जिसका अर्थ था रोटी देने वाला) दास (Vassal) की रक्षा करता था और बदले में वह उसके प्रति निष्ठावान रहता था। इन संबंधों में व्यापक रीति-रिवाजों और शपथों का विनिमय शामिल था जो कि चर्च में बाईबल की शपथ लेकर की जाती थी। इस समारोह में दास (vassal) को उस भूमि के प्रतीक के रूप में, जो कि उसके मालिक द्वारा एक लिखित अधिकार पत्र या एक छड़ी (staff) या केवल एक मिट्टी का डला दिया जाता था।
- अभिजात वर्ग की एक विशेष हैसियत थी। उनका अपनी संपदा पर स्थायी तौर पर पूर्ण नियंत्रण था। वह अपनी सैन्य क्षमता बढ़ा सकते थे (जो सामंती सेना, feudal levies, कहलाती थी)। वे अपना स्वयं का न्यायालय लगा सकते थे और यहाँ तक कि अपनी मुद्रा भी प्रचलित कर सकते थे।
- वे अपनी भूमि पर बसे सभी व्यक्तियों के मालिक थे। वे विस्तृत क्षेत्रों के स्वामी थे जिसमें उनके घर, उनके निजी खेत, जोत व चरागाह और उनके असामी-कृषकों (Tenant-peasant) के घर एवं खेत होते थे। उनका घर 'मेनर' कहलाता था। उनकी व्यक्तिगत भूमि कृषकों द्वारा जोती जाती थी जिनको आवश्यकता पड़ने पर युद्ध के समय पैदल सैनिकों के रूप में कार्य करना पड़ता था और साथ ही साथ अपने खेतों पर भी काम करता पड़ता था।



चित्र 3.6: शिकार पर निकलते फ्रांसीसी रईस, पंद्रहवीं सदी की पेंटिंग।



चित्र 3.7: एक मनोरियल एस्टेट, इंग्लैंड (13वीं शताब्दी)

मेनर की जागीर:

- लॉर्ड का अपना मेनर भवन होता था। वह गाँवों पर नियंत्रण रखता था कुछ लॉर्ड, अनेक गाँवों के मालिक थे। किसी छोटे मेनर की जागीर में दर्जन भर और बड़ी जागीर में 50 वा 60 परिवार हो सकते थे।
- प्रतिदिन के उपभोग की प्रत्येक वस्तु जागीर पर मिलती थी - अनाज खेतों में उगाये जाते थे, लोहार और बढ़ई लॉर्ड के औजारों की देखभाल एवं हथियारों की मरम्मत करते थे, जबकि राजमिस्त्री उनकी इमारतों की देखभाल करते थे।

- औरतें वस्त्र कातती एवं बुनती थीं और बच्चे लॉर्ड की मदिरा संपीणक में कार्य करते थे। जागीरों में विस्तृत अरण्यभूमि और वन होते थे जहाँ लॉर्ड शिकार करते थे। उनके यहाँ चरागाह होते थे जहाँ उनके पशु और घोड़े चरते थे। वहाँ पर एक चर्च और सुरक्षा के लिए एक दुर्ग होता था।
 - तेरहवीं सदी से कुछ दुर्गों को बड़ा बनाया जाने लगा जिससे वे नाइट (knight) के परिवार का निवास स्थान बन सके। वास्तव में, इंग्लैंड में नॉरमन विजय से पहले दुर्गों की कोई जानकारी नहीं थी और इनका विकास सामंत प्रथा के तहत राजनीतिक प्रशासन एम सैनिक शक्ति के केंद्रों के रूप में हुआ था।
 - मेनर कभी भी आत्मनिर्भर नहीं हो सकते थे, क्योंकि उन्हें नमक, चक्की का पाट और धातु के बर्तन बाहर के स्रोतों से प्राप्त करने पड़ते थे। ऐसे लॉर्ड जो विलासी जीवन बिताना चाहते थे और मँहगे साजो-सामान, वाद्य यंत्र तथा आभूषण खरीदना चाहते थे जो स्थानीय जगहों पर उपलब्ध नहीं होते थे, ऐसी चीजों को इन्हें दूसरे स्थानों से प्राप्त करना पड़ता था।
- “अगर मेरे प्यारे लॉर्ड को काट दिया जाता है, उसकी तकदीर का मैं भागीदार बनूँगा, अगर वह लटका दिया जाता है तब मुझे भी उसके साथ लटका दें, अगर उसे अग्नि दंड दिया जाता है तो मैं भी उसके साथ जल जाऊँगा: और अगर उसे डुबा दिया जाता है तो मुझे भी उसके साथ डुबा दिया जाए।” तेरहवीं सदी में गाई जाने वाली फ्रांसीसी कविता ‘डून दे मयान्स’ जो नाइटों के साहस की याद दिलाती है।

नाइट:

- नौवी सदी से, यूरोप में स्थानीय युद्ध प्रायः होते रहते थे। शौकिया कृषक सैनिक पर्याप्त नहीं थे और कुशल अश्वसेना की आवश्यकता थी। इसने एक नए वर्ग को बढ़ावा दिया जो नाइट्स (Knights) कहलाते थे। वे लॉर्ड से उसी प्रकार सम्बद्ध थे जिस प्रकार लॉर्ड राजा से संबद्ध था।
- लॉर्ड ने नाइट को भूमि का एक भाग (जिसे फ्रीफ़ कहा गया) दिया और उसकी रक्षा करने का वचन दिया। फ्रीफ़ (fief) को उत्तराधिकार में पाया जा सकता था। यह 1000-2000 एकड़ या उससे अधिक में फैली हुई हो सकती थी जिसमें नाइट और उसके परिवार के लिए एक पनचक्की तथा मदिरा संपीणक के अतिरिक्त, उसके व उसके परिवार के लिए घर, चर्च एवं उस पर निर्भर व्यक्तियों के रहने की व्यवस्था शामिल थी।
- सामंती मेनर (feudal manor) की तरह, फ्रीफ़ की भूमि को कृषक जोतते थे। बदले में, नाइट अपने लॉर्ड को एक निश्चित रकम देता था और युद्ध में उसकी तरफ से लड़ने का वचन देता था। अपनी सैन्य योग्यताओं को बनाए रखने के लिए, नाइट प्रतिदिन अपना समय बाड़ बनाने/धेराबंदी करने और पुतलों से रण कौशल एवं अपने बचाव का अभ्यास करने में निकालते थे। नाइट अपनी सेवाएँ अन्य लॉर्डों को भी दे सकता था पर उसकी सर्वप्रथम निष्ठा अपने लॉर्ड के लिए ही होती थी।
- बारहवीं सदी से गायक फ्रांस के मेनरों में वीर राजाओं और नाइट्स की वीरता की कहानी 15 गीतों के रूप में सुनाते हुए घूमते रहते थे जो अंशतः ऐतिहासिक और अंशतः काल्पनिक होती थीं। उस काल में जब बहुत अधिक संख्या में पढ़े-लिखे लोग नहीं थे और पांडुलिपियाँ भी अधिक नहीं थीं, ये घुमक्कड़ चारण बहुत प्रसिद्ध थे। अनेक मेनर भवनों के मुख्य कक्ष के ऊपर एक सँकरा छज्जा होता था, जहाँ मेनर के लोग भोजन के लिए एकत्र होते थे। यह एक गायक दीर्घा होती थी जो कि संगीतज्ञों द्वारा अभिजात वर्ग के लोगों का भोजन करते वक्त मनोरंजन करने के लिए बनी थी।

तीसरा वर्ग: किसान, स्वतंत्र और बंधक

काश्तकार दो तरह के होते थे, स्वतंत्र किसान और सर्फ़ जिन्हें हिंदी में कृषि-दास कहा जाता है। सर्फ़ अंग्रेज़ी की क्रिया टू सर्व (To serve) से बना है।

- स्वतंत्र कृषक अपनी भूमि को लॉर्ड के काश्तकार के रूप में देखते थे। पुरुषों का सैनिक सेवा में योगदान आवश्यक होता था (वर्ष में कम से कम चालीस दिन)।
- कृषकों के परिवारों को लॉर्ड की जागीरों पर जाकर काम करने के लिए सप्ताह के तीन या उससे अधिक कुछ दिन निश्चित करने पड़ते थे। इस श्रम से होने वाला उत्पादन जिसे ‘श्रम-अधिशेष’ (Labour rent) कहते थे, सीधे लॉर्ड के पास जाता था।
- इसके अतिरिक्त, उनसे अन्य श्रम कार्य: जैसे गड़दे खोदना, जलाने के लिए लकड़ियाँ इकट्ठी करना, बाड़ बनाना और सड़कें व इमारतों की मरम्मत करने की भी उम्मीद की जाती थी तथा इनके लिए उन्हें कोई मजदूरी नहीं मिलती थी।
- खेतों में मदद करने के अतिरिक्त, स्त्रियों व बच्चों को अन्य कार्य भी करने पड़ते थे। वे सूत कातते, कपड़ा बुनते, मोमबत्ती बनाते और लॉर्ड के उपयोग हेतु अंगूरों से रस निकाल कर मदिरा तैयार करते थे। इसके साथ ही एक प्रत्यक्ष कर ‘टैली’ (Taille) था, जिसे राजा कृषकों पर कभी-कभी लगाते थे (पादरी और अभिजात वर्ग इस कर से मुक्त थे)।



चित्र 3.8: एक अंग्रेज हलवाहा, 16वीं शताब्दी का रेखाचित्र।

- कृषिदास अपने गुजारे के लिए जिन भूखंडों पर कृषि करते थे वो लॉर्ड के स्वामित्व में थे। इसलिए उनकी अधिकतर उपज भी लॉर्ड को ही मिलती थी। वे उन भूखंडों पर भी कृषि करते थे जो केवल लॉर्ड के स्वामित्व में थी। इसके लिए उन्हें कोई मजदूरी नहीं मिलती थी और वे लॉर्ड की आज्ञा के बिना जागीर नहीं छोड़ सकते थे। लॉर्ड कई तरह के एकाधिकार का दावा करते थे हालाँकि इससे कृषि दासों को हानि हो सकती थी।
- सर्फ़ केवल अपने लॉर्ड की चक्की में ही आटा पीस सकते थे, उनके तंदूर में ही रोटी सेंक सकते थे और उनकी मदिरा संपीडक में ही आसवन मदिरा एवं बीयर तैयार कर सकते थे। लॉर्ड यह तय कर सकता था कि कृषि दास को किसके साथ विवाह करना चाहिए या फिर कृषिदास की पसंद को ही अपना आशीर्वाद दे सकता था, परंतु इसके लिए वह शुल्क लेता था।

इंग्लैंड में सामंतवाद

- सामंतवाद का विकास इंग्लैंड में ग्यारहवीं सदी से हुआ।
- छठी सदी में मध्य यूरोप से एंजिल (Angles) और सैक्सन (Saxons) इंग्लैंड में आकर बस गए। इंग्लैंड देश का नाम 'एजिल लैंड' का रूपांतरण है।
- ग्यारहवीं सदी में नॉरमैडी (Normandy) के ड्यूक, विलियम ने एक सेना के साथ इंग्लिश चैनल (English channel) को पार कर इंग्लैंड के सैक्सन राजा को हरा दिया। इस समय, फ्रांस और इंग्लैंड में क्षेत्रीय सीमाओं और व्यापार से उत्पन्न होने वाले विवादों के कारण प्रायः युद्ध होते रहते थे।
- विलियम प्रथम ने भूमि नपवाई, उसके नक्शे बनवाए और उसे अपने साथ आए 180 नॉरमन अभिजातों में बाँट दिए। यही लॉर्ड, राजा के प्रमुख काश्तकार बन गए थे जिनसे वह सैन्य सहायता की उम्मीद करता था। वे राजा को कुछ नाइट देने के लिए बाध्य थे।
- शीघ्र ही वे नाइटों को कुछ भूमि उपहार में देने लगे जिनसे वे उसी प्रकार सेवा की आशा रखते थे जैसी वे राजा की करते थे। किंतु वे नाइटों का अपने निजी युद्धों के लिए उपयोग नहीं कर सकते थे, क्योंकि इस पर इंग्लैंड में प्रतिबंध था। एंग्लो-सैक्सन कृषक विभिन्न स्तरों के भू-स्वामियों के काश्तकार बन गए।

सामाजिक और आर्थिक संबंधों को प्रभावित करने वाले कारक

- यद्यपि प्रथम दोनों वर्गों के सदस्यों ने सामाजिक व्यवस्था को स्थिर और अपरिवर्तनीय पाया, परंतु वहाँ अनेक प्रक्रियाएँ थीं जो व्यवस्था को बदल रही थीं। इनमें से कुछ, जैसे पर्यावरण में परिवर्तन, धीरे-धीरे और लगभग अदृश्य थे। अन्य परिवर्तन जैसे कृषि प्रौद्योगिकी में बदलाव और भूमि का उपयोग अधिक स्पष्ट थे। लॉर्ड और सामंत के सामाजिक और आर्थिक संबंध इन परिवर्तनों से बने थे और इन्हें प्रभावित भी कर रहे थे।

पर्यावरण	□ पाँचवीं से दसवीं सदी तक यूरोप का अधिकांश भाग विस्तृत वनों से घिरा हुआ था। अतः कृषि के लिए उपलब्ध भूमि सीमित थी। इसके साथ ही, अपनी परिस्थितियों से असंतुष्ट कृषक अत्याचार से बचने के लिए वहाँ से भाग कर वनों में शरण ले सकते थे। □ इस समय यूरोप में तीव्र ठंड का दौर चल रहा था। इससे सर्दियाँ प्रचंड और लंबी अवधि की हो गई। फसलों का उपज काल छोटा हो गया तथा इसके कारण कृषि की पैदावार कम हो गई। □ ग्यारहवीं सदी से यूरोप में एक गर्माहट का दौर शुरू हो गया और औसत तापमान बढ़ गया जिससे कृषि पर अच्छा प्रभाव पड़ा। कृषकों को कृषि के लिए अब लंबी अवधि मिलने लगी। □ मिट्टी पर पाले का असर कम होने के कारण आसानी से खेती की जा सकती थी। पर्यावरण इतिहासकारों का कहना है कि इससे यूरोप के अनेक भागों के वन क्षेत्रों में उल्लेखनीय कमी हुई। फलस्वरूप कृषि भूमि का विस्तार हुआ।
भूमि का उपयोग	□ प्रारंभ में, कृषि प्रौद्योगिकी बहुत आदिम किस्म थी। कृषक को मिलने वाली यांत्रिक मदद केवल बैलों की जोड़ी से चलने वाला लकड़ी का हल था। यह हल केवल पृथ्वी की सतह को खुरच ही सकता था। यह भूमि की प्राकृतिक उत्पादकता को पूरी तरह से बाहर निकाल पाने में असमर्थ था। इसलिए कृषि में अत्यधिक परिश्रम करना पड़ता था। □ भूमि को प्रायः चार वर्ष में एक बार हाथ से खोदा जाता था और उसमें अत्यधिक मानव श्रम की आवश्यकता होती थी। साथ ही फसल चक्र के एक प्रभावहीन तरीके का उपयोग हो रहा था। □ भूमि को दो भागों में बाँट दिया जाता था। एक भाग में शरद ऋतु में सर्दी का गेहूँ बोया जाता था, जबकि दूसरी भूमि को परती या खाली रखा जाता था। अगले वर्ष परती भूमि पर राई बोई जाती थी जबकि दूसरा आधा भाग खाली रखा जाता था। इस व्यवस्था के कारण, मिट्टी की उर्वरता का धीरे-धीरे ह्रास होने लगा और प्रायः अकाल पड़ने लगे। दीर्घकालिक कुपोषण एवं विनाशकारी अकाल बारी-बारी से पड़ने लगे जिससे गरीबों के लिए जीवन अत्यंत दुष्कर हो गया। □ इन कठिनाइयों के बावजूद, लॉर्ड अपनी आय को अधिकतम करने के लिए उत्सुक रहते थे। हालाँकि भूमि के उत्पादन को बढ़ाना संभव नहीं था, इसलिए कृषकों को मेनरों की जागीर (Manorial estate) की समस्त भूमि को कृषिगत बनाने के लिए बाध्य होना पड़ता था और इस कार्य को करने के लिए उन्हें नियमानुसार निर्धारित समय से अधिक समय देना पड़ता था।

	- चरागाहों व वन-भूमि के कारण उनका उन लॉडों के साथ विवाद होने लगा। लॉर्ड इस भूमि को अपनी व्यक्तिगत संपत्ति समझते थे जबकि कृषक इसको संपूर्ण समुदाय द्वारा उपयोग की जाने वाली साझा संपदा मानते थे। - कृषक इस अत्याचार को चुपचाप नहीं सहते थे। चूँकि वे खुलकर विरोध नहीं कर सकते थे इसलिए उन्होंने निष्क्रिय प्रतिरोध का सहारा लिया। वे अपने खेतों पर कृषि करने में अधिक समय लगाने लगे और उस मेहनत का अधिकतर उत्पाद अपने लिए रखने लगे। वे बेगार करने से बचने लगे।
नई कृषि प्रौद्योगिकी	- ग्याहर्वी सदी तक विभिन्न प्रौद्योगिकियों में बदलाव के प्रमाण मिलते हैं। - मूल रूप से लकड़ी से बने हल के स्थान पर लोहे की भारी नोक वाले हल और साँचेदार पटरे (Mould boards) का उपयोग होने लगा। ऐसे हल अधिक गहरा खोद सकते थे और साँचेदार पटरे सही ढंग से उपरि मृदा को पलट सकते थे। इसके फलस्वरूप भूमि में व्याप्त पौष्टिक तत्वों का बेहतर उपयोग होने लगा। - पशुओं को हलों में जोतने के तरीकों में सुधार हुआ। गले (Neck harness) के स्थान पर जुआ अब कंधे पर बाँधा जाने लगा। इससे पशुओं को अधिक शक्ति मिलने लगी। घोड़े के खुरों पर अब लोहे की नाल लगाई जाने लगी जिससे उनके खुर सुरक्षित हो गए। कृषि के लिए वायु और जल शक्ति का उपयोग बहुतायत में होने लगा। यूरोप में अन्न को पीसने और अंगूरों को निचोड़ने के लिए अधिक जलशक्ति एवं वायुशक्ति से चलने वाले कारखाने स्थापित हो रहे थे। - भूमि के उपयोग के तरीके में भी बदलाव आया। सबसे क्रांतिकारी था दो खेतों वाली व्यवस्था से तीन खेतों वाली व्यवस्था में परिवर्तन। इस व्यवस्था में कृषक तीन वर्षों में से दो वर्ष अपने खेत का उपयोग कर सकता था बशर्ते वह एक फसल शरत् ऋतु में और उसके डेढ़ वर्ष पश्चात दूसरी बसंत में बोता। इसका अर्थ था कि कृषक अपनी जोतों को तीन खेतों में बाँट सकते थे। वे मानव उपभोग के लिए एक खेत में शरत् ऋतु में गेहूँ या राई बो सकते थे। दूसरे में, बसंत ऋतु में मनुष्यों के उपभोग के लिए मटर, सेम और मसूर तथा घोड़ों के लिए जौ एवं बाजरा बो सकते थे, तीसरा खेत परती यानि खाली रखा जाता था। प्रत्येक वर्ष वे तीनों खेतों का प्रयोग बदल-बदल कर करते थे। - इन सुधारों के कारण, भूमि की प्रत्येक इकाई में होने वाले उत्पादन में तेजी से बढ़ोतरी हुई। भोजन की उपलब्धता दुगुनी हो गई। मटर और सेम जैसे पौधों का अधिक उपयोग एक औसत यूरोपीय के आहार में अधिक प्रोटीन का तथा उनके पशुओं के लिए अच्छे चारे का स्रोत बन गया। फलस्वरूप कृषकों को बेहतर अवसर मिलने लगा। वे अब कम भूमि पर अधिक भोजन का उत्पादन कर सकते थे। तेरहवीं सदी तक एक कृषक के खेत का औसत आकार सौ एकड़ से घटकर बीस से तीस एकड़ तक रह गया। छोटी जोतों पर अधिक कुशलता से कृषि की जा सकती थी और उसमें कम श्रम की आवश्यकता थी। इससे कृषकों को अन्य गतिविधियों के लिए समय मिला। - इनमें से कुछ प्रौद्योगिकी बदलावों में अत्यधिक धन लगता था। कृषकों के पास पनचक्की और पवनचक्की स्थापित करने के लिए पर्याप्त धन नहीं था इसलिए इस मामले में पहल लॉर्डों द्वारा की गई। परंतु कृषक भी कई अन्य क्षेत्रों में पहल करने में सक्षम रहे, जैसे कि खेती योग्य भूमि का विस्तार करने में। उन्होंने फसलों की तीन-चक्रीय व्यवस्था को अपनाया और गाँवों में लोहार की दुकानें तथा भट्टियाँ स्थापित कीं, जहाँ पर लोहे की नोक वाले हल एवं घोड़े की नाल बनाने व मरम्मत करने के काम को सस्ती दरों पर किया जाने लगा। - ग्यारहवीं सदी से, व्यक्तिगत संबंध, जो सामंतवाद का आधार थे कमजोर पड़ने लगे, क्योंकि आर्थिक लेन-देन अधिक से अधिक मुद्रा पर आधारित होने लगा। लॉर्डों को लगान, उनकी सेवाओं के बजाए नकदी में लेना अधिक सुविधाजनक लगने लगा और कृषकों ने अपनी फसल व्यापारियों को मुद्रा में (उन्हें वस्तुओं से बदलने के स्थान पर) बेचना शुरू कर दिया जो पुनः उन वस्तुओं को शहर में बेच देते थे। धन का बढ़ता उपयोग कीमतों को प्रभावित करने लगा जो खराब फसल के समय बहुत अधिक हो जाती थी।

चौथा वर्ग? नए नगर और नगरवासी

- जनसंख्या वृद्धि:** कृषि में विस्तार के साथ ही उससे संबद्ध तीन क्षेत्रों जनसंख्या, व्यापार और नगरों का विस्तार हुआ। यूरोप की जनसंख्या जो 1000 में लगभग 420 लाख थी बढ़कर 1200 में लगभग 620 लाख और 1300 में 730 लाख हो गई। बेहतर आहार का अर्थ लंबी जीवन-अवधि था।
- शहरीकरण:** रोमन साम्राज्य के पतन के पश्चात उसके नगर उजाड़ और तबाह हो गए थे। परंतु ग्यारहवीं सदी से जब कृषि का विस्तार हुआ और वह अधिक जनसंख्या का भार सहने में सक्षम हुई तो नगर फिर से बढ़ने लगे। जिन कृषकों के पास अपनी आवश्यकता से अधिक खाद्यान्न होता था, उन्हें एक ऐसे स्थान की आवश्यकता महसूस हुई जहाँ वे अपना एक बिक्री केंद्र स्थापित कर सकें और जहाँ से वे अपने उपकरण एवं कपड़े खरीद सकें। इस ज़रूरत ने मियादी हाट-मेलों को बढ़ावा दिया, और छोटे विपणन केंद्रों का विकास किया जिनमें धीरे-धीरे नगरों के लक्षण विकसित होने लगे।



चित्र 3.9: रेम्स, फ्रांसीसी कथीड्रल-शहर, सत्रहवीं सदी का मानचित्र।

- ❑ **स्वतंत्रता के केंद्र के रूप में शहर:** 'नगर की हवा स्वतंत्र बनाती है' एक प्रसिद्ध कहावत थी। स्वतंत्र होने की इच्छा रखने वाले अनेक कृषिदास भाग कर नगरों में छिप जाते थे। अपने लॉर्ड की नज़रों से एक वर्ष व एक दिन तक छिपे रहने में सफल रहने वाला कृषिदास एक स्वाधीन नागरिक बन जाता था। नगरों में रहने वाले अधिकतर व्यक्ति या तो स्वतंत्र कृषक या भगोड़े कृषिदास थे जो कार्य की दृष्टि से अकुशल श्रमिक होते थे।
- ❑ **श्रेणी और आर्थिक संगठन:** आर्थिक संस्था का आधार 'श्रेणी' (Guild) था। प्रत्येक शिल्प या उद्योग एक 'श्रेणी' के रूप में संगठित था। यह एक ऐसी संस्था थी जो उत्पाद की गुणवत्ता, उसके मूल्य और विक्री पर नियंत्रण रखती थी। 'श्रेणी सभागार' प्रत्येक नगर का आवश्यक अंग था। यह आनुष्ठानिक समारोहों के लिए था जहाँ गिल्डों के प्रधान औपचारिक रूप से मिला करते थे।
- ❑ **व्यापार और वाणिज्य:** ग्यारहवीं सदी आते-आते, पश्चिम एशिया के साथ नवीन व्यापार-मार्ग विकसित हो रहे थे। स्कैंडिनेविया के व्यापारी वस्त्र के बदले में फ़र और शिकारी बाज़ लेने के लिए उत्तरी सागर से दक्षिण की समुद्री यात्रा करते थे और अंग्रेज़ व्यापारी राँगा बेचने के लिए आते थे। बारहवीं सदी तक फ़्रांस में वाणिज्य और शिल्प विकसित होने लगा था। जैसे-जैसे नगरों की संख्या बढ़ने लगी और व्यापार का विस्तार होता गया, नगर के व्यापारी अधिक अमीर तथा शक्तिशाली होने लगे एवं अभिजात्यता के लिए प्रतिस्पर्धा करने लगे।

कथीडूल-शहर

- ❑ **चर्चों को दान:** चर्चों को दान देना अमीर व्यापारियों द्वारा अपने धन को खर्च करने का एक तरीका था। बारहवीं सदी से फ़्रांस में कथीडूल कहलाने वाले बड़े चर्चा का निर्माण होने लगा। यद्यपि वे मठों की संपत्ति थे पर लोगों के विभिन्न समूहों ने अपने श्रम, वस्तुओं और धन से उनके निर्माण में सहयोग दिया।
- ❑ **कथीडूल निर्माण:** कथीडूल पत्थर के बने होते थे और उन्हें पूरा करने में अनेक वर्ष लगते थे।
- ❑ **छोटे शहरों का विकास:** कथीडूल के निर्माण से उनके आसपास छोटे शहरों का विकास हुआ। जैसे-जैसे कथीडूल के आसपास के इलाके अधिक आबादी वाले होते गए, वे तीर्थयात्रा के केंद्र बन गए। इस प्रकार, उनके चारों तरफ छोटे नगर विकसित हुए।
- ❑ **कथीडूल का डिज़ाइन:** कथीडूल इस प्रकार बनाए गए थे कि पादरी की आवाज़ लोगों के जमा होने वाले सभागार में साफ सुनाई पड़ सके और भिक्षुओं का गायन भी अधिक मधुर सुनाई पड़े, साथ ही लोगों को प्रार्थना के लिए बुलाने वाली घंटियाँ दूर तक सुनाई पड़ सकें। खिड़कियों के लिए अभिजित काँच का प्रयोग होता था। दिन के वक्त सूरज की रोशनी उन्हें कथीडूल के अंदर के व्यक्तियों के लिए चमकदार बना देती थी और सूर्यास्त के पश्चात मोमबत्तियों की रोशनी उन्हें बाहर के व्यक्तियों के लिए दृश्यमान बनाती थी। अभिजित काँच की खिड़कियों पर बने चित्र बाईबल की कथाओं का वर्णन करते थे जिन्हें अनपढ़ व्यक्ति भी 'पढ़' सकते थे।



चित्र 3.10: सैलिसबरी कैथेड्रल, इंग्लैंड।

“दावत के दिनों में हमारे द्वारा अक्सर अनुभव की जाने वाली कमी, जगह की संकीर्णता, अत्यधिक यंत्रणा और शोर के कारण भाग कर स्त्रियों का पुरुषों के सिरों के ऊपर स्थित वेदिका पर चले जाना ये सब कुछ ऐसे कारण थे कि हमने पवित्र चर्च को विस्तृत एवं व्यापक बनाने का निर्णय लिया...

विभिन्न क्षेत्रों से आए अनेक विशेषज्ञों के अति कुशल हाथों से तरह-तरह की शानदार नई खिड़कियों की पुताई कराई, क्योंकि ये खिड़कियाँ अपने अद्भुत निष्पादन और बहुत मँहगे रंजित व सफ़ायर काँच के कारण बहुत मूल्यवान थीं, इसलिए उनकी रक्षा के लिए हमने एक सरकारी प्रधान शिल्पकार तथा स्वर्णकार की नियुक्ति की, वे अपनी तनख्वाह वेदिका से सिक्कों के रूप में एवं आटा अपने भाई-बंधुओं के सार्वजनिक भंडार से ले सकते थे; वे उन कला वस्तुओं की देखरेख के कर्तव्यों की उपेक्षा कभी नहीं कर सकते थे।”

एबट सुगेर (Abbot Suger) (1081-1151) ने पैरिस के निकट सेंट डेनिस में स्थित ऑबे के बारे में लिखा।



चित्र 3.11: रंगीन काँच की खिड़की, चार्ट्रेस कैथेड्रल, फ़्रांस, पंद्रहवीं शताब्दी।

चौदहवीं सदी का संकट

चौदहवीं सदी की शुरुआत तक, यूरोप का आर्थिक विस्तार धीमा पड़ गया। ऐसा तीन कारकों की वजह से हुआ।

जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय कारक

- ❑ उत्तरी यूरोप में, तेरहवीं सदी के अंत तक पिछले तीन सौ वर्षों की तेज़ ग्रीष्म ऋतु का स्थान तीव्र ठंडी ग्रीष्म ऋतु ने ले लिया था। पैदावार वाले मौसम छोटे हो गए और ऊँची भूमि पर फसल उगाना कठिन हो गया।
- ❑ तूफानों और सागरीय बाढ़ों ने अनेक फार्म प्रतिष्ठानों को नष्ट कर दिया जिसके परिणामस्वरूप सरकार को करों द्वारा कम आमदनी हुई। तेरहवीं सदी के पूर्व की अनुकूल जलवायु द्वारा प्रदान किए गए अवसरों के कारण अनेक जंगल और चरागाह कृषि भूमि में बदल गए, परंतु गहन जुताई ने फसलों के तीन क्षेत्रीय फसल चक्र के प्रचलन के बावजूद भूमि को कमजोर बना दिया।

	चरागाहों की कमी के कारण पशुओं की संख्या में कमी आ गई। जनसंख्या वृद्धि इतनी तेजी से हुई कि उपलब्ध संसाधन कम पड़ गए जिसका तात्कालिक परिणाम था अकाल।
धातु धन की कमी	- ऑस्ट्रिया और सर्बिया की चाँदी की खानों के उत्पादन में कमी के कारण धातु-मुद्रा में भारी कमी आई जिससे व्यापार प्रभावित हुआ। - इसके कारण सरकार को मुद्रा में चाँदी की शुद्धता को घटाना पड़ा और उसमें सस्ती धातुओं का मिश्रण करना पड़ा।
ब्यूबोनिक प्लेग (Black Death)	- बारहवीं व तेरहवीं सदी में जैसे-जैसे वाणिज्य में विस्तार हुआ तो दूर देशों से व्यापार करने वाले पोत यूरोपीय तटों पर आने लगे। पोतों के साथ-साथ चूहे आए जो अपने साथ ब्यूबोनिक प्लेग जैसी महामारी का संक्रमण (Black death) लाए। - पश्चिमी यूरोप, जो प्रारंभिक सदियों में अपेक्षाकृत अधिक अलग-थलग रहा था, 1347 और 1350 के मध्य महामारी से बुरी तरह प्रभावित हुआ। - आधुनिक आकलन के आधार पर यूरोप की आबादी का करीब 20% भाग इसमें काल-कवलित हो गया जबकि कुछ स की संख्या वहाँ की जनसंख्या का 40% तक थी। - व्यापार केंद्र होने के कारण नगर सबसे अधिक प्रभावित हुए। बंद समुदाय में, जैसे मठों और आश्रमों में जब एक व्यक्ति प्लेग की चपेट में आ जाता था तो सबको इससे बीमार होने में देर नहीं लगती थी एवं लगभग प्रत्येक मामले में कोई भी नहीं बचता था। प्लेग, शिशुओं, युवाओं और बुजुर्गों को सबसे अधिक प्रभावित करता था।
सामाजिक अव्यवस्था	- ब्लैक डेथ और आर्थिक संकट के कारण सामाजिक अव्यवस्था पैदा हुई। - इस विनाशालीला के साथ आर्थिक मंदी के जुड़ने से व्यापक सामाजिक विस्थापन हुआ। - जनसंख्या में हास के कारण मजदूरों की संख्या में अत्यधिक कमी आई। कृषि और उत्पादन के बीच गंभीर असंतुलन उत्पन्न हो गया, क्योंकि इन दोनों ही कामों में पर्याप्त संख्या में लग सकने वाले लोगों में भारी कमी आ गई थी। खरीदारों की कमी के कारण कृषि उत्पादों के मूल्यों में कमी आई।

इन कारकों के संयुक्त प्रभाव ने इस अवधि के दौरान यूरोप में आर्थिक और सामाजिक गतिशीलता को बदल दिया।

सामाजिक असंतोष:

- मजदूरी की दरें बढ़ने तथा कृषि संबंधी मूल्यों की गिरावट ने अभिजात वर्ग की आमदनी को घटा दिया। निराशा में उन्होंने उन धन संबंधी अनुबंधों को तोड़ दिया जिसे उन्होंने हाल ही में अपनाया था और उन्होंने पुरानी मजदूरी सेवाओं को फिर से प्रचलित कर दिया।
- इसका कृषकों विशेषकर पढ़े-लिखे और समृद्ध कृषकों द्वारा हिंसक विरोध किया गया। वर्ष 1323 में कृषकों ने फ्लैंडर्स (Flanders) में, वर्ष 1358 में फ्रांस में और वर्ष 1381 में इंग्लैंड में विद्रोह किए।
- तीव्र दमन के बावजूद कृषक विद्रोहों की तीव्रता ने यह सुनिश्चित कर दिया कि पुराने सामंती रिश्तों को पुनः लादा नहीं जा सकता। धन अर्थव्यवस्था (money economy) काफी अधिक विकसित थी जिसे पलटा नहीं जा सकता था। इसलिए, यद्यपि लॉर्ड विद्रोहों का दमन करने में सफल रहे, परंतु कृषकों ने यह सुनिश्चित कर लिया कि दासता के पुराने दिन फिर नहीं लौटेंगे।

तालिका 3.1: 11 वीं से 14 वीं शताब्दी

ग्यारहवीं से चौदहवीं शताब्दियों में	
1066	नॉरमन लोगों की एंग्लो-सैक्सनी लोगों को हराकर इंग्लैंड पर विजय
1100	के पश्चात् फ्रांस में कथीड़लों का निर्माण
1315-17	यूरोप में महान अकाल
1347-50	ब्यूबोनिक प्लेग (Black Death)
1338-1461	इंग्लैंड और फ्रांस के मध्य “सौ-वर्षीय युद्ध”
1381	कृषकों के विद्रोह

राजनीतिक परिवर्तन:

- पंद्रहवीं और सोलहवीं सदियों में यूरोपीय शासकों ने अपनी सैनिक एवं वित्तीय शक्ति को बढ़ाया। यूरोप के लिए उनके द्वारा बनाए गए नए शक्तिशाली राज्य उस समय होने वाले आर्थिक बदलावों के समान ही महत्वपूर्ण थे। इसी कारण इतिहासकार इन राजाओं को ‘नए शासक’ (the new monarchs) कहने लगे।
- फ्रांस में लुई ग्यारहवें, आस्ट्रिया में मैक्सिमिलन, इंग्लैंड में हेनरी सप्तम और स्पेन में ईसाबेला एवं फरडीनेंड, निरकुंश शासक थे, जिन्होंने संगठित स्थायी सेनाओं की प्रक्रिया, एक स्थायी नौकरशाही और राष्ट्रीय कर प्रणाली स्थापित करने की प्रक्रिया को शुरू किया।
- स्पेन और पुर्तगाल ने यूरोप के समुद्र पार विस्तार की नई संभावनाओं की शुरुआत की।
- बारहवीं और तेरहवीं सदी में होने वाला सामाजिक परिवर्तन इन राजतंत्रों की सफलता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण था।

- जागीरदारी (Vassalage) और सामंतशाही (lordship) वाली सामंत प्रथा के विलयन तथा आर्थिक विकास की धीमी गति ने इन शासकों को प्रभावशाली एवं सामान्य जनो पर अपने नियंत्रण को बढ़ाने का पहला मौका दिया।
- शासकों ने सामंतों से अपनी सेना के लिए कर लेना बंद कर दिया और उसके स्थान पर बंदूकों एवं बड़ी तोपों से सुसज्जित प्रशिक्षित सेना बनाई जो पूर्ण रूप से उनके अधीन थी। अभिजात वर्ग का विरोध राजाओं की गोली के शक्ति प्रदर्शन के समक्ष टुकड़े-टुकड़े हो गया।
- अभिजात वर्ग से प्रतिरोध, विशेष रूप से कराधान के संबंध में, आम था।
- कुलीन वर्ग वफादारों में बदल गया, जिससे शाही निरंकुशता को सामंतवाद के संशोधित रूप के रूप में देखा जाने लगा।
- राजा की भूमिका व्यक्तिगत निर्भरता और विश्वास से बदलकर एक विस्तृत दरबारी समाज तथा संरक्षक-ग्राहक संबंधों में बदल गई।
- न्यायालय तक पहुँच प्राप्त करने और सत्ता संरचनाओं को आकार देने में धन महत्वपूर्ण हो गया। फ्राँस में, एस्टेट्स-जनरल को लगभग दो शताब्दियों में केवल एक बार बुलाया गया था, जबकि इंग्लैंड ने संसद को विभिन्न आदेशों का प्रतिनिधित्व करने वाली एक परामर्शदात्री संस्था के रूप में विकसित किया। इंग्लैंड के इतिहास ने नियमित संसदीय सत्रों के साथ एक संवैधानिक राजतंत्र को जन्म दिया, जबकि फ्राँस एक गणतंत्र के रूप में विकसित हुआ।

तालिका 3.2: नए शासक

नए शासक	
1461-1559	फ्राँस में नए शासक
1474-1556	स्पेन में नए शासक
1485-1547	इंग्लैंड में नए शासक

बदलती हुई सांस्कृतिक परंपराएँ

- चौदहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक यूरोप के अनेक देशों में नगरों की संख्या बढ़ रही थी। एक विशेष प्रकार की 'नगरीय संस्कृति' विकसित हो रही थी।
- नगर के लोग अब यह सोचने लगे थे कि वे गाँव के लोगों से अधिक 'सभ्य' हैं। नगर खासकर फ्लोरेंस, वेनिस और रोम-कला और विद्या के केंद्र बन गए।
- मुद्रण के आविष्कार से अनेक लोगों को चाहे वह दूर-दराज नगरों या देशों में रह रहे हों, छपी हुई पुस्तकें उपलब्ध होने लगीं।
- यूरोप में इतिहास की समझ विकसित होने लगी और लोग अपने 'आधुनिक विश्व' की तुलना यूनानी व रोमन 'प्राचीन दुनिया' से करने लगे थे।
- वैज्ञानिक खोजों ने चर्च के भू-केंद्रित दृष्टिकोण को चुनौती दी और नए भौगोलिक ज्ञान ने यूरोकेंद्रित दृष्टिकोण को बदल दिया।
- उन्नीसवीं शताब्दी के इतिहासकारों ने 'रेनेसाँ' (शाब्दिक अर्थ पुनर्जन्म, हिंदी में पुनर्जागरण) शब्द का प्रयोग किया जो उस काल के सांस्कृतिक परिवर्तनों को बताता है।
- स्विटजरलैंड के ब्रेसले विश्वविद्यालय के इतिहासकार जैकब बर्कहार्ट (Jacob Burckhardt. 1818-97) ने इस पर बाहुत अधिक बल दिया। वे जर्मन इतिहासकार लियोपोल्ड वॉन रान्के (Leopold von Ranke, 1795-1886) के विद्यार्थी थे।
- 1860 ई. में बर्कहार्ट ने "दि सिविलाइजेशन ऑफ दि रेनेसाँ इन इटली" नामक पुस्तक की रचना की। इसमें उन्होंने अपने पाठकों का ध्यान साहित्य, वास्तुकला और चित्रकला की ओर आकर्षित किया तथा यह बताया कि चौदहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक इटली के नगरों में किस प्रकार एक 'मानवतावादी' संस्कृति पनप रही थी।
- उन्होंने यह लिखा कि यह संस्कृति इस नए विश्वास पर आधारित थी कि व्यक्ति अपने बारे में खुद निर्णय लेने और अपनी दक्षता को आगे बढ़ाने में समर्थ है। ऐसा व्यक्ति 'आधुनिक' था जबकि 'मध्यकालीन मानव' पर चर्च का नियंत्रण था।

इटली के नगरों का पुनरुत्थान:

- पश्चिम रोम साम्राज्य के पतन के बाद इटली के राजनैतिक और सांस्कृतिक केंद्रों का विनाश हो गया। इस समय कोई भी एकीकृत सरकार नहीं थी और रोम का पोप जो अपने राज्य में बेशक सार्वभौम था, समस्त यूरोपीय राजनीति में इतना मजबूत नहीं था।
- पश्चिमी यूरोप के क्षेत्र, सामंती संबंधों के कारण नया रूप ले रहे थे और लातिनी चर्च के नेतृत्व में उनका एकीकरण हो रहा था।
- इसी समय पूर्वी यूरोप बाइजेंटाइन साम्राज्य के शासन में बदल रहा था। उधर कुछ और पश्चिम में इस्लाम एक सांझी सभ्यता का निर्माण कर रहा था।
- इटली एक कमजोर देश था और अनेक टुकड़ों में बँटा हुआ था। परंतु इन्हीं परिवर्तनों ने इतालवी संस्कृति के पुनरुत्थान में सहायता प्रदान की।
- बाइजेंटाइन साम्राज्य और इस्लामी देशों के बीच व्यापार के बढ़ने से इटली के तटवर्ती बंदरगाह पुनर्जीवित हो गए। बारहवीं शताब्दी से जब मंगोलों ने चीन के साथ 'रेशम मार्ग' से व्यापार आरंभ किया तो इसके कारण पश्चिमी यूरोपीय देशों के व्यापार को बढ़ावा मिला। इसमें इटली के नगरों ने मुख्य भूमिका निभाई।
- नगरों में फ्लोरेंस और वेनिस, गणराज्य थे और कई अन्य दरबारी नगर थे जिनका शासन राजकुमार चलाते थे।

- ❑ इनमें सर्वाधिक जीवंत शहरों में पहला वेनिस और दूसरा जिनेवा था। वे यूरोप के अन्य क्षेत्रों से इस दृष्टि में अलग थे कि यहाँ पर धर्माधिकारी और सामंत वर्ग राजनैतिक दृष्टि से शक्तिशाली नहीं थे।
- ❑ नगर के धनी व्यापारी और महाजन नगर के शासन में सक्रिय रूप से भाग लेते थे, जिससे नागरिकता की भावना पनपने लगी। यहाँ तक कि जब इन नगरों का शासन सैनिक तानाशाहों के हाथ में रहा तब भी इन नगरों के निवासी अपने को यहाँ का नागरिक कहने में गर्व का अनुभव करते थे।

नगर-राज्य:

- ❑ कार्डिनल गेसपारो कोन्तारिनी (Cardinal Gasparo Contarini, 1483-1542) अपने ग्रंथ दि कॉमनवेल्थ एण्ड गवर्नमेंट ऑफ वेनिस (1534) में अपने नगर-राज्य की लोकतांत्रिक सरकार के बारे में लिखते हैं:

“... हमारे वेनिस के संयुक्तमंडल (Commonwealth) की संस्था के बारे में जानने पर आपको ज्ञात होगा कि नगर का संपूर्ण प्राधिकार... एक ऐसी परिषद् के हाथों में है जिसमें 25 वर्ष से अधिक आयु वाले [संभ्रांत वर्ग के] सभी पुरुषों को सदस्यता मिल जाती है...”

सबसे पहले मैं आपको यह बताऊँगा कि हमारे पूर्वजों ने ऐसा नियम क्यों बनाया कि सामान्य जनता को नागरिक वर्ग में जिनके हाथ में संयुक्तमंडल के शासन की बागडोर है-शामिल क्यों नहीं किया जाए... क्योंकि उन नगरों में अनेक प्रकार की गड़बड़ियाँ और जन उपद्रव होते रहते हैं जहाँ की सरकार पर जन-सामान्य का प्रभाव रहता है। कुछ लोगों के विचार इससे अलग थे। उनका कहना था कि यदि संयुक्त मंडल का शासन-संचालन अधिक कुशलता से करना है तो योग्यता और संपन्नता को आधार बनाना चाहिए। दूसरी ओर सचचरित्र नागरिक जिनका लालन-पालन उदार वातावरण में होता है वे प्रायः निर्धन हो जाते हैं... इसीलिए हमारे बुद्धिमान और विवेकवान पूर्वजों ने... यह विचार रखा कि इस सार्वजनिक नियम को बदल कर धन-संपन्नता को आधार न बनाकर कुलीन वंशीय लोगों को प्राथमिकता दी जाए। तथापि इस शर्त के साथ कि केवल उच्च अभिजात वंशीय लोग ही सत्ता में न रहें (क्योंकि ऐसा करने से चंद लोगों की शक्ति काफी बढ़ जाएगी न कि संयुक्तमंडल की)। गरीब लोगों को छोड़कर सभी नागरिकों का प्रतिनिधित्व सत्ता में होना चाहिए: चाहें वे अभिजात वंशीय हों या वे लोग हों जो अपने विशिष्ट गुणों के कारण उदात्त हों। इन सभी को सरकार चलाने का अधिकार मिलना चाहिए।”



चित्र 3.12: जी. बेलिनी का “द रिकवरी ऑफ द रेलिक ऑफ द होली क्रॉस” (पवित्र क्रॉस के स्मृतिशेष की पुनर्प्राप्ति) चित्र 1370 की एक घटना की याद में 1500 में बना, परन्तु इसमें चित्रण 15वीं शताब्दी के वेनिस का है।

तालिका 3.3: चौदहवीं और पंद्रहवीं शताब्दियाँ

चौदहवीं और पंद्रहवीं शताब्दियाँ
1300 इटली के पादुआ विश्वविद्यालय में मानवतावाद पढ़ाया जाने लगा
1341 पेट्रार्क को रोम में ‘राजकवि’ की उपाधि से सम्मानित किया गया
1349 फ्लोरेंस में विश्वविद्यालय की स्थापना
1390 जेफ्री चॉसर की ‘केन्टरबरी टेल्स’ का प्रकाशन
1436 बुनेलेशी ने फ्लोरेंस में ड्यूमा का परिरूप तैयार किया
1453 कुंस्तुनतुनिया के बाइजेंटाइन शासक को ऑटोमन तुर्कों ने पराजित किया
1454 गुटेनबर्ग ने विभाज्य टाइप (Movable type) से बाईबल का प्रकाशन किया
1484 पुर्तगाली गणितज्ञों ने सूर्य का अध्ययन कर अक्षांश की गणना की
1492 कोलंबस अमेरीका पहुँचे
1495 लियोनार्डो द विंची ने ‘द लास्ट सपर’ (अंतिमभोज) चित्र बनाया
1512 माइकल एंजिलो ने सिस्टीन चैपल की छत पर चित्र बनाए

विश्वविद्यालय एवं मानवतावाद

- ❑ यूरोप में सबसे पहले विश्वविद्यालय इटली के शहरों में स्थापित हुए। ग्यारहवीं शताब्दी से पादुआ और बोलोनिया (Bologna) विश्वविद्यालय विधिशास्त्र के अध्ययन केंद्र रहे।

ऑन दि डिगनिटी ऑफ मैन (1486)

फ्लोरेंस के मानवतावादी जोवान्ने पिको देल्ला मिरांदोला (Giovanni Pico della Mirandola, 1463-94) ने “ऑन दि डिगनिटी ऑफ मैन (1486)” नामक पुस्तक में वाद-विवाद के महत्त्व पर लिखा-

“(प्लेटो और अरस्तू) के अनुसार सत्य की खोज करने और इसे प्राप्त करने के लिए वे हमेशा जुटे रहते थे और उनका कहना था कि जहाँ तक हो सके विचारगोष्ठियों में जाना चाहिए तथा वाद-विवाद करना चाहिए। यह उसी तरह है जैसे शरीर को मजबूत बनाने के लिए कसरत जरूरी है, दिमाग की ताकत को बढ़ाने के लिए शब्दों के दंगल में उत्तरना जरूरी है। इससे दिमागी ताकत बढ़ने के साथ-साथ और अधिक ओजस्वी होती है।”

- इसका कारण था यह कि इन नगरों के प्रमुख क्रियाकलाप व्यापार और वाणिज्य संबंधी थे, इसलिए वकीलों और नोटरी (यह सोलिसिटर और अभिलेखपाल दोनों के कार्य करते थे) की बहुत अधिक आवश्यकता होती थी, क्योंकि वे नियमों को लिखते, उनकी व्याख्या करते और समझौते तैयार करते थे।
- फ्रांचेस्को पेट्रार्क (1304-1378) इस परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करते हैं। पेट्रार्क के लिए पुराकाल एक विशिष्ट सभ्यता थी जिसे प्राचीन यूनानियों और रोमनों के वास्तविक शब्दों के माध्यम से ही अच्छी तरह समझा जा सकता है। अतः उसने इस बात पर जोर दिया कि इन प्राचीन लेखकों की रचनाओं का बहुत अच्छी तरह से अध्ययन किया जाए।
- इस शिक्षा कार्यक्रम में यह अंतर्निहित था कि बहुत कुछ जानना बाकी है और यह सब हम केवल धार्मिक शिक्षण से नहीं सीखते। इसी नयी संस्कृति को उन्नीसवीं शताब्दी के इतिहासकारों ने ‘मानवतावाद’ नाम दिया।
- पंद्रहवीं शताब्दी के शुरू के दशकों में ‘मानवतावादी’ शब्द उन अध्यापकों के लिए प्रयुक्त होता था जो व्याकरण, अलंकारशास्त्र, कविता, इतिहास और नीतिदर्शन विषय पढ़ाते थे।
- लातिनी शब्द ‘ह्यूमेनिटास’ जिससे ‘ह्यूमेनिटिज’ शब्द बना है जिसे कई शताब्दियों पहले रोम के वकील तथा निबंधकार सिसरो (Cicero, 106-43 ई.पू.) ने, जो कि जूलियस सीजर की समकालीन था, ‘संस्कृति’ के अर्थ में लिया था। ये विषय धार्मिक नहीं थे वरन उस कौशल पर बल देते थे, जो व्यक्ति चर्चा और वाद-विवाद से विकसित करता है।
- इन क्रांतिकारी विचारों ने अनेक विश्वविद्यालयों का ध्यान आकर्षित किया। इनमें एक नया-नया स्थापित विश्वविद्यालय फ्लोरेंस भी था जो पेट्रार्क का स्थायी नगर-निवास था। इस नगर ने तेरहवीं शताब्दी के अंत तक व्यापार या शिक्षा के क्षेत्र में कोई विशेष तरक्की नहीं की थी पर पंद्रहवीं शताब्दी में सब कुछ पूरी तरह बदल गया।
- फ्लोरेंस की प्रसिद्धि में दो लोगों का बड़ा हाथ था। इनमें से एक व्यक्ति थे दाँते अलिगहियरी (Dante Alighieri, 1265-1321) जो किसी धार्मिक संप्रदाय विशेष से संबंधित नहीं थे पर उन्होंने अपनी कलम धार्मिक विषयों पर चलायी थी। दूसरे व्यक्ति थे कलाकार जोटो (Giotto, 1267-1337) जिन्होंने जीते-जागते रूपचित्र (Portrait) बनाए। उनके बनाए रूपचित्र पहले के कलाकारों की तरह बेजान नहीं थे।
- इसके बाद धीरे-धीरे फ्लोरेंस, इटली के सबसे जीवंत बौद्धिक नगर के रूप में जाना जाने लगा और कलात्मक, कृतियों के सृजन का केंद्र बन गया। ‘रेनेसाँ व्यक्ति’ शब्द का प्रयोग प्रायः उस मनुष्य के लिए किया जाता है जिसकी अनेक रुचियाँ हों और अनेक हुनर में उसे महारत प्राप्त हो।
- पुनर्जागरण काल में अनेक महान लोग हुए जो अनेक रुचियाँ रखते थे और कई कलाओं में कुशल थे। उदाहरण के लिए, एक ही व्यक्ति विद्वान, कूटीनीतिज्ञ, धर्मशास्त्रज्ञ और कलाकार हो सकता था।

इतिहास का मानवतावादी दृष्टिकोण:

- मानवतावादी समझते थे कि वह अंधकार की कई शताब्दियों बाद सभ्यता के सही रूप को पुनः स्थापित कर रहे हैं। इसके पीछे यह मान्यता थी कि रोमन साम्राज्य के टूटने के बाद ‘अंधकारयुग’ शुरू हुआ।
- मानवतावादियों की भाँति बाद के विद्वानों ने बिना कोई प्रश्न उठाए यह मान लिया कि (यूरोप में चौदहवीं शताब्दी के बाद ‘नये युग’ का जन्म हुआ।
- ‘मध्यकाल’ जैसी संज्ञाओं का प्रयोग रोम साम्राज्य के पतन के बाद एक हजार वर्ष की समयावधि के लिए किया गया।
- मानवतावादियों ने ‘आधुनिक’ शब्द का प्रयोग पंद्रहवीं शताब्दी से शुरू होने वाले काल के लिए किया। हाल में अनेक इतिहासकारों ने इस काल विभाजन पर सवाल उठाया है। इस काल के यूरोप के बारे में जैसे-जैसे खोजें और शोध बढ़ते गए वैसे-वैसे विद्वानों ने शताब्दियों की सांस्कृतिक समृद्धि अथवा असमृद्धि को आधार मानकर तीक्ष्ण विभाजन करने में अपनी दृष्टि जताई।



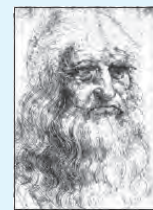
चित्र 3.13: फ्लोरेंस, 1470 में बनाया गया एक रेखाचित्र।

विज्ञान और दर्शन: अरब के लोगों का योगदान

- ❑ पूरे मध्यकाल में ईसाई गिरजाघरों और मठों के विद्वान यूनानी और रोमन विद्वानों की कृतियों से परिचित थे। पर इन लोगों ने इन रचनाओं का प्रचार-प्रसार नहीं किया।
- ❑ चौदहवीं शताब्दी में अनेक विद्वानों ने प्लेटो और अरस्तू के ग्रंथों से अनुवादों को पढ़ना शुरू किया। इसके लिए वे अपने विद्वानों के ऋणी नहीं, बल्कि वे अरब के अनुवादकों के ऋणी थे जिन्होंने अतीत की पांडुलिपियों का संरक्षण और अनुवाद सावधानीपूर्वक किया था (अरबी भाषा में प्लेटो, आफलातून और एरिस्टोटिल, अरस्तू नाम से जाने जाते थे)।
- ❑ एक ओर यूरोप के विद्वान यूनानी ग्रंथों के अरबी अनुवादों का अध्ययन कर रहे थे दूसरी ओर यूनानी विद्वान अरबी और फ़ारसी विद्वानों की कृतियों को अन्य यूरोपीय लोगों के बीच प्रसार के लिए अनुवाद कर रहे थे। ये ग्रंथ प्राकृतिक विज्ञान, गणित, खगोल विज्ञान (astronomy), औषधि विज्ञान और रसायन विज्ञान से संबंधित थे।
- ❑ टॉलेमी के अलमजैस्ट (खगोल शास्त्र पर रचित ग्रंथ जो 140 ई. के पूर्व यूनानी भाषा में लिखा गया था और बाद में इसका अरबी में अनुवाद भी हुआ) में अरबी भाषा के विशेष उपपद 'अल' का उल्लेख है जो कि यूनानी और अरबी भाषा के बीच रहे संबंधों को दर्शाता है।
- ❑ मुसलमान लेखकों, में अरबी के हकीम और मध्य एशिया के बुखारा के दार्शनिक इब्न-सिना (Ibn Sina-लातिनी में एविसिना 980-1037) और आयुर्विज्ञान विश्वकोश के लेखक अल-राज़ी (रेजेस) सम्मिलित थे।
- ❑ मानवतावादी अपनी बात लोगों तक तरह-तरह से पहुँचाने लगे। यद्यपि विश्वविद्यालयों में पाठ्यचर्या पर कानून, आयुर्विज्ञान और धर्मशास्त्र का दबदबा रहा, फिर भी मानवतावादी विषय धीरे-धीरे स्कूलों में पढ़ाया जाने लगा। यह सिर्फ इटली में ही नहीं बल्कि यूरोप के अन्य देशों में भी हुआ।

यह स्वनिर्मित रूपचित्र लियोनार्डो दा विन्ची (Leonardo da Vinci, 1452-1519) का है जिनकी आश्चर्यजनक अभिरुचि वनस्पति विज्ञान और शरीर रचना विज्ञान से लेकर गणित शास्त्र और कला तक विस्तृत थी। उन्होंने मोना लीसा और द लास्ट सपर चित्रों की रचना की।

उनका यह स्वप्न था कि वे आकाश में उड़ सकें। वे वर्षों तक आकाश में पक्षियों के उड़ने का परीक्षण करते रहे और उन्होंने एक उड़न-मशीन (Flying machine) का प्रतिरूप (Design) बनाया। उन्होंने अपना नाम 'लियोनार्डो दा विन्ची, परीक्षण का अनुयायी' रखा।



चित्र 3.14: स्वनिर्मित रूपचित्र लियोनार्डो दा विन्ची (1452-1519 ई.)

कलाकार और यथार्थवाद:

- ❑ मानवतावादी विचार केवल औपचारिक शिक्षा तक सीमित नहीं थे, बल्कि कला, वास्तुकला और पुस्तकों के माध्यम से भी प्रसारित किए गए थे।
- ❑ इतालवी कलाकारों ने प्राचीन खंडहरों में रोमन संस्कृति के अंशों की खोज करते हुए अतीत से प्रेरणा ली, जिसने पूरी तरह से आनुपातिक आकृतियों को गढ़ने की परंपरा को जारी रखने की उनकी इच्छा को बढ़ावा दिया।
- ❑ वर्ष 1416 में दोनातल्लो (Donatello, 1386-1466) ने सजीव मूर्तियाँ बनाकर नयी परंपरा कायम की।
- ❑ कलाकारों द्वारा हूबहू मूल आकृति जैसी मूर्तियों को बनाने की चाह को वैज्ञानिकों के कार्यों से सहायता मिली।
- ❑ बेलजियम मूल के आन्ड्रीयस वेसेलियस (Andreas Vesalius, 1514-64) पादुआ विश्वविद्यालय में आयुर्विज्ञान के प्राध्यापक थे। ये पहले व्यक्ति थे जिन्होंने सूक्ष्म परीक्षण के लिए मनुष्य के शरीर की चीर-फाड़ (dissection) की। इसी समय से आधुनिक शरीर-क्रिया विज्ञान (Physiology) का प्रारंभ हुआ।
- ❑ चित्रकारों के पास पुराने मॉडल नहीं थे, उन्होंने यथार्थवाद पर ध्यान केंद्रित किया, ज्यामिति का उपयोग किया और अपने काम को त्रि-आयामी गुणवत्ता देने के लिए परिप्रेक्ष्य और प्रकाश के गुणों को समझा।



चित्र 3.15: माइकल एंजेलो द्वारा निर्मित 'पिएटा' में मैरी को यीशु के शरीर को पकड़े हुए दिखाया गया है।

- लेप चित्र (Painting) के लिए तेल के एक माध्यम के रूप में प्रयोग ने चित्रों को पूर्व की तुलना में अधिक रंगीन और चटख बनाया। उनके अनेक चित्रों में दिखाए गए वस्त्रों के डिजाइन और रंग संयोजन में चीनी तथा फ़ारसी चित्रकला का प्रभाव दिखाई देता है जो उन्हें मंगोलों से मिली थी।
- इस तरह शरीर विज्ञान, रेखागणित, भौतिकी और सौंदर्य की उत्कृष्ट भावना ने इतालवी कला को नया रूप दिया जिसे बाद में 'यथार्थवाद' (realism) कहा गया। यथार्थवाद की यह उन्नीसवीं शताब्दी तक चलती रही।

“कला प्रकृति में रची-बसी होती है। जो इसके सार को पकड़ सकता है वही इसे प्राप्त कर सकता है... इसके अतिरिक्त आप अपनी कला को गणित द्वारा दिखा सकते हैं। जिंदगी की अपनी आकृति से आपकी कृति जितनी जुड़ी होगी उतना ही सुंदर आपका चित्र होगा। कोई भी आदमी केवल अपनी कल्पना मात्र से एक सुंदर आकृति नहीं बना सकता जब तक उसने अपने मन को जीवन की प्रतिछवि से न भर लिया हो।”

- अल्बर्ट ड्यूरर (Albrecht Durer. 1471-1528)

ड्यूरर द्वारा बनाया गया यह रेखाचित्र (प्रार्थनारत हस्त) सोलहवीं शताब्दी की इतालवी संस्कृति का आभास कराता है जब यहाँ के लोग गहन रूप से धार्मिक थे। परंतु उन्हें मनुष्य की योग्यता पर भरोसा था कि वह निकट पूर्णता को प्राप्त कर सकता है और दुनिया तथा ब्रह्मांड के रहस्यों को सुलझा सकता है।



चित्र 3.16: 'प्रार्थना रत हस्त', ड्यूरर द्वारा ब्रश ड्राइंग, 1508।

स्थापत्य कला:

- पंद्रहवीं शताब्दी में रोम नगर भव्य रूप से पुनर्जीवित हो उठा। सन् 1417 से पोप राजनैतिक दृष्टि से शक्तिशाली बन गए, क्योंकि 1378 से दो प्रतिस्पर्धी पोप के निर्वाचन से जन्मी दुर्बलता का अंत हो गया था।
- उन्होंने रोम के इतिहास के अध्ययन को सक्रिय रूप से प्रोत्साहित किया। पुरातत्त्वविदों (पुरातत्त्व का नया हुनर था) द्वारा रोम के अवशेषों का सावधानी से उत्खनन किया गया। इसने वास्तुकला की एक 'नयी शैली' को प्रोत्साहित किया जो वास्तव में रोम साम्राज्य कालीन शैली का पुनरुद्धार थी जिसे अब 'शास्त्रीय' शैली कहा गया।
- पोप, धनी व्यापारियों और अभिजात वर्ग के लोगों ने उन वास्तुविदों (architect) को अपने भवनों को बनाने के लिए नियुक्त किया जो शास्त्रीय वास्तुकला से परिचित थे।
- चित्रकारों और शिल्पकारों ने भवनों को लेपचित्रों, मूर्तियों और उभरे चित्रों से भी सुसज्जित किया। इस काल में कुछ ऐसे भी लोग हुए जो कुशल चित्रकार, मूर्तिकार और वास्तुकार, सभी कुछ थे। इसका सबसे श्रेष्ठ उदाहरण माईकल एंजेलो बुआनारोत्ती (Michael Angelo Buonarroti, 1475-1564) हैं जिन्होंने पोप के सिस्टीन चैपल की भीतरी छत में लेपचित्र, 'दि पाइटा' नामक प्रतिमा, और सेंट पीटर गिरजे के गुंबद का डिजाइन बनाया और इनकी वजह से माईकल एंजेलो अमर हो गए। ये सारी कलाकृतियाँ रोम में ही हैं।
- वास्तुकार फिलिप्पो ब्रूनेलेशी Filippo Brunelleschi, 1337-1446) जिन्होंने फ़्लोरेंस के भव्य गुंबद (Duomo) का परिरूप प्रस्तुत किया था, ने अपना पेशा एक मूर्तिकार के रूप में शुरू किया।
- इस काल में एक और अनोखा बदलाव आया। अब कलाकार की पहचान उसके नाम से होने लगी, न कि पहले की तरह उसके संघ या श्रेणी (गिल्ड) के नाम से।



चित्र 3.17: सोलहवीं शताब्दी में इतालवी वास्तुकला ने शाही रोमन इमारतों की कई विशेषताओं की नकल की।

पहली मुद्रित पुस्तकें:

- दूसरे देशों के लोग यदि महान कलाकारों द्वारा रचित लेप-चित्रों, मूर्तियों या भवनों को देखना चाहते थे तो उन्हें इटली की यात्रा करनी पड़ती थी। किंतु जहाँ तक साहित्य की बात है जो कुछ भी इटली में लिखा गया विदेशों तक पहुँचा। ये सब सोलहवीं शताब्दी की क्रांतिकारी मुद्रण प्रौद्योगिकी की दक्षता की वजह से हुआ।
- इसके लिए यूरोपीय लोग अन्य लोगों के मुद्रण प्रौद्योगिकी के लिए चीनियों के तथा मंगोल शासकों के ऋणी रहे, क्योंकि यूरोप के व्यापारी और राजनयिक मंगोल शासकों के राज दरबार में अपनी यात्राओं के दौरान इस तकनीक से परिचित हुए थे।
- ऐसा ही अन्य तीन प्रमुख तकनीकी नवीकरणों-आग्नेयास्त्र, कंपास और फलक (Abacus) के विषय में भी हुआ।
- इससे पहले किसी ग्रंथ की कुछ ही हस्तलिखित प्रतियाँ होती थीं। सन् 1455 में जर्मनमूल के जोहानेस गूटेनबर्ग (Johannes Gutenberg. 1400-58) जिन्होंने पहले छापेखाने का निर्माण किया, उनकी कार्यशाला में बाईबल की 150 प्रतियाँ छपीं। इससे पहले इतने ही समय में एक धर्मभिक्षु (Monk) बाईबल की केवल एक ही प्रति लिख पाता था।

- पंद्रहवीं शताब्दी तक अनेक क्लासिकी ग्रंथों जिनमें अधिकतर लातिनी ग्रंथ थे, उनका मुद्रण इटली में हुआ था। चूँकि मुद्रित पुस्तकें उपलब्ध होने लगीं और उनका क्रय संभव होने लगा, छात्रों को केवल अध्यापकों के व्याख्यानों से बने नोट पर निर्भर नहीं रहना पड़ा। अब विचार, मत और जानकारी पहले की अपेक्षा तेजी से प्रसारित हुए।
- पंद्रहवीं शताब्दी के अंत से इटली की मानवतावादी संस्कृति का आल्प्स (Alps) पर्वत के पार बहुत तेजी से फैलने का मुख्य कारण वहाँ पर छपी हुई पुस्तकों का वितरण था। इससे स्पष्ट है कि पहले के बौद्धिक आंदोलन खास क्षेत्रों तक ही सीमित क्यों रहते थे।

लियोन बतिस्ता अल्बर्टी

लियोन बतिस्ता अल्बर्टी (1404-72 ई.) ने कला सिद्धांत और वास्तुकला पर लिखा- “मैं उसे वास्तुकार कहता हूँ जो उन सभी कार्यों को तैयार करने और पूरा करने में सक्षम है, जिन्हें महान भार के आंदोलन और निकायों के संयोजन तथा संचय द्वारा सबसे बड़ी सुंदरता के साथ मानव जाति के उपयोग के लिए अनुकूलित किया जा सकता है।”

मनुष्य की एक नयी संकल्पना:

- मानवतावादी संस्कृति की विशेषताओं में से एक था मानव जीवन पर धर्म का नियंत्रण कमजोर होना। इटली के निवासी भौतिक संपत्ति, शक्ति और गौरव से बहुत ज्यादा आकृष्ट थे। परंतु ये जरूरी नहीं कि वे अधार्मिक थे।
- वेनिस के मानवतावादी फ्रेन्चेस्को बरबारो (Francesco Barbaro, 1390-1454) ने अपनी एक पुस्तिका में संपत्ति अधिग्रहण करने को एक विशेष गुण कहकर उसकी तरफ़दारी की।

निकोलो मैकियावेली: द प्रिंस

निकोलो मैकियावेली (Niccolo Machiavelli) अपने ग्रंथ दि प्रिंस (1513) के पंद्रहवें अध्याय में मनुष्य के स्वभाव के बारे में लिखते हैं-

“काल्पनिक बातों को यदि अलग कर दें और केवल उन्हीं विषयों के बारे में सोचें जो वास्तव में हैं, मैं यह कहता हूँ कि जब भी मनुष्यों के बारे में चर्चा होती है (विशेषकर राजकुमारों के बारे में, जो जनता की नजर में रहते हैं) तो इनमें अनेक गुण देखे जाते हैं जिनके कारण वे प्रशंसा या निंदा के योग्य बने हैं। उदाहरण के लिए, कुछ को दानी माना जाता है और अन्य को कंजूस। कुछ लोगों को हितैषी माना जाता है तो अन्य को लोभी कहा जाता है; कुछ निर्दयी और कुछ दयालु। एक व्यक्ति अविश्वसनीय और दूसरा विश्वसनीय; एक व्यक्ति पौरुषहीन और कायर; दूसरा खूंखार और साहसी; एक व्यक्ति शिष्ट दूसरा घमंडी; एक व्यक्ति कामुक दूसरा पवित्र; एक निष्कपट दूसरा चालाक; एक अड़ियल दूसरा लचीला; एक गंभीर दूसरा छिछोरा; एक धार्मिक दूसरा संदेही इत्यादि।

मैकियावेली यह मानते थे कि ‘सभी मनुष्य बुरे हैं और वह अपने दुष्ट स्वभाव को प्रदर्शित करने में सदैव तत्पर रहते हैं, क्योंकि कुछ हद तक मनुष्य की इच्छाएँ अपूर्ण रह जाती हैं।’ मैकियावेली ने देखा कि इसके पीछे, प्रमुख कारण है कि मनुष्य अपने समस्त कार्यों में अपना स्वार्थ देखता है।”

- लॉरेन्तो वल्ला (Lorenzo Valla, 1406-1457) विश्वास करते थे कि इतिहास का अध्ययन मनुष्य को पूर्णतया जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित करता है, उन्होंने अपनी पुस्तक ऑनप्लेज़र में भोग-विलास पर लगाई गई ईसाई धर्म की निषेधाज्ञा की आलोचना की। इस समय लोगों में अच्छे व्यवहारों के प्रति दिलचस्पी थी- व्यक्ति को किस तरह विनम्रता से बोलना चाहिए; कैसे कपड़े पहनने चाहिए और एक सभ्य व्यक्ति को किसमें दक्षता हासिल करनी चाहिए।
- मानवतावाद का मतलब यह भी था कि व्यक्ति विशेष सत्ता और दौलत की होड़ को छोड़कर अन्य कई माध्यमों से अपने जीवन को रूप दे सकता था। यह आदर्श इस विश्वास के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा था कि मनुष्य का स्वभाव बहुमुखी है जो कि तीन भिन्न-भिन्न वर्गों जिसमें सामंती समाज विश्वास करता था, के विरुद्ध गया।

महिलाओं की आकांक्षाएँ:

- वैयक्तिकता (individuality) और नागरिकता के नए विचारों से महिलाओं को दूर रखा गया।
- सार्वजनिक जीवन में अभिजात व संपन्न परिवार के पुरुषों का प्रभुत्व था और घर-परिवार के मामले में भी वे ही निर्णय लेते थे।
- उस समय लोग अपने लड़कों को ही शिक्षा देते थे जिससे उनके बाद वे उनके खानदानी पेशे या जीवन की आम जिम्मेदारियों को उठा सकें। कभी-कभी वे अपने छोटे लड़कों को धार्मिक कार्य के लिए चर्च को सौंप देते थे।
- विवाह में प्राप्त महिलाओं के देहेज को वे अपने पारिवारिक कारोबारों में लगा देते थे, तथापि महिलाओं को यह अधिकार नहीं था कि वे अपने पति को कारोबार चलाने के बारे में कोई राय दें।



चित्र 3.18: डुओमो, फ्लोरेंस कैथेड्रल का गुंबद जिसे ब्रुनेलेस्की द्वारा डिजाइन किया गया था।

- प्रायः कारोबारी मैत्री को सुदृढ़ करने के लिए दो परिवारों में आपस में विवाह संबंध होते थे। अगर पर्याप्त दहेज का प्रबंध नहीं हो पाता था तो शादीशुदा लड़कियों को ईसाई मठों में भिक्षुणी (Nun) का जीवन बिताने के लिए भेज दिया जाता था।
- आम तौर पर सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी बहुत सीमित थी और उन्हें घर-परिवार को चलाने वाले के रूप में देखा जाता था।
- व्यापारी परिवारों में महिलाओं की स्थिति कुछ भिन्न थी। दुकानदारों की स्त्रियाँ दुकानों को चलाने में प्रायः उनकी सहायता करती थीं।
- अभिजात्य संपन्न परिवारों के विपरीत, व्यापारी परिवारों में यदि व्यापारी की कम आयु में मृत्यु हो जाती थी तो उसकी पत्नी सार्वजनिक जीवन में बड़ी भूमिका निभाने के लिए बाध्य होती थी।
- उस काल की कुछ महिलाएँ बौद्धिक रूप से बहुत रचनात्मक थीं और मानवतावादी शिक्षा की भूमिका के बारे में संवेदनशील थीं।
- वेनिस निवासी कसान्द्रा फेदेले (Cassandra Fedele, 1465-1558) ने लिखा, “यद्यपि महिलाओं को शिक्षा न तो पुरस्कार देती है न किसी सम्मान का आश्वासन, तथापि प्रत्येक महिला को सभी प्रकार की शिक्षा को प्राप्त करने की इच्छा रखनी चाहिए और उसे ग्रहण करना चाहिए।”
- फेदेले का नाम यूनानी और लातिनी भाषा के विद्वानों के रूप में विख्यात था। उन्हें पादुआ विश्वविद्यालय में भाषण देने के लिए आमंत्रित किया गया था।
- फेदेले की रचनाओं से यह बात सामने आती है कि इस काल में सब लोग शिक्षा को बहुत महत्त्व देते थे। वे वेनिस की अनेक लेखिकाओं में से एक थीं, जिन्होंने गणतंत्र की आलोचना “स्वतंत्रता की एक बहुत सीमित परिभाषा निर्धारित करने के लिए की, जो महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों की इच्छा का ज्यादा समर्थन करती थी।”
- इस काल की एक अन्य प्रतिभाशाली महिला मंटुआ की मार्चिसा ईसाबेला दि इस्ते (Isabella d' Este, 1474-1539) थीं। उन्होंने अपने पति की अनुपस्थिति में अपने राज्य पर शासन किया। यद्यपि मंटुआ, एक छोटा राज्य था तथापि उसका राजदरबार अपनी बौद्धिक प्रतिभा के लिए प्रसिद्ध था।



चित्र 3.19: इसाबेला दि इस्ते

ईसाई धर्म के अंतर्गत वाद-विवाद:

- व्यापार और सरकार, सैनिक विजय तथा कूटनीतिक संपर्कों के कारण इटली के एवं राजदरबारों के दूर-दूर के देशों से संपर्क स्थापित हुए। नयी संस्कृति की शिक्षित और समृद्धिशाली लोगों द्वारा प्रशंसा ही नहीं की गई वरन् उसको अपनाया भी गया। परंतु इन विचारों में कुछ ही आम आदमी तक पहुँच सके क्योंकि वे साक्षर नहीं थे।
- पंद्रहवीं और आरंभिक सोलहवीं शताब्दियों में उत्तरी यूरोप के विश्वविद्यालयों के अनेक विद्वान मानवतावादी विचारों की ओर आकर्षित हुए।
- अपने इतालवी सहकर्मियों की तरह उन्होंने भी यूनान और रोम के क्लासिक ग्रंथों और ईसाई धर्मग्रंथों के अध्ययन पर अधिक ध्यान दिया। पर इटली के विपरीत जहाँ पेशेवर विद्वान मानवतावादी आंदोलन पर हावी रहे, उत्तरी यूरोप में मानवतावाद ने ईसाई चर्च के अनेक सदस्यों को आकर्षित किया।
- उन्होंने ईसाइयों को अपने पुराने धर्मग्रंथों में बताए गए तरीकों से धर्म का पालन करने का आह्वान किया। साथ ही उन्होंने अनावश्यक कर्मकांडों को त्यागने की बात की और उनकी यह कहकर निंदा की कि उन्हें एक सरल धर्म में जोड़ा गया है।
- यूरोप के लगभग प्रत्येक भाग में किसानों ने चर्च द्वारा लगाए गए करों का विरोध किया। मानवतावादियों ने उन्हें यह सिद्ध किया कि न्यायिक और वित्तीय शक्तियों पर पादरियों का दावा ‘कॉन्स्टैन्टाइन के अनुदान’ नामक एक दस्तावेज से उत्पन्न होता है जो कि प्रथम ईसाई रोमन सम्राट कॉन्स्टैन्टाइन द्वारा संभवतः जारी किया गया था।
- सन् 1517 में एक जर्मन युवा भिक्षु मार्टिन लूथर (Martin Luther, 1483-1546) ने कैथलिक चर्च के विरुद्ध अभियान छेड़ा और इसके लिए उसने दलील पेश की कि मनुष्य को ईश्वर से संपर्क साधने के लिए पादरी की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने अपने अनुयायियों को आदेश दिया कि वे ईश्वर में पूर्ण विश्वास रखें क्योंकि केवल उनका विश्वास ही उन्हें एक सम्यक जीवन की ओर ले जा सकता है और उन्हें स्वर्ग में प्रवेश दिला सकता है। इस आंदोलन को प्रोटेस्टेंट सुधारवाद नाम दिया गया जिसके कारण जर्मनी और स्विटजरलैंड के चर्च ने पोप तथा कैथलिक चर्च से अपने संबंध समाप्त कर दिए।
- स्विटजरलैंड में लूथर के विचारों को उलरिक ज्विंगली (Ulrich Zwingli, 1484-1531) और उसके बाद जॉन कैल्विन (Jean Calvin, 1509-64) ने काफी लोकप्रिय बनाया।
- व्यापारियों से समर्थन मिलने के कारण सुधारकों की लोकप्रियता शहरों में अधिक थी, जबकि ग्रामीण इलाकों में कैथलिक चर्च का प्रभाव बरकरार रहा।
- अन्य जर्मन सुधारक जैसे कि एनाबेप्टिस्ट सम्प्रदाय के नेता इनसे कहीं अधिक उग्र सुधारक थे। उन्होंने मोक्ष (salvation) के विचार को हर तरह के सामाजिक-उत्पीड़न के अंत होने के साथ जोड़ दिया। उनका कहना था कि क्योंकि ईश्वर ने सभी इनसानों को एक जैसा बनाया है इसलिए उनसे कर देने की अपेक्षा नहीं की जानी चाहिए और उन्हें अपना पादरी चुनने का अधिकार होना चाहिए।

- लूथर ने आमूल परिवर्तनवाद (Radicalism) का समर्थन नहीं किया। उन्होंने आह्वान किया कि जर्मन शासक सभकालीन किसान विद्रोह का दमन करें।
- इंग्लैंड के शासकों ने पोप से अपने संबंध तोड़ दिए। इसके उपरांत राजा/रानी इंग्लैंड के चर्च के प्रमुख बन गए। कैथलिक चर्च स्वयं भी इन विचारधाराओं के प्रभाव से अछूता नहीं रह सका और उसने अनेक आंतरिक सुधार करने प्रारंभ कर दिए।
- स्पेन और इटली में पादरियों ने सादा जीवन और निर्धनों की सेवा पर जोर दिया। स्पेन में, प्रोटेस्टेंट लोगों से संघर्ष करने के लिए इग्नेशियस लोयोला (Ignatius Loyala) ने सन् 1540 में 'सोसाइटी ऑफ जीसस' नामक संस्था की स्थापना की। उनके अनुयायी जेसुइट कहलाते थे और उनका ध्येय निर्धनों की सेवा करना तथा दूसरी संस्कृतियों के बारे में अपने ज्ञान को ज्यादा व्यापक बनाना था।

विलियम टिंडेल (1494-1536)

सन् 1506 में अंग्रेजी भाषा में बाइबल का अनुवाद करने वाले, लूथरवादी अंग्रेज, विलियम टिंडेल (William Tyndale, 1494-1536) ने प्रोटेस्टेंटवाद का इस तरह समर्थन किया:

“इस बात से सब लोग सहमत होंगे कि वे आपको धर्मग्रंथ के ज्ञान से दूर रखने के लिए यह चाहते थे कि धर्मग्रंथ के अनुवाद आपकी मातृभाषा में उपलब्ध न हो सकें जिससे दुनिया अंधकार में ही रहे और वे। पुरोहित वर्ग। लोगों के अंतःकरण (conscience) में बने रहें जिससे उनके द्वारा बनाए गए व्यर्थ के अंधविश्वास और झूठे धर्मसिद्धांत चलते रहें; जिसके रहते उनकी ऊँची आकांक्षाएँ तथा अतृप्त लोलुपता पूरी हो सके। इस तरह वे राजा, सम्राट और यहाँ तक कि अपने को ईश्वर से भी ऊँचा बना सके... जिस बात ने मुझे मुख्य रूप से न्यू टेस्टामेंट का अनुवाद करने की प्रेरणा दी। मुझे अपने अनुभवों से ज्ञात हुआ कि सामान्य लोगों को किसी भी सच्चाई की तब तक जानकारी नहीं हो सकती जब तक उनके पास अपने धर्मग्रंथ के मातृभाषा में अनुवाद उपलब्ध न हों। इन अनुवादों से ही वे धर्मग्रंथ की परिपाटी, क्रम और अर्थ समझ सकेंगे।

तालिका 3.5: सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियाँ

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियाँ

1516	टॉमस मोर की यूटोपिया (Utopia) का प्रकाशन
1517	मार्टिन लूथर द्वारा नाइन्टी फाईव धिसेज की रचना
1522	लूथर द्वारा बाइबल का जर्मन में अनुवाद
1525	जर्मनी में किसान विद्रोह
1543	एन्ड्रीयास वेसेलियस द्वारा ऑन ऐनॉटमी ग्रंथ की रचना
1559	इंग्लैंड में आंग्ल-चर्च की स्थापना जिसके प्रमुख राजा/रानी थे
1569	गेरहार्डस मरकेटर (Gerhardus Mercator) ने पृथ्वी का पहला बेलनाकार मानचित्र (Cylindrical Map) बनाया
1582	पोप ग्रेगरी XIII के द्वारा ग्रेगोरियन (Gregorian) कैलेंडर का प्रचलन
1628	विलियम हार्वे (William Harvey) ने हृदय को रुधिर परिसंचरण (Blood circutaion) से जोड़ा
1673	पेरिस में 'अकादमी ऑफ साइंसेज' की स्थापना
1687	आइज़क न्यूटन के प्रिन्सिपिया मैथेमेटिका (Principia Mathematica) का प्रकाशन

कोपरनिकसीय क्रांति:

- ईसाइयों की यह धारणा थी कि मनुष्य पापी है इस पर वैज्ञानिकों ने पूर्णतया अलग दृष्टिकोण से आपत्ति की। यूरोपीय विज्ञान के क्षेत्र में एक युगांतरकारी परिवर्तन मार्टिन लूथर के समकालीन कोपरनिकस (1473-1543) के काम से आया।
- ईसाइयों का यह विश्वास था कि पृथ्वी पापों से भरी हुई है और पापों की अधिकता के कारण वह स्थिर है। पृथ्वी, ब्रह्मांड (universe) के बीच में स्थिर है जिसके चारों ओर खगोलीय ग्रह (celestial planets) घूम रहे हैं।
- कोपरनिकस ने यह घोषणा की कि पृथ्वी समेत सारे ग्रह सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करते हैं। कोपरनिकस एक निष्ठावान ईसाई थे और वह इस बात से भयभीत थे कि उनकी इस नयी खोज से परंपरावादी ईसाई धर्माधिकारियों में घोर-प्रतिक्रिया उत्पन्न हो सकती है। यही कारण था कि वह अपनी पाण्डुलिपि दि रिवल्यूशनिस (De revolutionibus-परिभ्रमण) को प्रकाशित नहीं कराना चाहते थे।
- काफी समय बाद यानि आधी शताब्दी से अधिक समय बीतने पर खगोलशास्त्री जोहानेस कैप्लर (Johannes Kepler, 1571-1630) तथा गैलिलियो गैलिली (Galileo Galilei, 1564-1642) ने अपने लेखों द्वारा 'स्वर्ग' और 'पृथ्वी' के अंतर को समाप्त कर दिया। कैप्लर ने अपने ग्रंथ कॉस्मोग्राफिकल मिस्ट्री (Cosmographical Mystery-खगोलीय रहस्य) में कोपरनिकस के सूर्य-केंद्रित सौरमंडलीय सिद्धांत को लोकप्रिय बनाया जिससे यह सिद्ध हुआ कि सारे ग्रह सूर्य के चारों ओर वृत्ताकार (circles) रूप में नहीं बल्कि दीर्घ वृत्ताकार (ellipses) मार्ग पर परिक्रमा करते हैं।

- गैलिलियो ने अपने ग्रंथ दि मोशन (The Motion, गति) में गतिशील विश्व के सिद्धांतों की पुष्टि की। विज्ञान के जगत में इस क्रांति ने न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत के साथ अपनी पराकाष्ठा की ऊँचाई को छू लिया।

ब्रह्माण्ड का अध्ययन:

- गैलिलियो ने एक बार टिप्पणी की कि बाईबल जिस स्वर्ग का मार्ग आलोकित करता है वह स्वर्ग किस प्रकार चलता है, उसके बारे में कुछ नहीं बताता। इन विचारकों ने हमें बताया कि ज्ञान विश्वास से हटकर अवलोकन एवं प्रयोगों पर आधारित है।
- जैसे-जैसे इन वैज्ञानिकों ने ज्ञान की खोज का रास्ता दिखाया वैसे-वैसे भौतिकी, रसायन शास्त्र और जीव विज्ञान के क्षेत्र में अनेक प्रयोग एवं अन्वेषण कार्य बहुत तेजी से पनपने लगे। इतिहासकारों ने मनुष्य और प्रकृति के ज्ञान के इस नए दृष्टिकोण को वैज्ञानिक क्रांति का नाम दिया।
- परिणामस्वरूप संदेहवादियों और नास्तिकों के मन में सारी सृष्टि की रचना के स्रोत के रूप में प्रकृति ईश्वर का स्थान लेने लगी। यहाँ तक कि वे लोग जिन्होंने ईश्वर में अपने विश्वास को बरकरार रखा वे भी एक दूरस्थ ईश्वर की बात करने लगे जो भौतिक दुनिया में जीवन को प्रत्यक्ष रूप से नियंत्रित नहीं करता था। इस प्रकार के विचारों को वैज्ञानिक संस्थाओं के माध्यम से लोकप्रिय बनाया गया जिससे सार्वजनिक क्षेत्र में एक नयी वैज्ञानिक संस्कृति की स्थापना हुई।
- सन् 1670 में बनी पेरिस अकादमी और सन् 1662 में वास्तविक ज्ञान के प्रसार के लिए लंदन में गठित रॉयल सोसाइटी ने लोगों की जानकारी के लिए व्याख्यानों का आयोजन किया और सार्वजनिक प्रदर्शन के लिए प्रयोग करवाए।

क्या आप जानते हैं?

दिव्य का अर्थ है दिव्य या स्वर्गीय, जबकि स्थलीय का अर्थ है सांसारिक गुण होना।

चौदहवीं सदी में क्या यूरोप में 'पुनर्जागरण' हुआ था?

- इंग्लैंड के पीटर बर्क (Peter Burke) जैसे हाल हो के लेखकों का यह सुझाव है कि बर्कहार्ट के ये विचार अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। बर्कहार्ट इस काल और इससे पहले के कालों के फर्कों को कुछ बढ़ा-चढ़ा कर पेश कर रहे थे। ऐसा करने में उन्होंने पुनर्जागरण शब्द का प्रयोग किया।
- इस शब्द में यह अंतर्निहित है कि यूनानी और रोमन सभ्यताओं का चौदहवीं शताब्दी में पुनर्जन्म हुआ तथा समकालीन विद्वानों एवं कलाकारों में ईसाई विश्वदृष्टि की जगह पूर्व ईसाई विश्वदृष्टि का प्रचार-प्रसार किया। दोनों ही तर्क अतिशयोक्तिपूर्ण थे। पिछली शताब्दियों के विद्वान यूनानी और रोमन संस्कृतियों से परिचित थे तथा लोगों के जीवन में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान था।
- यह कहना कि पुनर्जागरण, गतिशीलता और कलात्मक सृजनशीलता का काल था तथा इसके विपरीत, मध्यकाल अंधकारमय काल था जिसमें किसी प्रकार का विकास नहीं हुआ था, जरूरत से ज्यादा सरलीकरण है।
- इटली में पुनर्जागरण से जुड़े अनेक तत्त्व बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में पाए जा सकते हैं। कुछ इतिहासकारों ने इसका उल्लेख किया है कि नौवीं शताब्दी में फ्रांस में इसी प्रकार के साहित्यिक और कलात्मक रचनाओं के विचार पनपे।
- यूरोप में इस समय आए सांस्कृतिक बदलाव में रोम और यूनान की 'क्लासिकी' सभ्यता का ही केवल हाथ नहीं था। रोमन संस्कृति के पुरातात्विक और साहित्यिक पुनरुद्धार ने भी इस सभ्यता के प्रति बहुत अधिक प्रशंसा के भाव उभारे। लेकिन एशिया में प्रौद्योगिकी और कार्य-कुशलता यूनानी और रोमन लोगों की तुलना में काफी विकसित थी।
- यूरोपियों ने न केवल यूनानियों और रोमवासियों से सीखा बल्कि भारत, अरब, ईरान, मध्य एशिया और चीन से भी ज्ञान प्राप्त किया। बहुत लंबे समय तक इन ऋणों को स्वीकार नहीं किया गया, क्योंकि जब इस काल का इतिहास लिखने की प्रक्रिया का प्रारंभ हुआ तब इतिहासकारों ने इसके यूरोप केंद्रित दृष्टिकोण को सामने रखा।
- व्यक्ति की दो भूमिकाएँ थीं-निजी और सार्वजनिक। वह न केवल तीन वर्गों (three orders) में से किसी एक वर्ग का सदस्य ही था बल्कि अपने आप में एक स्वतंत्र व्यक्ति था। एक कलाकार किसी संघ या गिल्ड (guild) का सदस्य मात्र ही नहीं होता था बल्कि वह अपने हुनर के लिए भी जाना जाता था।
- अठारहवीं शताब्दी में व्यक्ति की इस पहचान को राजनीतिक रूप में अभिव्यक्त किया गया, इस विश्वास के साथ कि प्रत्येक व्यक्ति के एकसमान राजनीतिक अधिकार हैं।
- इस काल की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि भाषा के आधार पर यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों ने अपनी पहचान बनानी शुरू की। पहले, आआंशिक रूप से रोमन साम्राज्य द्वारा और बाद में लातिनी भाषा एवं ईसाई धर्म द्वारा जुड़ा यूरोप अब अलग-अलग राज्यों में बँटने लगा। इन राज्यों के आंतरिक जुड़ाव का कारण समान भाषा का होना था।

आधुनिकीकरण की ओर

मूल निवासियों का विस्थापन:

आइए विश्व इतिहास में घटित दो महत्वपूर्ण घटनाओं को समझें, जिन्होंने “आधुनिकीकरण” के लिए एक संदर्भ प्रदान किया। ये प्रमुख घटनाक्रम हैं:

औद्योगिक क्रांति और राजनीतिक क्रांतियाँ

औद्योगिक क्रांति	- औद्योगिक क्रांति, जिसका केंद्र ब्रिटेन था, को विश्व के पहले औद्योगिक राष्ट्र के रूप में मान्यता प्राप्त है। - ऐतिहासिक रूप से, यह माना जाता था कि ब्रिटिश औद्योगिकीकरण अन्य देशों के लिए आदर्श था। हालाँकि, हाल ही में ऐतिहासिक जाँच से इस धारणा पर सवाल उठे हैं। - विभिन्न देशों ने एक ही मॉडल का सख्ती से पालन किए बिना एक-दूसरे के अनुभवों का लाभ उठाया। - प्रत्येक राष्ट्र में औद्योगिकीकरण विशिष्ट विशेषताओं के साथ अद्वितीय रूप से विकसित हुआ। - ब्रिटेन के औद्योगिकीकरण में पहले चरण में कोयला और सूती कपड़ा उद्योग जैसे चरण शामिल थे, इसके बाद दूसरे चरण में रेलवे की शुरुआत हुई। - इसके विपरीत, रूस जैसे देशों ने, जिन्होंने बहुत बाद में औद्योगिकीकरण शुरू किया, औद्योगिकीकरण के शुरुआती चरण से ही भारी उद्योग और रेलवे को शामिल कर लिया। - औद्योगिकीकरण में राज्य और बैंकों की भूमिका भी विभिन्न देशों में भिन्न थी, ब्रिटिश औद्योगिकीकरण का प्रभाव संयुक्त राज्य अमेरिका एवं जर्मनी पर था। - हालाँकि, ब्रिटिश अनुभव ने औद्योगिकीकरण की मानवीय और पर्यावरणीय लागतों को भी प्रकाश में लाया, जिसमें गरीब श्रमिकों, विशेषकर बच्चों तथा महिलाओं की दुर्दशा, पर्यावरणीय गिरावट एवं हैजा व तपेदिक जैसी महामारियाँ शामिल हैं।
राजनीतिक क्रांतियाँ	- इस अवधि में राजनीतिक क्रांतियों की एक श्रृंखला देखी गई जिसने प्रजा को नागरिक में बदल दिया। - यह परिवर्तन अमेरिकी क्रांति (1776-81) और फ्रांसीसी क्रांति (1789-94) के साथ शुरू हुआ। 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी की शुरुआत में, व्यापारिक, औद्योगिक और वित्तीय पूँजीवाद जैसे पूँजीवाद के विभिन्न रूपों ने तीसरी दुनिया के बड़े हिस्सों में उपनिवेशों की स्थापना की। - इन उपनिवेशों ने अलग-अलग रूप धारण किए, बसने वाले उपनिवेशों से लेकर प्रत्यक्ष साम्राज्यवादी नियंत्रण तक, जैसे कि भारत में ब्रिटिश शासन। - इसके अतिरिक्त, चीन ने इस अवधि में साम्राज्यवाद के एक अलग रूप का अनुभव किया, जहाँ ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, रूस, अमेरिका और जापान सहित कई पश्चिमी शक्तियों ने प्रत्यक्ष राज्य सत्ता ग्रहण किए बिना चीनी मामलों में हस्तक्षेप किया। - इसके बजाय, उन्होंने चीन के संसाधनों का शोषण किया, इसकी संप्रभुता को कमजोर किया और इसे अर्ध-औपनिवेशिक स्थिति में पहुँचा दिया। - पूरे उपनिवेशित विश्व में, औपनिवेशिक शोषण को चुनौती देने के लिए राष्ट्रवादी आंदोलन उभरे। - राष्ट्रवाद, एक आधुनिक अवधारणा है, जो लोकप्रिय संप्रभुता के इर्द-गिर्द घूमती है, जो इस बात की वकालत करती है कि राजनीतिक शक्ति लोगों के पास होनी चाहिए। - इन राष्ट्रवादी आंदोलनों का उद्देश्य एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था बनाना था जहाँ लोगों के पास अधिकार हो।

हालाँकि, राष्ट्रवाद ने न केवल औपनिवेशिक संदर्भों में बल्कि पश्चिमी दुनिया और जापान में भी जड़ें जमा लीं। इसके अलावा, राष्ट्रवाद अलग-अलग प्रकृति के साथ अलग-अलग रूपों में आता है जिसका विस्तार से विश्लेषण किया जा सकता है।

पश्चिमी पूँजीवाद और साम्राज्यवाद की गतिशीलता

नागरिक राष्ट्रवाद:

- नागरिक राष्ट्रवाद भाषा, धर्म, जाति और लिंग पर ध्यान दिए बिना प्रभुसत्ता सभी लोगों के हाथ में प्रदान करता है। यह बराबर अधिकार वाले नागरिकों का समुदाय बनाने की कोशिश करता है और राष्ट्रीयता को जातीयता तथा धर्म से परे हटकर नागरिकता से परिभाषित करता है।
- जातीय और धार्मिक राष्ट्रवाद राष्ट्रीय एकता का निर्माण किसी भाषा, धर्म या कुछ परंपराओं के इर्द-गिर्द बनाने की कोशिश करते हैं जहाँ लोगों को जातीयता के आधार पर परिभाषित किया जाता है, समान नागरिकता के आधार पर नहीं।

- ❑ बहु जातीय देश में जातीय राष्ट्रवादी प्रभुसत्ता चुने हुए समूहों समुदायों तक सीमित कर सकते हैं, जिन्हें अल्पसंख्यक समुदायों की तुलना में बेहतर समझा जाता है।
- ❑ समसामयिक काल में अधिकतर पश्चिमी देश राष्ट्रीयता की जातीयता की बजाय समान अधिकारों से परिभाषित करते हैं। एक प्रमुख अपवाद जर्मनी है जहाँ जातीय राष्ट्रवाद की विचारधारा का लंबा और कष्टदायी इतिहास रहा है।
- ❑ वर्ष 1806 में जर्मन राज्यों पर फ्रांस के शाही कब्जे के खिलाफ प्रतिक्रिया से शुरू हुआ। नागरिक राष्ट्रवाद की विचारधारा विश्व भर में जातीय/धार्मिक राष्ट्रवाद के साथ प्रतियोगिता करती आई है। यही हाल आधुनिक भारत, चीन और जापान में भी रहा है।

जातीय और धार्मिक राष्ट्रवाद:

- ❑ इस प्रकार के राष्ट्रवाद का उद्देश्य विशिष्ट भाषाओं, धर्मों या परंपराओं के इर्द-गिर्द राष्ट्रीय पहचान का निर्माण करना है, जो अक्सर राष्ट्र को साझा नागरिकता के बजाय जातीय रूप से परिभाषित करते हैं।
- ❑ बहु-जातीय देशों में, जातीय राष्ट्रवादी संप्रभुता को किसी विशेष जातीय समूह तक सीमित कर सकते हैं, अक्सर इसे अल्पसंख्यक समुदायों से श्रेष्ठ मानते हैं। राष्ट्रवाद का यह रूप भारत, चीन और जापान सहित विभिन्न देशों में प्रचलित रहा है।
- ❑ नागरिक राष्ट्रवाद और जातीय/धार्मिक राष्ट्रवाद के बीच वैचारिक प्रतिस्पर्धा वैश्विक स्तर पर हुई है, जिसने विभिन्न देशों के राजनीतिक परिदृश्य को आकार दिया है।
- ❑ यह संघर्ष विशिष्ट क्षेत्रों तक सीमित नहीं है, और इसका प्रभाव दुनिया भर में फैला हुआ है, जो राजनीतिक और सामाजिक गतिशीलता को प्रभावित करता है।



चित्र 3.20: दुनिया को जोड़ना। 1927 में 25 वर्षीय चार्ल्स लिंडबर्ग की एक इंजन वाले हवाई जहाज में अटलांटिक महासागर को पार करते हुए न्यूयार्क से पेरिस, की यात्रा।

कालक्रम (लगभग 1700 - 2000)

- ❑ यह कालरेखा आपको यह बताएगी कि पिछले तीन सौ वर्षों में दुनिया के अलग-अलग भागों में क्या घटित हो रहा था और किस प्रकार विभिन्न देशों के लोग हमारे आधुनिक विश्व के निर्माण में क्या योगदान दे रहे थे।
- ❑ यह विश्व में पिछली शताब्दी में हुए अफ्रीका के दास-व्यापार और दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद शासन की स्थापना, यूरोप में सामाजिक आंदोलनों, राष्ट्र राज्यों के निर्माण, साम्राज्यिक शक्तियों के विस्तार, उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया, जनतंत्रीय और उपनिवेश विरोधी आंदोलनों के विषय में बताएगी।
- ❑ यह आपको कुछ उन अन्वेषणों और प्रौद्योगिक विकास के विषय में भी जानकारी देगी जो आधुनिकता संबंधी विचारों के सहयोगी रहे।
- ❑ कालरेखा कुछ तिथियों पर ही प्रकाश डालती है। इसके अलावा कुछ और तिथियाँ भी हैं जो महत्वपूर्ण हैं।
- ❑ इसका भी पता लगाएँ कि क्यों विभिन्न कालों की कालरेखाएँ विभिन्न तिथियों पर प्रकाश डालती हैं।



चित्र 3.21: दुनिया को जोड़ना - इस तरह की जापानी ज़ेन पेंटिंग्स की पश्चिमी कलाकारों द्वारा प्रशंसा की गई, और इसने 1920 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका में चित्रकला की 'अमूर्त अभिव्यक्तिवादी' शैली को प्रभावित किया।

समय	अफ्रीका	यूरोप
1720-30	पश्चिम अफ्रीका के डाहोमी के राजा अगाजा (1724-34) ने दास व्यापार बंद कर दिया; इसे 1740 के दशक में पुनः प्रस्तुत किया गया	
1730-40		कैरोलस लिनिअस ने पौधों और जानवरों को वर्गीकृत करने के लिए एक वर्गीकरण प्रणाली का आविष्कार किया (1735)
1740-50		
1750-60	चेचक का पहला प्रकोप (1755) नाविकों द्वारा केप टाउन, दक्षिण अफ्रीका में लाया गया	
1760-70		

1770-80	अंतरराष्ट्रीय दास व्यापार का चरम, सभी औपनिवेशिक शक्तियाँ इसमें शामिल हैं। हर साल कई लाख अश्वेत (Black) अफ्रीकियों को अटलांटिक पार ले जाया जाता है। दो-तिहाई लोग तो जहाज पर ही मर गए।	एमिलियन पुगाचेव उस किसान विद्रोह (1773-75) का नेतृत्व कर रहे हैं जो पूरे रूस में फैल गया है।
1780-90		फ्रांसीसी क्रांति की शुरुआत* (1789)
1790-1800		
1800-10	मोहम्मद अली ने मिस्र पर शासन किया, 1805-48; मिस्र ओटोमन साम्राज्य से अलग हो गया।	
1810-20		
1820-30	लाइबेरिया की स्थापना (1822) पश्चिम अफ्रीका में मुक्त दासों के घर के रूप में की गई थी।	लुई ब्रेल ने अंगुलियों से पढ़ने की एक प्रणाली विकसित की (1823); इंग्लैंड में यात्री रेलगाड़ियाँ शुरू की गईं (1825)
1830-40	अब्दाल-कादिर ने अल्जीरिया में फ्रांसीसी उपस्थिति के खिलाफ अरब प्रतिरोध (1832-47) का नेतृत्व किया।	
1840-50		कई यूरोपीय देशों में उदारवादी और समाजवादी आंदोलन (1848)
1850-60		
1860-70	दुनिया के सबसे महत्वपूर्ण व्यापार मार्गों में से एक, स्वेज़ नहर* का उद्घाटन (1869)	रूसी सफ़ा को मुक्त किया गया (1861)
1870-80		जर्मनी और इटली एकीकृत राष्ट्र-राज्य के रूप में उभरे।
1880-90	यूरोपियों का 'अफ्रीका के लिए संघर्ष' की शुरुआत	
1890-1900		पहली फ़िल्म का निर्माण (1895); आधुनिक ओलंपिक पहली बार एथेंस में आयोजित हुए (1896)
1900-1910	महात्मा गांधी ने नस्लवादी कानूनों का विरोध करने के लिए सत्याग्रह की वकालत की (1906)	
1910-1920	दक्षिण अफ्रीका ने 87 प्रतिशत भूमि गोरों के लिए आरक्षित करने के लिए कानून पेश किया (1913)	प्रथम विश्व युद्ध (1914-1918); 1917 की रूसी क्रांति
1920-30		मुस्तफा कमाल के तहत तुर्की एक गणतंत्र बन गया (1923)
1930-40	अंगोला से मोजाम्बिक तक पहला ट्रांस-अफ्रीकी रेलवे पूरा हुआ (1931)	हिटलर ने जर्मनी में सत्ता पर कब्ज़ा किया (1933); द्वितीय विश्व युद्ध (1939-45)

1940-50	अफ्रीकनेर नेशनल पार्टी ने दक्षिण अफ्रीका में सत्ता हासिल की (1948)। रंगभेद की नीति लागू की जाती है	ब्रिटेन आयरिश स्वतंत्रता को मान्यता देता है। (1949)
1950-60	घाना उप-सहारा अफ्रीका का पहला स्वतंत्र देश है जो आजाद हुआ (1957)	डीएनए की खोज; रूस ने अंतरिक्ष यान स्पुतनिक लॉन्च किया (1957)
1960-70	अफ्रीकी एकता संगठन की स्थापना (1963)	यूरोप में विरोध आंदोलन (1968)
1970-80		
1980-90		मिखाइल गोर्बाचेव, यूएसएसआर के नेता (1985); वर्ल्ड वाइड वेब की शुरुआत (1989)
1990-2000	नेल्सन मंडेला* दक्षिण अफ्रीका में मुक्त किये गये (1990); रंगभेद को खत्म करने की प्रक्रिया शुरू होती है	वैज्ञानिकों ने भेड़ डॉली (1997) का क्लोन बनाकर जेनेटिक इंजीनियरिंग की सीमाओं के बारे में नई बहस छेड़ दी है

समय	एशिया	दक्षिण एशिया
1720-30	गुजिन तुशु जिचेंग, अब तक मुद्रित सबसे बड़ा विश्वकोश, जिसे चीन के मांचू शासक कांगसी ने बनवाया था 	
1730-40		
1740-50		मराठों का उत्तरी भारत पर नियंत्रण बढ़ा
1750-60	एक जापानी विद्वान आओकी कोन्यो ने एक डच-जापानी शब्दकोश संकलित किया (1758)	प्लासी के युद्ध में रॉबर्ट क्लाइव ने बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को हराया (1757)
1760-70		
1770-80		
1780-90	भारत से चीन तक अफ्रीम का ब्रिटिश निर्यात नाटकीय रूप से बढ़ गया है	
1790-1800		रणजीत सिंह ने पंजाब में सिख राज्य की स्थापना की (1799)
1800-10		
1810-20		
1820-30	डचों के विरुद्ध जावा के लोगों का विद्रोह (1825-30)	सती प्रथा अवैध घोषित (1829)
1830-40	ऑटोमन सुल्तान अब्दुल मजीद ने आधुनिकीकरण का कार्यक्रम शुरू किया (1839)	
1840-50		

1850-60	राजा राम चतुर्थ ने थाईलैंड पर शासन किया, देश को विदेशी व्यापार के लिए खोला (1853)	रेलवे और टेलीग्राफ लाइन शुरू की गई (1853); महान विद्रोह* (1857)
1860-70	फ्रांसीसियों ने इंडो-चीन (दक्षिणपूर्व एशिया) पर कब्जा करना शुरू किया (1862)	
1870-80	टोक्यो से योकोहामा तक पहली जापानी रेलवे का उद्घाटन (1872)	दक्कन, दक्षिणी भारत में अकाल (1876-78), 50 लाख से अधिक लोग मरे
1880-90	ब्रिटेन ने बर्मा (म्यांमार) पर कब्जा कर लिया (1885-86)	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना* (1885)
1890-1900		
1900-10	जापानी नौसेना ने रूसी बेड़े को हराया (1905)	
1910-20	बाल्फोर घोषणापत्र में फिलिस्तीन में यहूदियों के लिए मातृभूमि का वादा किया गया (1917)	
1920-30		महात्मा गांधी द्वारा असहयोग आंदोलन (1921) शुरू किया गया, ई. वी. रामास्वामी नायकर ने तमिलनाडु में आत्म-सम्मान आंदोलन शुरू किया (1925)
1930-40	इराक से सीरिया तक ब्रिटिश तेल पाइपलाइन का उद्घाटन (1934)	अर्देशिर ईरानी की आलम आरा (1931) पहली भारतीय ध्वनि युक्त फिल्म है। बगदाद को इस्तांबुल से जोड़ने वाली बर्लिन-बगदाद रेलवे का परिचालन शुरू (1940)
1940-50	संयुक्त राज्य अमेरिका ने जापानी शहरों हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम गिराया (1945) जिसमें लगभग 120,000 नागरिक मारे गए। बाद में विकिरण के प्रभाव से कई और लोगों की मृत्यु होनी थी; पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना का गठन (1949)	भारत छोड़ो आंदोलन (1942); भारत और पाकिस्तान स्वतंत्र हुए (1947)
1950-60	बॉण्डुंग सम्मेलन (1955) गुटनिरपेक्ष आंदोलन को मजबूत करता है	भारत एक गणतंत्र बन गया* (1950)
1960-70	अरब नेताओं ने फिलिस्तीनी शरणार्थियों को एकजुट करने के लिए फिलिस्तीन मुक्ति संगठन की स्थापना की (1964); वियतनाम में युद्ध (1965-73)	सिरीमावो भंडारनायके विश्व की पहली महिला प्रधानमंत्री बनीं (1960)
1970-80	ईरान के शाह को उखाड़ फेंका गया (1979)	बांग्लादेश एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में उभरा (1971)
1980-90	तियानमेन चौक, बीजिंग, चीन में लोकतंत्र के लिए बड़े पैमाने पर प्रदर्शन (1989)	
1990-2000	इराक, कुवैत और संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच खाड़ी युद्ध 	भोपाल में यूनियन कार्बाइड कीटनाशक संयंत्र में रिसाव (1984) के कारण इतिहास की सबसे खराब औद्योगिक आपदाओं में से एक हुई, हजारों लोग मारे गए भारत और पाकिस्तान ने परमाणु परीक्षण किया (1998) 

समय	अमेरिका	ऑस्ट्रेलिया / प्रशांत द्वीप समूह
1720-30	पुर्तगालियों ने ब्राजील में कॉफी की शुरुआत की (1727)	डच नाविक रोजगेवीन प्रशांत महासागर में समोआ द्वीप और ईस्टर द्वीप पहुँचे (1722)
1730-40	स्टोनो दास विद्रोह का नेतृत्व एक साक्षर दास जेम्मी ने किया (1739)	
1740-50	जुआन सैंटोस, जिसे अताहुल्पा II भी कहा जाता है, ने असफल विद्रोह में पेरू के मूल अमेरिकियों का नेतृत्व किया (1742)	
1750-60		
1760-70	ओटावा जनजाति के प्रमुख पोंटियाक ने अंग्रेजों के खिलाफ विरोध प्रदर्शन का नेतृत्व किया (1763)	कैप्टन जेम्स कुक की प्रशांत महासागर की तीन यात्राओं में से पहली यात्रा* (1768-71)
1770-80	अमेरिका की स्वतंत्रता की घोषणा (1776)	
1780-90	अमेरिकी संविधान तैयार; डॉलर को पहली बार अमेरिकी मुद्रा के रूप में उपयोग किया गया (1787)	पहले ब्रिटिश दोषियों को बॉटनी बे, ऑस्ट्रेलिया भेजा गया (1788)
1790-1800		
1800-10		मैथ्यू फ्लिंडर्स ने ऑस्ट्रेलिया की जलयात्रा की, फिर नाम बताए; इसका अर्थ है 'दक्षिणी' (1801-03)
1810-20		
1820-30	साइमन बोलिवर* ने वेनेजुएला को स्वतंत्रता की ओर अग्रसर किया (1821)	
1830-40	ऑसू के निशान; संयुक्त राज्य अमेरिका में, हजारों पूर्वी अमेरिकी मूल-निवासियों को पश्चिम की ओर जाने के लिए मजबूर किया गया, कई लोग रास्ते में ही मर गए (1838)	चार्ल्स डार्विन प्रशांत महासागर, गैलापागोस द्वीप समूह (1831) की यात्रा पर निकले, जिससे विकासवाद के सिद्धांत का विकास हुआ।
1840-50	सेनेका फॉल्स, न्यूयॉर्क में बैठक, अमेरिकी महिलाओं के लिए समान अधिकारों का आह्वान (1848)	न्यूजीलैंड में ब्रिटिश और माओरियों ने वेटांगी की संधि (1840) पर हस्ताक्षर किए। इसके बाद माओरी विद्रोहों की श्रृंखला शुरू हुई (1844-88)
1850-60		ऑस्ट्रेलिया और इंग्लैंड के बीच पहली नियमित स्टीमशिप सेवा की शुरुआत (1856)
1860-70	अमेरिका में गृहयुद्ध (1861-65); संविधान का तेरहवाँ संशोधन गुलामी को गैरकानूनी घोषित करता है	ब्रिटेन से ऑस्ट्रेलिया में कैदियों का परिवहन समाप्त (1868)
1870-80	टेलीफोन, रिकार्ड-प्लेयर, विद्युत बल्ब का आविष्कार	
1880-90	कोका-कोला का आविष्कार (1886) 	
1890-1900		न्यूजीलैंड में महिलाओं के लिए मतदान का अधिकार (1893)

1900-1910	राइट बंधुओं ने हवाई जहाज का आविष्कार किया (1903)	
1910-1920	हेनरी फोर्ड ने कारों का असेंबली लाइन उत्पादन शुरू किया (1913); अटलांटिक और प्रशांत महासागर को जोड़ने वाली पनामा नहर खोली गई (1914)	इन्फ्लुएंजा महामारी से पश्चिमी समोआ की आबादी का पाँचवाँ हिस्सा मर गया (1918)
1920-30	यूएस वॉल स्ट्रीट स्टॉक एक्सचेंज क्रैश (1929); महामंदी आती है; 1932 तक, 12 मिलियन लोग काम से बाहर हो गए	न्यूजीलैंड सरकार के विरुद्ध समोआ के माउ लोगों का विद्रोह (1929)
1930-40	अमेरिका द्वितीय विश्वयुद्ध में प्रवेश कर गया	
1940-50		
1950-60	क्यूबा की क्रांति (1958) के बाद फिदेल कास्त्रो सत्ता में आए	
1960-70	संयुक्त राज्य अमेरिका में नागरिक अधिकार आंदोलन (1963)"; अमेरिकी नागरिक अधिकार अधिनियम (1964) नस्लीय भेदभाव पर प्रतिबंध लगाता है। नागरिक अधिकार नेता मार्टिन लूथर किंग की हत्या कर दी गई (1968); अमेरिकी अंतरिक्ष यात्री चंद्रमा पर उतरे (1969)	
1970-80	महिला आंदोलन के जवाब में अमेरिकी कांग्रेस ने समान अवसर अधिनियम पारित किया (1972)	टोंगा और फ़िजी को ब्रिटेन से स्वतंत्रता प्राप्त हुई (1970); पापुआ न्यू गिनी ने ऑस्ट्रेलिया से स्वतंत्रता प्राप्त की (1975)
1980-90		न्यूजीलैंड को परमाणु मुक्त क्षेत्र घोषित किया गया (1984); रारोटोंगा की संधि ने दक्षिण प्रशांत परमाणु-मुक्त क्षेत्र की स्थापना की (1986)
1990-2000		

अब आइए हम अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया के मूल निवासियों के इतिहास के बारे में कुछ पहलुओं को जानें।

मूल निवासियों का विस्थापन

- 18वीं शताब्दी के बाद से, दक्षिण अमेरिका, मध्य अमेरिका, उत्तरी अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड के क्षेत्रों में यूरोपीय आवासन में वृद्धि देखी गई, जिसके परिणामस्वरूप कई स्वदेशी समुदायों का विस्थापन हुआ।
- इन यूरोपीय बस्तियों को "उपनिवेश" के रूप में जाना जाता था। जैसे ही इन उपनिवेशों ने 19वीं और 20वीं शताब्दियों में अपने यूरोपीय मातृ देशों से स्वतंत्रता प्राप्त की, वे संप्रभु राज्यों या देशों में बदल गए।
- 19वीं और 20वीं शताब्दियों के दौरान, एशियाई देशों के व्यक्ति भी इनमें से कुछ देशों में चले गए।
- आज ये यूरोपीय और एशियाई लोग इन देशों में बहुसंख्यक हैं, और वहाँ के मूल निवासियों की संख्या कम रह गई है। वे शहरों में मुश्किल से ही नजर आते हैं, और लोग भूल गए कि कभी देश का अधिकतर हिस्सा उन्हीं के कब्जे में था, तथा यह भी कि कई हैं नदियों, शहरों इत्यादि के नाम 'देसी' नामों से बने हैं [(मसलम, संयुक्त राज्य अमेरिका में ओहियो (Ohio), मिसिसिपी (Mississippi) और सिएटल (Seattle) व कनाडा में सस्कातचेवान (Saskatchewan), ऑस्ट्रेलिया में वॉलान्गॉन्ग (Wollongong) और परामत्ता (Parramatta)]।
- 20वीं सदी के मध्य तक, अमेरिकी और ऑस्ट्रेलियाई इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में आम तौर पर यूरोपीय लोगों को अमेरिका तथा ऑस्ट्रेलिया की "खोज" करने वाले के रूप में दर्शाया जाता था, जिसमें मूल निवासियों को यूरोपीय लोगों के प्रति शत्रुतापूर्ण दिखाने के अलावा न्यूनतम मान्यता दी जाती थी।
- 1840 के दशक के दौरान अमेरिका में मानवविज्ञानियों द्वारा स्वदेशी लोगों के अध्ययन की शुरुआत की गई थी।
- बाद में, 1960 के दशक से, मौखिक इतिहास प्रथाओं के माध्यम से मूल निवासियों को अपने स्वयं के इतिहास का दस्तावेजीकरण करने के लिए प्रोत्साहित करने के प्रयास किए गए।
- समकालीन समय में, स्वदेशी लोगों द्वारा निर्मित ऐतिहासिक साहित्य और कथा साहित्य तक पहुँचना संभव है।

- इन देशों में जानेवाले लोग वहाँ के संग्रहालयों में 'देसी कला' की दीर्घाएँ तथा आदिवासी जोवन-शैली को दिखलानेवाले विशेष संग्रहालय भी देख सकते हैं। संयुक्त राज्य अमेरीका में नया अमेरीका इंडियन राष्ट्रीय संग्रहालय खुद अमेरीका इंडियनों की देख-रेख में बना है।

'नयी दुनिया' के देशों को यूरोपवासियों द्वारा दिए गए नाम

'अमेरीका' पहली बार अमेरिगो बेसपुकी (1451-1512) का यात्रा-वृत्तांत छपने के बाद प्रयुक्त
'कनाडा' कनाटा से निकला शब्द (1535 में खोजी ज़ाक कार्टियर को मिली जानकारी के मुताबिक, ह्यूरो-इरोक्वूइस की भाषा में कनाटा का मतलब था, 'गाँव')
'ऑस्ट्रेलिया' महान दक्षिणी महासागर में स्थित भूमि के लिए सोलहवीं सदी में प्रयुक्त नाम (लातिनी में 'दक्षिण' को ऑस्ट्रल कहते हैं।)
'न्यूजीलैंड' हॉलैंड के तासमान द्वारा दिया गया नाम, जिसने सबसे पहले 1642 में इन टापुओं को देखा था (डच भाषा में 'समुद्र' को जी कहते हैं।)
जियोग्राफिकल डिक्शनरी (पृ. 805-822) में अमेरीका और ऑस्ट्रेलिया के ऐसे सौ से ज्यादा स्थान-नामों की सूची दी गई है, जो 'न्यू' से शुरू होते हैं।

यूरोपीय साम्राज्यवाद:

- स्पेन और पुर्तगाल के अमेरीका साम्राज्य का सत्रहवीं सदी के बाद विस्तार नहीं हुआ। तब तक फ्रांस, हॉलैंड और इंग्लैंड जैसे दूसरे देशों ने अपनी व्यापारिक गतिविधियों का विस्तार करना तथा अमेरीका, अफ्रीका एवं एशिया में अपने उपनिवेश बसाना शुरू कर दिया; आयरलैंड भी कमोबेश इंग्लैंड का उपनिवेश ही था, क्योंकि वहाँ बसे हुए ज्यादातर भूस्वामी अंग्रेज ही थे।
- अठारहवीं सदी से यह बहुत साफ़-साफ़ दिखने लगा कि यद्यपि मुनाफ़े की संभावना ने ही लोगों को यहाँ उपनिवेश बसाने के लिए प्रेरित किया था, लेकिन जो नियंत्रण स्थापित किया गया, उसकी 'प्रकृति' में महत्त्वपूर्ण विविधताएँ थीं।
- दक्षिण एशिया में व्यापारिक कंपनियों ने अपने को राजनीतिक सत्ता का रूप दिया, स्थानीय शासकों को हराया और अपने इलाके का विस्तार किया। उन्होंने पुरानी सुविकसित प्रशासकीय व्यवस्था को जारी रखा और भूस्वामियों से कर वसूलते रहे। बाद में उन्होंने व्यापार को सुगम बनाने के लिए रेलवे का निर्माण किया, खदानें खुदवाई और बड़े-बड़े बागान स्थापित किए।
- दक्षिणी अफ्रीका को छोड़ कर शेष पूरे अफ्रीका में यूरोपीय लोग सर्वत्र समुद्र तटों पर हो व्यापार करते रहे। 19वीं सदी के आखिरी दौर में ही वे अंदरूनी इलाकों में जाने का साहस कर सके। इसके बाद कुछ यूरोपीय मुल्कों के बीच अपने उपनिवेशों के रूप में अफ्रीका का बँटवारा करने का समझौता हुआ।
- 'सेटलर' (Settler) शब्द दक्षिण अफ्रीका में डच के लिए, आयरलैंड, न्यूजीलैंड और ऑस्ट्रेलिया में ब्रिटिश के लिए एवं अमेरीका में यूरोपीय लोगों के लिए इस्तेमाल होता है। इन उपनिवेशों की राजभाषा अंग्रेजी थी (कनाडा को छोड़ कर, जहाँ फ्रांसीसी भी एक राजभाषा है)।

उत्तरी अमेरिका

उत्तरी अमेरिका में भूगोल एवं संसाधन विकास:

- उत्तरी अमेरीका का महाद्वीप उत्तरध्रुवीय वृत्त से लेकर कर्क रेखा तक और प्रशांत महासागर से अटलांटिक महासागर तक फैला है।
- रॉकी पहाड़ों की शृंखला के पश्चिम में अरिज़ोना और नेवाडा की मरुभूमि है। थोड़ा और पश्चिम में सिएरा नेवाडा पर्वत हैं। पूरब में ग्रेट (विस्तृत) मैदानी इलाके, ग्रेट (विस्तृत) झीलें, मिसिसिपी और ओहियो एवं अप्पलाचियाँ पर्वतों की घाटियाँ हैं। दक्षिण दिशा में मेक्सिको है।
- कनाडा का 40 फीसदी इलाका जंगलों से ढँका है। कई क्षेत्रों में तेल, गैस और खनिज संसाधन पाए जाते हैं, जिनके चलते संयुक्त राज्य अमेरीका और कनाडा में अत्यधिक बड़े उद्योग विद्यमान हैं।
- आजकल कनाडा में गेहूँ, मकई और फल बड़े पैमाने पर पैदा किए जाते हैं और मत्स्य-उद्योग वहाँ का एक महत्त्वपूर्ण उद्योग है।
- खनन, उद्योग और बड़े पैमाने की खेती का विकास पिछले 200 सालों में ही यूरोप, अफ्रीका और चीन के आप्रवासियों के हाथों हुआ है। लेकिन यूरोपवासियों की जानकारी में आने से पहले हजारों सालों से उत्तरी अमेरीका में लोग रह रहे थे।

मूल निवासी:

- उत्तरी अमेरीका के सबसे पहले बाशिंदे 30,000 साल पहले बेरिंग स्ट्रेट्स के आरपार फैले भूमि-सेतु के रास्ते एशिया से आए, और 10,000 साल पहले आखिरी हिमयुग के दौरान वे और दक्षिण की तरफ बढ़े।
- अमेरीका में मिलनेवाली सबसे पुरानी मानव कृति- एक तीर की नोक 11,000 साल पुरानी है। तकरीबन 5000 साल पहले जब जलवायु में ज्यादा स्थिरता

क्या आप जानते हैं?

'नेटिव' (मूल बाशिंदा) का मतलब होता है ऐसा व्यक्ति, जो अपने मौजूदा निवास-स्थान में ही पैदा हुआ था। बीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों तक यह पद यूरोपीय लोगों द्वारा अपने उपनिवेशों के बाशिंदों के लिए इस्तेमाल होता था।

आई, तब आबादी बढ़नी शुरू हुई।

अतिरिक्त जानकारी

“अमेरीका की पूर्वसंध्या (यानी जब यूरोपीय लोग आए और इस महाद्वीप को उन्होंने अमेरीका नाम दिया) से ठीक पहले तक विविधता हर जगह पसरी हुई थी। लोग सौ से भी ज्यादा ज़बानें बोलते थे। वे शिकार, मछली पकड़ना, संग्रहण, बागवानी और खेती में से जो-जो मुमकिन हो, वह सब आजमाते हुए अपनी जीविका कमाते थे। मिट्टी की गुणवत्ता कैसी है और उसके इस्तेमाल तथा देख-भाल के लिए कितने प्रयास की दरकार है, इसी पर जीने के तरीके का उनका चुनाव निर्भर करता था। सांस्कृतिक और सामाजिक पूर्वग्रह के आधार पर कुछ दूसरी चीजें तय होती थीं। मछली, अनाज, बाग के पेड़-पौधे, माँस इनके अधिशेष हमारे यहाँ ताकतवर, श्रेणीबद्ध समाजों की रचना में मददगार बने, लेकिन वहाँ नहीं। कुछ संस्कृतियाँ सहस्राब्दियों तक कायम रहीं।...”

विलियम मैकलिश, अमेरीका से पहले का दिन

- ये लोग नदी घाटी के साथ-साथ बने गाँवों में समूह बना कर रहते थे। वे मछली और माँस खाते थे, तथा सब्जियाँ एवं मकई उगाते थे। वे अक्सर माँस की तलाश में लंबी यात्राओं पर जाया करते थे।
- मुख्य रूप से उन्हें ‘बाइसन’ यानी उन जंगली भैंसों की तलाश रहती थी, जो घास के मैदानों में घूमते थे। (यह सत्रहवीं सदी से आसान हो गया, जब इन मूल निवासियों ने घुड़सवारी शुरू कर दी।)
- उन्होंने बड़े पैमाने पर खेती करने की कोई कोशिश नहीं की और चूँकि वे अपनी आवश्यकताओं से अधिक उत्पादन नहीं करते थे, इसलिए उन्होंने केंद्रीय तथा दक्षिणी अमेरीका की तरह राजशाही एवं साम्राज्य का विकास नहीं किया।
- इलाके को लेकर कबीलों के बीच झगड़े की कुछ मिसालें मिलती हैं, पर कुल मिलाकर ज़मीन पर नियंत्रण कोई मुद्दा नहीं था। वे ज़मीन पर अपनी ‘मिल्कियत’ की कोई ज़रूरत महसूस किए बगैर उससे मिलनेवाले भोजन और आश्रय से संतुष्ट थे।
- उनकी परंपरा की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी, औपचारिक संबंध और दोस्तियाँ कायम करना तथा उपहारों का आदान-प्रदान करना। चीजें उन्हें खरीदने की बजाय उपहार के तौर पर हासिल होती थीं।
- उत्तरी अमेरीका में अनेक भाषाएँ बोली जाती थीं, हालाँकि वे लिखी नहीं जाती थीं। उनका विश्वास था कि समय की गति चक्रीय है, और हर कबीले के पास अपनी उत्पत्ति तथा इतिहास के बारे में ब्यौरे थे जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते आ रहे थे। वे कुशल कारीगर थे और खूबसूरत कपड़े बुनते थे। वे धरती को पढ़ सकते थे, जलवायु और विभिन्न भू-दृश्यों सकते थे, जैसे पढ़े-लिखे लोग लिखी हुई चीजें पढ़ते हैं।

क्या आप जानते हैं?

मूल निवासियों के नाम ऐसी चीज़ों को दिये गए जिनका इन कबीलों से कोई संबंध नहीं था।

डकोटा (हवाईजहाज़)

चिरोकी (जीप)

पोंटिआक (कार)

मोहॉक (बाल-कटाई)!

क्या आप जानते हैं?

होपी अब कैलीफोर्निया के निकट रहने वाले आदिवासी हैं।

यूरोपियनों से मुकाबला:

- सत्रहवीं सदी में दो महीने के कठिन समुद्री अभियान के बाद उत्तरी अमेरीका के उत्तरी तट पर पहुँचे यूरोपीय व्यापारियों को यह देख कर सुकून मिला कि वहाँ के स्थानीय लोगों का व्यवहार दोस्ताना और गर्मजोशी-भरा है।
- दक्षिण अमेरीका गए स्पेनियों के विपरीत, जो वहाँ की सोने की प्रचुरता से अभिभूत हो गए थे, ये लोग मछली और रोंएदार खाल के व्यापार के लिए आए थे, जिसमें उन्हें शिकार-कुशल देसी लोगों की ओर से अपेक्षित मदद मिली।
- थोड़ा और दक्षिण में, मिसिसिपी के किनारे-किनारे, फ्राँसीसियों ने पाया कि देसी लोग नियमित रूप से जमा होते थे। इसका मकसद था, ऐसे हस्तशिल्पों का आदान-प्रदान करना जो किसी खास कबीले में ही बनते थे, या ऐसे खाद्य पदार्थों का आदान-प्रदान जो अन्य इलाकों में उपलब्ध नहीं थे। स्थानीय उत्पादों के बदले में यूरोपीय लोग वहाँ के बाशिंदों को कंबल, लोहे के बर्तन (जिसे वे कभी-कभी अपने मिट्टी के पात्रों की जगह इस्तेमाल करते थे), बंदूकें (जो जानवरों को मारने में तीर-धुनष की अच्छी पूरक साबित हुई) और शराब देते थे।
- वहाँ के बाशिंदों का पहले शराब से परिचय नहीं था। वे जल्दी ही इसकी आदत के शिकार हो गए, जो कि यूरोपीय लोगों के लिए अच्छा साबित हुआ, क्योंकि इसने उन्हें व्यापार के लिए अपनी शर्तें थोपने में सक्षम बनाया। (यूरोपीय लोगों ने उन मूल निवासियों से तंबाकू की आदत ग्रहण की।)



चित्र 3.22: रंगीन सीपों को एक साथ सिलकर बनाए गए वैम्पम बेल्ट, एक संधि पर सहमति होने के बाद स्थानीय जनजातियों द्वारा आदान-प्रदान किए गए।

‘नयी दुनिया’ के मूल बाशिनदों के लिए अंग्रेज़ी में प्रयुक्त पद

Aborigine - native people of Australia (लैटिन में ऐब का मतलब है, ‘से’ और ओरिजिन का, ‘शुरुआत’)

Aboriginal - एक विशेषण, जिसे संज्ञा की तरह इस्तेमाल करने की ग़लती अक्सर की जाती है

American Indian/Amerind/Amerindian-उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका तथा कैरेबियन के मूल निवासी

First Nations peoples-मूल निवासियों के संगठित समूह, जिन्हें कनाडाई सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त थी (1876 के इंडियन्स एक्ट में ‘बैंड्स’ पद का इस्तेमाल किया गया था, लेकिन 1980 के दशक से ‘नेशन्स’ शब्द प्रयुक्त होने लगा)

Indigenous people - ऐसे लोग, जो किसी जगह में हमेशा से रहते आए हैं

Native American - उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के देसी लोग (यह पद अब बहुप्रचलित है)

‘Red Indian’ - गेहुँएँ वर्ण के लोग, जिनके निवास स्थान को कोलंबस ने ग़लती से इंडिया समझ लिया था



तालिका 3.6: क्यूबेक और अमेरिकी उपनिवेश

क्यूबेक	अमेरिकी उपनिवेश
1497 जॉन कैबोट न्यूफ़ाउंडलैंड पहुँचे	1507 अमेरिगो डी वेस्पूची की यात्राएँ प्रकाशित हुई
1534 जैक कार्टियर सेंट लॉरेंस नदी की यात्रा करते हैं और स्थानीय लोगों से मिले	1607 ब्रिटिशों ने वर्जीनिया उपनिवेश की स्थापना की
1608 फ्राँसीसियों ने क्यूबेक की उपनिवेश की स्थापना की	1620 ब्रिटिशों ने प्लायमाउथ (मैसाचुसेट्स में) की खोज की

पारस्परिक धारणाएँ:

- अठारहवीं सदी में पश्चिमी यूरोप के लोग ‘सभ्य’ मनुष्य की पहचान साक्षरता, संगठित धर्म और शहरीपन के आधार पर ही करते थे। उन्हें अमेरीका के मूल निवासी ‘असभ्य’ प्रतीत हुए।
- फ्राँसीसी दर्शनशास्त्री ज्यॉ जैक रूसो जैसे कुछ यूरोपीयों के लिए ऐसे लोग तारीफ़ के काबिल थे, क्योंकि वे ‘सभ्यता’ की विकृतियों से अछूते थे। इसके लिए एक प्रचलित पद था, ‘उदात्त उत्तम जंगली’ (The noble savage)।
- एक दूसरा नज़रिया अंग्रेज़ी के कवि विलियम वर्ड्सवर्थ की कुछ पंक्तियों में मिलता है।
- वर्ड्सवर्थ और रूसो में से कोई भी किसी अमेरीका मूल निवासी से नहीं मिला था, लेकिन वर्ड्सवर्थ ने उनका वर्णन करते हुए कहा कि वे “जंगलों में” रहते हैं, “जहाँ कल्पनाशक्ति के पास उन्हें भावसंपन्न करने, उन्हें ऊँचा उठाने या परिष्कृत करने के अवसर बहुत कम हैं”, जिसका मतलब यह कि प्रकृति के निकट रहनेवालों की कल्पनाशक्ति और भावना अत्यंत सीमित होती है।
- मूल बाशिंदे यूरोपीय लोगों के साथ जिन चीज़ों का आदान-प्रदान करते थे, वे उनके लिए दोस्ती में दिए गए ‘उपहार’ थे।
- यूरोपीय लोगों के लिए मछली और रोएँदार खाल ‘माल’ थे, जिसे उन्हें मुनाफा कमाने के लिए यूरोप में बेचना था, इन बेची जानेवाली चीज़ों के दाम, पूर्ति के आधार पर, साल-दर-साल बदलते रहते थे। मूल निवासी इसे समझ नहीं सकते थे उन्हें सुदूर यूरोप में स्थित ‘बाज़ार’ का ज़रा भी बोध नहीं था।

क्या आप जानते हैं?

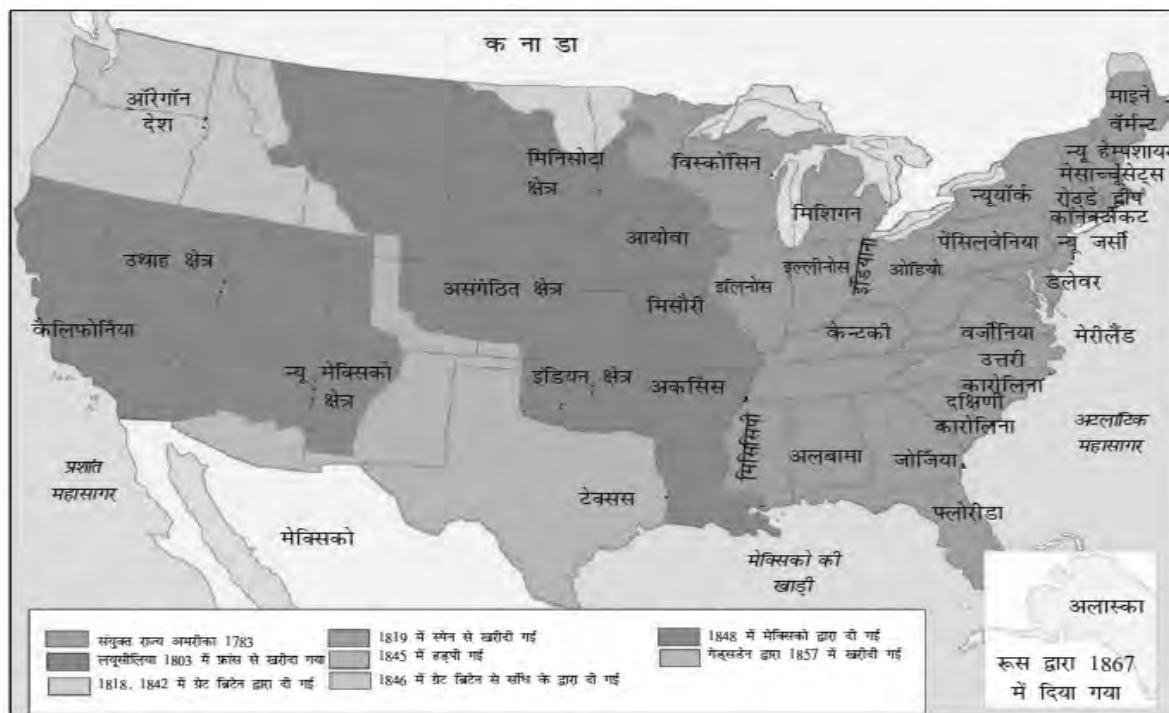
मूल निवासियों की कई लोककथाओं में यूरोपीय जनों का मज़ाक उड़ाया गया था और उनका वर्णन लालची और धूर्त के रूप में किया गया था, लेकिन चूँकि वे काल्पनिक कथाओं की शक्ल में थीं, इसलिए यूरोपीय लोग उनके सही संदर्भ को काफी बाद में जाकर समझ पाए।

तालिका 3.7: 18वीं शताब्दी में कनाडा और अमेरिका

कनाडा	संयुक्त राज्य अमेरिका
1701 क्यूबेक के मूल निवासियों के साथ फ्राँसीसी संधि	1781 ब्रिटेन ने संयुक्त राज्य अमेरिका को एक स्वतंत्र देश के रूप में मान्यता दी
1763 क्यूबेक पर ब्रिटिशों की विजय	1783 ब्रिटेन ने मध्य-पश्चिम को संयुक्त राज्य अमेरिका को दे दिया
1774 क्यूबेक अधिनियम	
1791 कनाडा संवैधानिक अधिनियम	

19वीं सदी में कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका का विकास:

- कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका अठारहवीं सदी के अंत में उभरे।
- अगली सदी में, दोनों देशों ने अपने क्षेत्रों का काफी विस्तार किया।



चित्र 3.23: संयुक्त राज्य अमेरिका का विस्तार

- अमेरिका ने खरीद (जैसे फ्रांस से लुइसियाना खरीद और रूस से अलास्का खरीद) और युद्धों (मेक्सिको से क्षेत्र हासिल करना) के माध्यम से भूमि हासिल की।
- इन अधिग्रहणों में मूल निवासियों की सहमति नहीं ली गई थी, और पश्चिमी सीमांत क्षेत्र के बदलने से स्वदेशी लोगों को विस्थापित होना पड़ा।
- 19वीं सदी में अमेरिका के भूदृश्य में ज़बरदस्त बदलाव आए।
- ज़मीन के प्रति यूरोपीय लोगों का रवैया मूल निवासियों से अलग था। ब्रिटेन और फ्रांस से आए कुछ प्रवासी ऐसे थे, जो छोटे बेटे होने के कारण पिता की संपत्ति के उत्तराधिकारी नहीं बन सकते थे और इसी वजह से अमेरिका में ज़मीन के मालिक बनना चाहते थे।
- बाद में जर्मनी, स्वीडन और इटली जैसे मुल्कों से ऐसे आप्रवासी उमड़ पड़े, जिनकी ज़मीनें बड़े किसानों के हाथ चली गई थीं।
- पोलैंड से आए लोगों को प्रेयरी (prairie) चारागाहों में काम करना अच्छा लगता था, जो उन्हें अपने घरों के स्टेपीज़ (घास के मैदानों) की याद दिलाते थे।
- अपने विस्तृत खेतों को जंगली जानवरों भेड़िए और पहाड़ी शेरों से बचाने के लिए उन्होंने शिकार के जरिए उनका सफ़ाया ही कर दिया। सन् 1873 में कैटीले तारों की खोज के बाद ही वे अपने को पूरी तरह सुरक्षित महसूस कर पाए।

तालिका 3.8: 19वीं शताब्दी में कनाडा और अमेरिका

कनाडा	संयुक्त राज्य अमेरिका
	सन् 1803 फ्रांस से लुइसियाना को खरीदा
	1825-58 अमेरिका के मूल निवासियों को आरक्षित क्षेत्रों में स्थानांतरित कर दिया गया
1837 फ्रांसीसी कनाडाई विद्रोह	1832 जस्टिस मार्शल का फैसला
1840 ऊपरी और निचले कनाडा का कैनेडियन संघ	1849 अमेरिकी गोल्ड रश
1859 कनाडा गोल्ड रश	1861-65 अमेरिकी गृह युद्ध
1867 कनाडा महासंघ	1865-90 अमेरिकी इंडियन युद्ध
1869-85 कनाडा में मेटिसों द्वारा रेड रिवर विद्रोह	1870 पारमहाद्वीपीय रेलवे
1876 कनाडा इंडियंस एक्ट	1890 अमेरिका में जंगली भैंसों का उन्मूलन
1885 पारमहाद्वीपीय रेलवे ने पूर्वी और पश्चिमी तटों का जुड़वा	1892 अमेरिकी सीमा का 'अंत'

- घर के बाहर काम करने के लिहाज से दक्षिणी इलाके की जलवायु यूरोपीय जनों के लिए काफी गर्म थी, और दक्षिण अमेरीका उपनिवेशों का यह अनुभव रहा था कि दास बनाए गए मूल निवासी बहुत बड़ी संख्या में मौत के शिकार हुए थे। इसीलिए बागान मालिकों ने अफ्रीका से दास खरीदे। दासप्रथा विरोधी समूहों के विरोध के चलते दासों के व्यापार पर तो रोक लग गई, लेकिन जो अफ्रीकी संयुक्त राज्य अमेरीका में थे, वे और उनके बच्चे दास ही बने रहे।
- संयुक्त राज्य अमेरीका के उत्तरी राज्यों ने, जहाँ अर्थतंत्र बगानों पर (और इसीलिए दासप्रथा पर) टिका हुआ नहीं था, दासप्रथा को खत्म करने के पक्ष में दलीलें दीं और उसे एक अमानवीय प्रथा बताया। 1861-65 में दासप्रथा को जारी रखनेवाले और उसके खात्मे की वकालत करने वाले राज्यों के बीच युद्ध हुआ। दासता विरोधियों की जीत हुई। दासप्रथा खत्म कर दी गई।
- सन् 1763 में ब्रिटिश लोगों ने फ्रांस के साथ हुई लड़ाई में कनाडा को जीता था। वहाँ फ्रांसीसी आबादकार लगातार स्वायत्त राजनीतिक दर्जे की माँग कर रहे थे। सन् 1867 में कनाडा को स्वायत्त राज्यों के एक महासंघ के रूप में संगठित करके ही इस समस्या का हल निकल पाया।



चित्र 3.24: कोलोराडो में एक खेत

अपनी ज़मीन से मूल वाशिंग्टन की बेदखली:

जैसे-जैसे संयुक्त राज्य अमेरीका ने अपनी बस्तियों का विस्तार किया, ज़मीन की बिक्री के समझौते पर दस्तखत कराने के बाद मूल निवासियों को वहाँ से हटने के लिए प्रेरित या बाध्य किया गया। उन्हें दी गई कीमतें बहुत कम थीं, और इसके भी उदाहरण मिलते हैं कि अमेरिकियों (संयुक्त राज्य अमेरीका में रहनेवाले यूरोपीय लोगों के लिए प्रयुक्त पद) ने धोखे से उनसे ज़्यादा ज़मीन ले ली या पैसा देने के मामले में वायदाखिलाफ़ी की।

नृजातीय विज्ञान

मानवशास्त्र यह महत्वपूर्ण है कि इसी समय (1840 के दशक से) उत्तरी अमेरीका में 'मानवशास्त्र' विषय (जो कि फ्रांस में विकसित हुआ था) की शुरुआत हुई। यह शुरुआत स्थानीय 'आदिम' समुदायों और यूरोप के 'सभ्य' समुदायों के बीच के अंतर के अध्ययन के लिए हुई थी। कुछ मानवशास्त्रियों ने यह स्थापित किया कि जिस तरह यूरोप में 'आदिम' लोग नहीं पाए जाते, उसी तरह अमेरिकी मूल निवासी भी 'समाप्त हो जाएंगे'।

- उच्च अधिकारी भी मूल वाशिंग्टन की बेदखली को गलत नहीं मानते थे। यह जॉर्जिया के एक प्रकरण में देखा जा सकता है। जॉर्जिया संयुक्त राज्य अमेरीका का एक राज्य है। यह के अधिकारियों की दलील थी कि चिरोकी कबीला राज्य के कानून से शासित तो होता है, लेकिन वे नागरिक अधिकारों का उपयोग नहीं कर सकते। (ध्यान देने की बात है कि मूल निवासियों में से चिरोकी ही ऐसे थे, जिन्होंने अंग्रेज़ी सीखने और अमेरीका जीवन-शैली को समझने की सबसे ज़्यादा कोशिश की थी, और तब भी उन्हें नागरिक अधिकार नहीं दिए गए।)
- सन् 1832 में संयुक्त राज्य के मुख्य न्यायाधीश, जॉन मार्शल ने एक महत्वपूर्ण फैसला सुनाया। उन्होंने कहा कि चिरोकी कबीला "एक विशिष्ट समुदाय है और उसके स्वत्वाधिकार वाले इलाके में जॉर्जिया का कानून लागू नहीं होता" तथा वे कुछ मामलों में संप्रभुतासंपन्न हैं।
- संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति, एंड्रयू जैकसन, जिनकी छवि आर्थिक और राजनीतिक पक्षपात के खिलाफ लड़नेवाले की थी, इंडियन्स का मामला आने पर वह बिलकुल उलट गए। उन्होंने मुख्य न्यायाधीश की इस बात का मान रखने से इनकार कर दिया और चिरोकियों को अपनी ज़मीन से हाँक कर विस्तृत अमेरीका मरुभूमि (Great American Desert) की ओर खदेड़ने के लिए अमेरीका फौज भेज दी। जिन 15000 लोगों को वहाँ से हटने पर मजबूर किया गया, उनमें से एक चौथाई अपने 'आँसुओं की राह' (Trail of Tears) के सफर में ही मर-खप गए।
- कुल मिलाकर उनका कहना यह था कि वे 'मर-खपने' लायक ही हैं। खेती की ज़मीन निकालने के लिए प्रेयरीज़ साफ़ की गई, और जंगली भैंसों को मारा गया। एक फ्रांसीसी आगंतुक ने लिखा, "आदिम जानवरों के साथ-साथ आदिम मनुष्य लुप्त हो जाएगा"।
- इस बीच मूल निवासी पश्चिम की ओर धकेल दिए गए थे। उन्हें 'स्थायी तौर पर अपनी' ज़मीन दे दी गई थी, लेकिन अक्सर उन्हें उस जगह से भी बेदखल होना पड़ता।
- प्रायः कई समूहों को मूलतः किसी एक के कब्जे वाली ज़मीन में ही साझा करने के लिए बाध्य किया जाता, जिससे उनके बीच झगड़े हो जाते थे। मूल निवासी छोटे इलाकों में कैद कर दिए गए थे, जिन्हें 'रिज़र्वेशन्स' (आरक्षण) कहा जाता था।
- संयुक्त राज्य की फौज ने सन् 1865 से 1890 के बीच विद्रोहों की एक पूरी शृंखला का दमन किया था। कनाडा में सन् 1869 से 1885 के बीच मेटिसों (यूरोपीय मूल निवासियों के वंशज) के सशस्त्र विद्रोह हुए थे, लेकिन इन लड़ाइयों के बाद उन्होंने हार मान ली।



चित्र 3.25: 'गोल्ड रश' के तहत कैलिफोर्निया की ओर बढ़ना, फोटो

गोल्ड रश और उद्योगों की वृद्धि:

- सन् 1840 में संयुक्त राज्य अमेरीका के कैलीफोर्निया में सोने के कुछ चिह्न मिले। इसने 'गोल्ड रश' को जन्म दिया।
- इसके चलते पूरे महाद्वीप में रेलवे लाइनों का निर्माण हुआ जिसके लिए हजारों चीनी श्रमिकों की नियुक्ति हुई।
- संयुक्त राज्य अमेरीका रेलवे का काम सन् 1870 में पूरा हुआ और कनाडा की रेलवे का सन् 1885 में।
- एंड्रयू कार्नेगी ने, जो स्कॉटलैंड से आया हुआ एक गरीब आप्रवासी और सं.रा.अ. के पहले करोड़पति उद्योग-स्वामियों में से एक था, कहा- "पुराने राष्ट्र घोंघे की चाल से सरकते हैं, नया गणराज्य किसी एक्सप्रेस की गति से दौड़ रहा है।"
- उत्तरी अमेरीका में उद्योग कई अलग तरह के कारणों से विकसित हुए - रेलवे के साज-सामान बनाने के लिए ताकि दूर-दूर की जगहों को तीव्र परिवहन के द्वारा जोड़ा जा सके, और ऐसे यंत्रों का उत्पादन करने के लिए जिनसे बड़े पैमाने की खेती को आसान बनाया जा सके।
- सं.रा.अ. और कनाडा, दोनों जगहों पर औद्योगिक नगरों का विकास हुआ, तथा कारखानों की संख्या तेजी से बढ़ी। सन् 1860 में सं.रा.अ. का अर्थतंत्र अविकसित अवस्था में था। सन् 1890 में वह दुनिया की अग्रणी औद्योगिक शक्ति बन चुका था।
- बड़े पैमाने की खेती का भी विस्तार हुआ। बड़े-बड़े इलाके साफ किए गए और खेतों के रूप में उनके टुकड़े किए गए।
- सन् 1890 तक आते-आते जंगली भैंसों का लगभग पूरी तरह उन्मूलन किया जा चुका था, और इस तरह शिकार वाली वह जीवनचर्या भी समाप्त हुई, जिसे मूल बाशिंदे सदियों से जीते आ रहे थे।
- सन् 1892 में संयुक्त राज्य अमेरीका का महाद्वीपीय विस्तार पूरा हो चुका था।
- प्रशांत महासागर और अटलांटिक महासागर के बीच का क्षेत्र राज्यों में विभाजित किया जा चुका था। अब कोई 'फ्रंटियर' नहीं रहा, जो कई दशकों तक यूरोपीय आबादकारों को पश्चिम की ओर खींचता रहा था।
- कुछ ही वर्षों के भीतर संयुक्त राज्य अमेरीका हवाई और फिलिपीन्स में अपने उपनिवेश बसा रहा था। वह एक साम्राज्यवादी शक्ति बन चुका था।



चित्र 3.26: अमेरीका द्वारा अप्रवासियों का स्वागत, 1909 ई.

संवैधानिक अधिकार:

- आबादकारों ने 1770 के दशक में आजादी के अपने संघर्ष में 'लोकतांत्रिक भावना' के जिस नारे के तहत एकजुटता बनाई थी, वही पुरानी दुनिया की राजशाही और अभिजात तंत्र के खिलाफ संयुक्त राज्य अमेरीका की पहचान बनी।



चित्र 3.27: मैदानी क्षेत्र में स्थित खेत जो गरीब यूरोपीय आप्रवासियों का सपना था, फोटो।

- उनके लिए यह भी अहम था कि उनके संविधान में व्यक्ति के 'संपत्ति के अधिकार' को शामिल किया गया, जिसे रद्द करने की छूट राज्य को नहीं थी।
- लेकिन लोकतांत्रिक अधिकार (राष्ट्रपति और कांग्रेस के प्रतिनिधियों के चुनाव में वोट देने का अधिकार) और संपत्ति का अधिकार, दोनों सिर्फ गरीब लोगों के लिए थे।

- एक कनाडाई मूल निवासी, डेनियल पॉल ने सन् 2000 में इस ओर ध्यान खींचा कि अमेरीका स्वाधीनता संग्राम और फ्राँसीसी क्रांति के समय लोकतंत्र के पक्ष में आवाज बुलंद करने वाले थॉमस पाइन ने “समाज का संगठन करने के लिए इंडियन्स का इस्तेमाल एक मॉडल के तौर पर किया था।” इसके आधार पर उसने दलील दी कि “अमेरीका मूल निवासियों ने मिसाल बन कर यूरोपीय लोगों के लंबे लोकतंत्रोन्मुखी आंदोलन के बीज बोए थे।”

बदलाव की लहर

- 1920 के दशक तक संयुक्त राज्य अमेरीका और कनाडा के मूल निवासियों के लिए कुछ भी बेहतर होना शुरू नहीं हुआ।
- संयुक्त राज्य अमेरीका की समस्त जनता को प्रभावित करनेवाली बड़ी आर्थिक मंदी से कुछ साल पहले, सन् 1928 में समाजवैज्ञानिक लेवाइस मेरिअम के निर्देशन में संपन्न हुआ एक सर्वेक्षण प्रकाशित हुआ दि प्रॉब्लम ऑफ़ इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन - जिसमें रिजर्वेशन्स में रह रहे मूल निवासियों की स्वास्थ्य एवं शिक्षा सुविधाओं की दरिद्रता का बड़ा ही दारुण चित्र प्रस्तुत किया गया था।
- गोरे अमेरिकियों के मन में उन मूल निवासियों के प्रति सहानुभूति जागी, जिन्हें अपनी संस्कृति को पूरा-पूरा निभाने से रोका जाता था और साथ-ही-साथ नागरिकता के लाभों से भी वंचित रखा जाता था।
- इसने संयुक्त राज्य अमेरीका में एक युगांतरकारी कानून को जन्म दिया - 1934 का इंडियन रीऑर्गनाइजेशन एक्ट जिसके द्वारा रिजर्वेशन्स में मूल निवासियों को ज़मीन खरीदने और ऋण लेने का अधिकार हासिल हुआ।
- 1950 और 60 के दशकों में संयुक्त राज्य और कनाडा की सरकारों ने मूल बाशिंदों के लिए किए गए विशेष प्रावधानों को खत्म करने पर इस उम्मीद से विचार किया, कि इससे वे ‘मुख्यधारा में शामिल’ होंगे, अर्थात् वे यूरोपीय संस्कृति को अपनाएँगे। लेकिन मूल बाशिंदे ऐसा नहीं चाहते थे।
- वर्ष 1954 में अनेक मूल निवासियों ने अपने द्वारा तैयार किए गए ‘डिक्लैरेशन ऑफ़ इंडियन राइट्स’ में इस शर्त के साथ सं.रा.अ. की नागरिकता स्वीकार की कि उनके रिजर्वेशन्स वापस नहीं लिए जाएँगे और उनकी परंपराओं में दखलंदाजी नहीं की जाएगी। कुछ ऐसी ही चीजें कनाडा में भी हुईं।
- वर्ष 1969 में सरकार ने घोषणा की कि वह “आदिवासी अधिकारों को मान्यता नहीं” देगी। मूल निवासियों ने सुसंगठित तरीके से इसका विरोध करते हुए धरना-प्रदर्शनों और वाद-विवादों की एक पूरी श्रृंखला आयोजित की।
- वर्ष 1982 में एक संवैधानिक धारा के तहत मूल निवासियों के मौजूदा आदिवासी अधिकारों और समझौता आधारित अधिकारों को स्वीकृति मिलने तक यह सवाल हल नहीं हो पाया।
- 18वीं सदी के मुकाबले अपनी संख्या बहुत कम हो जाने के बावजूद, अपनी संस्कृति को निभाने के अपने अधिकारों को लेकर पुरजोर दावेदारी की है और, खास तौर से कनाडा में, अपनी पवित्र भूमि पर अधिकार की भी दावेदारी की है। ऐसी दावेदारी 1880 के दशक में उनके पुरखे नहीं कर सकते थे।

क्या आप जानते हैं?

महान जर्मन दार्शनिक कार्ल मार्क्स (1818-83) ने अमेरिकी सीमांत क्षेत्र को “अंतिम सकारात्मक पूँजीवादी स्वप्नलोक...असीम प्रकृति और स्थान” के रूप में वर्णित किया है, जिसके लिए लाभ की असीम चाहत स्वयं को अनुकूलित करती है।

-‘बास्टियाट और कैरी’, ग्रुंडिस डी

ऑस्ट्रेलिया

ऑस्ट्रेलिया में प्राचीन स्वदेशी उपस्थिति:

- उत्तरी और दक्षिण अमेरीका की तरह ही ऑस्ट्रेलिया में भी मानव निवास का इतिहास लंबा है।
- शुरुआती मनुष्य या आदिमानव जिन्हें ‘ऐबॉरिजिनीज़’ कहते हैं (यह कई भिन्न-भिन्न समाजों के लिए प्रयुक्त एक सामान्य नाम है) ऑस्ट्रेलिया में 40,000 साल पहले आने शुरू हुए (संभवतः उससे भी पहले से)। वे ऑस्ट्रेलिया के साथ एक भू-सेतु से जुड़े न्यू गिनी से आए थे।
- मूल निवासियों की अपनी परंपराओं के हिसाब से वे ऑस्ट्रेलिया आए नहीं थे, बल्कि हमेशा से यहीं थे। बीती सदियों ‘स्वप्नकाल’ कही जाती थी। इस कथन को समझना यूरोपीय लोगों के लिए मुश्किल था, क्योंकि इसमें अतीत और वर्तमान का अंतर धुँधला हो जाता था।
- 18वीं सदी के आखिरी दौर में ऑस्ट्रेलिया में मूल निवासियों के 350 से 750 तक समुदाय थे। जिनमें से प्रत्येक की अपनी अलग भाषा थी। आज भी, इनमें से लगभग 200 भाषाएँ बोली जाती हैं।
- ऑस्ट्रेलिया की आबादी बहुत छितरायी हुई है, और आज भी वहाँ के ज्यादातर शहर समुद्रतट के साथ-साथ बसे हैं (जहाँ 1770 में ब्रिटिश लोग पहली बार पहुँचे थे), क्योंकि बीच का इलाका शुष्क मरुभूमि है।



चित्र 3.28: ऑस्ट्रेलिया

तालिका 3.9: यूरोपियों का ऑस्ट्रेलिया पहुँचना

यूरोपियों का ऑस्ट्रेलिया पहुँचना	
1606	डच यात्रियों ने ऑस्ट्रेलिया को देखा
1642	तस्मान इस द्वीप पर पहुँच जिसे बाद में तस्मानिया नाम दिया गया
1770	जेम्स कुक बॉटनी कड़ीयाँ पहुँचे, जिसका नाम न्यू साउथ वेल्स रखा गया
1788	ब्रिटिश दंड कॉलोनी का गठन। सिडनी की स्थापना

सिडनी के इलाके का एक वर्णन, 1790

“ब्रिटिशों की उपस्थिति ने आदिवासियों के उत्पादन को नाटकीय ढंग से अस्त-व्यस्त कर दिया। हजारों भूखे मुखों के आने से, जिनके पीछे-पीछे सैकड़ों और आए, स्थानीय खाद्य संसाधनों पर अभूतपूर्व दबाव पड़ा।

तो दारूक लोगों ने इन सबके बारे में क्या सोचा होगा? उनके लिए पवित्र स्थानों का इतने बड़े पैमाने पर विनाश और अपनी ज़मीन के प्रति विचित्र, हिंसक बरताव समझ से परे था। ये नवागंतुक बिना वजह पेड़ों को काटते जाते। यह बिना वजह इसलिए जान पड़ता था कि उन्हें न डोंगी बनानी थीं, न जंगली शहद इकट्ठा करना था और न ही जानवर पकड़ने थे। पत्थरों को हटाकर उनका चट्टा लगा दिया गया, मिट्टी खोद कर उसे आकार देकर पका दिया गया, ज़मीन में गड्ढे बना दिए गए, बहुत भारी-भरकम इमारतें तैयार कर दी गईं। पहले-पहल उन्होंने इस सफाई की तुलना किसी पवित्र आनुष्ठानिक भूमि के निर्माण से की होगी। संभवतः उन्होंने सोचा कि एक विशाल कर्मकांडी जलसा होने जा रहा है और यह एक खतरनाक धंधा होगा, जिससे उन्हें पूरी तरह दूर रहना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं कि इसके बाद दारूक उन बस्तियों से बच कर रहने लगे, और राजकीय अपहरण ही उन्हें वापस लाने का एकमात्र तरीका था।”

- (पी. ग्रिमशॉ, एम.लेक, ए. मैकग्राथ, एम. क्वार्टली, क्रिएटिंग ए नेशन)

ऑस्ट्रेलियाई उपनिवेशीकरण: यूरोपीय अधिवासी, मूल निवासी और भूमि

- ऑस्ट्रेलिया में यूरोपीय आबादकारों, मूल निवासियों और ज़मीन के बीच आपसी रिश्तों का किस्सा उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका के किस्से से कई बिंदुओं पर मिलता-जुलता है, हालाँकि इसकी शुरुआत 300 साल बाद हुई।
- मूल निवासियों के साथ हुई मुलाकात को लेकर कैप्टन कुक और उसके जत्थे के आरंभिक ब्यौरे मूल निवासियों के दोस्ताना व्यवहार के बारे में उत्साहपूर्ण हैं, लेकिन जब एक मूल निवासी ने कुक की हत्या कर दी हवाई में, ऑस्ट्रेलिया में नहीं तब ब्रिटिशों का रवैया पूरी तरह से उलट गया।
- 19वीं और 20वीं सदी के दरम्यान कीटाणुओं के असर से, अपनी ज़मीन खोने के चलते और आबादकारों के साथ हुई लड़ाइयों में लगभग 90 फ़ीसदी मूल बाशिंदों को अपनी जान गँवानी पड़ेगी।
- ब्रिटिशों ने स्वतंत्र होने तक अमेरिका उपनिवेशों में यही तरीका अपनाया, और फिर उसे ऑस्ट्रेलिया में भी जारी रखा। ऑस्ट्रेलिया के ज्यादातर शुरुआती आबादकार इंग्लैंड से निर्वासित होकर आए थे और उनके कारावास पूरा होने पर ब्रिटेन वापस न लौटने की शर्त पर उन्हें ऑस्ट्रेलिया में स्वतंत्र जीवन जीने की इजाजत दे दी गई।
- यूरोपीय बस्तियों के तहत ऑस्ट्रेलिया का आर्थिक विकास अमेरिका जितना भिन्नतापूर्ण नहीं था।
- भेड़ों के विशाल फार्म और खाने उसके पश्चात, मदिरा बनाने हेतु अंगूर के बाड़ा तथा गेहूँ की खेती एक लंबी अवधि में एवं काफी परिश्रम से विकसित हो पाई, इन्होंने ऑस्ट्रेलिया की संपन्नता की बुनियाद तैयार की।
- जब राज्यों को मिलाया गया और वर्ष 1911 में ऑस्ट्रेलिया की एक राजधानी बनाने की योजना चल रही थी, तब उसके लिए ‘वूलव्हीटगोल्ड’ (Woolwheat gold) नाम का सुझाव दिया गया था। अंततः उसका नाम कैनबरा रखा गया जो एक स्थानीय शब्द कैमबरा (Kamberra) से बना है, जिसका अर्थ है, ‘सभा-स्थल’।

विचारणीय बिंदु

ऑस्ट्रेलिया में ब्रिटिश बसने वालों के आगमन ने स्थानीय आदिवासियों और उनके जीवन-शैली को किस तरह प्रभावित किया? क्या आप भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवादियों द्वारा आदिवासियों और वनवासियों के मामले में कोई समानता बता सकते हैं?



तालिका 3.10: ऑस्ट्रेलिया का विकास

ऑस्ट्रेलिया का विकास	
1850	ऑस्ट्रेलियाई बस्तियों को स्वशासन का अधिकार
1851	चीनी कुलियों का आप्रवास। 1855 में कानून बना कर इसे रोक दिया गया
1851-1961	गोल्ड रश
1901	छह राज्यों को लेकर ऑस्ट्रेलियाई संघ का निर्माण
1911	कैनबरा राजधानी बनाई गई
1948-75	20 लाख यूरोपीय लोग ऑस्ट्रेलिया में आकर बस गए

- गैर-गोरों पर बढ़ती हुई निर्भरता से जन्मी घबराहट के चलते दोनों देशों की सरकारों ने चीनी आप्रवासियों को प्रतिबंधित कर दिया।
- वर्ष 1974 तक लोगों के मन में यह भय घर कर गया था कि दक्षिण एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया के 'गहरी रंगत वाले' लोग बड़ी तादाद में ऑस्ट्रेलिया आ सकते हैं, और इसीलिए 'गैर-गोरो' को बाहर रखने के लिए सरकार ने एक नीति अपनाई।

बदलाव की लहर...

- 1968 में एक मानवशास्त्री डब्ल्यू.ई.एच. स्टैनर के एक व्याख्यान से लोगों में बिजली की तरंग-सी दौड़ गई। व्याख्यान का शीर्षक, दि ग्रेट ऑस्ट्रेलियन साइलेंस (महान ऑस्ट्रेलियाई चुप्पी) - इतिहासकारों की मूल निवासियों के बारे में चुप्पी थी।
- 1970 के दशक से उत्तरी अमेरीका की तरह ही यहाँ भी मूल निवासियों को एक नए रूप में समझने की चाहत जग चुकी थी। उन्हें मानवशास्त्रीय जिज्ञासाओं के रूप में नहीं, बल्कि विशिष्ट संस्कृतियों वाले समुदायों के रूप में, प्रकृति और जलवायु को समझने की विशिष्ट पद्धतियों के रूप में समझना था। उन्हें ऐसे समुदायों के रूप में समझना था, जिनके पास अपनी कथाओं और कपड़ासाजी-चित्रकारी-हस्तशिल्प के कौशल का विशाल भंडार था और वह भंडार सराहने, आदर तथा अभिलेखन के योग्य था।
- हेनरी रेनॉल्ड्स ने अपनी प्रभावशाली पुस्तक, व्हाइ वरंट वी टोल्ड? (हमें बताया क्यों नहीं गया?), में सामने रखा। इस किताब में ऑस्ट्रेलियाई इतिहास लेखन के उस ढर्रे की भर्त्सना की गई थी, जिसमें कैप्टन कुक की 'खोज' ही इतिहास की शुरुआत मानी जाती थी।

तालिका 3.11: ऑस्ट्रेलियाई इतिहास की महत्वपूर्ण तिथियाँ

1974	'गोरे ऑस्ट्रेलिया' की नीति का खात्मा, एशियाई आप्रवासियों को प्रवेश की इजाजत
1992	ऑस्ट्रेलियाई हाई कोर्ट द्वारा (माबो केस में) टेरा न्यूलिअस की कानूनी अवैधता की घोषणा और 1770 के पहले से ज़मीन पर मूल निवासियों के दावों को मान्यता
1995	आदिवासी और टॉरस स्ट्रेट टापूवासी बच्चों को उनके परिवारों से अलग किए जाने के मामले में राष्ट्रीय जाँच
1999	1820 से 1970 के दशक के बीच 'गुम हुए' बच्चों से माफ़ीनामे के तौर पर 'राष्ट्रीय क्षमायाचना दिवस' (A National Sorry Day) (26 मई)

- मूल निवासियों की संस्कृतियों का अध्ययन करने के लिए विश्वविद्यालयी विभागों की स्थापना हुई है। कलादीर्घाओं (आर्ट गैलरीज) में देसी कलाओं की दीर्घाएँ शामिल की गई हैं, देसी संस्कृति को समझनेवाले कल्पनाशील तरीके से सज्जित कमरों के लिए संग्रहालयों में जगह बनाई गई है, और मूल निवासियों ने अपने जीवन-इतिहासों को लिखना शुरू किया है।
- 1974 से 'बहुसंस्कृतिवाद' ऑस्ट्रेलिया की राजकीय नीति रही है, जिसने मूल निवासियों की संस्कृतियों और यूरोप तथा एशिया के आप्रवासियों की संस्कृतियों को समान आदर दिया है।
- 1970 के दशक से, जब संयुक्त राष्ट्र संघ और दूसरी अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों की बैठकों में 'मानवाधिकार' शब्द सुनाई पड़ने लगा, ऑस्ट्रेलियाई जनता को यह अहसास हुआ कि संयुक्त राज्य अमेरीका, कनाडा और न्यूजीलैंड के विपरीत ऑस्ट्रेलिया में यूरोपीय लोगों द्वारा किए गए भूमि अधिग्रहण को औपचारिक बनाने के लिए मूल निवासियों के साथ कोई समझौता पत्र तैयार नहीं किया गया है। सरकार हमेशा से ऑस्ट्रेलिया की ज़मीन को टेरा न्यूलिअस (terra nullius) कहती आई थी। इसका मतलब था, 'जो किसी की नहीं है'। इसके अलावा, वहाँ अपने आदिवासी रिश्तेदारों से छीने गए मिश्रित रक्तवाले (मूल निवासी यूरोपीय) बच्चों का एक लंबा और यंत्रणापूर्ण इतिहास भी था।
- इन सवालों पर खड़े हुए आंदोलन के कारण तहकीकातें शुरू हुई और दो महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए:
- एक, इस बात को मान्यता देना कि मूल निवासियों का ज़मीन के साथ, जो कि उनके लिए 'पवित्र' है, मज़बूत ऐतिहासिक संबंध रहा है और इसका आदर किया जाना चाहिए;
- दो, पिछली गलतियों को धोया तो नहीं जा सकता, लेकिन 'गोरो' और 'रंगबिरंगे लोगों' को अलग-अलग रखने की कोशिश करके बच्चों के साथ जो अन्याय किया गया है, उसके लिए सार्वजनिक रूप से माफ़ी माँगी जानी चाहिए।

आधुनिकीकरण के रास्ते

चीन और जापान का आधुनिकीकरण:

- उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में चीन का पूर्वी एशिया पर प्रभुत्व था। लंबी परंपरा के वारिस झोंग राजवंश की सत्ता अक्षुण्ण जान पड़ती थी, जबकि नन्हा सा द्वीप देश जापान अलग-थलग पड़ा हुआ प्रतीत होता था।
- इसके बावजूद, कुछ ही दशकों के भीतर चीन अशांति की गिरफ्त में आ गया और औपनिवेशिक चुनौती का सामना नहीं कर पाया।
- दूसरी ओर जापान एक आधुनिक राष्ट्र-राज्य के निर्माण में, औद्योगिक अर्थतंत्र की रचना में और यहाँ तक कि ताइवान (1895) तथा कोरिया (1910) को अपने में मिलाते हुए एक औपनिवेशिक साम्राज्य कायम करने में सफल रहा। उसने अपनी संस्कृति और अपने आदर्शों की स्रोत-भूमि चीन को वर्ष 1894 में हराया और वर्ष 1905 में रूस जैसी यूरोपीय शक्ति को पराजित करने में कामयाब रहा।

- आधुनिक दुनिया का सामना करने के लिए उन्होंने अपनी परंपराओं को पुनः परिभाषित करने का प्रयास किया। साथ ही अपनी राष्ट्र-शक्ति का पुनर्निर्माण करने और पश्चिमी व जापानी नियंत्रण से मुक्त होने की कोशिश की।
- वर्ष 1949 में चीनी साम्यवादी पार्टी ने गृहयुद्ध में जीत हासिल की। लेकिन 1970 के दशक के आखिर तक चीनी नेताओं को लगने लगा कि देश की विचारधारात्मक व्यवस्था उसकी आर्थिक वृद्धि और विकास में बाधा डाल रही है। इस वजह से अर्थव्यवस्था में व्यापक सुधार किए गए। यद्यपि इससे पूँजीवाद और मुक्त बाज़ार की वापसी हुई, तथापि साम्यवादी दल का राजनीतिक नियंत्रण अब भी बरकरार रहा।
- जापान उन्नत औद्योगिक राष्ट्र बन गया। वर्ष 1945 में आँग्ल-अमेरीका सैन्यशक्ति के सामने उसे हार माननी पड़ी। अमेरीका आधिपत्य के साथ अधिक लोकतांत्रिक व्यवस्था की शुरुआत हुई और 1970 के दशक तक जापान अपनी अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण करके एक प्रमुख आर्थिक शक्ति बनकर उभरा।
- जापान का आधुनिकीकरण का सफ़र पूँजीवाद के सिद्धांतों पर आधारित था और यह सफ़र उसने ऐसी दुनिया में तय किया, जहाँ पश्चिमी उपनिवेशवाद का प्रभुत्व था। दूसरे देशों में जापान के विस्तार को पश्चिमी प्रभुत्व का विरोध करने और एशिया को आज़ाद कराने की माँग के आधार पर उचित ठहराया गया।
- जापान में जिस तेज़ी से विकास हुआ वह जापानी संस्थाओं और समाज में परंपरा की सुदृढ़ता, उनकी सीखने की शक्ति और राष्ट्रवाद की ताकत को दर्शाता है।

भूगोल और खाद्य संस्कृति में विरोधाभास

चीन:

- चीन और जापान के भौतिक भूगोल में काफी अंतर है। चीन विशालकाय महाद्वीपीय देश है जिसमें कई तरह की जलवायु वाले क्षेत्र हैं: मुख्य क्षेत्र में 3 प्रमुख नदियाँ हैं: पीली नदी (हुआंग हे), यांग्त्सी नदी (छांग जिआंग दुनिया की तीसरी सबसे लंबी नदी), और पर्ल नदी। देश का बहुत सा हिस्सा पहाड़ी है।



चित्र 3.29: पूर्वी एशिया

- हान सबसे प्रमुख जातीय समूह है और प्रमुख भाषा है चीनी (पुतोंगहुआ) लेकिन कई और राष्ट्रीयताएँ हैं, जैसे कि उइघुर, हुई, मांचू और तिब्बती।
- कैटनीज़ कैटन (गुआंगज़ाओ) की बोली-उए और शंघाईनीज़ (शंघाई की बोली-वू) जैसी बोलियों के अलावा कई अल्पसंख्यक भाषाएँ भी बोली जाती हैं।
- चीनी खानों में क्षेत्रीय विविधता की झलक मिलती है और इसमें कम से कम चार प्रमुख तरह के खाने देखे जा सकते हैं।

- सबसे प्रसिद्ध पाकप्रणाली दक्षिणी या कैंटोनी है, जो कैंटन व उसके आंतरिक क्षेत्रों की है। इसकी प्रसिद्धि इस बात से है कि विदेशों में रहनेवाले ज्यादातर चीनी कैंटन प्रांत से आते हैं। जाना-माना डिम सम (शाब्दिक अर्थ दिल को छूना) यहीं का खाना है जो गुंथे हुए आटे को सब्जी आदि भरकर उबाल कर बनाए गए व्यंजन जैसा है।
- उत्तर में गेहूँ मुख्य आहार है, जबकि शेचुआँ (Szechuan) में प्राचीन काल में बौद्ध भिक्षुओं द्वारा लाए गए मसाले और रेशम मार्ग के ज़रिए पंद्रहवीं सदी में पुर्तगाली व्यापारियों द्वारा लाई गई मिर्च के चलते खासा झालदार एवं तीखा खाना मिलता है।
- पूर्वी चीन में चावल और गेहूँ, दोनों खाए जाते हैं।

जापान:

- इसके विपरीत, जापान एक द्वीप श्रृंखला है जिसमें चार सबसे बड़े द्वीप हैं होंशू (Honshu), क्यूशू (Kyushu), शिकोकू (Shikoku) और होकाइदो (Hokkaido)।
- ओकिनावा (Okinawan) द्वीपों की श्रृंखला सबसे दक्षिण में है, लगभग बहामास वाले ही अक्षांश पर। मुख्य द्वीपों की 50 प्रतिशत से अधिक ज़मीन पहाड़ी है।
- जापान बहुत ही सक्रिय भूकंप क्षेत्र में है। इन भौगोलिक परिस्थितियों ने वहाँ की वास्तुकला को प्रभावित किया है। अधिकतर जनसंख्या जापानी है लेकिन कुछ आयनू (Ainu) अल्पसंख्यक और कुछ कोरिया के लोग हैं जिन्हें श्रमिक मज़दूर के रूप में उस समय जापान लाया गया था जब कोरिया जापान का उपनिवेश था।
- जापान में पशुपालन की परंपरा नहीं है। चावल बुनियादी फसल है और मछली प्रोटीन का मुख्य स्रोत।
- कच्ची मछली साशिमि या सूशी अब दुनिया भर में बहुत लोकप्रिय हो गई है, क्योंकि इसे बहुत सेहतमंद माना जाता है।
- जापान में सामंती युग के दौरान एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ, जिसने भविष्य के विकास की नींव रखी। आइए इन कारकों को विस्तार से समझें।

राजनीतिक व्यवस्था

शोगुनपद नियम:

- बारहवीं शताब्दी तक, शाही दरबार ने शोगुन के हाथों सत्ता खो दी, जो सम्राट के नाम पर शासन करने वाले सैन्य नेता थे।
- वर्ष 1603 से 1867 तक तोकुगावा परिवार ने शोगुनपद संभाला।
- देश 250 से अधिक क्षेत्रों में विभाजित था, जिन्हें दैम्यो नामक लॉर्ड्स द्वारा नियंत्रित किया जाता था।
- शोगुन दैम्यो और प्रमुख शहरों पर अधिकार रखते थे, यह सुनिश्चित करते हुए कि वे राजधानी एदो (आधुनिक टोक्यो) में रहें, ताकि वे कोई खतरा पैदा न कर सकें।

सामुराई का उदय:

- योद्धा वर्ग, सामुराई, शासक अभिजात वर्ग बन गया और शोगुन एवं दैम्यो की सेवा करता था।
- किसानों को निरस्त्र कर दिया गया, केवल सामुराई को तलवार रखने की अनुमति दी गई, जिससे पिछली शताब्दी में लगातार युद्धों के बाद शांति और व्यवस्था की अवधि आई।

स्वायत्त क्षेत्र:

- दैम्यो को अपने क्षेत्र की राजधानियों में रहना अनिवार्य था, जिससे उन्हें एक हद तक स्वायत्तता प्राप्त हुई। भूमि सर्वेक्षणों ने स्थिर राजस्व आधार सुनिश्चित करने के लिए भूमि मालिकों, करदाताओं और भूमि उत्पादकता की पहचान करने में मदद की।

शहरीकरण और वाणिज्यिक अर्थव्यवस्था:

- जैसे-जैसे दैम्यो की राजधानियाँ विस्तारित होती गईं, जापान में एदो, ओसाका और क्योटो सहित घनी आबादी वाले शहर विकसित होते गए।
- इस शहरी विकास ने एक वाणिज्यिक अर्थव्यवस्था, वित्तीय प्रणालियों और ऋण नेटवर्क को जन्म दिया।
- सामाजिक स्थिति की तुलना में योग्यता अधिक महत्व रखने लगी।
- शहर संस्कृति के केंद्र बन गए, जहाँ व्यापारी वर्ग कलाओं का संरक्षण करने लगा।
- पढ़ने की लोकप्रियता बढ़ी और लेखक अब अपने काम के ज़रिए जीविकोपार्जन कर सकते थे।

क्या आप जानते हैं?

छपाई लकड़ी के ब्लॉक से की जाती थी। जापानियों को यूरोपीय छपाई की नियमितता पसंद नहीं थी।

व्यापार एवं रेशम उद्योग:

- जापान को चीन से रेशम और भारत से वस्त्र जैसे विलासिता के सामान के आयात के कारण समृद्ध माना जाता था।
- अर्थव्यवस्था को संतुलित करने के लिए कीमती धातुओं के निर्यात को प्रतिबंधित किया गया था।
- इसके अतिरिक्त, आयात को कम करने के लिए क्योटो के निशिजिन में रेशम उद्योग विकसित किया गया, जिससे अंततः विश्व प्रसिद्ध रेशम का उत्पादन हुआ।

अतिरिक्त जानकारी

निशिजिन क्योतो की एक बस्ती है। 16वीं शताब्दी में वहाँ 31 परिवारों का बुनकर संघ था। 17वीं शताब्दी के आखिर तक इस समुदाय में 70,000 लोग थे। रेशम उत्पादन फैला और वर्ष 1713 में केवल देशी धागा इस्तेमाल करने के आदेश जारी किए गए जिससे उसे और प्रोत्साहन मिला। निशिजिन में केवल विशिष्ट प्रकार के महँगे उत्पाद बनाए जाते थे। रेशम उत्पादन से ऐसे क्षेत्रीय उद्यमी वर्ग का विस्तार हुआ जिन्होंने आगे चलकर तोकुगावा व्यवस्था को चुनौती दी। जब वर्ष 1859 में विदेशी व्यापार की शुरुआत हुई, जापान से रेशम का निर्यात अर्थव्यवस्था के लिए मुनाफे का प्रमुख स्रोत बन गया, एक ऐसे समय में जबकि जापानी अर्थव्यवस्था पश्चिमी वस्तुओं से मुकाबला करने की कोशिश कर रही थी।

सांस्कृतिक पहचान:

- सामाजिक और बौद्धिक बदलावों मिसाल के लिए, प्राचीन जापानी साहित्य के अध्ययन ने लोगों को यह सवाल उठाने पर मजबूर किया कि जापान पर चीन का प्रभाव किस हद तक है और यह तर्क पेश किया गया कि जापानी होने का सार चीन के संपर्क में आने से बहुत पहले का है।

गेंजी की कथा:

मुरासाकी शिकिबु (Murasaki Shikibu) द्वारा लिखी गई हेआन (Heian) राजदरबार की यह काल्पनिक डायरी दि टेल ऑफ दि गेंजी जापानी साहित्य में प्रमुख कथाकृति बन गई। इस काल में मुरासाकी जैसी अनेक लेखिकाएँ उभरीं जिन्होंने जापानी लिपि का इस्तेमाल किया, जबकि पुरुषों ने चीनी लिपि का। चीनी लिपि का इस्तेमाल शिक्षा और सरकार में होता था। इस उपन्यास में कुमार गेंजी की रोमांचक ज़िंदगी दर्शायी गई और हेआन राजदरबार के अभिजात वातावरण की जीती जागती तस्वीर पेश की गई। इसमें यह भी दिखाया गया है कि औरतों को अपने पति चुनने और अपनी ज़िंदगी जीने की कितनी आजादी थी।

- यह सार की कहानी जैसे उच्च प्राचीन साहित्य में और जापान की उत्पत्ति की पौराणिक कथाओं में देखी जा सकती है, ये मिथकीय कहानियाँ बताती हैं कि इन द्वीपों को भगवान ने बनाया था एवं सम्राट सूर्य देवी के उत्तराधिकारी थे।

क्या आप जानते हैं?

जापानी लोग जिन्हें 'काले जहाज' कहते थे (लकड़ी के जोड़ों को सील करने के लिए टार का इस्तेमाल किया जाता था) उन्हें विदेशियों और उनकी आदतों को दिखाने वाले चित्रों और कार्टूनों में दर्शाया गया है। यह जापान के 'खुलेपन' का एक शक्तिशाली प्रतीक बन गया। (आज, विद्वान तर्क देंगे कि जापान 'बंद' नहीं था, पूर्वी एशियाई व्यापार में भाग लेता था और डच तथा चीनी दोनों के माध्यम से व्यापक दुनिया के ज्ञान तक पहुँच रखता था।)

मेजी (Meiji) पुनर्स्थापना:

- वर्ष 1853 में जापान में कमोडोर मैथ्यू पेरी का आगमन जापानी इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ। पेरी को अमेरिका ने यह माँग करने के लिए भेजा था कि जापान विदेशी व्यापार और कूटनीतिक संबंधों के लिए अपने दरवाजे खोले।
- इस घटना और व्यापक परिप्रेक्ष्य के जापान के लिए कई महत्वपूर्ण परिणाम हुए:
- **अलगाव का अंत:** जापान सदियों से बाहरी दुनिया से काफी हद तक अलग-थलग था। पेरी के आगमन के कारण 1854 में एक संधि पर हस्ताक्षर हुए, जिसने संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ व्यापार और राजनयिक संबंधों की अनुमति दी, जिससे जापान का अलगाव प्रभावी रूप से समाप्त हो गया।



चित्र 3.30: पेरी का जहाज: एक जापानी वुडब्लॉक प्रिंट।

अतिरिक्त जानकारी

जापानी भाषा एक साथ तीन लिपियों का प्रयोग करती है। इनमें से एक कांजी, जापानियों ने चोनियों से छठी शताब्दी में ली। चूँकि उनकी भाषा चीनी भाषा से बहुत अलग है, उन्होंने दो ध्वन्यात्मक वर्णमालाओं का विकास भी किया हीरागाना और कताकाना। हीरागाना नारी सुलभ समझी जाती है, क्योंकि हेआन काल में बहुत सी लेखिकाएँ इसका इस्तेमाल करती थीं- जैसे कि मुरासाकी। यह चीनी चित्रात्मक चिह्नों और ध्वन्यात्मक अक्षरों (हीरागाना अथवा कताकाना) को मिलाकर लिखी जाती है। शब्द का प्रमुख भाग कांजी के चिह्न से लिखा जाता है और बाकी का हीरागाना में।

ध्वन्यात्मक अक्षरमाला की मौजूदगी के चलते ज्ञान कुलीन वर्गों से व्यापक समाज में काफी तेजी से फैल सका। 1880 के दशक में यह सुझाव दिया गया कि जापानी या तो पूरी तरह से ध्वन्यात्मक लिपि का विकास करें या कोई यूरोपीय भाषा अपना लें। दोनों में से कुछ भी नहीं किया गया।

- ❑ **राजनीतिक बदलाव:** पेरी के आगमन से पहले, सम्राट के पास बहुत कम राजनीतिक शक्ति थी, व्यवहार में शोगुन शासन था। हालाँकि, वर्ष 1868 में, एक आंदोलन ने शोगुन को सत्ता से हटा दिया और सम्राट को एक महत्वपूर्ण राजनीतिक व्यक्ति के रूप में बहाल कर दिया। एदो का नाम बदलकर टोक्यो कर दिया गया, जिसका अर्थ है 'पूर्वी राजधानी', और यह नई राजधानी बन गई।
- ❑ **आधुनिकीकरण को अपनाना:** भारत जैसे उपनिवेशीकरण के डर से और यूरोपीय विकास से प्रभावित होकर, जापानी नेताओं ने "फुकोकू क्योहे" (समृद्ध देश, मजबूत सेना) का नारा अपनाया। उनका उद्देश्य अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण करना और एक मजबूत सेना का निर्माण करना था।
- ❑ **सम्राट प्रणाली:** सरकार ने "सम्राट व्यवस्था" के रूप में संदर्भित करने के लिए काम किया। सम्राट को पश्चिमीकरण के नेता के रूप में चित्रित किया गया था, और शिक्षा पर शाही आदेश (1890) ने, सीखने एवं सामान्य हितों को बढ़ावा देने पर जोर दिया।
- ❑ **शिक्षा सुधार:** 1870 के दशक से एक नई स्कूल प्रणाली की स्थापना की गई, जिसमें लड़के और लड़कियों दोनों के लिए अनिवार्य शिक्षा थी। पाठ्यक्रम, जो शुरू में पश्चिमी मॉडल पर आधारित था, जापानी इतिहास और नैतिक संस्कृति पर जोर देने के साथ आधुनिक विचारों को शामिल करने के लिए विकसित हुआ।
- ❑ **प्रशासनिक परिवर्तन:** सरकार ने प्रशासनिक इकाइयों का पुनर्गठन किया, गाँव और डोमेन सीमाओं को समायोजित किया, तथा एक आधुनिक सैन्य मसौदा लागू किया। यह एक केंद्रीकृत राज्य बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। सेना और नौकरशाही को सम्राट की सीधी कमान के तहत रखा गया था।
- ❑ **विदेश नीति और लोकतंत्र:** जापान के तेजी से आधुनिकीकरण ने लोकतांत्रिक आदर्शों और सेना की बढ़ती शक्ति के बीच तनाव पैदा किया। जापान ने चीन और रूस के साथ युद्ध किए, दोनों में विजयी हुआ।
 - सरकार की आक्रामक नीतियाँ अक्सर अधिक लोकतंत्र की लोकप्रिय माँगों के साथ टकराती थीं। जापान के आर्थिक विकास और औपनिवेशिक साम्राज्य के अधिग्रहण, जिसने लोकतंत्र को दबा दिया तथा इसे उपनिवेशित लोगों के साथ संघर्ष में डाल दिया, के दूरगामी परिणाम हुए।
- ❑ इस अवधि के दौरान जापान के परिवर्तन ने एशिया में एक प्रमुख औद्योगिक और औपनिवेशिक शक्ति के रूप में इसके उभरने की नींव रखी।
- ❑ जापान में मेजी युग ने महत्वपूर्ण आर्थिक सुधार और आधुनिकीकरण लाया। आइए इस परिवर्तन के कुछ प्रमुख पहलुओं को समझें।

विचारणीय बिंदु

आपको क्या लगता है कि मीजी बहाली ने जापान की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन कैसे लाए और इस युग के दौरान जापान के तेजी से औद्योगीकरण की प्रमुख चुनौतियाँ तथा परिणाम क्या थे? आपके अनुसार वे कौन से कारण थे, जिन्होंने जापान को औद्योगीकरण की ओर धकेला क्योंकि यह मुख्य रूप से एक पश्चिमी घटना थी?



अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण:

- ❑ **कृषि कर:** सरकार ने कृषि कर लगाकर धन जुटाया। इस कर ने विभिन्न आधुनिकीकरण परियोजनाओं को निधि देने के लिए राजस्व का स्रोत प्रदान किया।
- ❑ **बुनियादी ढाँचे का विकास:** जापान की पहली रेलवे लाइन 1870 से 1872 के बीच टोक्यो और योकोहामा बंदरगाह के बीच बनाई गई थी। रेलवे प्रणाली ने व्यापार और परिवहन को सुविधाजनक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- ❑ **औद्योगीकरण:** जापान ने यूरोप से कपड़ा मशीनरी आयात की और आधुनिक विनिर्माण विधियों में श्रमिकों को प्रशिक्षित करने के लिए विदेशी तकनीशियनों को नियुक्त किया। औद्योगिक और तकनीकी क्षेत्रों में शिक्षा प्रदान करने के लिए विश्वविद्यालय और स्कूल स्थापित किए गए।
- ❑ **बैंकिंग और वित्तीय संस्थान:** वर्ष 1872 में, आधुनिक बैंकिंग संस्थान स्थापित किए गए। इन वित्तीय संस्थानों ने विभिन्न उद्योगों और उपक्रमों में पूँजी निवेश को सुविधाजनक बनाने में मदद की।
- ❑ **जहाज निर्माण उद्योग:** मित्सुबिशी और सुमितोमो जैसी कंपनियों ने प्रमुख जहाज निर्माता बनने के लिए सब्सिडी एवं कर लाभ प्राप्त किए। इस समर्थन ने जापानी जहाजों में जापानी व्यापार करने की अनुमति दी, जिससे विदेशी जहाजों पर निर्भरता कम हो गई।
- ❑ **जायबात्सु:** इस अवधि के दौरान जायबात्सु के रूप में जाने जाने वाले बड़े व्यापारिक संगठन उभरे। इनका नियंत्रण व्यक्तिगत परिवारों के पास था और द्वितीय विश्व युद्ध के बाद तक जापानी अर्थव्यवस्था पर इनका प्रभुत्व था।
- ❑ **जनसंख्या वृद्धि और प्रवास:** जापान की जनसंख्या, जो वर्ष 1872 में 35 मिलियन थी, 1920 तक बढ़कर 55 मिलियन हो गई। जनसंख्या दबाव को कम करने के लिए, लोगों को होकाइदो के उत्तरी द्वीप जैसे क्षेत्रों के साथ-साथ हवाई और ब्राजील जैसे विदेशी गंतव्यों में जाने के लिए प्रोत्साहित किया गया।
- ❑ **शहरीकरण:** जैसे-जैसे औद्योगीकरण आगे बढ़ा, ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी केंद्रों की ओर जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण बदलाव हुआ। वर्ष 1925 तक, 21 प्रतिशत आबादी शहरों में रहती थी, और यह आँकड़ा 1935 तक बढ़कर 32 प्रतिशत (22.5 मिलियन) हो गया।
- ❑ हालाँकि, मेजी युग के दौरान जापान के औद्योगीकरण ने श्रम शक्ति और औद्योगिक परिदृश्य में महत्वपूर्ण बदलाव लाए। यहाँ कुछ मुख्य बिंदु दिए गए हैं:

औद्योगिक मजदूर:

- ❑ इस अवधि के दौरान विनिर्माण में कार्यरत लोगों की संख्या में काफी वृद्धि हुई, जो वर्ष 1870 में 700,000 से बढ़कर वर्ष 1913 में 4 मिलियन हो गई।
- ❑ अधिकांश औद्योगिक कर्मचारी पाँच से कम कर्मचारियों वाली छोटी-छोटी इकाइयों में कार्यरत थे, और इनमें से कई इकाइयाँ मशीनरी या बिजली का उपयोग नहीं करती थीं।

क्या आप जानते हैं?

एक किसान के बेटे तनाका शोजो (1841-1913) ने अपनी पढ़ाई खुद की और एक मुख्य राजनैतिक हस्ती के रूप में उभरे। 1880 के दशक में उन्होंने जनवादी हकों के आंदोलन में हिस्सा लिया। इस आंदोलन ने संवैधानिक सरकार की माँग की। वह पहली संसद-डायट में सदस्य चुने गए। उनका मानना था कि औद्योगिक प्रगति के लिए आम लोगों की बलि नहीं दी जानी चाहिए। आशियो (Ashio) खान से वातारासे (Watarase) नदी में प्रदूषण फैल रहा था जिसके कारण 100 वर्ग मील की कृषिभूमि बर्बाद हो रही थी और 1000 परिवार प्रभावित हो रहे थे। आंदोलन के चलते कंपनी को प्रदूषण-नियंत्रण के तरीके अपनाने पड़े जिससे 1904 तक फसल सामान्य हो गई।

- ❑ आधुनिक कारखानों में कार्यरत लोगों में से आधे से अधिक महिलाएँ थीं। वास्तव में, यह महिलाएँ ही थीं जिन्होंने वर्ष 1886 में जापान में पहली आधुनिक हड़ताल का आयोजन किया था।
- ❑ वर्ष 1900 के बाद, पुरुष श्रमिकों की संख्या में वृद्धि होने लगी, लेकिन 1930 के दशक तक ऐसा नहीं हुआ कि कार्यबल में पुरुष श्रमिकों की संख्या महिलाओं से अधिक हो गई।
- ❑ यहाँ तक कि वर्ष 1940 में, 550,000 से अधिक कार्यशालाएँ थीं, जिनमें पाँच से कम कर्मचारी कार्यरत थे। यह लघु-स्तरीय और परिवार-केंद्रित औद्योगिक उत्पादन जापानी औद्योगिक विकास की एक उल्लेखनीय विशेषता थी।
- ❑ जापान में राष्ट्रवाद को एक मजबूत पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा मजबूत किया गया था, जिसमें सम्राट एक परिवार के मुखिया की भूमिका का प्रतीक था।
- ❑ उद्योगों के तेज़ और अनियंत्रित विकास के साथ-साथ लकड़ी जैसे प्राकृतिक संसाधनों की माँग के कारण पर्यावरण का क्षरण हुआ।
- ❑ 19वीं सदी के अंत में औद्योगिक प्रदूषण के खिलाफ पर्यावरण संबंधी चिंताएँ और विरोध प्रदर्शन उभरे, जिसमें तनाका शोजो जैसे व्यक्तियों ने इन मुद्दों को संबोधित करने के लिए शुरुआती प्रयासों का नेतृत्व किया।
- ❑ मेजी युग के दौरान जापान के मुख्यतः कृषि प्रधान समाज से औद्योगिक राष्ट्र में परिवर्तन का श्रम शक्ति की संरचना, लिंग भूमिकाओं और औद्योगिक परिदृश्य पर गहरा प्रभाव पड़ा।



चित्र 3.31: एक कपड़ा कारखाने में श्रमिका

आकामक राष्ट्रवाद:

- ❑ मेजी संविधान ने सीमित मताधिकार और सीमित शक्तियों के साथ एक डाइट (जापानी लोग जर्मन कानूनी विचारों के प्रभाव के कारण संसद के लिए जर्मन शब्द का इस्तेमाल करते थे) की स्थापना की।
- ❑ शाही पुनःस्थापना के नेताओं ने नियंत्रण बनाए रखा, और राजनीतिक दलों का गठन किया गया।
- ❑ लोकप्रिय रूप से चुने गए प्रधानमंत्रियों ने वर्ष 1918 और 1931 के बीच सेवा की, लेकिन उसके बाद, सत्ता राष्ट्रीय एकता मंत्रिमंडलों में स्थानांतरित हो गई।
- ❑ सम्राट सेनाओं का कमांडर बन गया, सेना और नौसेना ने सन् 1890 तक स्वतंत्र नियंत्रण हासिल कर लिया।
- ❑ सन् 1899 में, केवल सेवारत जनरल और एडमिरल ही मंत्री बन सकते थे, जिससे सेना मजबूत हुई।
- ❑ जापान के औपनिवेशिक विस्तार और पश्चिमी शक्तियों के बारे में चिंताओं ने सैन्य विकास के विरोध को शांत कर दिया एवं रक्षा के लिए करों में वृद्धि की।



चित्र 3.32: युवाओं को राष्ट्र के लिए लड़ने के लिए प्रेरित किया जा रहा है: एक पत्रिका का आवरण। छात्र-सैनिक: तस्वीरें।

‘पश्चिमीकरण’ और ‘परंपरा’:

- ❑ जापानी बुद्धिजीवियों ने जापान के अन्य देशों के साथ संबंधों पर पीढ़ी दर पीढ़ी बदलते विचार रखे।
- ❑ कुछ लोग पश्चिमी सभ्यता की आकांक्षा रखते थे, अमेरिका और यूरोपीय देशों को शिखर मानते थे।
- ❑ फुकुजावा युकिची का मानना था कि जापान को “एशिया को बाहर निकाल देना चाहिए” और अपनी एशियाई विशेषताओं को त्यागकर पश्चिमी बन जाना चाहिए।

फुकुजावा यूकिवी (1835-1901):

- ❑ इनका जन्म एक गरीब सामुराई परिवार में हुआ। इनकी शिक्षा नागासाकी और ओसाका में हुई। इन्होंने डच और पश्चिमी विज्ञान पढ़ा तथा बाद में अंग्रेजी भी। वर्ष 1860 में वे अमेरिका में पहले जपानी दूतावास में अनुवादक के रूप में गए। इससे इन्हें पश्चिम पर किताब लिखने के लिए बहुत कुछ मिला। उन्होंने अपने विचार क्लासिकी नहीं बल्कि बोलने चालने के अंदाज़ में लिखे। यह किताब बहुत ही लोकप्रिय हुई। इन्होंने एक शिक्षा संस्थान स्थापित किया जो आज के ओ विश्वविद्यालय के नाम से जाना जाता है। वे मेरोकुशा (Meiokusha) संस्था के मुख्य सदस्यों में से थे। ये संस्था पश्चिमी शिक्षा का प्रचार करती थी।
- ❑ अपनी एक किताब, ज्ञान के लिए प्रोत्साहन (गाकुनो नो सुसुमे, 1872-76) में उन्होंने जापानी ज्ञान की कड़ी आलोचना की: “जापान के पास प्राकृतिक दृश्यों के अलावा गर्व करने के लिए कुछ भी नहीं है”, उन्होंने आधुनिक कारखानों व संस्थाओं के अलावा पश्चिम के सांस्कृतिक सारतत्त्व को भी बढ़ावा दिया जो कि उनके मुताबिक सभ्यता की आत्मा है। उसके ज़रिये एक नया नागरिक बनाया जा सकेगा। इनका सिद्धांत था, “स्वर्ग ने इंसान को इंसान के ऊपर नहीं बनाया, न ही इंसान को इंसान के नीचे”।

- ❑ अगली पीढ़ी ने इस दृष्टिकोण को चुनौती दी, स्वदेशी मूल्यों और राष्ट्रीय गौरव पर जोर दिया। मियाके सेत्सुरी ने तर्क दिया कि राष्ट्रों को विश्व सभ्यता के हित में अद्वितीय प्रतिभाओं का विकास करना चाहिए।
- ❑ कई बुद्धिजीवियों ने सैन्य प्रभुत्व की तुलना में पश्चिमी उदारवाद और लोकतंत्र का समर्थन किया, संवैधानिक सरकार एवं उदार शिक्षा की वकालत की।
- ❑ कुछ लोगों ने महिलाओं के मतदान के अधिकार की भी माँग की, जिससे सरकार को संविधान की घोषणा करनी पड़ी।

रोज़मर्रा की जिंदगी:

- ❑ जापान में आधुनिकता की ओर संक्रमण रोज़मर्रा की जिंदगी में आए बदलावों से स्पष्ट है।
- ❑ पारंपरिक पितृसत्तात्मक घरेलू व्यवस्था, जहाँ परिवार के मुखिया के अधीन कई पीढ़ियाँ रहती थीं, ने एकल परिवार के नए विचारों को जन्म दिया।
- ❑ एकल परिवार में पति कमाने वाला और पत्नी गृहिणी होती थी।
- ❑ घरेलूपन में इस बदलाव के कारण नए घरेलू सामान, पारिवारिक मनोरंजन के विकल्प और आवास की माँग में वृद्धि हुई।
- ❑ 1920 के दशक में, निर्माण कंपनियों ने किफायती आवास विकल्प पेश किए, जिसके लिए 200 येन का डाउन पेमेंट और दस साल के लिए 12 येन की मासिक किस्त की आवश्यकता थी, जबकि एक बैंक कर्मचारी का मासिक वेतन 40 येन था।



चित्र 3.33: इलेक्ट्रिक सामान की नवीनता: एक चावल-कुकर, एक अमेरिकी ग़्रिल, एक टोस्टर।

कार कलब:

मोगा: ‘आधुनिक लड़की’ के लिए संक्षिप्त शब्द।

- ❑ यह 20वीं शताब्दी में लिंग बराबरी, विश्वजनीन (कॉस्मोपॉलिटन) संस्कृति और विकसित अर्थव्यवस्था के विचारों के एक साथ आने का सूचक है। नए मध्यम वर्ग परिवारों ने आवागमन और मनोरंजन के नए तरीकों का लुत्फ उठाया। शहरों में बिजली की ट्रामों के साथ परिवहन बेहतर हुआ। सन् 1878 से जनता के लिए बाग बनाए गए और बड़ी दुकानें डिपार्टमेंट स्टोर बनने लगीं। टोक्यो में गिन्ज़ा गिनबुरा के लिए एक फ़ैशनबुल इलाका बन गया। गिनबुरा शब्द गिन्ज़ा और बुरबुरा मिला कर बनाया गया है। बुरबुरा का अर्थ है ‘बिना किसी लक्ष्य के घूमना’। सन् 1925 में पहला रेडियो-स्टेशन खुला। अभिनेत्री मात्सुई, सुमाको, इब्सन के नाटक एक गुड़िया का घर (A Doll’s House) में नोरा का बेहतरीन किरदार निभा कर राष्ट्रीय स्तर की तारिका बन गईं। सन् 1899 में फ़िल्में बनने लगीं और जल्द ही दर्जन भर कंपनियों सैकड़ों की तादाद में फ़िल्में बनाने लगीं। यह दौर ओज से भरा हुआ था और इस दौरान सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवहार के पारंपरिक मानकों पर सवाल उठाए गए।

‘आधुनिकता पर विचार’:

- ❑ 1930 और 1940 के दशक में, जापान का राज्य-केंद्रित राष्ट्रवाद अपने चरम पर पहुँच गया, क्योंकि देश ने चीन और एशिया के अन्य हिस्सों में अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिए युद्ध शुरू किए, जिसके परिणामस्वरूप पर्ल हार्बर पर हमले के बाद द्वितीय विश्व युद्ध में इसकी भागीदारी हुई।
- ❑ इस अवधि के दौरान, सामाजिक नियंत्रण में वृद्धि हुई, असहमति जताने वालों का दमन और कारावास हुआ, तथा युद्ध के प्रयासों का समर्थन करने के लिए महिला संगठनों सहित देशभक्त समाजों का गठन हुआ।

- वर्ष 1943 में 'आधुनिकता पर काबू पाना' शीर्षक से एक महत्वपूर्ण संगोष्ठी में आधुनिकता को अपनाते हुए पश्चिम का मुकाबला करने की जापान की दुविधा पर बहस हुई।
- संगीतकार मोरोई सबुरो और दार्शनिक निशितानी कीजी जैसी हस्तियों ने जापानी परंपराओं को पश्चिमी प्रभावों के साथ समेटने और दुनिया में जापान की भूमिका के लिए एक नए दृष्टिकोण में विज्ञान एवं धर्म को एकीकृत करने के नए तरीके खोजने के बारे में सवाल उठाए।

पराजय के बाद: वैश्विक आर्थिक शक्ति के रूप में वापसी

- जापान का औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित करने का प्रयास मित्र देशों की सेनाओं द्वारा पराजय के साथ समाप्त हुआ।
- द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, जापान को विसैन्यीकृत कर दिया गया, और एक नया संविधान पेश किया गया, जिसमें अनुच्छेद-9 (युद्ध का कोई कारण नहीं) शामिल था, जिसने युद्ध को राज्य की नीति के रूप में त्याग दिया।



चित्र 3.34: द्वितीय विश्व युद्ध से पहले और बाद में टोक्यो

- कृषि सुधार, ट्रेड यूनियन की पुनर्स्थापना, और बड़े एकाधिकार घरानों (जायबात्सु) को खत्म करने के प्रयास किए गए।
- राजनीतिक दलों को पुनर्जीवित किया गया, और वर्ष 1946 में युद्ध के बाद के पहले चुनाव हुए, जिसमें महिलाओं को पहली बार मतदान करने की अनुमति दी गई।
- जापान में युद्ध के बाद की तीव्र आर्थिक सुधार, जिसे अक्सर "चमत्कार" कहा जाता है, लोकप्रिय संघर्षों और राजनीतिक जुड़ाव की अपनी ऐतिहासिक परंपरा में निहित थी।
- देश की सामाजिक एकजुटता और सरकार, नौकरशाही तथा उद्योग के बीच घनिष्ठ सहयोग इसकी सफलता के लिए महत्वपूर्ण थे।
- 1964 के टोक्यो ओलंपिक और हाई-स्पीड शिंकांसेन (बुलेट ट्रेन) के विकास ने बेहतर और अधिक कुशल उत्पादन के लिए उन्नत तकनीकों का उपयोग करने की जापान की क्षमता का प्रतीक बनाया।
- 1960 के दशक में नागरिक समाज आंदोलनों का उदय हुआ, क्योंकि औद्योगीकरण के कारण स्वास्थ्य और पर्यावरण संबंधी चिंताएँ पैदा हुईं, जिनमें कैडमियम तथा पारा विषाक्तता एवं वायु प्रदूषण शामिल थे।
- जमीनी स्तर पर दबाव समूहों ने पीड़ितों के लिए मान्यता और मुआवजा दिए जाने पर जोर दिया, जिसके कारण सरकार ने इन मुद्दों को संबोधित करने के लिए कार्रवाई की और नए नियम बनाए।
- हाल के वर्षों में, जापान ने सख्त पर्यावरणीय नियंत्रण बनाए रखा है, लेकिन वैश्विक शक्ति के रूप में अपनी स्थिति को बनाए रखने के लिए अपनी राजनीतिक और तकनीकी क्षमताओं का उपयोग करने की चुनौती का सामना कर रहा है।

समय रेखा			
जापान		चीन	
1603	तोकुगावा इयासु ने एडो शोगुनेट	1644-1911	छींग राजवंश
1630	जापान ने डचों के साथ प्रतिबंधित व्यापार को छोड़कर देश को पश्चिमी शक्तियों के लिए बंद कर दिया	1839-60	दो अफ्रीम युद्ध
1854	जापान और अमेरिका जापान के एकांतवास को समाप्त करते हुए शांति संधि		
1868	मेइजी की बहाली		

1872	अनिवार्य शिक्षा प्रणाली टोक्यो और योकोहामा के बीच पहली रेलवे लाइन		
1889	मेइजी संविधान अधिनियमित हुआ		
1894-95	जापान और चीन के बीच युद्ध		
1904-05	जापान और रूस के बीच युद्ध		
1910	कोरिया पर कब्जा, 1945 तक उपनिवेश	1912	सन यात-सेन ने गुओमिंगडांग की स्थापना की
1914-18	प्रथम विश्व युद्ध	1919	चौथा मई आंदोलन
1925	सार्वभौमिक पुरुष मताधिकार	1921	सीसीपी की स्थापना
1931	जापान का चीन पर आक्रमण	1926-49	चीन में गृह युद्ध
1941-45	प्रशांत युद्ध	1934	लॉन्ग मार्च
1945	हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम गिराए गए		
1946-52	अमेरिका के नेतृत्व में जापान पर कब्जा, जापान का लोकतंत्रीकरण और विसैन्यीकरण करने के लिए सुधार	1949	पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना चियांग काई-शेक ने ताइवान में चीन गणराज्य की स्थापना की
1956	जापान संयुक्त राष्ट्र का सदस्य बन गया	1962	China attacks India over border dispute
1964	एशिया में पहली बार टोक्यो में ओलंपिक खेल	1966	सीमा विवाद को लेकर चीन ने भारत पर हमला बोलासांस्कृतिक क्रांति
		1976	माओत्से तुंग और झोउ एनलाई की मृत्यु
		1997	ब्रिटेन द्वारा हांगकांग चीन को लौटा दिया गया

चीन

चीन का आधुनिक इतिहास:

- चीन के आधुनिक इतिहास में संप्रभुता हासिल करने, विदेशी कब्जे को खत्म करने और समानता एवं विकास हासिल करने के प्रयासों की विशेषता रही है।
- चीनी विवाद में तीन मुख्य समूह शामिल थे:
 - प्रारंभिक सुधारक जिन्होंने पश्चिमी चुनौतियों का सामना करने के लिए पारंपरिक विचारों को अपनाने की कोशिश की,
 - जापानी और पश्चिमी विचारों से प्रभावित रिपब्लिकन क्रांतिकारी,
 - और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी (सीसीपी) का लक्ष्य सदियों पुरानी असमानताओं और विदेशी प्रभाव को समाप्त करना था।
- चीन का आधुनिकीकरण 16वीं और 17वीं शताब्दी में पश्चिमी विज्ञानों को पेश करने वाले जेसुइट मिशनरियों के माध्यम से पश्चिम के साथ अपने शुरुआती मुठभेड़ों के साथ शुरू हुआ।
- 19वीं शताब्दी में प्रथम अफीम युद्ध (1839-42) के साथ गति बढ़ गई, जो ब्रिटेन द्वारा अफीम व्यापार के विस्तार से प्रेरित था।
- इस संघर्ष ने किंग राजवंश को कमजोर कर दिया और सुधार के लिए आह्वान को बढ़ावा दिया।
- कांग यूवेई और लियांग किचाऊ जैसे सुधारकों ने चीन को उपनिवेशवाद से बचाने के लिए एक आधुनिक प्रशासनिक प्रणाली, एक नई सेना तथा शैक्षिक सुधारों की आवश्यकता को पहचाना।
- चीनी विचारक उपनिवेशित देशों के नकारात्मक उदाहरणों से प्रभावित थे, जैसे पोलैंड का विभाजन और भारत में अंग्रेजों की अधीनता।
- उनका मानना था कि पश्चिम का विरोध करने के लिए, चीन को एक राष्ट्र के रूप में खुद को स्थापित करना होगा।
- कई लोगों का मानना था कि पारंपरिक कन्फ्यूशीवाद नए विचारों और संस्थानों को अपनाने में बाधा था।
- चीनी परीक्षा प्रणाली, जिसने ऐतिहासिक रूप से शासक वर्ग को प्रवेश प्रदान किया था, को सन् 1905 में समाप्त कर दिया गया, जो पारंपरिक शासन से दूर जाने का संकेत था।

विचारणीय बिंदु

माओ के नेतृत्व में चीन में महान सांस्कृतिक क्रांति ने महान राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन किए। यह एक बहुत ही अतार्किक और इच्छाधारी सोच के कारण लिया गया निर्णय था। जिसके परिणाम लोगों को भुगतने पड़े। क्या आप हाल के समय में दुनिया के कई देशों में लिए गए ऐसे ही निर्णयों के बारे में सोच सकते हैं, जिनके कारण गंभीर आर्थिक दमन हुआ है?



अफ्रीम का व्यापार:

चीनी उत्पादों जैसे चाय, रेशम और चीनी मिट्टी के बर्तनों की माँग ने व्यापार में असंतुलन की भारी समस्या खड़ी कर दी। पश्चिमी उत्पादों को चीन में बाज़ार नहीं मिला जिसकी वजह से भुगतान चाँदी में करना पड़ता था। ईस्ट इंडिया कंपनी ने एक विकल्प ढूँढ़ा अफ्रीम। यह हिंदुस्तान के कई हिस्सों में बहुत आराम से उगती थी। चीन में अफ्रीम बेचने के ज़रिये वे चाँदी कमाकर केंटन में उधार पत्रों के बदले कंपनी के प्रतिनिधियों को देने लगे। इस तरह कंपनी उस चाँदी का इस्तेमाल ब्रिटेन के लिए चाय, रेशम और चीनी मिट्टी के बर्तन खरीदने के लिए करती थी। ब्रिटेन, भारत और चीन के बीच यह उत्पादों का 'त्रिकोणीय व्यापार' था।



चित्र 3.35: अफ्रीम युद्ध: एक यूरोपीय पेंटिंग।

परीक्षा प्रणाली:

अभिजात सत्ताधारी वर्ग में प्रवेश (1850 तक लगभग) लाख ज़्यादातर इम्तिहान के ज़रिये ही होता था। इसमें 8 भाग वाला निबंध निर्धारित प्रपत्र में (पा-कू वेन) शास्त्रीय चीनी में लिखना होता था। यह परीक्षा विभिन्न स्तरों पर हर 3 साल में 2 बार आयोजित की जाती थी। पहले स्तर की परीक्षा में केवल 1-2 प्रतिशत लोग 24 साल की उम्र तक पास हो पाते थे और वे (सुंदर प्रतिभा) बन जाते थे। इस डिग्री से उन्हें निचले कुलीन वर्ग में प्रवेश मिल जाता था। वर्ष 1850 से पहले किसी भी समय 526,869 सिविल और 212,330 सैन्य प्रांतीय (शेंग हुआन) डिग्री वाले लोग पूरे देश में मौजूद थे। देश में केवल 27,000 राजकीय पद थे, इसलिए कई निचले दर्जे के डिग्रीधारकों के पास नौकरी नहीं होती थी। यह इम्तिहान विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास में बाधक का काम करता था, क्योंकि इसमें सिर्फ साहित्यिक कौशल की माँग होती थी। चूँकि यह क्लासिक चीनी सीखने के हुनर पर ही आधारित था, जिसकी आधुनिक विश्व में कोई प्रासंगिकता नज़र नहीं आती थी, इसलिए सन् 1905 में इस प्रणाली को खत्म कर दिया गया।

गणतंत्र की स्थापना:

- ❑ वर्ष 1911 में, चीन में मांचू साम्राज्य को उखाड़ फेंका गया और सन यात-सेन के नेतृत्व में एक गणतंत्र की स्थापना की गई, जिन्हें अक्सर आधुनिक चीन का संस्थापक माना जाता है।
- ❑ सन यात-सेन एक साधारण पृष्ठभूमि से आए थे और उनकी शिक्षा मिशनरी स्कूलों में हुई थी, जहाँ उन्हें लोकतांत्रिक आदर्शों तथा ईसाई धर्म से परिचित कराया गया था।
- ❑ उनके राजनीतिक कार्यक्रम को तीन सिद्धांतों के रूप में जाना जाता था, जिसमें राष्ट्रवाद (विदेशी मांचू राजवंश और अन्य साम्राज्यवादी शक्तियों को उखाड़ फेंकना), लोकतंत्र (लोकतांत्रिक शासन की स्थापना), और समाजवाद (पूँजी को विनियमित करना और भूमि जोतों का पुनर्वितरण करना) शामिल थे।
- ❑ 4 मई 1919 का आंदोलन एक व्यापक आंदोलन के रूप में विकसित हुआ जिसका उद्देश्य परंपरा को चुनौती देना और आधुनिक विज्ञान, लोकतंत्र तथा राष्ट्रवाद की वकालत करना था।
- ❑ क्रांतिकारियों की नई पीढ़ी ने विदेशी शक्तियों को बाहर निकालने, असमानता और गरीबी को दूर करने तथा लिखित रूप में सरल भाषा का उपयोग करने, पैर बाँधने की प्रथा को समाप्त करने, लैंगिक समानता को बढ़ावा देने एवं आर्थिक विकास को आगे बढ़ाने जैसे सुधारों को लागू करने का आह्वान किया।
- ❑ गणतंत्रीय क्रांति के बाद, चीन उथल-पुथल के दौर में प्रवेश कर गया, जिसमें दो प्रमुख ताकतें, कुओमिनतांग (नेशनल पीपुल्स पार्टी) और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी (सीसीपी) देश को एकजुट करने तथा स्थिरता स्थापित करने के लिए काम कर रही थीं।
- ❑ सन यात-सेन के उत्तराधिकारी चियांग काई-शेक ने कुओमिनतांग का नेतृत्व किया और कम्युनिस्टों को खत्म करके सत्ता को केंद्रीकृत करने का लक्ष्य रखा।

- उनके दृष्टिकोण में एक धर्मनिरपेक्ष कन्फ्यूशियसवाद को बढ़ावा देना, सैन्यीकरण और विशेष रूप से महिलाओं के लिए सख्त व्यवहार मानदंडों को लागू करना शामिल था।
- जैसे-जैसे व्यक्तिवाद बढ़ता गया, महिलाओं के अधिकारों, पारिवारिक गतिशीलता और प्रेम एवं रोमांस के बारे में चर्चाओं के बारे में चिंता बढ़ती गई।
- स्कूलों और विश्वविद्यालयों के प्रसार के साथ-साथ पत्रकारिता तथा शाओ ताओफेन (1895-1944) द्वारा संपादित लाइफ वीकली जैसे प्रकाशनों ने सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन को सुगम बनाया, जो नए व प्रगतिशील विचारों के प्रति बढ़ते आकर्षण को दर्शाता है।

1935 का शंघाई:

शंघाई में एक काला अमरीकन तुरेहीवादक, बक क्लेटन (Buck Clayton), अपने जैज और कैस्ट्रा के साथ विशेषाधिकारप्राप्त प्रवासी की जिंदगी जी रहे थे। लेकिन वह काला था और एक बार कुछ गोरे अमरीकियों ने उसे तथा उसके वाद्यमंडली के सदस्यों के साथ मारपीट करके उन्हें उनके गायन-वादन वाले होटल से बाहर निकाल दिया। सो, अमरीकी होने के बावजूद खुद नस्ली भेदभाव का शिकार होने के कारण चीनियों के दुख-दर्द के साथ उनकी बहुत सहानुभूति थी। गोरे अमरीकियों के साथ हुई अपनी लड़ाई, जिसमें वे जीत गए, के बारे में वह लिखते हैं, “चीनी तमाशबीनों ने हमारे साथ ऐसा बरताव किया जैसे हमने उनका अभीष्ट काम संपन्न किया हो और घर पहुँचने तक रास्ते भर वे किसी विजेता फुटबॉल टीम की तरह हमारा अभिनंदन करते रहे।” चीनियों की गरीबी और कठोर जीवनचर्या के बारे में वह लिखते हैं, “मैं कभी-कभी देखता कि बीस या तीस कुली मिल कर किसी बड़े भारी टेले को खींच रहे हैं, जो कि अमेरीका में किसी ट्रक द्वारा या घोड़ों द्वारा खींचा जाता। ये लोग इनसानी घोड़ों से अलग कुछ नहीं लगते थे और पूरा काम करने के बाद उन्हें इतना ही मिलता था कि किसी तरह पेट भर चावल तथा सोने की एक जगह हासिल कर लें। मेरी समझ में नहीं आता, वे कैसे अपना काम चलाते थे।”

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का उदय:

- वर्ष 1937 में जब जापान ने चीन पर आक्रमण किया, तो कुओमिनतांग (नेशनल पीपुल्स पार्टी) पीछे हट गई, जिसके कारण एक लंबा और थकाऊ युद्ध चला, जिसने चीन को काफी कमजोर कर दिया।
- इस दौरान, चीनी अर्थव्यवस्था को अत्यधिक मुद्रास्फीति का सामना करना पड़ा, जिससे आम लोगों को गंभीर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।



चित्र 3.36: बढ़ती हुई कीमतों की कहानी

- ग्रामीण चीन दो बड़े संकटों से जूझ रहा था:
 - बंजर जमीन, वनों की कटाई और बाढ़ जैसे पारिस्थितिक मुद्दे, तथा
 - शोषणकारी भूमि-पट्टे प्रणालियों, ऋणग्रस्तता, आदिम कृषि तकनीक और सीमित संचार नेटवर्क से उत्पन्न सामाजिक-आर्थिक समस्याएँ।

अतिरिक्त जानकारी

वर्ष 1930 में जुनवू (Xunwu) में किए गए एक सर्वेक्षण में माओ त्सेतुंग ने नमक और सोयाबीन जैसी रोजमर्रा की वस्तुओं, स्थानीय संगठनों की तुलनात्मक मजबूतियों, छोटे व्यापारियों तथा दस्तकारों, लोहारों एवं वेश्याओं, धार्मिक संगठनों की मजबूतियों, इन सबका परीक्षण किया ताकि शोषण के अलग-अलग स्तरों को समझा जा सके। उन्होंने ऐसे आँकड़े इकट्ठे किए कि कितने किसानों ने अपने बच्चों को बेचा है और इसके लिए उन्हें कितने पैसे मिले। लड़के 100-200 यूआन पर बिकते थे लेकिन लड़कियों की बिक्री के कोई उदाहरण नहीं मिले क्योंकि जरूरत मजदूरों की थी लैंगिक शोषण की नहीं। इस अध्ययन के आधार पर उन्होंने सामाजिक समस्याओं को सुलझाने के तरीके पेश किए।

- रूसी क्रांति की सफलता का वैश्विक स्तर पर गहरा प्रभाव पड़ा और 1918 में स्थापित कैमिन्टर्न (या तीसरा अंतरराष्ट्रीय) का उद्देश्य शोषण को समाप्त करने वाली वैश्विक सरकार की खोज में दुनिया भर में कम्युनिस्ट आंदोलनों का समर्थन करना था।
- हालाँकि कैमिन्टर्न और सोवियत संघ ने शुरू में राष्ट्रीय सीमाओं के बाहर साम्यवादी पार्टी का समर्थन किया, लेकिन अंततः वे सोवियत हितों को आगे बढ़ाने के लिए उपकरण बन गए और 1943 में भंग हो गए।

- सीसीपी के एक प्रमुख नेता माओ त्सेतुंग ने किसानों को प्रेरक शक्ति के रूप में ध्यान में रखते हुए क्रांति के लिए एक अनूठा दृष्टिकोण अपनाया।
- ग्रामीण क्रांति पर उनके जोर ने सीसीपी को एक शक्तिशाली राजनीतिक इकाई बना दिया जो अंततः कुओमिनतांग के विरुद्ध विजयी हुई।
- जियांग्सी में, 1928 से 1934 तक, सीसीपी ने किसानों के बीच भूमि का पुनर्वितरण करके एक मजबूत किसान परिषद (सोवियत) की स्थापना की।
- माओ त्सेतुंग के दृष्टिकोण ने एक स्वतंत्र सरकार और सेना की आवश्यकता पर जोर दिया।
- उन्होंने महिलाओं के मुद्दों को भी पहचाना और ग्रामीण महिला संघों के गठन का समर्थन किया, एक नया विवाह कानून पेश किया जिसने व्यवस्थित विवाहों को प्रतिबंधित किया, विवाह अनुबंधों की बिक्री को समाप्त कर दिया और तलाक को सरल बना दिया।
- कुओमिनतांग द्वारा सीसीपी के सोवियत की नाकाबंदी ने कम्युनिस्टों को लॉन्ग मार्च (1934-35) शुरू करने के लिए प्रेरित किया, जो शांक्सी तक लगभग 6,000 मील की दूरी तय करता था, जहाँ उन्होंने येनान में एक नया आधार स्थापित किया।
- यहाँ, उन्होंने अपने क्रांतिकारी कार्यक्रम को और विकसित किया, जिसका उद्देश्य सामंतवाद को समाप्त करना, भूमि सुधारों को लागू करना और विदेशी साम्राज्यवाद का विरोध करना था, जिसने उनके सामाजिक आधार को मजबूत किया।
- हालाँकि सीसीपी और कुओमिनतांग ने युद्ध के चुनौतीपूर्ण वर्षों के दौरान सहयोग किया, लेकिन संघर्ष के समापन के बाद कम्युनिस्टों ने सत्ता पर कब्जा कर लिया, जिससे कुओमिनतांग की हार हुई।



चित्र 3.37: लॉन्ग मार्च

नये जनवाद की स्थापना: 1949-65

- पौपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना की सरकार वर्ष 1949 में कायम हुई। यह 'नए लोकतंत्र' के सिद्धांतों पर आधारित थी। 'सर्वहारा की तानाशाही', जिसे कायम करने का दावा सोवियत संघ का था, से भिन्न नया लोकतंत्र सभी सामाजिक वर्गों का गठबंधन था।
- अर्थव्यवस्था के मुख्य क्षेत्र सरकार के नियंत्रण में रखे गए और निजी कारखानों तथा भूस्वामित्व को धीरे-धीरे खत्म किया गया।
- यह कार्यक्रम सन् 1953 तक चला जब सरकार ने समाजवादी बदलाव का कार्यक्रम शुरू करने की घोषणा की।
- सन् 1958 में लंबी छलाँगवाले आंदोलन की नीति के ज़रिये देश का तेज़ी से औद्योगीकरण करने की कोशिश की गई। लोगों को अपने घर के पिछवाड़े में इस्पात की भट्टियाँ लगाने के लिए प्रोत्साहित किया गया।
- ग्रामीण इलाकों में पीपुल्स कम्यून्स- जहाँ लोग इकट्ठे ज़मीन के मालिक थे और मिलजुलकर फसल उगाते थे - शुरू किए गए।
- सन् 1958 तक 26,000 ऐसे समुदाय थे जो कि कृषक आबादी का 98 प्रतिशत था।
- माओ पार्टी द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को पाने के लिए जनसमुदाय को प्रेरित करने में सफल रहे। उनकी चिंता 'समाजवादी व्यक्ति' बनाने की थी जिसकी पाँच चीज़ें प्रिय होंगी: पितृभूमि, जनता, काम, विज्ञान और जन संपत्ति।
- किसानों, महिलाओं, छात्रों और अन्य गुटों के लिए जन संस्थाएँ बनाई गई। उदाहरण के लिए ऑल चाइना डेमोक्रेटिक वीमेस फेडरेशन के 760 लाख सदस्य थे, ऑल चाइना स्टूडेंट्स फेडरेशन के 32 लाख 90 हजार सदस्य थे।
- वर्ष 1953-54 में कुछ लोग औद्योगिक संगठनों और आर्थिक विकास की तरफ ज़्यादा ध्यान देने के लिए कह रहे थे। लीऊ शाओछी (Liu Shaochi, 1896-1969) और तंग शीयाओफ़ींग (Deng Xiaoping, 1904-97) ने कम्यून् प्रथा को बदलने की कोशिश की क्योंकि यह बहुत कुशलता से काम नहीं कर रही थी। घरों के पिछवाड़ों में बनाई गई स्टील औद्योगिक लिहाज़ से अनुपयोगी थी।



चित्र 3.38: बंजर भूमि पर पुनः कब्जा करते हुए लॉन्ग मार्च पर सैनिकों का चित्र, 1941।

क्या आप जानते हैं?

कार्ल मार्क्स ने "सर्वहारा वर्ग की तानाशाही" शब्द का इस्तेमाल इस बात पर जोर देने के लिए किया था कि मजदूर वर्ग संपत्ति वाले वर्ग की दमनकारी सरकार को एक क्रांतिकारी सरकार से बदल देगा, न कि वर्तमान अर्थों में तानाशाही से।

दर्शनों का टकराव: 1965-78

- 'समाजवादी व्यक्ति' की रचना के इच्छुक माओवादियों और दक्षता की बजाय विचारधारा पर माओ के बल देने की आलोचना करनेवालों के बीच संघर्ष चला।
- माओ द्वारा वर्ष 1965 में छेड़ी गई महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति इसी संघर्ष का नतीजा था, जो उन्होंने अपने आलोचकों का सामना करने के लिए शुरू की।
- पुरानी संस्कृति, पुराने रिवाजों, और पुरानी आदतों के खिलाफ अभियान छेड़ने के लिए रेड गार्ड्स मुख्यतः छात्रों एवं सेना का इस्तेमाल किया गया।
- छात्रों और पेशेवर लोगों को जनता से ज्ञान हासिल करने के लिए ग्रामीण इलाकों में भेजा गया। विचारधारा (साम्यवादी होना) पेशेवर ज्ञान से ज्यादा महत्वपूर्ण थी। दोषारोपण और नारेबाजी ने तर्कसंगत बहस की जगह ले ली।
- सांस्कृतिक क्रांति से खलबली का दौर शुरू हो गया, पार्टी कमजोर हो गई और अर्थव्यवस्था तथा शिक्षा व्यवस्था में भारी रुकावट आई।
- 1960 के उत्तरार्द्ध से प्रवाह बदलने लगा। वर्ष 1975 में एक बार फिर पार्टी ने अधिक सामाजिक अनुशासन और औद्योगिक अर्थव्यवस्था का निर्माण करने पर जोर दिया ताकि चीन शताब्दी के खत्म होने से पहले एक शक्तिशाली देश बन सके।

सर्वहारा की तानाशाही:

यह शब्द कार्लमार्क्स द्वारा प्रयोग किया गया था जिसमें यह बल दिया गया था कि अमीर वर्ग की दमनकारी सरकार को श्रमिक वर्ग की क्रांतिकारी सरकार प्रतिस्थापित कर देगी और यह मौजूदा अर्थ में अधिनायक तंत्र नहीं होगा।

1978 से शुरू होने वाले सुधार:

- सांस्कृतिक क्रांति के बाद राजनीतिक दाव-पेचों की प्रक्रिया शुरू हुई। तंग शीयाओफिंग ने पार्टी पर नियंत्रण मजबूत बनाए रखा और साथ ही देश में समाजवादी बाजार अर्थव्यवस्था की शुरुआत की।
- वर्ष 1978 में पार्टी ने आधुनिकीकरण के अपने चार सूत्री लक्ष्य की घोषणा की। यह था, विज्ञान, उद्योग, कृषि और रक्षा का विकास। पार्टी से सवाल-जवाब न करने की हद तक बहस की इजाजत थी।
- 5 दिसंबर 1978 को दीवार पर लगे एक पोस्टर ने पाँचवीं आधुनिकता का दावा किया कि लोकतंत्र के बिना अन्य आधुनिकताएँ कुछ भी नहीं बन पाएँगी। उसने गरीबी न हटाने और लैंगिक शोषण खत्म न कर पाने के लिए सी. सी. पी. की आलोचना की। इसके लिए उसने पार्टी के अंदर से ही ऐसे दुर्व्यवहारों के उदाहरण पेश किए।
- इन माँगों को दबाया गया लेकिन सन् 1989 में, 4 मई के आंदोलन की 70वीं सालगिरह पर बहुत से बुद्धिजीवियों ने ज्यादा खुलेपन के और कड़े सिद्धांतों (शू-शाओझी) को खत्म करने की माँग की।
- बीजिंग के तियानमेन चौक पर छात्रों के प्रदर्शन को क्रूरतापूर्वक दबाया गया। दुनिया भर में इसकी कड़ी आलोचना हुई।
- सुधार के बाद के समय में चीन के विकास के विषय पर दोबारा बहस शुरू हुई। पार्टी द्वारा समर्थित प्रधान मत मजबूत राजनीतिक नियंत्रण, आर्थिक खुलेपन और विश्व बाजार से जुड़ाव पर आधारित है।
- आलोचकों का कहना है कि सामाजिक गुटों, क्षेत्रों, पुरुषों और महिलाओं के बीच बढ़ती हुई असमानताओं से सामाजिक तनाव बढ़ रहा है तथा बाजार पर जो भारी महत्व दिया जा रहा है उस पर सवाल खड़े कर रहा है। अंत में, पहले के पारंपरिक विचार पुनर्जीवित हो रहे हैं। जैसे कि कंफ्यूशियसवाद और यह तर्क कि पश्चिम की नकल करने के बजाए चीन अपनी परंपरा पर चलते हुए एक आधुनिक समाज बना सकता है।

ताइवान की कहानी

- चीनी साम्यवादी दल द्वारा पराजित होने के बाद चियांग काई-शेक 30 करोड़ से अधिक अमेरीका डॉलर और बेशकीमती कलाकृतियाँ लेकर सन् 1949 में ताइवान भाग निकले। वहाँ उन्होंने चीनी गणतंत्र को स्थापना की।
- वर्ष 1894-95 में जापान के साथ हुई लड़ाई में यह जगह चीन को जापान के हाथ में सौंपनी पड़ी थी और तब से वह जापानी उपनिवेश बनी हुई थी। कायरो घोषणापत्र (1943) और पोर्ट्सडेम उद्घोषणा (1949) के द्वारा चीन को संप्रभुता वापस मिली।
- चियांग काई-शेक के नेतृत्व में कुओमीनतांग ने एक दमनकारी सरकार की स्थापना की, बोलने की और राजनीतिक विरोध करने की आजादी छीन ली तथा सत्ता को जगहों से स्थानीय आबादी को पूरी तरह बाहर कर दिया।
- फिर भी उन्होंने भूमि सुधार लागू किया, जिसके चलते खेती की उत्पादकता बढ़ी। उन्होंने अर्थव्यवस्था का भी आधुनिकीकरण किया, जिसके चलते वर्ष 1973 में कुल राष्ट्रीय उत्पाद के मामले में ताइवान पूरे एशिया में जापान के बाद दूसरे स्थान पर रहा।
- अर्थव्यवस्था, जो मुख्यतः व्यापार पर आधारित थी, लगातार वृद्धि करती गई। लेकिन अहम बात यह है कि अमीर और गरीब के बीच का भी अंतराल लगातार घटता गया है।

- ❑ ताइवान का एक लोकतंत्र में रूपांतरण और भी नाटकीय रहा है। यह वर्ष 1975 में चियांग की मौत के बाद धीरे-धीरे शुरू हुआ और वर्ष 1887 में जब फौजी कानून हटा लिया गया तथा विरोधी दलों को कानूनी इजाजत मिल गई, तब इस प्रक्रिया ने गति पकड़ी।
- ❑ पहले स्वतंत्र मतदान ने स्थानीय ताइवानियों को सत्ता में लाने की प्रक्रिया शुरू कर दी। राजनयिक स्तर पर अधिकांश देशों के व्यापार मिशन केवल ताइवान में ही हैं। उनके द्वारा ताइवान में पूर्ण राजनयिक संबंध और दूतावास रखना संभव नहीं, क्योंकि ताइवान को चीन का ही एक हिस्सा माना जाता है।
- ❑ मुख्य भूमि के साथ पुनः एकीकरण का प्रश्न अभी भी विवादास्पद मुद्दा होकर रहा है यद्यपि 'खाड़ी-पार' के संबंध (चीन और ताइवान के मध्य) सुधर रहे हैं, ताइवानी व्यापार और निवेश मुख्य भूमि में बड़े पैमाने पर हो रहा है और आवागमन कहीं अधिक सहज हो गया है।
- ❑ संभवतः चीन ताइवान को एक अर्धस्वायत्त क्षेत्र के रूप में स्वीकार कर लेने में सहमत हो जाएगा अगर ताइवान पूर्ण स्वतंत्रता के लिए कोई कदम उठाने से परहेज करता है।

कोरिया की कहानी

- ❑ उन्नीसवीं सदी के अंत में, कोरिया के जोसोन वंश (1392-1910) ने आंतरिक और सामाजिक संघर्ष का सामना किया तथा इसके साथ ही उसे चीन, जापान एवं पश्चिमी देशों का विदेशी दबाव भी सहना पड़ा।
- ❑ इन सबके बीच कोरिया ने अपनी सरकारी संरचनाओं, राजनयिक संबंधों, बुनियादी ढाँचे एवं समाज के आधुनिकीकरण के लिए सुधार नीतियाँ लागू कीं।
- ❑ दशकों के राजनीतिक हस्तक्षेप के बाद, साम्राज्यवादी जापान ने 1910 में अपनी कॉलोनी के रूप में कोरिया पर जबरन कब्जा कर लिया, जिससे 500 वर्ष से अधिक समय से चले आ रहे जोसोन राजवंश का अंत हो गया, किंतु कोरियाई लोग जापानियों द्वारा किए जा रहे कोरियाई संस्कृति एवं नैतिक मूल्यों के दमन से काफी नाराज थे।
- ❑ आजादी के इच्छुक कोरियाई लोगों ने जापानी औपनिवेशिक शासन के खिलाफ प्रदर्शन किया, उन्होंने एक अस्थायी सरकार की स्थापना की और कैरो, याल्टा तथा पॉट्सडैम सम्मेलनों जैसी अंतरराष्ट्रीय बैठकों में विदेशी नेताओं से अपील करने के लिए प्रतिनिधि मंडल भेजे।
- ❑ जापानी औपनिवेशिक शासन 35 साल के बाद अगस्त 1945 में द्वितीय विश्व युद्ध में जापान की हार के साथ समाप्त हुआ, हालाँकि यह कोरिया के भीतरी और बाहरी स्वतंत्रता कार्यकर्ताओं का लगातार प्रयास था, जो जापान की हार के बाद कोरिया की स्वतंत्रता सुनिश्चित कर पाया।
- ❑ मुक्ति के बाद कोरियाई उपद्वीप को अस्थायी रूप से 38वीं समानांतर रेखा से दो हिस्सों में विभाजित कर दिया गया। जिसमें उत्तरी क्षेत्र में सोवियत संघ और दक्षिण क्षेत्र में यू.एन. द्वारा संचालन किया गया, किंतु दोनों ही क्षेत्र जापानी सेना को भंग करने के लिए परिश्रम करते रहे, हालाँकि वर्ष 1948 में उत्तर और दक्षिण में अलग-अलग सरकारें स्थापित होने के साथ, यह विभाजन स्थायी रूप से स्थापित हो गया।



चित्र 3.39: कोरियाई लोग 1945 में जापान से अपनी स्वतंत्रता का जश्न मनाते हुए।

युद्धोत्तर राष्ट्र:

- ❑ जून 1950 में कोरियाई युद्ध शुरू हुआ। दक्षिण कोरिया में अमेरिकी अगुवाई वाली संयुक्त राष्ट्र सेना और उत्तर कोरिया में कम्युनिस्ट चीन सेना के समर्थन से शीत युद्ध काल का एक छद्म युद्ध शुरू हुआ।
- ❑ जुलाई 1953 में तीन साल बाद, यह युद्ध युद्धविराम समझौते से समाप्त हुआ। कोरिया हमेशा के लिए विभाजित हो गया था।
- ❑ युद्ध के दौरान जारी की गई मुद्रा एवं राष्ट्रीय खर्च के कारण मुद्रास्फीति से कीमतें अचानक बढ़ गईं। इसके अलावा, औपनिवेशिक काल के दौरान निर्मित औद्योगिक सुविधाओं को पूरी तरह से नष्ट कर दिया गया। नतीजन, दक्षिण कोरिया को अमेरिका की आर्थिक सहायता लेने के लिए मजबूर होना पड़ा।
- ❑ यद्यपि, दक्षिण कोरिया के पहले राष्ट्रपति सिन्गमैन री, वर्ष 1948 में कोरियाई युद्ध के बाद लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के माध्यम से चुने गए थे, लेकिन उन्होंने अवैध संवैधानिक संशोधन के माध्यम से दो बार अपना प्रशासन काल बढ़ाया। अप्रैल 1960 में नागरिकों ने इस तरह की धांधली से होने वाले चुनावों के खिलाफ विरोध किया और री को इस्तीफा देने के लिए मजबूर होना पड़ा, जिसको कोरिया में 'अप्रैल क्रांति' के नाम से भी जाना जाता है।
- ❑ हालाँकि, री प्रशासन के इस्तीफे के बाद स्थापित हुई लोकतांत्रिक पार्टी की सत्ता, आंतरिक विभाजन और संघर्ष के चलते नागरिकों की माँगों का उचित उत्तर नहीं दे पाई, बल्कि सुधारवादी राजनीतिक शक्तियाँ उभरीं तथा छात्र आंदोलनों ने एकीकरण आंदोलनों का रूप ले लिया।
- ❑ मई 1961 में जनरल, 'पार्क चुंग ही' और अन्य सैन्य अधिकारियों के सैन्य तख्तापलट द्वारा लोकतांत्रिक पार्टी की सरकार को उखाड़ फेंका गया।

तीव्र औद्योगीकरण एवं मजबूत नेतृत्व:

- ❑ अक्तूबर 1963 के चुनाव में सैन्य नेता 'पार्क चुंग-ही' राष्ट्रपति बने। पार्क-प्रशासन ने देश में आर्थिक विकास के लिए, एक राज्य आधारित, निर्यात-उन्मुख नीति अपनाई।

- सरकार की पाँच वर्षीय आर्थिक योजनाओं ने बड़े कॉरपोरेट फर्मों का समर्थन किया, रोजगार के विस्तार पर भारी जोर दिया और कोरिया की प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ावा दिया।
- 1960 के दशक से कोरिया का अभूतपूर्व आर्थिक विकास शुरू हुआ, जब राज्य नीति आयात प्रतिस्थापन औद्योगिकी (आई.एस.आई.) से निर्यात पर केंद्रित हो गई। निर्यात उन्मुख नीति के तहत सरकार ने श्रम घनिष्ठ हलके औद्योगिक उत्पादों, जैसे वस्त्रों पर अपना ध्यान केंद्रित किया, जिसमें कोरिया का तुलनात्मक लाभ था।
- 1960 और 1970 के दशक के दौरान, पुनः लघु उद्योगों से उच्च मूल्यवर्धित भारी और रासायनिक उद्योगों पर ध्यान केंद्रित किया गया। इस्पात, अलौह धातु, मशीनरी, जहाज निर्माण, इलैक्ट्रॉनिक्स और रासायनिक उत्पादन को आर्थिक विकास की दौड़ में सबसे महत्वपूर्ण उद्योगों के रूप में चुना गया।
- 1970 में ग्रामीण जनसंख्या को प्रोत्साहन और कृषि क्षेत्र के आधुनिकीकरण के लिए नया गाँव (सैमौल) आंदोलन की शुरुआत हुई। इस अभियान का उद्देश्य लोगों को निष्क्रिय और निराशावान जीवन से सक्रिय एवं आशावान बनाना था। आज कोरिया अन्य विकासशील देशों के साथ जो अपने विकास प्रयासों में सैमौल आंदोलन के सिद्धांतों को अपनाना चाहते हैं, इस आंदोलन से प्राप्त ज्ञान और अनुभव बाँट रहा है।
- अक्तूबर 1972 में, पार्क ने यूसिन संविधान घोषित करके कार्यान्वित किया, जिसने स्थायी अध्यक्षता को संभव बनाया। यूसिन संविधान के तहत, राष्ट्रपति को कानून के क्षेत्राधिकार और प्रशासन पर पूर्ण अधिकार था तथा किसी भी कानून को “आपातकालीन नियम” के रूप में निरस्त करने का भी एक संवैधानिक अधिकार था।
- राष्ट्रपति को पूर्ण अधिकार प्रणाली के साथ, देश के आर्थिक विकास में प्रगति के लिए लोकतंत्र एक तरह से अस्थायी रूप में निलंबित हो गया।
- हालाँकि वर्ष 1979 में दूसरे तेल संकट से देश की आर्थिक नीतियों जोकि भारी रासायनिक उद्योग में मुख्य निवेश रखती थीं, में काफी बाधाएँ आईं। इसके साथ-साथ, छात्रों, विद्वानों और विपक्ष ने लगातार यूसिन संविधान के खिलाफ प्रदर्शन किया, क्योंकि पार्क प्रशासन ने आपातकालीन उपायों के आह्वान एवं राजनैतिक अस्थिरता का दमन कर दिया था।
- आर्थिक संकट और राजनीतिक अस्थिरता के बीच पार्क का प्रशासन अक्तूबर 1979 में ‘पार्क चुंग ही’ की हत्या के साथ खत्म हो गया।



चित्र 3.40: जून 1987 के लोकतंत्र आंदोलन के दौरान प्रदर्शनकारी

लोकतंत्रीकरण की माँग और निरंतर आर्थिक विकास:

- लोकतंत्रीकरण की इच्छा ‘पार्क चुंग ही’ की मृत्यु के साथ बढ़ी, लेकिन दिसंबर 1979 में फिर एक बार, एक सैन्य नेता ‘चुन डू-हवन’ की अगुवाई में सैन्य तख्तापलट का मंच तैयार हुआ।
- मई 1980 में, चुन के सैन्य गुट के विरुद्ध लोकतंत्र की माँग करने वाले छात्रों और नागरिकों द्वारा राष्ट्र के प्रमुख शहरों में विभिन्न विरोध प्रदर्शन हुए। सैन्य दल ने पूरे देश में मार्शल कानून को लागू करके लोकतंत्र आंदोलन को दबा दिया। किंतु ग्वाँगजू शहर में, विशेष रूप से, छात्र और नागरिक लगातार मार्शल कानून को समाप्त करने की माँग करते रहे। उसी वर्ष के अंत में चुन यूसुइन संविधान के तहत एक अप्रत्यक्ष चुनाव के माध्यम से राष्ट्रपति बने।
- चुन प्रशासन ने अपनी सरकार को स्थिर बनाने के लिए, लोकतांत्रिक प्रभाव का मजबूती से दमन किया। हालाँकि, चुन प्रशासन ने अंतरराष्ट्रीय आर्थिक दृष्टिकोण से, कोरिया के आर्थिक विकास को 1980 के 1.7 प्रतिशत से बढ़ाकर 1983 तक 13.2 प्रतिशत कर दिया और मुद्रास्फीति को भी कम कर दिया।
- आर्थिक विकास ने शहरीकरण, शिक्षा के स्तर में सुधार और मीडिया की प्रगति को जन्म दिया। इसके फलस्वरूप नागरिकों में अपने राजनीतिक अधिकारों की आत्म-जागरूकता बढ़ी, जिससे राष्ट्रपति के प्रत्यक्ष चुनाव के लिए संवैधानिक संशोधन की माँग की गई।
- मई 1987 में, एक विश्वविद्यालय के छात्र की अत्याचारों से हुई मौत की घटना के बाद नागरिकों ने लोकतंत्रीकरण के लिए बड़े पैमाने पर प्रदर्शन किए, जिसको चुन प्रशासन ने दबाने की कोशिश की।
- इसके बाद चुन सरकार के खिलाफ लोकतंत्रीय आंदोलन में न केवल छात्रों, बल्कि मध्यवर्ग के नागरिकों ने भी भाग लिया। इन प्रयासों के चलते, चुन प्रशासन को संविधान में संशोधन करने के लिए मजबूर होना पड़ा और नागरिकों को सीधे चुनाव का अधिकार मिला।
- कोरियाई लोकतंत्र का एक नया अध्याय इस प्रकार से शुरू हुआ।

कोरियाई लोकतंत्र और आईएमएफ संकट:

- नए संविधान के अनुसार, 1971 के बाद से पहला प्रत्यक्ष चुनाव दिसंबर 1987 में हुआ, लेकिन विपक्षी पार्टियों की एकजुटता में विफलता के कारण, चुन के सैन्य दल के एक साथी सैन्य नेता, ‘रोह ताए-वू’ का चुनाव हुआ। हालाँकि, कोरिया में लोकतंत्र जारी रहा।
- वर्ष 1990 में, लंबे समय से विपक्षी नेता रह चुके, ‘किम यंग-सैम’ ने एक बड़ी सत्तारूढ़ पार्टी बनाने के लिए रोह की पार्टी से समझौता किया।



चित्र 3.41: रात के समय वर्तमान सियोल शहर।

- ❑ दिसंबर 1992 में, दशकों से चल रहे सैन्य शासन के बाद, एक नागरिक नेता, किम को राष्ट्रपति पद के लिए चुना गया। नए चुनावों एवं सत्तावादी सैन्य शक्ति के विघटन के फलस्वरूप, एक बार फिर लोकतंत्र की शुरुआत हुई।
- ❑ सरकारी समर्थन के साथ, कोरियाई कंपनियों ने पूँजी प्रधान व्यवसाय और रासायनिक उद्योगों के साथ-साथ इलेक्ट्रॉनिक उद्योगों में भी निवेश करना शुरू किया, दूसरी ओर सरकार ने औद्योगिक और सामाजिक बुनियादी ढाँचे के निर्माण पर ध्यान देना जारी रखा।
- ❑ वर्ष 1996 में आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (ओ.ई.सी.डी.) में शामिल होने का निर्णय लिया तथा कोरिया की अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा को मजबूत करने का प्रयास शुरू किया, लेकिन व्यापार घाटे में बढ़ोतरी, वित्तीय संस्थानों द्वारा खराब प्रबंधन, संगठनों द्वारा बेईमान व्यापारिक संचालन के कारण कोरिया को वर्ष 1997 में विदेशी मुद्रा संकट का सामना करना पड़ा।
- ❑ इस संकट को अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई.एम.एफ.) द्वारा आपात वित्तीय सहायता के ज़रिए सँभालने की कोशिश की गई। यही नहीं, इस आर्थिक संकट में पूरे देश ने एक साथ प्रयास किए, नागरिकों ने गोल्ड क्लेक्शन मूवमेंट के माध्यम से विदेशी ऋण भुगतान के लिए सक्रिय रूप से योगदान दिया।
- ❑ दिसंबर 1997 में एक लंबे समय के बाद कोरिया में पहली बार शांतिपूर्ण हस्तांतरण के द्वारा विपक्षी पार्टी के नेता किम डे-युंग सत्ता में आए।
- ❑ सत्ता में दूसरा शांतिपूर्ण हस्तांतरण वर्ष 2008 में हुआ, जब रूढ़िवादी पार्टी के नेता ली माइंग बाक, प्रगतिशील पार्टी रोह मु-यून प्रशासन के बाद अध्यक्ष चुने गए।
- ❑ वर्ष 2012 में, रूढ़िवादी पार्टी की नेता पार्क खन-हे पहली महिला राष्ट्रपति के रूप में चुनी गईं। उनके पिता, पार्क चुंग-ही की राजनीतिक विरासत के कारण उन्हें अपने कार्यकाल की शुरुआत में बहुत समर्थन प्राप्त हुआ, लेकिन अक्तूबर 2016 में जब यह बात उठी कि उनके स्थान पर उनके एक नजदीकी मित्र गुप्त रूप से सरकारी मामलों का प्रबंधन करते थे, तब राष्ट्रव्यापी विरोध एवं प्रदर्शनों के फलस्वरूप, मार्च 2017 में उन पर महाभियोग चला और उन्हें कार्यालय से हटा दिया गया। मई 2017 में, तीसरी बार शांतिपूर्ण हस्तांतरण के द्वारा, मून जे इन ने राष्ट्रपति पद संभाला।
- ❑ वर्ष 2016 में नागरिकों के नेतृत्व में किए गए, कैडललाइट विरोध में देश के लोकतांत्रिक कानून और प्रणालियों की सीमाओं के भीतर राष्ट्रपति के इस्तीफे की माँग कर रहे नागरिकों का शांतिपूर्वक प्रदर्शन, कोरियाई लोकतंत्र की परिपक्वता को दर्शाता है। कोरियाई लोकतंत्र आर्थिक विकास का कर्जदार है, लेकिन यह देश के गणतंत्रवाद को प्रोत्साहित करने वाले कोरियाई नागरिकों की राजनीतिक जागरूकता ही है, जिसने आज इस देश को आगे बढ़ाने में प्रमुख भूमिका निभाई है।

विचारणीय बिंदु

माओ के नेतृत्व में चीन में महान सांस्कृतिक क्रांति ने महान राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन किए। यह एक बहुत ही अताकिंक सोच के कारण लिया गया निर्णय था। जिसके परिणाम लोगों को भुगतने पड़े। क्या आप हाल के समय में दुनिया के कई देशों में लिए गए ऐसे ही निर्णयों के बारे में सोच सकते हैं, जिनके कारण गंभीर आर्थिक दमन हुआ है?



आधुनिकता के दो मार्ग

जापान, चीन, ताइवान और कोरिया समेत विभिन्न पूर्वी एशियाई देशों के आधुनिकीकरण के रास्ते वास्तव में विविध ऐतिहासिक परिस्थितियों और अद्वितीय प्रक्षेप पथों द्वारा चिह्नित हैं। आइए हम उन्हें समझें।

जापान:

- ❑ जापान अपनी आज़ादी बनाए रखने में सफल रहा और पारंपरिक हुनर तथा प्रथाओं को नए तरीके से इस्तेमाल कर पाया। तथापि कुलीन वर्ग के नेतृत्व में हुए आधुनिकीकरण ने एक उग्र राष्ट्रवाद को जन्म दिया और एक शोषणकारी सत्ता को बरकरार रखा जिसने विरोध एवं लोकतंत्र की माँग का गला घोट दिया। उसने एक औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना की जिससे उस क्षेत्र में बैर की भावना बनी रही और अंदरूनी विकास भी प्रभावित हुआ।
- ❑ जापान का आधुनिकीकरण ऐसे वातावरण में हुआ जहाँ पश्चिमी साम्राज्यवादी ताकतों का प्रभुत्व था। हालाँकि जापान ने उनकी नकल की, पर साथ ही अपने हल ढूँढ़ने की कोशिश भी की। जापानी राष्ट्रवाद पर इन मज़बूरियों का प्रभाव है-एक ओर जहाँ जापानी एशिया को पश्चिमी आधिपत्य से मुक्त रखने की उम्मीद करते थे, दूसरे लोगों के लिए यही विचार साम्राज्य का निर्माण करने के लिए महत्वपूर्ण कारक सिद्ध हुए।
- ❑ यहाँ यह उल्लेख करना जरूरी है कि सामाजिक और राजनीतिक संस्थानों के सुधार तथा रोज़मर्रा की जिंदगी को बदलने के लिए केवल परंपराओं को पुनर्जीवित करने या ज़बरदस्ती उन्हें पकड़े रखने या सँभालने का सवाल नहीं था बल्कि उन्हें नए एवं अलग रचनात्मक तरीके से इस्तेमाल करने की बात थी।
- ❑ उदाहरण के लिए, मेजी स्कूली पद्धति ने यूरोपीय और अमेरीका प्रथाओं के अनुरूप नये विषयों की शुरुआत की। किंतु पाठ्यचर्या का मुख्य उद्देश्य निष्ठावान नागरिक बनाना था।
- ❑ नैतिकशास्त्र का विषय पढ़ना अनिवार्य था जिसमें सम्राट के प्रति वफ़ादारी पर जोर दिया जाता था।
- ❑ इसी तरह परिवार में और रोज़मर्रा की जिंदगी में आए बदलाव विदेशी एवं देशी विचारों को मिला कर कुछ नया बनाने की कोशिश को दर्शाते हैं।

चीन:

- चीन का आधुनिकीकरण का सफ़र बहुत अलग था। पश्चिमी और जापानी, दोनों ही किस्म के विदेशी साम्राज्यवाद ने सारे नियंत्रण को कमजोर बनाया तथा राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था तोड़ने के लिए माहौल बना दिया।
- युद्ध सामंतवाद, लूटमार और गृह-युद्ध ने बहुत से लोगों की जान ले ली। जापानी हमले की बर्बरता से भी भारी तादाद में लोगों की जानें गईं। प्राकृतिक त्रासदियों ने बोझों को और बढ़ा दिया।
- 19वीं और 20वीं शताब्दी में परंपराओं को ठुकराया गया और राष्ट्रीय एकता तथा सुदृढ़ता निर्मित करने के रास्तों की तलाश की गई।
- चीन के साम्यवादी दल और उसके समर्थकों ने परंपरा को खत्म करने की लड़ाई लड़ी। उन्हें लगा कि परंपरा जनसमुदाय को गरीबी में जकड़े हुए है, महिलाओं को अधीन बनाती है और देश को अविकसित रखती है।
- साम्यवादी दल ने लोगों को अधिकार एवं सत्ता देने की बात की परंतु वास्तव में उसने बहुत ही केंद्रीकृत राज्य की स्थापना की।
- साम्यवादी कार्यक्रम की सफलता ने उम्मीद का वादा किया, लेकिन दमनकारी राजनीतिक व्यवस्था ने मुक्ति और समानता के आदर्शों को ऐसी नारेबाजी में बदल दिया, जो लोगों को चालाकी से प्रभावित कर अपने काबू में लाने में काम आती थी। तथापि इससे शताब्दियों पुरानी असमानताएँ हट गईं, शिक्षा का विस्तार हुआ और जनता के बीच एक जागरूकता पैदा हुई।
- पार्टी ने अब बाज़ार संबंधी सुधार किए और चीन को आर्थिक दृष्टि से ताकतवर बनाने में कामयाब हुई, जबकि राजनीतिक व्यवस्था अब भी कड़े नियंत्रण में है। अब समाज बढ़ती असमानताओं का सामना कर रहा है और सदियों से दबी परंपराएँ पुनर्जीवित होने लगी हैं। यह नयी स्थिति एक बार फिर यह सवाल खड़ा करती है कि चीन किस तरह अपनी धरोहर को बरकरार रखते हुए अपना विकास कर सकता है।
- ये ऐतिहासिक आख्यान इस बात पर बल देते हैं कि पूर्वी एशिया में आधुनिकीकरण के मार्ग अद्वितीय हैं और विशिष्ट ऐतिहासिक परिस्थितियों, विदेशी प्रभावों के अंतर्संबंध तथा आधुनिक युग की चुनौतियों का सामना करने के लिए परंपराओं के रचनात्मक अनुकूलन द्वारा आकार लेते हैं।

निष्कर्ष

यह अध्याय पुनर्जागरण और उसके बाद की औद्योगिक क्रांति के दौरान यूरोप में हुए परिवर्तनों का एक अवलोकन प्रस्तुत करता है। यह इस बात पर प्रकाश डालता है कि कैसे तकनीकी प्रगति, सांस्कृतिक पुनर्जन्म और अन्य क्षेत्रों से संयोजन ने महत्वपूर्ण विकास के लिए मंच तैयार किया। ये परिवर्तन केवल यूरोप तक सीमित नहीं थे; वे अंततः दुनिया भर में गूँज उठे, वैश्विक व्यापार, राजनीति और संस्कृति को नया रूप दिया। आधुनिकीकरण की ओर जापान, चीन, ताइवान और कोरिया की जटिल यात्राओं का पता लगाने में, हम इतिहास के समृद्ध ताने-बाने तथा उन कारकों को उजागर करते हैं जिन्होंने इन पूर्वी एशियाई देशों को आकार दिया है। प्रत्येक देश ने अपने अलग रास्ते पर चलना शुरू किया, जो अद्वितीय ऐतिहासिक परिस्थितियों, विदेशी प्रभावों के प्रति प्रतिक्रियाओं और परंपराओं की रचनात्मक पुनर्कल्पना द्वारा चिह्नित है। कुछ मामलों में आधुनिकीकरण की खोज ने दमन को जन्म दिया, जबकि अन्य में इसने लोकतंत्र का मार्ग प्रशस्त किया। इन कथाओं के माध्यम से, जापान, चीन, ताइवान और कोरिया की कहानियाँ परंपरा तथा नवाचार, विदेशी प्रभाव एवं घरेलू रचनात्मकता, व प्रगति और आत्मनिर्णय की स्थायी खोज के बीच गतिशील अंतर्संबंध को प्रदर्शित करती हैं।

महत्वपूर्ण शब्दावलियाँ

- ❖ **पुनर्जागरण:** 14वीं सदी के अंत से 17वीं सदी के दौरान यूरोप में एक सांस्कृतिक और बौद्धिक आंदोलन, जिसकी विशेषता कला, शिक्षा एवं अन्वेषण में रुचि का पुनरुत्थान है। इसका आधुनिक समाज के विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा।
- ❖ **प्राथमिक स्रोत:** मूल सामग्री या दस्तावेज जो किसी ऐतिहासिक घटना या अवधि के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी या साक्ष्य प्रदान करते हैं। इन स्रोतों में पत्र, डायरियाँ, तस्वीरें, समाचार पत्र और आधिकारिक रिकॉर्ड शामिल हैं।
- ❖ **औद्योगिक क्रांति:** महत्वपूर्ण आर्थिक, तकनीकी और सामाजिक परिवर्तनों की अवधि जो 18वीं सदी के अंत में ब्रिटेन में शुरू हुई एवं दुनिया के अन्य हिस्सों में फैल गई। इसने कृषि और शिल्प-आधारित अर्थव्यवस्थाओं से औद्योगिक तथा विनिर्माण-आधारित अर्थव्यवस्थाओं में संक्रमण को चिह्नित किया।
- ❖ **औपनिवेशिक नियंत्रण:** 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी की शुरुआत में अफ्रीका तथा एशिया में उपनिवेशों पर ब्रिटेन, फ्रांस एवं जर्मनी जैसी यूरोपीय शक्तियों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली शासन व प्रभाव की प्रणाली।
- ❖ **वैश्विक व्यापार:** दुनिया भर में वस्तुओं, सेवाओं और विचारों का आदान-प्रदान। इसमें अंतरराष्ट्रीय सीमाओं के पार वस्तुओं और संसाधनों की आवाजाही शामिल है।

- ❖ **साम्राज्यवाद:** एक नीति या अभ्यास जिसके द्वारा एक राष्ट्र अक्सर सैन्य विजय या उपनिवेशीकरण के माध्यम से अन्य देशों पर अपनी शक्ति और प्रभाव बढ़ाता है। यह चीन और एशिया के अन्य हिस्सों के इतिहास में एक महत्वपूर्ण कारक था।
- ❖ **औद्योगीकरण:** कृषि और हस्तशिल्प पर आधारित अर्थव्यवस्था को विनिर्माण एवं औद्योगिक उत्पादन पर केंद्रित अर्थव्यवस्था में बदलने की प्रक्रिया, जैसा कि औद्योगिक क्रांति द्वारा उदाहरण दिया गया है।
- ❖ **संस्कृति:** किसी विशेष राष्ट्र, लोगों या अन्य सामाजिक समूह के रीति-रिवाज, कला, सामाजिक संस्थाएँ और उपलब्धियाँ। यह अंश पुनर्जागरण के दौरान सांस्कृतिक पुनर्जन्म के प्रभाव का संदर्भ देता है।
- ❖ **वैश्वीकरण:** वह प्रक्रिया जिसके द्वारा व्यवसाय, प्रौद्योगिकियाँ और संस्कृतियाँ वैश्विक स्तर पर परस्पर जुड़ी और अन्योन्याश्रित हो जाती हैं। यह अमेरिका, जापान और भारत जैसे क्षेत्रों में विचारों तथा नवाचारों के प्रसार से जुड़ा है।
- ❖ **औपनिवेशिक साम्राज्य:** एक विदेशी शक्ति द्वारा शासित एक क्षेत्र या क्षेत्रों का समूह। यूरोपीय औपनिवेशिक साम्राज्यों ने आधुनिक दुनिया को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- ❖ **सांस्कृतिक पुनर्जन्म:** कला और संस्कृति में नई रुचि तथा उपलब्धियों का दौर, जैसा कि पुनर्जागरण में देखा जा सकता है। इसने साहित्य, कला और विज्ञान में उन्नति की।
- ❖ **सत्ता का शांतिपूर्ण हस्तांतरण:** लोकतांत्रिक चुनावों और शांतिपूर्ण तरीकों के माध्यम से एक नेता या पार्टी से दूसरे नेता या पार्टी को राजनीतिक नेतृत्व या सरकारी अधिकार का हस्तांतरण, जैसा कि दक्षिण कोरिया के राजनीतिक इतिहास में देखा गया है।
- ❖ **सत्तावादी शासन:** सरकार की एक प्रणाली जिसमें एक ही प्राधिकरण में सत्ता का संकेंद्रण होता है, अक्सर नागरिकों के लिए सार्थक प्रतिनिधित्व या जवाबदेही के बिना।





फ्रांसीसी क्रांति

संदर्भ: इस अध्याय में NCERT पाठ्यपुस्तक की कक्षा-IX (भारत और समकालीन विश्व-I) के अध्याय-1 का सारांश शामिल है।

परिचय

चौदह जुलाई 1789 की सुबह, पेरिस नगर में आतंक का माहौल था। सम्राट ने सेना को शहर में घुसने का आदेश दे दिया था। अफ़वाह थी कि वह सेना को नागरिकों पर गोलियाँ चलाने का आदेश देने वाला है। लगभग 7000 स्त्री और पुरुष टॉउन हॉल के सामने एकत्र हुए और उन्होंने एक जन-सेना का गठन करने का निर्णय किया। हथियारों की खोज में वे बहुत-से सरकारी भवनों में जबरन प्रवेश कर गए। जिसका समापन लोगों की मिलिशिया (militia) बनाने के निर्णय के साथ हुआ। इस निर्णय ने उन्हें हथियारों के लिए सरकारी इमारतों पर छापा मारने के लिए प्रेरित किया। उनके प्रयासों ने उन्हें राजा की निरंकुशता के तिरस्कृत प्रतीक, प्रतिष्ठित बासतील तक पहुँचाया। हालाँकि उन्हें गोला-बारूद के विशाल भंडार मिलने की उम्मीद थी, लेकिन उन्हें केवल सात कैदी ही मिले। फिर भी, यह घटना प्रतीकात्मक बन गई क्योंकि किले को ध्वस्त कर दिया गया, इसके पत्थर के अवशेषों को स्मृति चिह्न के रूप में बेचा गया। इस घटना के बाद कई दिनों तक पेरिस तथा देश के ग्रामीण क्षेत्रों में कई और संघर्ष हुए। अधिकांश जनता रोटी की महँगी कीमतों का विरोध कर रही थी। बाद में इस दौर का सिंहावलोकन करते हुए इतिहासकारों ने इसे एक लंबे घटनाक्रम की ऐसी शुरुआती कड़ियों के रूप में देखा जिनकी परिणति फ्राँस के सम्राट को फाँसी दिए जाने में हुई, हालाँकि उस समय अधिकांश लोगों को ऐसे परिणाम की आशा नहीं थी।

अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में फ्रांसीसी समाज

लुई सोलहवें के दौरान फ्रांस की स्थिति:

- सन् 1774 में बूर्बों राजवंश का लुई XVI फ्रांस की राजगद्दी पर आसीन हुआ। उस समय उसकी उम्र केवल बीस साल थी और उसका विवाह ऑस्ट्रिया की राजकुमारी मेरी एन्तोएनेत से हुआ था।
- राज्यारोहण के समय उसने राजकोष खाली पाया। लंबे समय तक चले युद्धों के कारण फ्राँस के वित्तीय संसाधन नष्ट हो चुके थे।
- वर्साय (Versailles) के विशाल महल और राजदरबार की शानो-शौकत बनाए रखने की फिजूलखर्ची का बोझ अलग से था।

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम से ऋण:

- लुई XVI के शासनकाल में फ्राँस ने अमेरिका के 13 उपनिवेशों को साझा शत्रु ब्रिटेन से आजाद कराने में सहायता दी थी।
- इस युद्ध के चलते फ्रांस पर दस अरब लिब्रे से भी अधिक का कर्ज और जुड़ गया जबकि उस पर पहले से ही दो अरब लिब्रे का बोझ चढ़ा हुआ था।
- सरकार से कर्जदाता अब 10 प्रतिशत ब्याज की माँग करने लगे थे। जिसके परिणामस्वरूप बजट का एक बड़ा हिस्सा सिर्फ ब्याज भुगतान पर खर्च हो गया।
- कराधान की चुनौतियाँ:
- अपने नियमित खर्चों जैसे, सेना के रख-रखाव, राजदरबार, सरकारी कार्यालयों या विश्वविद्यालयों को चलाने के लिए फ्रांसीसी सरकार करों में वृद्धि के लिए बाध्य हो गई पर यह कदम भी नाकाम था।
- अठारहवीं सदी में फ्रांसीसी समाज तीन एस्टेट्स में बँटा था और केवल तीसरे एस्टेट के लोग (जनसाधारण) ही कर अदा करते थे।

वर्ग प्रणाली (Estate system):

- वर्गों में विभाजित फ्रांसीसी समाज मध्यकालीन सामंती व्यवस्था का अंग था। 'प्राचीन राजतंत्र' पद का प्रयोग सामान्यतः सन् 1789 से पहले के फ्रांसीसी समाज एवं संस्थाओं के लिए होता है।

- यह एक स्तरीकृत व्यवस्था थी जिसमें पादरी, कुलीन वर्ग और आम लोग शामिल थे; जिसमें आपस में जुड़े कानूनी अधिकार एवं दायित्व थे। इसमें तीन वर्ग शामिल हैं- (चित्र 4.1 देखें)।
- प्रथम वर्ग में पादरी वर्ग था और द्वितीय वर्ग में कुलीन वर्ग था। दोनों को जन्म से ही कुछ विशेषाधिकार प्राप्त थे। इनमें सबसे महत्वपूर्ण था राज्य को कर देने से छूट। कुलीन वर्ग को सामंती विशेषाधिकार भी प्राप्त थे। इनमें सामंती शुल्क भी शामिल था, जिसे वे किसानों से वसूलते थे।
- तृतीय एस्टेट में शामिल थे आम लोगों जैसे किसानों, मजदूरों आदि शामिल थे। किसानों के लिए यह अनिवार्य था कि वे स्वामी के घर और खेतों में काम करके, सेना में सेवा करके या सड़क निर्माण में भाग लेकर उसकी सेवा करें।
- लगभग 90% आबादी किसान थी, लेकिन अधिकांश के पास खेती के लिए जमीन नहीं थी।
- लगभग 60% भूमि पर कुलीन वर्ग, चर्च और तीसरे वर्ग के धनी सदस्यों का स्वामित्व था।

पहला एस्टेट

पादरियों

दूसरा एस्टेट

कुलीनता

तीसरी एस्टेट

बड़े व्यवसायी, व्यापारी, अदालत के अधिकारी, वकील आदि।

किसान और कारीगर

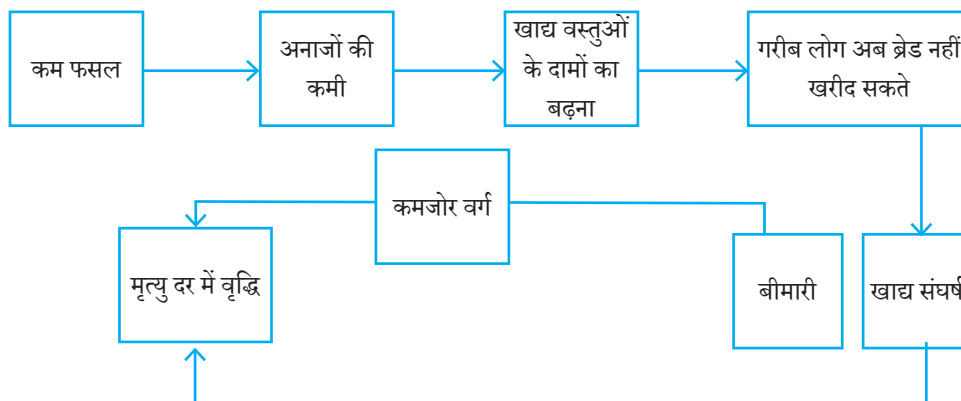
छोटे किसान, भूमिहीन श्रमिक, नौकर

चित्र 4.1: तीन एस्टेट

विशेषाधिकार और कर बोझ (Privileges and Tax Burdens):

- चर्च भी किसानों से करों का एक हिस्सा, टाइल (Tithe, धार्मिक कर) के रूप में वसूलता था।
- ऊपर से तीसरे एस्टेट के तमाम लोगों जैसे किसानों, मजदूरों आदि को सरकार को तो कर चुकाना ही होता था। इन करों में टाइल (Taille, प्रत्यक्ष कर) और अनेक अप्रत्यक्ष कर शामिल थे। अप्रत्यक्ष कर नमक और तंबाकू जैसी रोजाना उपभोग की वस्तुओं पर लगाया जाता था। इस प्रकार राज्य के वित्तीय काम-काज का सारा बोझ करों के माध्यम से जनता वहन करती थी।
- पहले दो एस्टेट को विशेषाधिकार प्राप्त थे, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण था कर छूट। कुलीनों के पास अतिरिक्त सामंती विशेषाधिकार थे, वे किसानों से बकाया राशी और सेवाएँ हासिल करते थे। चर्च किसानों से टीथ (tithes) नामक कर लेता था।
- तीसरे वर्ग के पास ऐसे कोई विशेषाधिकार नहीं थे, लेकिन राज्य करों की जिम्मेदारी उसी पर थी। अंत में, तीसरे वर्ग के सभी सदस्यों को राज्य को कर देना पड़ता था, इनमें एक प्रत्यक्ष कर शामिल था, जिसे टेल (taille) कहा जाता था, और कई अप्रत्यक्ष कर जो नमक या तंबाकू जैसी रोजमर्रा की खपत की वस्तुओं पर लगाए जाते थे।
- करों के माध्यम से राज्य की गतिविधियों के वित्तपोषण का भार अकेले तृतीय वर्ग द्वारा वहन किया जाता था।

जीवन का संघर्ष:



चित्र 4.2: जीविका संकट का चक्र (The course subsistence crisis)

- जनसंख्या विस्फोट: फ्राँस की जनसंख्या सन् 1715 में 2.3 करोड़ थी जो सन् 1789 में बढ़कर 2.8 करोड़ हो गई।
- भोजन की बढ़ती माँग: जनसंख्या वृद्धि के परिणामतः अनाज उत्पादन की तुलना में उसकी माँग काफी तेजी से बढ़ी। अधिकांश लोगों के मुख्य खाद्य-पावरोटी-की कीमत में तेजी से वृद्धि हुई। चित्र 4.2 जीविका संकट (subsistence crisis) कैसे उत्पन्न होता है, को दर्शाता है।
- ब्रेड की बढ़ती कीमतें: इससे रोजी-रोटी का संकट पैदा हो गया। ब्रेड, जो कि अधिकांश लोगों का मुख्य आहार है, की कीमतों में तेजी से वृद्धि हुई।
- बढ़ती लागत के बीच स्थिर मजदूरी: अधिकांश फ्रांसीसी श्रमिक कार्यशालाओं (workshops) में काम करते थे, और उनकी मजदूरी कार्यशाला मालिकों द्वारा निर्धारित की जाती थी। ये मजदूरी बढ़ती कीमतों के अनुपात में नहीं बढ़ी, जिससे अमीर और गरीब के बीच आर्थिक असमानता बढ़ती गई।

- प्राकृतिक आपदाओं का प्रभाव: देश में कभी-कभी सूखा या ओलावृष्टि होने से फसल और भी कम हो जाती थी। इन स्थितियों के कारण “जीविका के संकट” की स्थिति पैदा हो गई, जो पुराने शासन काल के दौरान फ्रांस में बार-बार होने वाली समस्या थी।

उभरते मध्य वर्ग ने विशेषाधिकारों के अंत की कल्पना की

पहले मी कर बढ़ने एवं अकाल के समय किया और कामगार विद्रोह कर चुके थे। परंतु उनके पास सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में बुनियादी बदलाव लाने के लिए साधन एवं कार्यक्रम नहीं थे। ये जिम्मेदारी तीसरे एस्टेट के उन समूहों ने उठाई जो समृद्ध और शिक्षित होकर नए विचारों के संपर्क में आ सके थे।

मध्यम वर्ग का उदय (Rise of the Middle Class):

- अठारहवीं सदी में एक नए सामाजिक समूह का उदय हुआ जिसे मध्य वर्ग कहा गया, जिसने फैलते समुद्रपारीय व्यापार और ऊनी तथा रेशमी वस्त्रों के उत्पादन के बल पर संपत्ति अर्जित की थी।
- इस वर्ग ने बढ़ते विदेशी व्यापार और ऊनी तथा रेशमी वस्त्रों जैसे सामानों के उत्पादन से धन अर्जित किया।
- उनके ग्राहक आधार में विदेशी संस्थाएँ और उनके अपने समाज के संपन्न सदस्य दोनों शामिल थे।

तीसरे एस्टेट की संरचना:

- तीसरे एस्टेट में इन सौदागरों एवं निर्माताओं के अलावा प्रशासनिक सेवा व वकील जैसे पेशेवर लोग भी शामिल थे।
- ये सभी पढ़े-लिखे थे और इनका मानना था कि समाज के किसी भी समूह के पास जन्मना विशेषाधिकार नहीं होने चाहिए। किसी भी व्यक्ति की सामाजिक हैसियत का आधार उसकी योग्यता ही होनी चाहिए।

प्राचीन राजतंत्र में हुए अनुभवों का वृत्तांत:

जॉर्ज डेंटन (Georges Danton) का व्यवस्था के साथ संघर्ष

आगे चलकर क्रांतिकारी राजनीति में सक्रिय होने वाले जॉर्ज दॉन्तन ने अपनी पढ़ाई पूरी होने के बाद के समय को याद करते हुए सन् 1793 में अपने एक मित्र को लिखा:

‘मैं प्लेसिस के आवासीय कॉलेज में था। वहाँ मुझे कई महत्वपूर्ण लोगों का सान्निध्य मिला...। पढ़ाई पूरी होने के बाद बेकारी के दिनों में मैं नौकरी की तलाश में जुट गया। पेरिस के न्यायालय में नौकरी मिलनी असंभव थी। सेना में नौकरी का विकल्प भी मेरे लिए नहीं था, क्योंकि मैं न तो जन्मजात कुलीन था और न ही मेरा कोई संरक्षक था। चर्च भी मुझे आसरा नहीं दे सका। मैं कोई ओहदा भी खरीदने की स्थिति में नहीं था, क्योंकि मेरी जेब में एक सू (फ्रांसीसी पैसा) तक नहीं था। पुराने दोस्तों ने भी मुँह मोड़ लिया था। व्यवस्था ने हमें पढ़ा-लिखा तो दिया था लेकिन हमारी प्रतिभा के इस्तेमाल के अवसर उपलब्ध नहीं कराए थे।’

फ्रांसीसी समाज पर आर्थर यंग के अवलोकन:

आर्थर यंग नाम के एक अंग्रेज ने सन् 1787-1789 के दौरान फ्रांस की यात्रा की और अपनी यात्रा का विस्तृत वृत्तांत लिखा। इस वृत्तांत में उसकी यह टिप्पणी दिलचस्प है:

‘सेवा-टहल में लगे अपने गुलामों, खासतौर पर उनके साथ बुरा व्यवहार करने वाले को पता होना चाहिए कि इस तरह वह अपनी जिंदगी को ऐसी स्थिति में डाल रहा है जो उस स्थिति से बिल्कुल भिन्न होती जिसमें उसने मुक्त लोगों की सेवाएँ ली होतीं और उनसे बेहतर बर्ताव करता। जो अपने पौड़ों की कराह सुनते हुए भोज उड़ाना पसंद करते हैं उन्हें दंगे के दौरान अपनी बेटी के अपहरण या बेटे का गला रेत दिए जाने का दुखड़ा नहीं रोना चाहिए।’

परिवर्तन के लिए दार्शनिक आधार:

- जॉन लॉक और जीन जैक्स रूसो जैसे दार्शनिकों ने क्रांतिकारी विचार प्रस्तुत किए:
- लॉक ने अपनी पुस्तक टू ट्रीटीज ऑफ गवर्नमेंट में राजाओं के दैवीय और निर्विवाद अधिकार को चुनौती दी।
- रूसो ने जनता और उनके चुने हुए प्रतिनिधियों के बीच सामाजिक अनुबंध (social contract) पर आधारित शासन का प्रस्ताव रखा।
- मोंटेस्क्यू ने ‘द स्पिरिट ऑफ द लॉज’ में सरकारी शक्ति को विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच विभाजित करने का सुझाव दिया।
- ब्रिटेन से स्वतंत्रता के बाद अमेरिकी मॉडल, जिसने इन विचारों को लागू किया, फ्रांसीसी विचारकों के लिए एक प्रकाश स्तंभ के रूप में सामने आया।

क्रांतिकारी विचारों का प्रसार:

- सैलून और कॉफी हाउस जैसी जगहों पर दार्शनिक चर्चाएँ मुख्य आधार बन गईं।
- पुस्तकों, समाचार पत्रों और सार्वजनिक वाचनों (public readings) से यह सुनिश्चित हुआ कि ये क्रांतिकारी विचार उन लोगों तक भी पहुँचें जो अशिक्षित थे।

सार्वजनिक आक्रोश:

- राजा लुई सोलहवें द्वारा अधिक कर लगाने की योजना के समाचार से व्यापक आक्रोश भड़क उठा, तथा विशेषाधिकार प्राप्त व्यवस्था के विरुद्ध विरोध और भड़क गया।

क्रांति की शुरुआत**पुरानी व्यवस्था व (टैक्स) कर प्रणाली:**

- लुई सोलहवें को कर (टैक्स) बढ़ाने की ज़रूरत थी, इसलिए वह उन्हें अपनी इच्छा से नहीं लगा सकते थे। इसके बजाय, उन्हें एस्टेट्स जनरल से अनुमति लेनी पड़ी, जो तीनों एस्टेट का प्रतिनिधित्व करने वाली एक राजनीतिक सभा थी। वर्ष 1789 से पहले आखिरी बैठक वर्ष 1614 में हुई थी।

कुछ महत्वपूर्ण तिथियाँ

सन् 1774	लुई XVI फ्राँस का राजा बनता है। सरकारी खजाना खाली हो चुका है और प्राचीन राजतंत्र के समाज में असंतोष गहराता जा रहा है।
सन् 1789	एस्टेट्स जनरल का आह्वान। तृतीय एस्टेट नेशनल असेंबली का गठन करता है। बास्तील पर हमला, देहात में किसानों का विद्रोह।
सन् 1791	सम्राट की शक्तियों पर अंकुश लगाने और सभी मनुष्यों को मूलभूत अधिकार प्रदान करने के लिए संविधान बनाया जाता है।
सन् 1792-93	फ्राँस गणराज्य बनता है; सिर काट कर राजा को मार दिया जाता है। जैकोबिन गणराज्य का पतन; फ्राँस पर डिक्रेट्री का शासन।
सन् 1804	नेपोलियन फ्राँस का सम्राट बनता है; यूरोप के विशाल भूभाग पर कब्जा कर लेता है।
सन् 1815	वॉटरलू में नेपोलियन की हार।

सन् 1789 में एस्टेट्स जनरल की बैठक:

- 5 मई 1789 को लुई सोलहवें ने नए करों का प्रस्ताव करने के लिए एस्टेट्स जनरल की बैठक बुलाई।
- वर्साय के एक भव्य हॉल में प्रथम और द्वितीय एस्टेट से 300-300 प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया गया था। तृतीय एस्टेट से 600 प्रतिनिधियों को पीछे खड़ा होना था।
- उल्लेखनीय रूप से, किसानों, कारीगरों और महिलाओं को इसमें शामिल नहीं किया गया, लेकिन उनके प्रतिनिधियों द्वारा लाए गए 40,000 पत्रों के माध्यम से उनके मुद्दों का प्रतिनिधित्व किया गया।

मतदान विवाद:

- परंपरागत रूप से, प्रत्येक एस्टेट के पास एक सामूहिक वोट होता था। रूसो के द सोशल कॉन्ट्रैक्ट जैसे लोकतांत्रिक सिद्धांतों से प्रभावित तीसरे एस्टेट ने प्रत्येक सदस्य के लिए एक वोट की माँग की। लुई XVI ने इनकार कर दिया, जिसके कारण तीसरे एस्टेट ने विरोध में बाहर निकल गए।

राष्ट्रीय असेंबली का गठन:

- 20 जून को, तीसरा एस्टेट एक इनडोर टेनिस कोर्ट में इकट्ठा हुआ। (चित्र 4.3 देखें) खुद को नेशनल असेंबली घोषित करते हुए, उन्होंने राजा की शक्ति को कम करने के लिए एक संविधान का मसौदा तैयार करने की कसम खाई।
- उनका नेतृत्व मिराब्यो और आबे सिए ने किया। मिराब्यो का जन्म कुलीन परिवार में हुआ था, लेकिन वह सामंती विशेषाधिकारों वाले समाज को खत्म करने की ज़रूरत से सहमत था। उसने एक पत्रिका निकाली और वर्साय में जुटी भीड़ के समक्ष जोरदार भाषण भी दिए। आबे सिए मूलतः पादरी था और उसने 'तीसरा एस्टेट क्या है?' शीर्षक से एक अत्यंत प्रभावशाली प्रचार-पुस्तिका (पैम्फ्लेट) लिखी।



चित्र 4.3: टेनिस कोर्ट शपथ। जैक्स-लुई डेविड द्वारा बनाई गई एक बड़ी पेंटिंग केलिए प्रारंभिक स्केच। पेंटिंग को नेशनल असेंबली में लटकाने का इरादा था।

फ्रांस में विद्रोह का कारण:

जब राष्ट्रीय सभा ने विचार-विमर्श किया, तो फ्रांस में अराजकता की स्थिति थी। इसके निम्नलिखित कारण थे:

- कठोर सर्दी के कारण फसल खराब हुई और ब्रेड की कीमतें बढ़ गईं। बेकरी वाले सामान जमा कर रहे थे, जिससे गुस्साई महिलाएँ दुकानों में तोड़फोड़ करने लगीं।



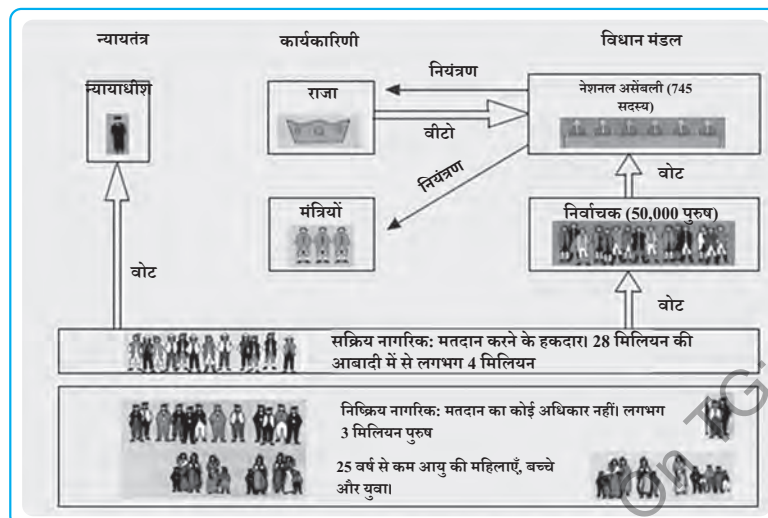
चित्र 4.4: भय की लहर का प्रसार. मानचित्र से पता चलता है कि किस तरह किसानों के जत्थे एक जगह से दूसरी जगह फैलते चले गए।

- ❑ लुई सोलहवें ने पेरिस में सेना तैनात कर दी, जिसके फलस्वरूप 14 जुलाई को बास्तील का विनाश हो गया।
- ❑ ग्रामीण क्षेत्रों में अफ़वाहें फैलीं कि जागीरदारों (manor lords) ने फ़सलों को नष्ट करने के लिए लुटेरों को काम पर रखा है, जिससे किसानों में महलों पर हमला करने, अनाज लूटने और जागीर के अभिलेखों को जलाने की भावना पैदा हो गई। इसके जवाब में कई कुलीन अपने घरों या यहाँ तक कि देश छोड़कर भाग गए।

विद्रोह पर राजशाही की प्रतिक्रिया:

- ❑ लुई सोलहवें ने अपनी प्रजा के विद्रोह को देखते हुए नेशनल असेंबली को मान्यता दी और सहमति जताई कि उनकी शक्ति संवैधानिक रूप से सीमित रहेगी। (चित्र 4.4 देखें) 4 अगस्त 1789 को असेंबली ने सामंती दायित्वों और करों को समाप्त कर दिया।
- ❑ पादरी वर्ग के विशेषाधिकार समाप्त कर दिए गए; चर्च की भूमि ले ली गई, जिससे सरकार को लगभग 2 अरब लिवरे की संपत्ति प्राप्त हुई।

फ्रांस संवैधानिक राजतंत्र बन गया:



चित्र 4.5: 1791 के संविधान के तहत राजनीतिक व्यवस्था

- ❑ नेशनल असेंबली ने सन् 1791 में संविधान का प्रारूप पूरा कर लिया।
- ❑ इसका मुख्य उद्देश्य था-सम्राट की शक्तियों को सीमित करना। एक व्यक्ति के हाथ में केंद्रीकृत होने के बजाय अब इन शक्तियों को विभिन्न संस्थाओं-विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका में विभाजित व हस्तांतरित कर दिया गया।
- ❑ इस प्रकार फ्रांस में संवैधानिक राजतंत्र की नींव पड़ी। चित्र 4.5 दिखाता है कि नई राजनीतिक व्यवस्था कैसे काम करती थी।

नये संविधान के तहत चुनाव प्रणाली:

- ❑ कानून बनाने की शक्ति राष्ट्रीय सभा में निहित थी। नागरिक निर्वाचकों के लिए मतदान करते थे।
- ❑ ये निर्वाचक तब राष्ट्रीय असेंबली के सदस्यों का चयन करते थे। केवल “सक्रिय नागरिक” ही मतदान कर सकते थे। सक्रिय नागरिक होने के लिए, एक व्यक्ति की आयु 25 वर्ष से अधिक होनी चाहिए और उसे कम से कम एक मजदूर के तीन दिन के वेतन के बराबर कर देना चाहिए।
- ❑ इन मानदंडों को पूरा न करने वाले पुरुषों और सभी महिलाओं को “निष्क्रिय नागरिक” माना गया एवं उन्हें मतदान का अधिकार नहीं था। एक निर्वाचक या विधानसभा सदस्य बनने के लिए, किसी को शीर्ष करदाता वर्ग में होना चाहिए।

मानव और नागरिक के अधिकारों की घोषणा:

मानव और नागरिक अधिकारों की घोषणा

1. **स्वतंत्रता और समानता:** मनुष्य स्वतंत्र पैदा होते हैं और उनके अधिकार समान होते हैं।
2. **राजनीति का उद्देश्य:** स्वतंत्रता, संपत्ति, सुरक्षा और उत्पीड़न के प्रतिरोध जैसे प्राकृतिक अधिकारों को संरक्षित करना।
3. **संप्रभुता:** यह राष्ट्र में निहित है; अधिकार जनता से आना चाहिए।
4. **स्वतंत्रता:** कार्य करने की शक्ति, बशर्ते कि इससे दूसरों को कोई नुकसान न पहुँचे।
5. **कानून की सीमा:** कानून केवल समाज के लिए हानिकारक कार्यों पर रोक लगा सकता है।
6. **कानून की अभिव्यक्ति:** कानून सामान्य इच्छा को प्रतिबिंबित करता है; सभी नागरिक समान हैं और इसमें योगदान कर सकते हैं।
7. **गैरकानूनी हिरासत से संरक्षण:** गिरफ्तारी की अनुमति केवल कानून द्वारा निर्धारित रूप में दी जाती है।
8. **अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता:** नागरिक स्वतंत्र रूप से अपनी बात व्यक्त कर सकते हैं, लेकिन दुर्व्यवहार के लिए वे उत्तरदायी हैं।
9. **सामान्य कर:** सार्वजनिक बल और प्रशासन के लिए आवश्यक; यह नागरिकों के साधनों पर आधारित होना चाहिए।
10. **संपत्ति का अधिकार:** यह पवित्र है और इसे केवल सार्वजनिक आवश्यकता के लिए ही पूर्व मुआवजे के साथ लिया जा सकता है।

संविधान में इस घोषणा को शामिल किया गया। इसमें अधिकारों को ‘प्राकृतिक और अविभाज्य’ बताया गया, जिसका अर्थ है कि वे सभी मनुष्यों के लिए जन्मजात हैं एवं उन्हें रद्द नहीं किया जा सकता।

इन अधिकारों में जीवन का अधिकार, बोलने की आजादी, राय की आजादी और कानूनी समानता शामिल थी। राज्य को हर नागरिक के इन प्राकृतिक अधिकारों की रक्षा करने का दायित्व सौंपा गया।

नये संविधान पर जीन-पॉल मैराट की आलोचना

टिप्पणी का स्रोत

- ❑ यह टिप्पणी क्रांतिकारी पत्रकार जीन-पॉल मैराट की ओर से आई है।
- ❑ उनके समाचार पत्र, “लामी डू पेपल (लोगों का मित्र)” ने इस आलोचना के लिए मंच का काम किया।
- ❑ आलोचना के मुख्य बिंदु
- ❑ मैराट का मानना था कि लोगों का प्रतिनिधित्व करने का कार्य धनी लोगों को सौंपा गया था।
- ❑ उन्होंने जोर देकर कहा कि केवल शांतिपूर्ण तरीकों से गरीबों और उत्पीड़ितों की स्थिति में सुधार नहीं आएगा।
- ❑ उन्होंने कानून बनाने की प्रक्रिया पर धन के प्रभाव पर जोर दिया।
- ❑ मैराट ने चेतावनी दी कि कानून तभी लागू होते हैं जब लोग उनका पालन करने के लिए सहमत होते हैं।
- ❑ उन्होंने भविष्यवाणी की कि एक बार जब लोग अभिजात वर्ग को उखाड़ फेंकेंगे, तो वे उसी तरह अन्य धनी संस्थाओं को भी चुनौती देंगे।

राजनीतिक प्रतीकों के मायने

अठारहवीं सदी में ज्यादातर पुरुष और महिलाएँ पढ़ या लिख नहीं सकते थे। इसलिए महत्वपूर्ण विचारों को संप्रेषित करने के लिए मुद्रित शब्दों के बजाय अक्सर छवियों और प्रतीकों का इस्तेमाल किया जाता था। ले बारबियर की पेंटिंग में अधिकारों की घोषणा की सामग्री को व्यक्त करने के लिए ऐसे कई प्रतीकों का इस्तेमाल किया गया है। आइए इन प्रतीकों को पढ़ने की कोशिश करते हैं।

- ❑ **टूटी हुई जंजीर:** गुलामों को जंजीरों में जकड़ने के लिए जंजीरों का इस्तेमाल किया जाता था। टूटी हुई जंजीर आजाद होने का प्रतीक है।
- ❑ **छड़ों का बर्छिदार गठद्वार:** अकेली छड़ को आसानी से तोड़ा जा सकता है पर पूरे गठद्वार को नहीं। एकता में ही बल है।
- ❑ **त्रिभुज के अंदर रोशनी बिखेरती आँख:** सर्वदर्शी आँख ज्ञान का प्रतीक है। सूर्य की किरणें अज्ञान रूपी अंधेरे को मिटा देंगी।
- ❑ **राजदण्ड:** राजसी शक्ति का प्रतीक।
- ❑ **अपनी पूँछ मुँह में लिए साँप:** सनातनता का प्रतीक। अँगूठी का कोई ओर-छोर नहीं होता।
- ❑ **लाल फ्रीजियन टोपी:** दासों द्वारा स्वतंत्र होने पर पहनी जाने वाली टोपी।
- ❑ **नीला-सफ़ेद-लाल:** फ्राँस के राष्ट्रीय रंग।
- ❑ **डैनों या पंख वाली महिला:** कानून का मानवीय रूप।
- ❑ **कानून की पट्टिका:** कानून सबके लिए समान है और उसकी नजर में सभी समान हैं।



फ्रांस में राजतंत्र का उन्मूलन तथा गणतंत्र की स्थापना

- ❑ लुई सोलहवें द्वारा संविधान पर हस्ताक्षर के बाद, फ्रांस में तनाव जारी रहा।
- ❑ लुई सोलहवें ने गुप्त रूप से प्रशिया के राजा के साथ संवाद किया, जिससे पड़ोसी देशों में चिंता उत्पन्न हो गई।
- ❑ संभवित विदेशी हस्तक्षेप की आशंका में, नेशनल असेंबली ने अप्रैल 1792 में प्रशिया और ऑस्ट्रिया के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी।

देशभक्ति और मार्सिले फ्रांस का राष्ट्रगान घोषित:

- ❑ प्रांतों से अनेक स्वयंसेवक फ्रांसीसी सेना में शामिल हो गए, क्योंकि उन्होंने इस संघर्ष को यूरोपीय राजतंत्रों के विरुद्ध लड़ाई के रूप में देखा।
- ❑ रोजेट डी ल'आइल द्वारा रचित और मार्सिले के स्वयंसेवकों द्वारा गाया गया मार्सिले फ्रांस का राष्ट्रगान बन गया।

विचारणीय बिंदु

क्या आप ऐसे वैकल्पिक समाधान या सुधारों के बारे में सोच सकते हैं, जिन्हें फ्रांसीसी सरकार अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वित्तीय संकट और सामाजिक असमानताओं को दूर करने के लिए अपना सकती थी, जिससे फ्रांसीसी क्रांति के प्रकोप को रोका जा सकता था?



क्रांतिकारी युद्धों का प्रभाव:

- ❑ युद्धों के कारण क्षति हुई और आर्थिक तनाव उत्पन्न हुआ।
- ❑ क्रांतिकारी युद्धों से जनता को भारी क्षति एवं आर्थिक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। पुरुषों के मोर्चे पर चले जाने के बाद घर-परिवार और रोजी-रोटी की जिम्मेवारी औरतों के कंधों पर आ पड़ी।
- ❑ देश की आबादी के एक बड़े हिस्से को ऐसा लगता था कि क्रांति के सिलसिले को आगे बढ़ाने की जरूरत है, क्योंकि 1791 के संविधान से सिर्फ अमीरों को ही राजनीतिक अधिकार प्राप्त हुए थे।

राजनीतिक क्लबों का उदय: जैकोबिन्स क्लब का प्रभाव

- ❑ लोग राजनीतिक क्लबों में अड़्डे जमा कर सरकारी नीतियों और अपनी कार्ययोजना पर विशेषतौर से बहस करते थे।
- ❑ इनमें से जैकोबिन क्लब सबसे सफल था। जिसका नाम पेरिस के भूतपूर्व कॉन्वेंट ऑफ़ सेंट जेकब के नाम पर पड़ा, जो अब इस राजनीतिक समूह का अड़्डा बन गया था। इस पूरी अवधि में महिलाएँ भी सक्रिय थीं और उन्होंने भी अपने क्लब बना लिए।
- ❑ जैकोबिन क्लब के सदस्य मुख्यतः समाज के कम समृद्ध हिस्से से आते थे। इनमें छोटे दुकानदार और कारीगर-जैसे जूता बनाने वाले, पेस्ट्री बनाने वाले, घड़ीसाज़, छपाई करने वाले और नौकर व दिहाड़ी मजदूर शामिल थे।
- ❑ उनका नेता मैक्सिमिलियन रोबेस्पियर था। जैकोबिनों के एक बड़े वर्ग ने गोदी कामगारों की तरह धारीदार लंबी पतलून पहनने का निर्णय किया। ऐसा उन्होंने समाज के फ़ैशनपरस्त वर्ग, खासतौर से घुटने तक पहने जाने वाले ब्रीचेस (घुटन्ना) पहनने वाले कुलीनों से खुद को अलग करने के लिए किया।
- ❑ लाल टोपी सैन्स-कुलोट्स पुरुषों के लिए स्वतंत्रता का प्रतीक थी, लेकिन महिलाओं को इससे बाहर रखा गया था।

विद्रोह और राजशाही का अंत:

- ❑ 1792 की गर्मियों में, जैकोबिन्स के नेतृत्व में क्रोधित पेरिसवासियों ने टुइलरीज़ महल पर हमला कर दिया और शाही परिवार को कैद कर लिया।
- ❑ बाद के चुनावों में 21 वर्ष से अधिक आयु के सभी पुरुषों को, चाहे उनकी संपत्ति कितनी भी हो, मताधिकार प्रदान किया गया।
- ❑ नव निर्वाचित सभा कन्वेन्शन ने 21 सितम्बर 1792 को राजशाही को समाप्त कर दिया तथा फ्रांस को गणतंत्र घोषित कर दिया।

राजपरिवार का वध:

- ❑ लुई सोलहवें पर राजद्रोह का आरोप लगाया गया और 21 जनवरी 1793 को प्लेस डे ला कॉनकॉर्ड में सार्वजनिक रूप से उसे फाँसी दे दी गई।
- ❑ इसके तुरंत बाद रानी मैरी एंटोनेट को भी इसी प्रकार का दुर्भाग्य झेलना पड़ा।

आतंक राज (1793-1794):

- ❑ वर्ष 1793 से 1794 तक के काल को आतंक का शासन कहा जाता है। रोबेस्पियर ने कठोर नियंत्रण और दंड की नीति अपनाई।

- वे सभी लोग जिन्हें वे गणतंत्र के दुश्मन मानते थे, जैसे कि भूतपूर्व कुलीन और पादरी, अन्य राजनीतिक दलों के सदस्य, यहाँ तक कि उनकी अपनी पार्टी के सदस्य जो उनके तरीकों से सहमत नहीं थे, उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया, जेल में डाल दिया गया एवं फिर क्रांतिकारी न्यायाधिकरण द्वारा उन पर मुकदमा चलाया गया। अगर अदालत ने उन्हें दोषी पाया तो उन्हें गिलोटिन से मार दिया गया।

रोबेस्पियरे सरकार के अधीन सुधार:

- आर्थिक सुधार:** रोबेस्पियरे सरकार ने कानून बना कर मजदूरी एवं कीमतों की अधिकतम सीमा तय कर दी। गोश्त एवं पावरोटी की राशनिंग कर दी गई। किसानों को अपना अनाज शहरों में ले जाकर सरकार द्वारा तय कीमत पर बेचने के लिए बाध्य किया गया। अपेक्षाकृत महँगे सफ़ेद आटे के इस्तेमाल पर रोक लगा दी गई। सभी नागरिकों के लिए साबुत गेहूँ से बनी और बराबरी का प्रतीक मानी जाने वाली, 'समता रोटी' खाना अनिवार्य कर दिया गया। बोलचाल और संबोधन में भी बराबरी का आचार-व्यवहार लागू करने की कोशिश की गई। परंपरागत मॉन्स्यू (महाशय) और मदाम (महोदया) के स्थान पर अब सभी फ्रांसीसी पुरुषों तथा महिलाओं को सितोयेन (नागरिक) एवं सितोयीन (नागरिका) नाम से संबोधित किया जाने लगा। चर्चों को बंद कर दिया गया और उनके भवनों को बैरक या दफ़तर बना दिया गया।
- राजनीतिक सुधार:** भाषण और संबोधन के माध्यम से भी समानता लाने का प्रयास किया गया।
- सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तन:** परंपरागत मॉन्स्यू (महाशय) एवं मदाम (महोदया) के स्थान पर अब सभी फ्रांसीसी पुरुषों और महिलाओं को सितोयेन (नागरिक) एवं सितोयीन (नागरिका) नाम से संबोधित किया जाने लगा। चर्चों को बंद कर दिया गया और उनके भवनों को बैरक या दफ़तर बना दिया गया।

क्रांतिकारी सरकार ने विभिन्न तरीकों से अपने लोगों की वफ़ादारी को संगठित करने की कोशिश की - उनमें से एक इस तरह के उत्सवों का मंचन था।

प्राचीन ग्रीस और रोम की सभ्यताओं के प्रतीकों का इस्तेमाल एक पवित्र इतिहास की आभा को व्यक्त करने के लिए किया गया था।

मध्य में शास्त्रीय स्तंभों द्वारा उठाए गए ऊँचे मंच पर मंडप नाशवान सामग्री से बना था जिसे तोड़ा जा सकता था।



क्या आप जानते हैं?

गिलोटिन एक ऐसा उपकरण है जिसमें दो डंडे और एक ब्लेड होता है जिससे किसी व्यक्ति का सिर काटा जाता है। इसका नाम डॉ. गिलोटिन के नाम पर रखा गया है जिन्होंने इसका आविष्कार किया था।

रोबेस्पियरे का पतन:

- रोबेस्पियरे ने अपनी नीतियों को इतनी सख्ती से लागू किया कि उसके समर्थक भी त्राहि-त्राहि करने लगे।
- अंततः जुलाई 1794 में न्यायालय द्वारा उसे दोषी ठहराया गया और गिरफ्तार करके अगले ही दिन उसे गिलोटिन पर चढ़ा दिया गया।

डिरेक्टरी शासित फ्रांस:

- जैकोबिन सरकार के पतन के बाद मध्य वर्ग के संपन्न तबके के पास सत्ता आ गई।
- नए संविधान के तहत संपत्तिहीन तबके को मताधिकार से वंचित कर दिया गया। इस संविधान में दो चुनी गई विधान परिषदों का प्रावधान था।
- इन परिषदों ने पाँच सदस्यों वाली एक कार्यपालिका- डिरेक्टरी को नियुक्त किया। इस प्रावधान के ज़रिए जैकोबिनों के शासनकाल वाली एक व्यक्ति-केंद्रित कार्यपालिका से बचने की कोशिश की गई।
- लेकिन, डिरेक्टरों का झगड़ा अक्सर विधान परिषदों से होता और तब परिषद् उन्हें बर्खास्त करने की चेष्टा करती।
- डिरेक्टरी की राजनीतिक अस्थिरता ने सैनिक तानाशाह नेपोलियन बोनापार्ट के उदय का मार्ग प्रशस्त कर दिया।
- शासन में इन उथल-पुथल भरे परिवर्तनों के बावजूद, स्वतंत्रता, कानून के समक्ष समानता और भाईचारे के आदर्श अक्षुण्ण बने रहे।
- इन सिद्धांतों ने आगामी शताब्दी में फ्रांस और शेष यूरोप में राजनीतिक आंदोलनों को प्रेरित एवं संचालित करना जारी रखा।

क्या महिलाओं के लिए भी क्रांति हुई ?

फ्रांसीसी क्रांति में महिलाओं की सक्रिय भूमिका:

- फ्रांसीसी क्रांति के आरंभ से ही महिलाएँ फ्रांसीसी क्रांति की परिवर्तनकारी घटनाओं में उत्साहपूर्वक शामिल रहीं, इस आशा से प्रेरित होकर कि उनकी भागीदारी से लाभकारी सामाजिक सुधार होंगे।
- तीसरे एस्टेट या दर्जे की महिलाओं को अपना जीवन यापन करने के लिए मुख्य रूप से काम करना पड़ता था। उनके व्यवसायों में सिलाई करने वाली, धोबी, बाज़ार विक्रेता और घरेलू नौकर शामिल थे।

- उन्हें अक्सर खाना पकाने, बच्चों की देखभाल और आवश्यक सामान लाने जैसी घरेलू जिम्मेदारियाँ सौंपी जाती थीं। उनके योगदान के बावजूद, महिलाओं को आमतौर पर पुरुषों की तुलना में कम वेतन मिलता था।

महिलाओं की राजनीतिक लामबंदी:

- अपने मुद्दों को आगे बढ़ाने के लिए महिलाओं ने अपने स्वयं के राजनीतिक क्लब और समाचार पत्र स्थापित किए, तथा पूरे फ्रांस में लगभग साठ ऐसे क्लब स्थापित हो गए।
- क्रांतिकारी और रिपब्लिकन महिलाओं की सोसाइटी उनमें से एक महत्वपूर्ण समूह के रूप में उभरी। (चित्र 4.6 देखें)
- मुख्य माँगों में महिलाओं के लिए पुरुषों के समान समान राजनीतिक अधिकार शामिल थे। 1791 के संविधान में महिलाओं को निष्क्रिय नागरिकता प्रदान करना विवाद का एक विशेष मुद्दा था।
- वे मताधिकार, विधानसभा के लिए पात्रता, तथा राजनीतिक पद ग्रहण करने की क्षमता की आकांक्षा रखते थे।



चित्र 4.6: वर्साय की ओर कूच करती पेरिस की औरतें। यह चित्र 5 अक्टूबर 1789 की घटनाओं के कई चित्रों में से एक है। उस दिन महिलाएँ पेरिस से उसांय जाकर राजा को अपने साथ लेकर लौटी थीं।

क्रांतिकारी सरकार द्वारा कानून सुधार:

- प्रारंभिक क्रांतिकारी सरकार ने महिलाओं की सामाजिक स्थिति को बेहतर बनाने वाले कानून लागू किए।
- सभी लड़कियों के लिए अनिवार्य स्कूली शिक्षा की व्यवस्था की गई। महिलाओं को जबरन विवाह के विरुद्ध संरक्षण दिया गया, तथा विवाह को सहमति से किया गया अनुबंध माना गया।
- कानूनी तलाक दोनों लिंगों के लिए सुलभ हो गया। महिलाओं को व्यवसायों के लिए प्रशिक्षण, कलात्मक गतिविधियाँ अपनाने या छोटे व्यवसायों का प्रबंधन करने के अवसर मिले।

संघर्ष का जारी रहना और दमन नीतियाँ:

- इन प्रगतियों के बावजूद, समान राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति एक कठिन लड़ाई बनी रही।

क्रांतिकारी महिला ओलम्प दे गूज (1748-1793) का जीवन

- ओलम्प दे गूज क्रांतिकालीन फ्रांस की राजनीतिक रूप से सक्रिय महिलाओं में सबसे महत्वपूर्ण थीं। उन्होंने संविधान तथा 'पुरुष एवं नागरिक अधिकार घोषणापत्र' का विरोध किया क्योंकि उसमें महिलाओं को मानव मात्र के मूलभूत अधिकारों से वंचित रखा गया था। इसलिए उन्होंने सन् 1791 में 'महिला एवं नागरिक अधिकार घोषणापत्र' तैयार किया जिसे महारानी और नेशनल असेंबली के सदस्यों के पास यह माँग करते हुए भेजा कि इस पर कार्रवाई की जाए।
- सन् 1793 में ओलम्प दे गूज ने महिला क्लबों को जबरदस्ती बंद कर देने के लिए जैकोबिन सरकार की आलोचना की। उन पर नेशनल कन्वेंशन द्वारा देशद्रोह का मुकदमा चलाया गया। इसके तुरंत बाद उन्हें फाँसी पर लटका दिया गया।



- आतंक के शासन ने कई झटके दिए, सरकार ने महिला क्लबों को बंद करने और उनकी राजनीतिक गतिविधियों को बाधित करने के लिए कानून बनाए। कई प्रभावशाली महिलाओं को गिरफ्तार किया गया और कुछ को फाँसी पर चढ़ा दिया गया।

मताधिकार के लिए लंबी लड़ाई:

- मताधिकार और समान वेतन के लिए महिलाओं का आंदोलन अगली 'सदी' में भी अनेक देशों में चलता रहा।
- मताधिकार का संघर्ष उन्नीसवीं सदी के अंत एवं बीसवीं सदी के प्रारंभ तक अंतरराष्ट्रीय मताधिकार आंदोलन के ज़रिए जारी रहा।
- क्रांतिकारी आंदोलन के दौरान फ्रांसीसी महिलाओं की राजनीतिक सर्गमियों को प्रेरक स्मृति के रूप में जिंदा रखा गया।
- अंततः सन् 1946 में फ्रांस की महिलाओं ने मताधिकार हासिल कर लिया।

दास - प्रथा का उन्मूलन

- जैकोबिन शासन के सबसे क्रांतिकारी सामाजिक सुधारों में से एक फ्रांसीसी उपनिवेशों में दासता का उन्मूलन था। कैरिबियन मार्टीनिक, ग्वाडेलोप और सैन डोमिंगो के उपनिवेश तंबाकू, नील, चीनी तथा कॉफी जैसी वस्तुओं के महत्वपूर्ण आपूर्तिकर्ता थे।

त्रिकोणीय दास व्यापार:

- सत्रहवीं शताब्दी के दौरान, उपनिवेशों में श्रम की कमी के कारण, यूरोप, अफ्रीका और अमेरिका के बीच एक त्रिकोणीय व्यापार प्रणाली स्थापित हुई।
- बोर्डो या नैनटेस से फ्रांसीसी व्यापारी अफ्रीका जाते थे, जहाँ वे दास खरीदते थे, जिन्हें फिर कठोर परिस्थितियों में अटलांटिक के पार कैरीबियाई देशों में ले जाया जाता था।
- बाद में इन दासों को विभिन्न वस्तुओं की यूरोपीय माँग को पूरा करने के लिए बागान मालिकों को बेच दिया गया।
- इस व्यापार में शामिल होने के कारण बोर्डो और नैनटेस जैसे शहर आर्थिक रूप से समृद्ध हुए।

विचारणीय बिंदु

क्या आपको लगता है कि फ्रांसीसी क्रांति का महिलाओं के अधिकारों और सामाजिक भूमिकाओं पर प्रभाव महत्वपूर्ण था, कानूनी सुधारों और राजनीतिक लामबंदी को देखते हुए, आतंक के शासनकाल के दौरान बाद में दमन के बावजूद? यह ऐतिहासिक संदर्भ लैंगिक समानता पर आधुनिक दृष्टिकोण को कैसे प्रभावित कर सकता है?

**दास प्रथा और फ्रांसीसी क्रांति:**

- अठारहवीं सदी में फ्रांस में दास प्रथा की ज्यादा निंदा नहीं हुई। नेशनल असेंबली में लंबी बहस हुई कि व्यक्ति के मूलभूत अधिकार उपनिवेशों में रहने वाली प्रजा सहित समस्त फ्रांसीसी प्रजा को प्रदान किए जाएँ या नहीं।
- परंतु दास-व्यापार पर निर्भर व्यापारियों के विरोध के भय से नेशनल असेंबली में कोई कानून पारित नहीं किया गया। लेकिन अंततः सन् 1794 के कन्वेंशन ने फ्रांसीसी उपनिवेशों में सभी दासों की मुक्ति का कानून पारित कर दिया। पर यह कानून एक छोटी-सी अवधि तक ही लागू रहा। दस वर्ष बाद नेपोलियन ने दास प्रथा पुनः शुरू कर दी।
- बागान मालिकों को अपने आर्थिक हित साधने के लिए अफ्रीकी नीग्रो लोगों को गुलाम बनाने की स्वतंत्रता मिल गई। फ्रांसीसी उपनिवेशों से अंतिम रूप से दास-प्रथा का उन्मूलन वर्ष 1848 में किया गया।

नेपोलियन का पराभव और अंतिम उन्मूलन:

- नेपोलियन ने कन्वेंशन द्वारा दास प्रथा के उन्मूलन के मात्र एक दशक बाद ही इसे पुनः लागू करने का विवादास्पद निर्णय लिया।
- कई बागान मालिकों के लिए, स्वतंत्रता की उनकी समझ में विरोधाभासी रूप से, अपने आर्थिक लाभ के लिए दूसरों को गुलाम बनाने का उनका “ अधिकार” भी शामिल था।
- फ्रांसीसी उपनिवेशों में गुलामी अथवा दासता के अंधकार का युग सन् 1848 में निश्चित रूप से समाप्त हो गया।

क्रांति और रोजाना की ज़िंदगी

- सन् 1789 से बाद के वर्षों में फ्रांस के पुरुषों, महिलाओं एवं बच्चों के जीवन में ऐसे अनेक परिवर्तन आए। क्रांतिकारी सरकारों ने कानून बना कर स्वतंत्रता एवं समानता के आदर्शों को रोजाना की ज़िंदगी में उतारने का प्रयास किया।

सेंसरशिप का उन्मूलन:

- 1789 की गर्मियों में बास्तील पर हमले के बाद, सेंसरशिप को समाप्त करने वाला एक महत्वपूर्ण कानून लागू किया गया।
- पुरानी व्यवस्था के दौरान, राजा के सेंसर को सभी लिखित सामग्रियों और सांस्कृतिक गतिविधियों को मंजूरी देनी होती थी।
- हालाँकि, मानव और नागरिक अधिकारों की घोषणा में भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को अंतर्निहित अधिकार के रूप में मान्यता दी गई।

प्रिंट मीडिया का उत्कर्ष:

- परंतु अब अधिकारों के घोषणापत्र ने भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को नैसर्गिक अधिकार घोषित कर दिया। परिणामस्वरूप फ्रांस के शहरों में अखबारों, पर्चा, पुस्तकों एवं छपी हुई तस्वीरों की बाढ़ आ गई जहाँ से वह तेजी से गाँव-देहात तक जा पहुँची।



चित्र 4.7: दासमुक्ति: सन् 1794 के इस चित्र में दासों की मुक्ति का विवरण है। शीर्ष पर तिरंगे बैनर का नारा है- ‘मनुष्य के अधिकार’। नीचे अभिलेख कहता है- ‘गुलामों की मुक्ति’। एक फ्रांसीसी महिला अफ्रीकी एवं अमेरिकी-इंडियन दासों को यूरोपीय कपड़े देकर उन्हें ‘सभ्य’ बनाने की चेष्टा कर रही है।

- ❑ उनमें फ्रांस में घट रही घटनाओं एवं परिवर्तनों का ब्यौरा और उन पर टिप्पणी होती थी। प्रेस की स्वतंत्रता का मतलब यह था कि किसी भी घटना पर परस्पर विरोधी विचार भी व्यक्त किए जा सकते थे।
- ❑ प्रिंट माध्यम का उपयोग करके एक पक्ष ने दूसरे पक्ष को अपने दृष्टिकोण से सहमत कराने की कोशिश की। प्रेस को मिली नई स्वतंत्रता ने यह सुनिश्चित किया कि विविध दृष्टिकोण प्रस्तुत किए जा सकें, तथा प्रत्येक पक्ष अपने विचार को साझा करने और मान्य करने के लिए प्रिंट का उपयोग कर सके।

राजनीतिक आदर्शों की सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ:

- ❑ नाटक, संगीत और उत्सवी जुलूसों में असंख्य लोग जाने लगे। स्वतंत्रता और न्याय के बारे में राजनीतिज्ञों व दार्शनिकों के पांडित्यपूर्ण लेखन को समझने और उससे जुड़ने का यह लोकप्रिय तरीका था, क्योंकि किताबों को पढ़ना तो मुट्ठी भर शिक्षितों के लिए ही संभव था।
- ❑ इन आयोजनों ने स्वतंत्रता और न्याय जैसे जटिल विचारों को अधिक सुलभ बना दिया, तथा उन्हें शिक्षित अभिजात वर्ग से आगे बढ़कर व्यापक जनसमूह तक पहुँचाया।

निष्कर्ष

फ्रांसीसी क्रांति ने 18वीं शताब्दी के अंत में समाज, राजनीति और अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए। यह क्रांति असमानता, राजनीतिक असंतोष और आर्थिक संकट के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आई। आम जनता मुख्य रूप से श्रमिक और किसान वर्ग, उच्च वर्गों के शोषण तथा राजशाही के निरंकुश शासन के खिलाफ उठ खड़े हुए। क्रांति ने “स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व” के सिद्धांतों को सामने रखा, जिससे लोकतंत्र और मानव अधिकारों की नई अवधारणाएँ विकसित हुईं। आखिरकार, नेपोलियन बोनापार्ट के नेतृत्व में क्रांति का अंत हुआ, लेकिन इसके परिणामस्वरूप यूरोप में राजनीतिक बदलाव आए। फ्रांसीसी क्रांति ने न केवल फ्रांस बल्कि पूरी दुनिया में राजनीतिक विचारों और सामाजिक संरचनाओं को प्रभावित किया, जिससे लोकतांत्रिक और समानता आधारित समाज की नींव पड़ी।

महत्वपूर्ण शब्दावलियाँ

- ❖ **लिवरे:** फ्रांस में मुद्रा की इकाई, सन् 1794 में बंद कर दी गई।
- ❖ **पादरी वर्ग:** चर्च में विशेष कार्यों के लिए नियुक्त व्यक्तियों का समूह।
- ❖ **टीथ:** चर्च द्वारा लगाया जाने वाला कर, जो कृषि उपज का दसवाँ हिस्सा होता है।
- ❖ **(टेल) कर:** राज्य को सीधे भुगतान किया जाने वाला अर्थात् प्रत्यक्ष कर।
- ❖ **निर्वाह संकट:** एक चरम स्थिति जहाँ आजीविका के मूल साधन नष्ट हो जाते हैं या संकटग्रस्त स्थिति।
- ❖ **अनाम:** वह जिसका नाम अज्ञात रहता है।
- ❖ **कैट्यू (Chateau) (बहुवचन: Chateaux):** किसी राजा या कुलीन का महल या आलीशान निवास।
- ❖ **जागीर/मैनर:** एक संपत्ति जिसमें स्वामी की भूमि और उसका भवन शामिल होता है।
- ❖ **कॉन्वेंट:** धार्मिक जीवन के लिए समर्पित समुदाय से संबंधित भवन।
- ❖ **राजद्रोह:** अपने देश या सरकार के साथ विश्वासघात करना।
- ❖ **नीग्रो:** सहारा मरुस्थल के दक्षिण में अफ्रीका के मूल निवासियों के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला शब्द। यह एक अपमानजनक शब्द है जो अब आम इस्तेमाल में नहीं है।
- ❖ **मुक्ति (Emancipation):** मुक्त करने का कार्य।
- ❖ **वाटरलू:** बेल्जियम में अवस्थित एक स्थान और सन् 1815 में नेपोलियन बोनापार्ट की अंतिम हार का साक्षी स्थल।
- ❖ **स्वतंत्रता (Liberty):** समाज में किसी के व्यवहार या राजनीतिक विचारों पर प्राधिकार द्वारा लगाए गए दमनकारी प्रतिबंधों से मुक्त होने की स्थिति।
- ❖ **लोकतांत्रिक अधिकार:** वे स्वतंत्रताएँ और अधिकार जिनकी जनता लोकतांत्रिक देश में अपेक्षा कर सकती हैं, जैसे वोट देने का अधिकार, स्वतंत्र भाषण का अधिकार एवं निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार।
- ❖ **सामंती व्यवस्था:** मध्य युग के दौरान यूरोप में प्रचलित एक सामाजिक व्यवस्था जिसमें लोग कुलीनों के लिए काम करते थे और लड़ते थे, जिसके बदले में कुलीन उन्हें सुरक्षा एवं भूमि प्रदान करते थे।



यूरोप में समाजवाद एवं रूसी क्रांति

संदर्भ: इस अध्याय में NCERT पाठ्यपुस्तक की कक्षा-IX (भारत और समकालीन विश्व-I) के अध्याय-2 का सारांश शामिल है।

परिचय

यूरोप में समाजवाद के उदय और रूसी क्रांति पर चर्चा करते हुए, इस अध्याय में हम उन्नीसवीं शताब्दी की कुछ महत्वपूर्ण राजनीतिक परंपराओं का अध्ययन करेंगे और देखेंगे कि उन्होंने परिवर्तन के संदर्भ में क्या प्रभाव डाला। इसके बाद हम एक ऐसी ऐतिहासिक घटना पर अपना ध्यान केंद्रित करेंगे जिसमें समाज के पुनर्गठन का एक गंभीर प्रयास किया गया। रूस में हुई क्रांति के फलस्वरूप समाजवाद बीसवीं सदी का स्वरूप तय करने वाले सबसे महत्वपूर्ण और शक्तिशाली विचारों की शृंखला का हिस्सा बन गया। इसके अलावा इस अध्याय में हम उभरती सोवियत सरकार द्वारा लाए गए परिवर्तनों, औद्योगीकरण की प्रक्रिया, कृषि के मशीनीकरण और नागरिकों के अधिकारों जैसे विषयों पर ध्यान केंद्रित करेंगे।

सामाजिक परिवर्तन का युग

- फ्रांसीसी क्रांति ने समाज की संरचना में नाटकीय बदलाव लाने की संभावना को खोल दिया।
- अठारहवीं शताब्दी से पहले समाज मोटे तौर पर संपदा और व्यवस्थाओं में विभाजित था तथा अभिजात वर्ग एवं चर्च ही आर्थिक व सामाजिक शक्ति को नियंत्रित करते थे।
- क्रांति के बाद, यूरोप और एशिया सहित दुनिया के कई हिस्सों में व्यक्तिगत अधिकारों तथा सामाजिक शक्ति पर चर्चा होने लगी।
- मगर यूरोप में भी सभी लोग आमूल समाज परिवर्तन के पक्ष में नहीं थे। इस सवाल पर सबकी अलग-अलग राय थी। बहुत सारे लोग बदलाव के लिए तो तैयार थे, लेकिन वह चाहते थे कि यह बदलाव धीरे-धीरे हो।
- एक खेमा मानता था कि समाज का आमूल पुनर्गठन जरूरी है। कुछ 'रुढ़िवादी' (Conservatives) थे तो कुछ 'उदारवादी' (Liberals) या 'आमूल परिवर्तनवादी' (Radical, रैडिकल) समाधानों के पक्ष में थे।
- रूस में क्रांति के माध्यम से, समाजवाद बीसवीं सदी में समाज को आकार देने वाले सबसे महत्वपूर्ण और शक्तिशाली विचारों में से एक बन गया।

उदारवादी, कट्टरपंथी (रैडिकल) और रुढ़िवादी:

- **उदारवादी:** उदारवादी एक ऐसा राष्ट्र चाहते थे जिसमें सभी धर्मों को बराबर सम्मान और स्थान मिले। उन्होंने वंशवादी शासन की अनियंत्रित शक्ति का विरोध किया और एक प्रतिनिधि, निर्वाचित संसदीय सरकार के लिए तर्क दिया जो एक अच्छी तरह से प्रशिक्षित न्यायपालिका द्वारा व्याख्या किए गए कानूनों के अधीन थी जो शासकों एवं अधिकारियों से स्वतंत्र थी।
 - उदारवादी समूह वंश-आधारित शासकों की अनियंत्रित सत्ता के भी विरोधी थे। वे सरकार के समक्ष व्यक्ति मात्र के अधिकारों की रक्षा के पक्षधर थे। उनका कहना था कि सरकार को किसी के अधिकारों का हनन करने या उन्हें छीनने का अधिकार नहीं दिया जाना चाहिए।
 - यह समूह प्रतिनिधित्व पर आधारित एक ऐसी निर्वाचित सरकार के पक्ष में था जो शासकों और अफसरों के प्रभाव से मुक्त एवं सुप्रशिक्षित न्यायपालिका द्वारा स्थापित किए गए कानूनों के अनुसार शासन-कार्य चलाए। पर यह समूह 'लोकतंत्रवादी' (Democrat) नहीं था।
 - ये लोग सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार यानी सभी नागरिकों को वोट का अधिकार देने के पक्ष में नहीं थे। उनका मानना था कि वोट का अधिकार केवल संपत्तिधारियों को ही मिलना चाहिए।

- ❑ **कट्टरपंथी:** कट्टरपंथी ऐसी सरकार के पक्ष में थे जो देश की आबादी के बहुमत के समर्थन पर आधारित हो। इनमें से बहुत सारे लोग महिला मताधिकार आंदोलन के भी समर्थक थे। उदारवादियों के विपरीत ये लोग बड़े जमींदारों और संपन्न उद्योगपतियों को प्राप्त किसी भी तरह के विशेषाधिकारों के खिलाफ थे। वे निजी संपत्ति के विरोधी नहीं थे लेकिन केवल कुछ लोगों के पास संपत्ति के संकेंद्रण का विरोध जरूर करते थे।
- ❑ **रूढ़िवादी:** उन्नीसवीं सदी के बाद, रूढ़िवादियों ने बदलावों को स्वीकार किया, लेकिन उनका यह भी मानना था कि अतीत का सम्मान किया जाना चाहिए और बदलाव धीरे-धीरे स्वीकार करना चाहिए।
 - कई लोगों ने महिलाओं के मताधिकार आंदोलन का समर्थन किया। उन्होंने बड़े जमींदारों और धनी फैक्ट्री मालिकों के विशेषाधिकारों का विरोध किया। वे निजी संपत्ति के अस्तित्व के खिलाफ नहीं थे, लेकिन कुछ लोगों के हाथों में संपत्ति का संकेंद्रण नापसंद करते थे।
 - रूढ़िवादी कट्टरपंथी और उदारवादियों के विरोधी थे, लेकिन उन्नीसवीं सदी तक, उन्होंने स्वीकार किया कि कुछ बदलाव अपरिहार्य थे, लेकिन उनका मानना था कि अतीत का सम्मान किया जाना चाहिए और बदलाव को धीमी प्रक्रिया के माध्यम से लाया जाना चाहिए।

औद्योगिक समाज और सामाजिक परिवर्तन:

- ❑ यह दौर गहन सामाजिक एवं आर्थिक बदलावों का था। यह ऐसा समय था जब नए शहर बस रहे थे, नए-नए औद्योगिक क्षेत्र विकसित हो रहे थे, रेलवे का काफी विस्तार हो चुका था और औद्योगिक क्रांति संपन्न हो चुकी थी।
- ❑ औद्योगीकरण ने औरतों-आदमियों और बच्चों, सबको कारखानों में ला दिया। काम के घंटे यानी पाली बहुत लंबी होती थी और मजदूरी बहुत कम थी।
- ❑ बेरोजगारी आम समस्या थी। औद्योगिक वस्तुओं की मांग में गिरावट आ जाने पर तो बेरोजगारी और बढ़ जाती थी।
- ❑ उदारवादियों और कट्टरपंथियों ने व्यापार या औद्योगिक उपक्रमों के माध्यम से धन कमाया। उनके अनुसार, समाज का विकास तभी हो सकता है जब व्यक्तियों की स्वतंत्रता सुनिश्चित की जाए, अगर गरीब लोग श्रम कर सकें और अगर पूँजी वाले लोग बिना रोक-टोक के काम कर सकें।
- ❑ फ्रांस, इटली, जर्मनी और रूस में, क्रांतिकारी मौजूदा राजाओं को उखाड़ फेंकते हैं। राष्ट्रवादियों ने समान अधिकारों वाले 'राष्ट्र' बनाने के लिए क्रांतियों की बात की।
- ❑ वर्ष 1815 के बाद इटली के राष्ट्रवादी गिसेपे मेजिनी ने यही लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अपने समर्थकों के साथ मिलकर राजा के खिलाफ साजिश रची थी।
 - भारत सहित दुनिया भर के राष्ट्रवादी उसकी रचनाओं को पढ़ते थे।

यूरोप में समाजवाद का आगमन:

- ❑ उन्नीसवीं सदी के मध्य तक यूरोप में समाजवाद विचारों का एक जाना-माना समूह था।
- ❑ समाजवादी निजी संपत्ति के खिलाफ थे और इसे उस समय की सभी सामाजिक बुराइयों की जड़ मानते थे। वे इसे बदलना चाहते थे और इसके लिए अभियान चलाते थे।
- ❑ रॉबर्ट ओवेन (1771-1858) ने इंडियाना (अमेरिका) में न्यू हार्मनी नामक एक सहकारी समुदाय बनाने की कोशिश की। लुइस ब्लैंक (1813-1882) चाहते थे कि सरकार सहकारी समितियों को प्रोत्साहित करे और पूँजीवादी उद्यमों की जगह ले।
- ❑ कार्ल मार्क्स (1818-1883) और फ्रेडरिक एंगेल्स (1820-1895) ने तर्कों के इस समूह में अन्य विचार जोड़े। **मार्क्स के अनुसार**, औद्योगिक समाज 'पूँजीवादी' था, जो कारखानों में निवेश की गई पूँजी का मालिक था, और पूँजीपतियों का लाभ श्रमिकों द्वारा उत्पादित किया जाता था।
- ❑ इस दौरान पूँजीवाद और निजी संपत्ति के शासन को उखाड़ फेंका गया। मार्क्स का मानना था कि एक साम्यवादी समाज भविष्य का प्राकृतिक समाज था।

विचारणीय बिंदु

समाजवाद और साम्यवाद दोनों की उत्पत्ति कार्ल मार्क्स के विचारों से हुई है। मार्क्स ने यूरोप में रहकर अपने विचारों का प्रचार किया। क्या आपको लगता है कि रूस में समाजवाद सफल रहा लेकिन यूरोप में असफल रहा यदि आपका जवाब हाँ है तो इसका कारण बताइए और यदि नहीं तो क्यों?



समाजवाद के लिए समर्थन:

- 1870 का दशक आते-आते समाजवादी विचार पूरे यूरोप में फैल चुके थे। अपने प्रयासों में समन्वय लाने के लिए समाजवादियों ने **द्वितीय इंटरनेशनल** के नाम से एक अंतरराष्ट्रीय संस्था भी बना ली थी।
- बेहतर जीवन और काम-काजी परिस्थितियों के लिए लड़ने के लिए जर्मनी और इंग्लैंड में श्रमिकों द्वारा संघ बनाए गए। वर्ष **1905 तक समाजवादियों और ट्रेड यूनियनवादियों द्वारा लेबर पार्टी एवं सोशलिस्ट पार्टी का गठन** किया गया।

1871 का पेरिस कम्यून:

- (चित्र 5.1 देखें) मार्च और मई 1871 के बीच पेरिस में हुए लोकप्रिय विद्रोह का एक दृश्य दर्शाती है। यह वह समय था जब पेरिस की नगर परिषद (कम्यून) पर 'लोगों की सरकार' का कब्जा हो गया था, जिसमें मजदूर, आम लोग, पेशेवर, राजनीतिक कार्यकर्ता और अन्य लोग शामिल थे।
- यह विद्रोह फ्रांसीसी राज्य की नीतियों के खिलाफ बढ़ते असंतोष की पृष्ठभूमि में उभरा। 'पेरिस कम्यून' को अंततः सरकारी सैनिकों ने कुचल दिया, लेकिन इसे दुनिया भर के समाजवादियों ने समाजवादी क्रांति की प्रस्तावना के रूप में मनाया।
- पेरिस कम्यून को दो महत्वपूर्ण विरासतों के लिए भी लोकप्रिय रूप से याद किया जाता है:
 - मजदूरों के लाल झंडे के साथ इसके जुड़ाव के कारण- यह वह झंडा था जिसे पेरिस में कम्यूनाईस (क्रांतिकारियों) ने अपनाया था।
 - 'मार्सिलेस', जिसे मूल रूप से वर्ष 1792 में एक युद्ध गीत के रूप में लिखा गया था, कम्यून और स्वतंत्रता के संघर्ष का प्रतीक बन गया।



चित्र 5.1: मार्च और मई 1871 के बीच पेरिस में हुए लोकप्रिय विद्रोह का एक दृश्य

रूसी क्रांति

- 1917 की अक्टूबर क्रांति में रूस में समाजवादियों ने सरकार संभाली।
- फरवरी 1917 में राजशाही के पतन और अक्टूबर की घटनाओं को रूसी क्रांति कहा गया। (चित्र 5.2 देखें)

1914 में रूसी साम्राज्य:

- सन् 1914 में रूस और उसके साम्राज्य पर ज़ार निकोलस द्वितीय का शासन था।
 - रूसी साम्राज्य में वर्तमान फिनलैंड, लातविया, लिथुआनिया, एस्टोनिया, पोलैंड के कुछ हिस्से, यूक्रेन और बेलारूस शामिल थे, जो प्रशांत महासागर तक फैला हुआ था तथा जिसमें आज के मध्य एशियाई राज्य, साथ ही जॉर्जिया, आर्मेनिया एवं अज़रबैजान शामिल थे।
- यहाँ की अधिकांश आबादी रूसी रूढ़िवादी ईसाई समुदाय की थी।
- साम्राज्य में कैथोलिक, प्रोटेस्टेंट, मुस्लिम और बौद्ध भी शामिल थे।



चित्र 5.2: 1914 का यूरोप इसमें रूसी साम्राज्य और पहले महायुद्ध में शामिल यूरोपीय देशों को दर्शाया गया है।

अर्थव्यवस्था और समाज:

- बीसवीं सदी की शुरुआत में, रूसी आबादी का एक बड़ा हिस्सा कृषि कार्यों में संलग्न था, जो रूसी साम्राज्य की 85% आबादी थी जो कृषि से अपनी आजीविका कमाते थे, जो बाजार के साथ-साथ अपनी जरूरतों के लिए भी खेती करते थे।
- उद्योग कुछ ही इलाकों में पाए जाते थे। सेंट पीटर्सबर्ग और मॉस्को प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र थे।
- शिल्पकारों ने ज्यादातर उत्पादन किया, लेकिन शिल्प कार्यशालाओं के साथ-साथ बड़ी फैक्ट्रियाँ भी मौजूद थीं।
- कोयला उत्पादन दोगुना हो गया और लोहा तथा इस्पात उत्पादन चौगुना हो गया।
- 1890 के दशक में, ज्यादा फैक्ट्रियाँ स्थापित की गईं और उद्योग में विदेशी निवेश बढ़ा। न्यूनतम मजदूरी और काम के सीमित घंटे सुनिश्चित करने के लिए बड़ी फैक्ट्रियों की निगरानी सरकार द्वारा की जाती थी। रहने की जगह कमरों से लेकर छात्रावासों तक में थी।
- मजदूर एक विभाजित सामाजिक समूह थे। एक समूह वह था जिसका अपने गाँवों से गहरा संबंध था और दूसरा समूह वह था, जो स्थायी रूप से शहरों में बस गए थे।

- सन् 1914 तक फैक्टरी श्रम शक्ति में महिलाओं की हिस्सेदारी 31 प्रतिशत थी, लेकिन उन्हें पुरुषों की तुलना में कम वेतन दिया जाता था (पुरुष के वेतन का आधा से तीन-चौथाई तक)।
- कौशल और संबंधित क्षेत्र में निपुण ज्ञान के आधार पर विभाजन के बावजूद, जब भी कर्मचारी बर्खास्तगी या काम की परिस्थितियों के बारे में नियोक्ताओं से असहमत होते थे, तो वे काम बंद करने के लिए एकजुट हो जाते थे।
 - ये हड़तालें वर्ष 1896-1897 के दौरान कपड़ा उद्योग में तथा 1902 के दौरान धातु उद्योग में अक्सर हुईं।
- किसानों ने ज्यादातर ज़मीन पर खेती की, लेकिन कुलीन वर्ग, राजघराने और रूढ़िवादी चर्च के पास बड़ी संपत्ति थी। कुलीनों को ज़ार की सेवाओं के ज़रिए सत्ता और पद मिला। रूस में, किसान कुलीनों की ज़मीन चाहते थे। हालाँकि मज़दूरों की तरह, किसान भी विभाजित थे।
- रूसी किसान यूरोप के बाकी किसानों के मुकाबले एक और लिहाज़ से भी भिन्न थे। यहाँ के किसान समय-समय पर सारी ज़मीन को अपने कम्पून (मीर) को सौंप देते थे और फिर कम्पून ही प्रत्येक परिवार की ज़रूरत के हिसाब से किसानों को ज़मीन बाँटता था।

रूस में समाजवाद:

- सन् 1914 से पहले रूस में सभी राजनीतिक पार्टियाँ गैरकानूनी थीं।
- मार्क्स के विचारों को मानने वाले समाजवादियों ने सन् 1898 में रशियन सोशल डेमोक्रेटिक वर्कर्स पार्टी (रूसी सामाजिक लोकतांत्रिक श्रमिक पार्टी) का गठन किया था। सरकारी आतंक के कारण इस पार्टी को गैरकानूनी संगठन के रूप में काम करना पड़ता था। इस पार्टी का एक अखबार निकलता था, उसने मज़दूरों को संगठित किया था और हड़ताल आदि कार्यक्रम आयोजित किए थे।
- पूरी उन्नीसवीं सदी में, समाजवादी ग्रामीण इलाकों में सक्रिय थे और उन्होंने वर्ष 1900 में समाजवादी क्रांतिकारी पार्टी का गठन किया। पार्टी ने किसानों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया और माँग की कि कुलीनों की भूमि किसानों को हस्तांतरित की जाए।
- समाजवादी क्रांतिकारी पार्टी में विभाजन: संगठन की रणनीति को लेकर समाजवादी क्रांतिकारी पार्टी में विभाजन था।
 - लेनिन का मानना था कि किसानों में एकजुटता नहीं है; वे बँट हुए हैं। कुछ किसान गरीब थे तो कुछ अमीर, कुछ मज़दूरी करते थे तो कुछ पूँजीपति थे जो नौकरों से खेती करवाते थे। इन आपसी 'विभेदों' के चलते वे सभी समाजवादी आंदोलन का हिस्सा नहीं हो सकते थे।
 - सांगठनिक रणनीति के सवाल पर पार्टी में गहरे मतभेद थे। व्लादिमीर लेनिन (बोलशेविक खेमे के मुखिया) सोचते थे कि ज़ार (राजा) शासित रूस जैसे दमनकारी समाज में पार्टी अत्यंत अनुशासित होनी चाहिए और अपने सदस्यों की संख्या व स्तर पर उसका पूरा नियंत्रण होना चाहिए।
 - मेंशेविकों का मानना था कि पार्टी में सभी को सदस्यता दी जानी चाहिए।

एक उथल-पुथल का समय: 1905 की क्रांति

- रूस एक निरंकुश राजशाही था। अन्य यूरोपीय शासकों के विपरीत बीसवीं सदी की शुरुआत में भी ज़ार राष्ट्रीय संसद के अधीन नहीं था।
- उदारवादियों ने इस स्थिति को खत्म करने के लिए बड़े पैमाने पर मुहिम चलाई। सन् 1905 की क्रांति के दौरान उन्होंने संविधान की रचना के लिए सोशल डेमोक्रेट और समाजवादी क्रांतिकारियों को साथ लेकर किसानों एवं मज़दूरों के बीच काफी काम किया।
- रूसी साम्राज्य के तहत उन्हें राष्ट्रवादियों (जैसे पोलैंड में) और इस्लाम के आधुनिकीकरण के समर्थक ज़ेदियों (मुस्लिम बहुल इलाकों में) का भी समर्थन मिला।
- रूसी श्रमिकों के लिए, वर्ष 1904 से बुरे दिन शुरू हुए, क्योंकि आवश्यक वस्तुओं की कीमतें बढ़ गईं और उनकी वास्तविक मज़दूरी में 20 प्रतिशत की गिरावट आई।
- श्रमिक कार्य दिवस को घटाकर आठ घंटे करने, मज़दूरी में वृद्धि और कार्य स्थितियों में सुधार की माँग करते हुए हड़ताल पर चले गए।
- जब जुलूस विंटर पैलेस पहुँचा तो पुलिस और कोसैक्स ने उस पर हमला किया। खूनी रविवार के नाम से मशहूर इस घटना ने घटनाओं की एक श्रृंखला शुरू की जिसके परिणामस्वरूप 1905 की क्रांति हुई।
- 1905 की क्रांति के दौरान, ज़ार ने एक निर्वाचित परामर्शदात्री संसद या ड्यूमा के निर्माण की अनुमति दी। वर्ष 1905 के बाद, अधिकांश समितियाँ और यूनियनों अनौपचारिक रूप से काम करती रहीं, क्योंकि उन्हें अवैध घोषित कर दिया गया था।

प्रथम विश्व युद्ध और रूसी साम्राज्य:

- सन् 1914 में दो यूरोपीय गठबंधनों के बीच युद्ध छिड़ गया। एक खेमे में जर्मनी, ऑस्ट्रिया और तुर्की (केंद्रीय शक्तियाँ) थे तो दूसरे खेमे में फ्रांस, ब्रिटेन व रूस (बाद में इटली और रूमानिया भी इस खेमे में शामिल हो गए) थे।
- इन सभी देशों के पास विशाल वैश्विक साम्राज्य थे इसलिए यूरोप के साथ-साथ यह युद्ध यूरोप के बाहर भी फैल गया था। इसी युद्ध को पहला विश्वयुद्ध कहा जाता है।

- प्रथम विश्व युद्ध अत्यधिक लोकप्रिय हो गया, और जैसे-जैसे यह आगे बढ़ा, ज़ार ने ड्यूमा में मुख्य दलों से परामर्श करने से इनकार कर दिया एवं समर्थन कम होता गया।
- प्रथम विश्व युद्ध पूर्वी मोर्चे और पश्चिमी मोर्चे पर अलग था। वर्ष 1914 और 1916 के बीच रूसी सेना जर्मनी एवं ऑस्ट्रिया में बुरी तरह हार गई।
- रूसी सेना ने दुश्मन को ज़मीन पर रहने से रोकने के लिए फ़सलों और इमारतों को नष्ट कर दिया। बाल्टिक सागर पर जर्मन नियंत्रण के कारण देश औद्योगिक वस्तुओं के अन्य आपूर्तिकर्ताओं से कट गया था।
- सन् 1916 तक रेलवे लाइनें टूटने लगीं। शहरों में लोगों के लिए रोटी और आटा दुर्लभ हो गया। सन् 1916 की सर्दियों तक, अनाज की दुकानों पर दंगे आम हो गए थे।

पेत्रोग्राद में फरवरी क्रांति

- सन् 1917 की सर्दियों में राजधानी पेत्रोग्राद की हालत बहुत खराब थी। ऐसा लगता था मानो जनता में मौजूद भिन्नताओं को ध्यान में रखकर ही शहर की बनावट तय की गई थी। मज़दूरों के क्वार्टर और कारखाने नेवा नदी के दाएँ तट पर थे। बाएँ किनारे पर फैशनेबल इलाके, विंटर पैलेस और सरकारी इमारतें थीं। जिस महल में ड्यूमा की बैठक होती थी वह भी इसी तरफ़ था।
- खाद्य पदार्थों की कमी ने मज़दूरों के क्वार्टरों को बुरी तरह प्रभावित किया। दाहिने किनारे पर 22 फ़रवरी को एक कारखाना बंद कर दिया गया।
- महिलाओं ने हड़तालों का भी नेतृत्व किया और इसे अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस कहा जाने लगा। सरकार ने कर्फ्यू लगा दिया, क्योंकि फैशनेबल क्वार्टर और आधिकारिक इमारतें मज़दूरों से घिरी हुई थीं।
- **25 फ़रवरी को ड्यूमा को निलंबित** कर दिया गया। सड़कों पर प्रदर्शनकारियों की भीड़ उमड़ पड़ी और वे रोटी, मज़दूरी, बेहतर घंटे एवं लोकतंत्र के नारे लगा रहे थे। सरकार ने घुड़सवार सेना को बुलाया, लेकिन उन्होंने प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाने से इनकार कर दिया।
- सैनिक और हड़ताली मज़दूर उसी इमारत में 'सोवियत' या 'परिषद' बनाने के लिए इकट्ठा हुए जहाँ ड्यूमा की बैठक होती थी और इसे पेत्रोग्राद सोवियत कहा जाता है। सोवियत नेताओं और ड्यूमा नेताओं ने देश चलाने के लिए एक अनंतिम सरकार बनाई।
- **रूस का भविष्य सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित संविधान सभा द्वारा तय किया जाएगा। पेत्रोग्राद ने फरवरी क्रांति का नेतृत्व** किया जिसने फरवरी 1917 में राजशाही को गिरा दिया।

फरवरी के बाद:

- अनंतिम सरकार के तहत, सेना के अधिकारी, ज़मींदार और उद्योगपति प्रभावशाली थे। उदारवादियों और समाजवादियों ने एक निर्वाचित सरकार की दिशा में काम किया।
- उनमें उदारवादी और समाजवादी जल्दी से जल्दी निर्वाचित सरकार का गठन चाहते थे। जन सभा करने और संगठन बनाने पर लगी पाबंदी हटा ली गई। हालाँकि निर्वाचन का तरीका सब जगह एक जैसा नहीं था लेकिन पेत्रोग्राद सोवियत की तर्ज पर सब जगह 'सोवियतें' बना ली गई थी।
- **व्लादिमीर लेनिन की प्रमुख माँगें:** अप्रैल 1917 में, बोल्शेविक नेता व्लादिमीर लेनिन अपने निर्वासन से रूस लौट आए। लेनिन ने तीन चीज़ों की माँग की जिन्हें 'अप्रैल थीसिस' कहा जाता है।
 - वह चाहते थे कि युद्ध समाप्त हो;
 - भूमि किसानों को हस्तांतरित की जाए;
 - बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया जाए।
- उन्होंने बोल्शेविक पार्टी का नाम बदलकर कम्युनिस्ट पार्टी करने पर जोर दिया। गर्मियों के दौरान मज़दूरों का आंदोलन फैल गया। (चित्र 5.3 देखें)
- फ़ैक्ट्री समितियाँ बनाई गईं और ट्रेड यूनियनों की संख्या में वृद्धि हुई।
- जब अनंतिम सरकार ने देखा कि उसकी शक्ति कम हो गई है और बोल्शेविक प्रभाव बढ़ गया है, तो उन्होंने फैलते असंतोष के खिलाफ़ कड़े कदम उठाने का फैसला किया। ग्रामीण इलाकों में, किसानों और उनके समाजवादी क्रांतिकारी नेताओं ने भूमि के पुनर्वितरण के लिए दबाव डाला। समाजवादी क्रांतिकारियों से प्रोत्साहित होकर, किसानों ने जुलाई और सितंबर 1917 के बीच भूमि पर कब्ज़ा कर लिया।

अक्तूबर 1917 की क्रांति:

- जैसे-जैसे अंतरिम सरकार और बोल्शेविकों के बीच टकराव बढ़ता गया, लेनिन को अंतरिम सरकार द्वारा तानाशाही थोप देने की आशंका दिखाई देने लगी। सितंबर में उन्होंने सरकार के खिलाफ विद्रोह के बारे में चर्चा शुरू कर दी। सेना और फ़ैक्ट्री सोवियतों में मौजूद बोल्शेविकों को इकट्ठा किया गया।
- 16 अक्तूबर 1917 को लेनिन ने पेत्रोग्राद सोवियत और बोल्शेविक पार्टी को सत्ता पर समाजवादी कब्ज़ा करने के लिए सहमत होने के लिए राजी किया। कब्ज़ा

करने के लिए, लियोन ट्रॉट्स्की के नेतृत्व में सोवियत द्वारा एक सैन्य क्रांतिकारी समिति नियुक्त की गई।

- 24 अक्टूबर को विद्रोह शुरू हो गया। संकट की आशंका को देखते हुए प्रधानमंत्री केरेन्स्की सैनिक टुकड़ियों को इकट्ठा करने शहर से बाहर चले गए। तड़के ही सरकार के वफादार सैनिकों ने दो बोलशेविक अखबारों के दफ्तरों पर घेरा डाल दिया। टेलीफोन और टेलीग्राफ दफ्तरों पर नियंत्रण प्राप्त करने तथा विंटर पैलेस की रक्षा करने के लिए सरकार समर्थक सैनिकों को रवाना कर दिया गया।
- सैन्य क्रांतिकारी समिति ने अपने समर्थकों को सरकारी कार्यालयों पर कब्जा करने और मंत्रियों को गिरफ्तार करने का आदेश दिया गया। उसी दिन ऑरोरा नामक युद्धपोत ने विंटर पैलेस पर बमबारी शुरू कर दी। अन्य युद्धपोतों ने नेवा के रास्ते से आगे बढ़ते हुए विभिन्न सैनिक ठिकानों को अपने नियंत्रण में ले लिया। शाम ढलते-ढलते पूरा शहर क्रांतिकारी समिति के नियंत्रण में आ चुका था और मंत्रियों ने आत्मसमर्पण कर दिया था। पेत्रोग्राद में अखिल रूसी सोवियत कांग्रेस की बैठक हुई जिसमें बहुमत ने बोलशेविकों की कार्यवाही का समर्थन किया। अन्य शहरों में भी बगावतें होने लगीं।
- दोनों तरफ से जमकर गोलीबारी हुई, खास तौर से मास्को में, लेकिन दिसंबर तक मास्को-पेत्रोग्राद इलाके पर बोलशेविकों का नियंत्रण स्थापित हो चुका था।



चित्र 5.3: अप्रैल 1917 में लेनिन द्वारा श्रमिकों को संबोधित करते हुए बोलशेविक छवि।

अक्टूबर के बाद क्या बदला?

- नवंबर 1917 में उद्योग और बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया, जिसका मतलब था कि सरकार ने स्वामित्व और प्रबंधन अपने हाथ में ले लिया।
- भूमि को सामाजिक संपत्ति घोषित किया गया और किसानों को कुलीन वर्ग की भूमि पर कब्जा करने की अनुमति दी गई। बोलशेविक पार्टी का नाम बदलकर रूसी कम्युनिस्ट पार्टी (बोलशेविक) कर दिया गया।
- नवंबर 1917 में संविधान सभा के लिए चुनाव हुए, लेकिन वे बहुमत में विफल रहे। जनवरी 1918 में, विधानसभा ने बोलशेविक उपायों को अस्वीकार कर दिया और लेनिन ने विधानसभा को बर्खास्त कर दिया।
- मार्च 1918 में, विरोध के बावजूद, बोलशेविकों ने ब्रेस्ट लिटोव्स्क में जर्मनी के साथ शांति स्थापित की। आने वाले सालों में बोलशेविक पार्टी अखिल रूसी सोवियत कांग्रेस के लिए होने वाले चुनावों में हिस्सा लेने वाली एकमात्र पार्टी रह गई। अखिल रूसी सोवियत कांग्रेस को अब देश की संसद का दर्जा दे दिया गया था। रूस एक दलीय राजनीतिक व्यवस्था वाला देश बन गया। ट्रेड यूनियनों पर पार्टी का नियंत्रण रहता था।
- अक्टूबर 1917 के बाद ऐसे कलाकारों और लेखकों ने कला एवं वास्तुशिल्प के क्षेत्र में नए प्रयोग शुरू किए।
- लेकिन पार्टी द्वारा थोपी गई सेंसरशिप के कारण बहुत सारे लोगों का पार्टी से मोह भंग भी होने लगा था।

गृह युद्ध (1918-20):

- जब बोलशेविकों ने ज़मीन के पुनर्वितरण का आदेश दिया तो रूसी सेना टूटने लगी। ज़्यादातर सिपाही किसान थे। वे भूमि पुनर्वितरण के लिए घर लौटना चाहते थे इसलिए सेना छोड़कर जाने लगे। गैर-बोलशेविक समाजवादियों, उदारवादियों और राजशाही के समर्थकों ने बोलशेविक विद्रोह की निंदा की। उनके नेता दक्षिणी रूस में इकट्ठा होकर बोलशेविकों ('रेड्स') से लड़ने के लिए टुकड़ियाँ संगठित करने लगे।
- सन् 1918 और सन् 1919 में रूसी साम्राज्य के ज़्यादातर हिस्सों पर सामाजिक क्रांतिकारियों ('ग्रीन्स') और ज़ार-समर्थकों ('व्हाइट्स') का ही नियंत्रण रहा, जिन्हें फ्रांसीसी, अमेरिकी, ब्रिटिश तथा जापानी सैनिकों का समर्थन प्राप्त था।
- उनकी इन हरकतों के कारण तो गैर-बोलशेविकों के प्रति जनसमर्थन और भी तेजी से घटने लगा। जनवरी 1920 तक भूतपूर्व रूसी साम्राज्य के ज़्यादातर हिस्सों पर बोलशेविकों का नियंत्रण कायम हो चुका था। उन्हें गैर-रूसी राष्ट्रवादियों और मुस्लिमों की मदद से यह कामयाबी मिली थी। जहाँ रूसी उपनिवेशवादी ही बोलशेविक विचारधारा के अनुयायी बन गए थे, वहाँ यह मदद काम नहीं आ सकी। मध्य एशिया स्थित खीवा में बोलशेविक उपनिवेशकों ने समाजवाद की रक्षा के नाम पर स्थानीय राष्ट्रवादियों का बड़े पैमाने पर कत्लेआम किया।
- अधिकांश गैर-रूसी राष्ट्रीयताओं को सोवियत संघ (USSR) में राजनीतिक स्वायत्तता दी गई थी - वह राज्य जिसे बोलशेविकों ने दिसंबर 1922 में रूसी साम्राज्य से अलग करके बनाया था।

समाजवादी समाज का निर्माण:

- गृहयुद्ध के दौरान, बोलशेविकों ने उद्योगों और बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया। किसानों को भूमि पर खेती करने की अनुमति दी गई।
- शासन के लिए केंद्रीकृत नियोजन की व्यवस्था लागू की गई। अफ़सर इस बात का हिसाब लगाते थे कि अर्थव्यवस्था किस तरह काम कर सकती है। इस आधार पर वे पाँच साल के लिए लक्ष्य तय कर देते थे। इसी आधार पर उन्होंने पंचवर्षीय योजनाएँ बनानी शुरू कीं। पहली दो 'योजनाओं' (1927-1932 और 1933-1938)

के दौरान औद्योगिक विकास को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने सभी तरह की कीमतें स्थिर कर दीं।

- केंद्रीकृत नियोजन से आर्थिक विकास को काफी गति मिली। औद्योगिक उत्पादन बढ़ने लगा (1929 से 1933 के बीच तेल, कोयले और स्टील के उत्पादन में 100 प्रतिशत वृद्धि हुई)। नए-नए औद्योगिक शहर अस्तित्व में आए।
- महिला श्रमिकों के लिए, बच्चों के लिए कारखानों में क्रेच स्थापित किए गए। सस्ती सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा प्रदान की गई। श्रमिकों के लिए आदर्श रहने के क्वार्टर बनाए गए।

स्टालिनवाद और सामूहिकीकरण:

- नियोजित अर्थव्यवस्था का शुरुआती दौर खेती के सामूहिकीकरण से पैदा हुई तबाही से जुड़ा हुआ था।
- सन् 1927-1928 के आसपास रूस के शहरों में अनाज का भारी संकट पैदा हो गया था। सरकार ने अनाज की कीमत तय कर दी थी। उससे ज्यादा कीमत पर कोई अनाज नहीं बेच सकता था। लेकिन किसान उस कीमत पर सरकार को अनाज बेचने के लिए तैयार नहीं थे। (चित्र 5.4 देखें)
- सन् 1928 में पार्टी के सदस्यों ने अनाज उत्पादक क्षेत्रों का दौरा किया, उन्होंने किसानों से जबरन अनाज खरीदा और 'कुलकों' के ठिकानों पर छापे मारे। रूस में संपन्न किसानों को कुलक कहा जाता था। जब इसके बाद भी अनाज की कमी बनी रही तो खेतों के सामूहिकीकरण का फैसला लिया गया।
- आधुनिक खेत विकसित करने और उन पर मशीनों की सहायता से औद्योगिक खेती करने के लिए 'कुलकों का सफ़ाया' करना, किसानों से जमीन छीनना तथा राज्य नियंत्रित यानी सरकारी नियंत्रण वाले विशालकाय खेत बनाना जरूरी माना गया। इसी के बाद स्टालिन का सामूहिकीकरण कार्यक्रम शुरू हुआ। वर्ष 1929 से पार्टी ने सभी किसानों को सामूहिक खेतों (कोलखोज) में काम करने का
- किसान जमीन पर काम करते थे और कोलखोज का मुनाफा आपस में बाँटा जाता था। वर्ष 1929 और वर्ष 1931 के बीच मवेशियों की संख्या में एक तिहाई की कमी आई।
- पार्टी में भी बहुत सारे लोग नियोजित अर्थव्यवस्था के अंतर्गत औद्योगिक उत्पादन में पैदा हो रहे भ्रम और सामूहिकीकरण के परिणामों की आलोचना करने लगे थे। स्टालिन और उनके सहयोगियों ने ऐसे आलोचकों पर समाजवाद के खिलाफ साजिश रचने का आरोप लगाया।
- देश भर में बहुत सारे लोगों पर इसी तरह के आरोप लगाए गए और वर्ष 1939 तक आते-आते 20 लाख से ज्यादा लोगों को या तो जेलों में या श्रम शिविरों में भेज दिया गया था। ज्यादातर लोगों ने ऐसा कोई अपराध नहीं किया था, लेकिन उनकी सुनने वाला कोई नहीं था। बहुत सारे लोगों को यातनाएँ दे-देकर उनसे इस आशय के बयान लिखवा लिए गए कि उन्होंने समाजवाद के विरुद्ध साजिश में हिस्सा लिया है और इसी आधार पर उन्हें मार दिया गया। इनमें कई प्रतिभावान पेशेवर लोग थे। इससे संबंधित महत्वापूर्ण तिथियों के लिए चित्र 5.4 देखें।



चित्र 5.4: सामूहिकीकरण के दौरान एक पोस्टर

विचारणीय बिंदु

आपको क्या लगता है कि स्टालिन के नेतृत्व में कृषि के सामूहिकीकरण ने नियोजित अर्थव्यवस्था के शुरुआती वर्षों के दौरान सोवियत संघ में कृषि क्षेत्र और किसानों के जीवन दोनों को कैसे प्रभावित किया? क्या भारत को भी समाजवादी शैली की नियोजित अर्थव्यवस्था को अपनाने पर ऐसे ही बदलावों का सामना करना पड़ा?



कुछ महत्वपूर्ण तिथियाँ:

1850-1880	के दशक रूस में समाजवाद पर बहस।
1898	रूसी सोशल डेमोक्रेटिक वर्कर्स पार्टी का गठन।
1905	खूनी रविवार और 1905 की क्रांति।
1917	2 मार्च - ज़ार का त्याग।
	24 अक्टूबर पेट्रोग्राद में बोल्शेविक विद्रोह।
1918-20	गृह युद्ध।
1919	कॉमिन्टर्न का गठन।
1929	सामूहिकीकरण की शुरुआत।

रूसी क्रांति और यूएसएसआर का वैश्विक स्तर पर प्रभाव

- बोल्शेविकों ने जिस तरह सत्ता पर कब्ज़ा किया था और जिस तरह उन्होंने शासन चलाया उसके बारे में यूरोप की समाजवादी पार्टियाँ बहुत सहमत नहीं थीं। लेकिन मेहनतकशों के राज्य की स्थापना की संभावना ने दुनिया भर के लोगों में एक नई उम्मीद जगा दी थी।
- बहुत सारे देशों में कम्युनिस्ट पार्टियों का गठन किया गया - जैसे, इंग्लैंड में कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन की स्थापना की गई। यूएसएसआर के बाहर से गैर-रूसियों ने पूर्व के लोगों के सम्मेलन (1920) में भाग लिया।

- ❑ बोलशेविकों ने कॉमिन्टर्न (बोलशेविक समर्थक समाजवादी दलों का एक अंतरराष्ट्रीय संघ) की स्थापना की। द्वितीय विश्व युद्ध के फैलने से पहले, यूएसएसआर ने समाजवाद को एक वैश्विक चेहरा और विश्व स्तर दिया था।
- ❑ बीसवीं सदी के अंत तक, समाजवादी देश के रूप में यूएसएसआर की अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा में गिरावट आई थी।

रूसी क्रांति से प्रभावित भारतीयों पर लेख:

- ❑ रूसी क्रांति से प्रेरित होने वालों में बहुत सारे भारतीय भी थे। उनमें से कई ने कम्युनिस्ट विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की। 1920 के दशक में भारत में भी कम्युनिस्ट पार्टी का गठन कर लिया गया। इस पार्टी के सदस्य सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के संपर्क में रहते थे। कई महत्वपूर्ण भारतीय राजनीतिक एवं सांस्कृतिक व्यक्तियों ने सोवियत प्रयोग में दिलचस्पी ली और वहाँ का दौरा किया।
- ❑ रूस जाने वाले भारतीयों में जवाहर लाल नेहरू और रबींद्रनाथ टैगोर भी थे, जिन्होंने सोवियत समाजवाद के बारे में लिखा भी। भारतीय लेखन में सोवियत रूस की अलग-अलग छवियाँ दिखाई देती थीं।
- ❑ हिंदी में आर.एस. अवस्थी ने 1920-21 में 'रशियन रेवल्यूशन', लेनिन, 'हिज्ज लाइफ एंड हिज थॉट्स' और 'द रेड रेवल्यूशन' नामक किताबें लिखीं। उनके अलावा एस. डी. विद्यालंकार ने 'द रोवर्थ ऑफ रशिया' तथा 'द सोवियत स्टेट ऑफ रशिया' नामक पुस्तकें लिखीं। इन विषयों पर बंगाली, मराठी, मलयालम, तमिल और तेलुगु में भी बहुत कुछ लिखा गया।

निष्कर्ष

समाजवाद, एक राजनीतिक और आर्थिक विचारधारा है, जिसने सन् 1917 की रूसी क्रांति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस क्रांति ने निरंकुश जार के शासन को उखाड़ फेंका और व्लादिमीर लेनिन के नेतृत्व में बोलशेविक पार्टी का उदय हुआ। बोलशेविकों ने भूमि पुनर्वितरण और उद्योग के राष्ट्रीयकरण सहित समाजवादी नीतियों को लागू किया, जिसका उद्देश्य वर्गहीन, राज्य-नियंत्रित समाज बनाना था। हालाँकि, रूसी क्रांति के बाद सोवियत संघ का गठन हुआ, जो सत्तावादी प्रवृत्तियों वाला एक-पक्षीय राज्य था। जबकि विश्व के क्रांतिकारी इतिहास में यह एक महत्वपूर्ण क्षण था, जो समाजवादी आदर्शों को व्यावहारिक शासन में अनुवाद करने की जटिल चुनौतियों को भी उजागर करता है।

महत्वपूर्ण शब्दावलियाँ

- ❖ **मताधिकार आंदोलन:** महिलाओं को वोट देने का अधिकार दिलाने के लिए एक आंदोलन।
- ❖ **जादीदिस्ट:** रूसी साम्राज्य के भीतर मुस्लिम सुधारक।
- ❖ **वास्तविक वेतन:** वेतन से वास्तव में खरीदे जाने वाले सामानों की मात्रा को दर्शाता है।
- ❖ **रूसी स्टीमरोलर:** शाही रूसी सेना को 'रूसी स्टीमरोलर' के रूप में जाना जाने लगा। यह दुनिया की सबसे बड़ी सशस्त्र सेना थी। जब इस सेना ने अपनी वफादारी बदली और क्रांतिकारियों का समर्थन करना शुरू किया, तो ज़ारिस्ट सत्ता ढह गई।
- ❖ **बुडेनोव्का:** सोवियत टोपी।
- ❖ **स्वायत्तता:** खुद पर शासन करने का अधिकार।
- ❖ **खानाबदोश:** उन लोगों की जीवनशैली जो एक जगह पर नहीं रहते हैं, बल्कि अपनी आजीविका कमाने के लिए एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में विचरण करते रहते हैं।
- ❖ **निर्वासित:** अपने देश से दूर रहने के लिए मजबूर व्यक्ति या संगठन।
- ❖ **सामूहिकीकरण:** सामूहिकीकरण के तहत, किसानों को अपने व्यक्तिगत खेतों को छोड़ने और बड़े सामूहिक खेतों में शामिल होने के लिए मजबूर किया गया।



नाजीवाद और हिटलर का उदय

संदर्भ: इस अध्याय में NCERT पाठ्यपुस्तक की कक्षा-IX (भारत और समकालीन विश्व-I) के अध्याय-3 का सारांश शामिल है।

परिचय

20वीं सदी की शुरुआत में जर्मनी में हुए नरसंहार और नाजीवाद चरमपंथ, भेदभाव और अधिनायकवाद के खतरों की भयावह याद दिलाते हैं। नाजीवाद एक राजनीतिक विचारधारा थी जो 20वीं सदी की शुरुआत में जर्मनी में उभरी थी। **एडोल्फ हिटलर के नेतृत्व में नाजी पार्टी ने 1930 के दशक में सत्ता हासिल की** और द्वितीय विश्व युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जर्मनी को एक शक्तिशाली शक्ति बनाने के हिटलर के दृढ़ संकल्प और पूरे यूरोप को जीतने की उसकी महत्वाकांक्षा ने उसे मानवता के खिलाफ अपराधों के प्रति अंधा कर दिया था। जर्मनी में नाजीवाद और यहूदियों की हत्याएँ एक या दो अलग-अलग घटनाएँ नहीं थी बल्कि यह दुनिया और राजनीति के बारे में विचारों की एक संरचनात्मक श्रेणी थी। नाजी जर्मनी के उदय का आंशिक रूप से प्रथम विश्व युद्ध के अंत में जर्मन अनुभव से पता लगाया जा सकता है।

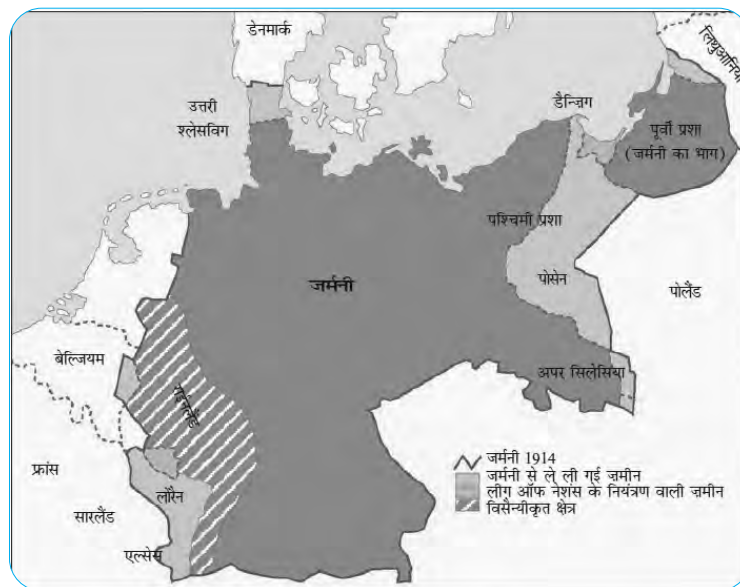
वाइमर गणराज्य का जन्म

□ बीसवीं सदी के शुरुआती वर्षों में जर्मनी एक शक्तिशाली साम्राज्य था। इसने ऑस्ट्रियाई साम्राज्य के साथ और **मित्र राष्ट्रों (इंग्लैंड, फ्रांस और रूस)** के खिलाफ **प्रथम विश्व युद्ध (1914-1918)** लड़ा। जर्मनी ने फ्रांस और बेल्जियम पर कब्जा करके शुरुआती बढ़त हासिल की। लेकिन **मित्र राष्ट्रों ने नवंबर 1918 में केंद्रीय शक्तियों और जर्मनी को हराकर जीत हासिल की।**

प्रथम विश्वयुद्ध

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान जर्मनी, ऑस्ट्रिया-हंगरी, बुल्गारिया और ऑटोमन साम्राज्य (धुरी राष्ट्र) ने ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, रूस, इटली, रोमानिया, जापान और संयुक्त राज्य अमेरिका (मित्र राष्ट्रों) के खिलाफ युद्ध लड़ा था।

- प्रथम विश्व युद्ध में इसकी भागीदारी ने जर्मनी के सभी संसाधनों को खत्म कर दिया। इस हार ने जर्मनी में संसदीय दलों को जर्मन राजनीति को अपने पक्ष में फिर से ढालने का मौका दिया, खासकर जब सम्राट को पदच्युत कर दिया गया।
- वेमर में एक संघीय ढाँचे वाला लोकतांत्रिक संविधान स्थापित किया गया, जहाँ राष्ट्रीय सभा की बैठक होती थी। अब जर्मन संसद या रैहस्टाग के लिए प्रतिनिधि चुने जाते थे। जिसका आधार महिलाओं सहित सभी वयस्कों द्वारा डाले गए समान और सार्वभौमिक वोटों को माना जाता था।
- लेकिन इस गणराज्य को लोगों ने इसलिए पसंद नहीं किया, क्योंकि **इस गणराज्य ने वर्साय में शांति संधि पर हस्ताक्षर किए थे जो बेहद कठोर थी और जिसे जर्मन जनता के लिए अपमानजनक माना जाता था।**
- जर्मनी ने अपनी विदेशी कॉलोनियों, अपनी आबादी का दसवाँ हिस्सा, अपने क्षेत्रों का 13 प्रतिशत, अपने लोहे का 75 प्रतिशत और अपने कोयले का 26 प्रतिशत फ्रांस, पोलैंड, डेनमार्क तथा लिथुआनिया को खो दिया। मित्र देशों की सेनाओं ने 1920 के दशक के अधिकांश समय में **संसाधन-समृद्ध राइनलैंड पर भी कब्जा कर लिया।**
- मित्र देशों की शक्तियों ने जर्मनी की शक्ति को कमजोर करने के लिए उसका सैन्यीकरण कर दिया। इसके अलावा, युद्ध अपराध खंड ने जर्मनी को युद्ध और मित्र देशों को हुए नुकसान के लिए जिम्मेदार ठहराया। इसे 6 बिलियन पाउंड का मुआवजा देने के लिए मजबूर किया गया। कई जर्मनों ने नए वीमर गणराज्य को न केवल युद्ध में हार के लिए बल्कि वर्साय में अपमान के लिए भी जिम्मेदार ठहराया। जर्मनी की रही-सही ताकत खत्म करने के लिए मित्र राष्ट्रों ने उसकी सेना भी भंग कर दी। **युद्ध अपराधबोध अनुच्छेद (War Guilt Clause)** के तहत युद्ध के कारण हुई सारी तबाही के लिए जर्मनी को जिम्मेदार ठहराया गया। इसके एवज में **उस पर छः अरब पाँड का जुर्माना लगाया गया।** खनिज संसाधनों वाले राइनलैंड पर भी बीस के दशक में ज्यादातर मित्र राष्ट्रों का ही कब्जा रहा। बहुत सारे जर्मनों ने न केवल इस हार के लिए बल्कि वर्साय में हुए इस अपमान के लिए भी **वाइमर गणराज्य को ही जिम्मेदार ठहराया।**



चित्र 6.1: वर्साय संधि के बाद जर्मनी, आप इस मानचित्र में उस क्षेत्र के हिस्से को देख सकते हैं जिसे जर्मनी ने संधि के बाद खो दिया।

युद्ध का असर

प्रथम विश्व युद्ध और जर्मनी पर उसका प्रभाव:

- ❑ **वित्तीय प्रभाव:** इस युद्ध ने पूरे महाद्वीप को मनोवैज्ञानिक और आर्थिक, दोनों ही स्तरों पर तोड़ कर रख दिया। यूरोप कल तक कर्ज देने वालों का महाद्वीप कहलाता था जो युद्ध खत्म होते-होते कर्जदारों का महाद्वीप बन गया।
- ❑ विडंबना यह थी कि पुराने साम्राज्य द्वारा किए गए अपराधों का हर्जाना नवजात वाइमर गणराज्य से वसूल किया जा रहा था। इस गणराज्य को युद्ध में पराजय के अपराधबोध और राष्ट्रीय अपमान का बोझ तो ढोना ही पड़ा, हर्जाना चुकाने की वजह से आर्थिक स्तर पर भी वह अपंग हो चुका था।
 - वीमर गणराज्य का समर्थन करने वाले, मुख्य रूप से समाजवादी, कैथोलिक और डेमोक्रेट, रुढ़िवादी राष्ट्रवादी हलकों में हमले का आसान लक्ष्य बन गए। उन्हें मज़ाक में 'नवंबर अपराधी' कहा जाता था। इस मानसिकता का 1930 के दशक की शुरुआत के राजनीतिक घटनाक्रम पर बड़ा प्रभाव पड़ा।
- ❑ **सामाजिक-राजनीतिक प्रभाव:** पहले महायुद्ध ने यूरोपीय समाज और राजनीतिक व्यवस्था पर अपनी गहरी छाप छोड़ दी थी।
- ❑ सिपाहियों को आम नागरिकों के मुकाबले ज्यादा सम्मान दिया जाने लगा। राजनेता और प्रचारक इस बात पर जोर देने लगे कि पुरुषों को आक्रामक, ताकतवर एवं मर्दाना गुणों वाला होना चाहिए।



चित्र 6.2: यह स्पोर्ट्सिस्ट लीग नामक कट्टरपंथी समूह द्वारा आयोजित एक रैली है। 1918-1919 ई. की सर्दियों में बर्लिन की सड़कों पर लोगों का कब्जा था।

❑ मीडिया में खंदकों की जिंदगी का महिमामंडन किया जा रहा था-

- लेकिन सच्चाई यह थी कि सिपाही इन खंदकों में बड़ी दयनीय जिंदगी जी रहे थे। वे लाशों को खाने वाले चूहों से घिरे रहते। वे जहरीली गैस और दुश्मनों की गोलाबारी का बहादुरी से सामना करते हुए भी अपने साथियों को पल-पल मरते देखते थे।
- सार्वजनिक जीवन में आक्रामक फ़ौजी प्रचार और राष्ट्रीय सम्मान व प्रतिष्ठा की चाह के सामने बाकी सारी चीज़ें गौण हो गईं जबकि हाल ही में सत्ता में आए रूढ़िवादी तानाशाहों को व्यापक जनसमर्थन मिलने लगा।
- उस वक्त लोकतंत्र एक नया और बहुत नाजुक विचार था जो दोनों महायुद्धों के बीच पूरे यूरोप में फैली अस्थिरता का सामना नहीं कर सकता था।

राजनीतिक रैडिकलवाद (आमूल परिवर्तनवाद) और आर्थिक संकट

राजनीतिक कट्टरवाद:

- जिस समय वाइमर गणराज्य की स्थापना हुई उसी समय रूस में हुई बोलशेविक क्रांति की तर्ज पर जर्मनी में भी स्पार्टकिस्ट लीग अपने क्रांतिकारी विद्रोह की योजनाओं को अंजाम देने लगी। जिसने सोवियत शैली के समान शासन की माँग की। इसलिए बर्लिन में राजनीतिक माहौल वीमर गणराज्य के जन्म का गवाह बन रहा था, लेकिन साथ ही इन राजनीतिक रूप से कट्टरपंथी विद्रोहों का जन्म भी हो रहा था।
- लेकिन समाजवादी, लोकतंत्रवादी और कैथोलिक इस शासन शैली के विरोधी थे। इसलिए उन्होंने वीमर लोकतांत्रिक गणराज्य को आकार दिया। वीमर गणराज्य ने फ्री कॉर्प्स नामक युद्ध के दिग्गजों के संगठन की मदद से विद्रोह को कुचल दिया।
- पीड़ित स्पार्टासिस्टों ने बाद में जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की। इसके बाद कम्युनिस्ट और समाजवादी एक दूसरे के दुश्मन बन गए।
- क्रांतिकारी और उग्र राष्ट्रवादी दोनों ही कट्टरपंथी समाधान चाहते थे। वर्ष 1923 के आर्थिक संकट ने इस राजनीतिक कट्टरता को और बढ़ा दिया।



चित्र 6.3: बर्लिन के एक बैंक में मजदूरी भुगतान के लिए टोकियाँ और गाड़ियाँ कागजी मुद्रा से भरी जा रही हैं (वर्ष 1923); जर्मन मार्क का मूल्य इतना कम था कि छोटे-छोटे भुगतानों के लिए भी बड़ी मात्रा में मुद्रा का उपयोग करना पड़ता था।

आर्थिक संकट:

- जर्मनी ने युद्ध में मुख्य रूप से ऋण लिया था और उसे युद्ध क्षतिपूर्ति के रूप में सोने का भुगतान करना पड़ा था। इससे उस समय सोने का भंडार कम हो गया जब ऐसे संसाधन दुर्लभ थे।
- इस दोहरे बोझ से जर्मनी के स्वर्ण भंडार लगभग समाप्त होने की स्थिति में पहुँच गए थे। आखिरकार 1923 में जर्मनी ने कर्ज और हर्जाना चुकाने से इनकार कर दिया। इसके जवाब में फ्रांसीसियों ने जर्मनी के मुख्य औद्योगिक इलाके रूर पर कब्जा कर लिया। यह जर्मनी के विशाल कोयला भंडारों वाला इलाका था। जर्मनी ने फ्रांस के विरुद्ध निष्क्रिय प्रतिरोध के रूप में बड़े पैमाने पर कागजी मुद्रा को अंधाधुंध तरीके से छपा।
- जर्मन सरकार ने इतने बड़े पैमाने पर मुद्रा छाप दी कि उसकी मुद्रा मार्क का मूल्य तेजी से गिरने लगा। अप्रैल में एक अमेरिकी डॉलर की कीमत 24,000 मार्क के बराबर थी जो जुलाई में 3,53,000 मार्क, अगस्त में 46,21,000 मार्क तथा दिसंबर में 9,88,60,000 मार्क हो गई। इस तरह एक डॉलर में खरबों मार्क मिलने लगे। जैसे-जैसे मार्क की कीमत गिरती गई, जरूरी चीज़ों की कीमतें आसमान छूने लगीं। रेखाचित्रों में जर्मन नागरिकों को पावरोटी खरीदने के लिए बैलगाड़ी में नोट भरकर ले जाते हुए दिखाया जाने लगा। जर्मन समाज दुनिया भर में हमदर्दी का पात्र बन कर रह गया। इस संकट को बाद में अति-मुद्रास्फीति का नाम दिया गया। जब कीमतें बेहिसाब बढ़ जाती हैं तो उस स्थिति को अति-मुद्रास्फीति का नाम दिया जाता है।
- अंततः, जर्मनी को इस संकट से निकालने के लिए अमेरिकी सरकार ने हस्तक्षेप किया। इसके लिए अमेरिका ने डॉल्स योजना बनाई। इस योजना में जर्मनी के आर्थिक संकट को दूर करने के लिए हर्जाने की शर्तों को दोबारा तय किया गया।



चित्र 6.4: बेघर लोग रात के आश्रय के लिए कतार में खड़े हैं, 1923 ई.

मंदी के साल:

- सन् 1924-1928 के बीच जर्मनी में कुछ स्थिरता थी। जर्मनी में औद्योगिक सुधार और निवेश पूरी तरह से अल्पकालिक ऋणों पर निर्भर थे, जो कि ज्यादातर अमेरिका से लिए गए थे।
- जब 1929 में **वॉल स्ट्रीट एक्सचेंज (शेयर बाज़ार)** धराशायी हो गया तो जर्मनी को मिल रही यह मदद भी रातों-रात बंद हो गई। कीमतों में गिरावट की आशंका को देखते हुए लोग धड़ाधड़ अपने शेयर बेचने लगे। 24 अक्तूबर को केवल एक दिन में 1.3 करोड़ शेयर बेच दिए गए। यह आर्थिक महामंदी की शुरुआत थी। सन् 1929 से 1932 तक के अगले तीन सालों में अमेरिका की राष्ट्रीय आय केवल आधी रह गई। फैक्ट्रियाँ बंद हो गई थीं, निर्यात गिरता जा रहा था, किसानों की हालत खराब थी और सड़तेबाज बाज़ार से पैसा खींचते जा रहे थे।
- अमेरिकी अर्थव्यवस्था में आई इस मंदी का असर दुनिया भर में महसूस किया गया। सन् 1929 में वॉल स्ट्रीट एक्सचेंज के दुर्घटनाग्रस्त होने पर अमेरिका ने अपना समर्थन वापस ले लिया। आर्थिक संकट से जर्मन अर्थव्यवस्था सबसे बुरी तरह प्रभावित हुई। वर्ष **1932 तक, औद्योगिक उत्पादन 1929 के स्तर का 40 प्रतिशत रह गया।** श्रमिकों की नौकरी चली गई या उन्हें कम वेतन दिया गया। बेरोजगारों की संख्या अभूतपूर्व रूप से 6 मिलियन तक पहुँच गई।
- हर किसी में निराशा की गहरी भावना थी। नौकरियाँ गायब हो गईं, युवा आपराधिक गतिविधियों में शामिल हो गए, लोगों में चिंता और भय का माहौल था क्योंकि उनकी बचत कम हो गई थी। मध्यम वर्ग, विशेष रूप से वेतनभोगी कर्मचारियों और पेंशनभोगियों ने देखा कि मुद्रा का मूल्य कम होने पर उनकी बचत कम हो गई।
- छोटे व्यवसायी, स्वरोजगार करने वाले और खुदरा विक्रेताओं को नुकसान उठाना पड़ा, क्योंकि उनके व्यवसाय बर्बाद हो गए। बड़े व्यवसाय संकट में थे। समाज के ये वर्ग सर्वहाराकरण के डर से भरे हुए थे, मजदूर वर्ग की श्रेणी में आने की चिंता, या इससे भी बदतर, बेरोजगार होने की चिंता। कृषि मूल्यों में तेज गिरावट से किसानों का बड़ा हिस्सा प्रभावित हुआ।
- राजनीतिक रूप से, वाइमर गणराज्य नाजुक था। वाइमर संविधान में कुछ अंतर्निहित दोष थे, जो इसे अस्थिर और तानाशाही के प्रति संवेदनशील बनाते थे।
 - इसमें एक दोष आनुपातिक प्रतिनिधित्व का था। इसने किसी एक पार्टी द्वारा बहुमत प्राप्त करना लगभग असंभव कार्य बना दिया, जिससे गठबंधन द्वारा शासन करना अस्थिरता की ओर ले गया। अपने छोटे से जीवनकाल में, वाइमर गणराज्य ने औसतन 239 दिनों तक चलने वाले बीस अलग-अलग मंत्रिमंडल देखे।
 - इसका एक और दोष **अनुच्छेद- 48** था, जिसने राष्ट्रपति को आपातकाल लगाने, नागरिक अधिकारों को निलंबित करने और डिक्री द्वारा शासन करने की शक्तियाँ दी थीं। इस अनुच्छेद का उदारतापूर्वक उपयोग किया गया, फिर भी संकट का प्रबंधन नहीं किया जा सका। परिणामस्वरूप लोगों का लोकतांत्रिक संसदीय प्रणाली में विश्वास खत्म हो गया, जो कोई समाधान नहीं दे पाई थी।
- अर्थव्यवस्था, राजनीति और समाज में संकट ने हिटलर के सत्ता में आने की पृष्ठभूमि तैयार की।



चित्र 6.5: लाइन पर सोते लोग। महामंदी के दौरान बेरोजगारों को न तो वेतन की उम्मीद थी और न ही आश्रय की। सर्दियों की रातों में जब उन्हें अपने सिर पर आश्रय चाहिए होता था, तो उन्हें इस तरह सोने के लिए पैसे देने पड़ते थे।

विचारणीय बिंदु

आर्थिक संकट, राजनीतिक अस्थिरता और अवसाद नाज़ीवाद के उदय के प्रमुख कारण थे। आपके अनुसार वे कौन से प्रमुख कारक थे जिन्होंने वाइमर जर्मनी में आर्थिक संकट और राजनीतिक अस्थिरता में योगदान दिया एवं इन कारकों ने 20वीं सदी की शुरुआत में नाज़ीवाद जैसे चरमपंथी आंदोलनों के उदय के लिए उपजाऊ ज़मीन कैसे तैयार की?



चित्र 6.6: वर्ष 1938 में न्यूरेमबर्ग पार्टी कांग्रेस में हिटलर का स्वागत

हिटलर और उसकी शक्ति में वृद्धि

- **1889:** अर्थव्यवस्था, राजनीति और समाज में गहराते जा रहे इस संकट ने हिटलर के सत्ता में पहुँचने का रास्ता साफ़ कर दिया। वर्ष 1889 में ऑस्ट्रिया में जन्मे हिटलर की युवावस्था बेहद गरीबी में गुज़री थी। रोजी-रोटी का कोई ज़रिया न होने के कारण पहले विश्वयुद्ध की शुरुआत में उसने भी अपना नाम फ़ौजी भर्ती के लिए लिखवा दिया था। भर्ती के बाद उसने अग्रिम मोर्चे पर संदेशवाहक का काम किया, कॉर्पोरल बना और बहादुरी के लिए उसने कुछ तमगे (अवार्ड्स) भी हासिल किए। जर्मन सेना की पराजय ने तो उसे हिला दिया था, लेकिन वर्साय की संधि ने उसे आग-बबूला ही कर दिया।

- 1919: सन् 1919 में उसने **जर्मन वर्कर्स पार्टी** नामक एक छोटे-से समूह की सदस्यता ले ली। धीरे-धीरे उसने इस संगठन पर अपना नियंत्रण कायम कर लिया और उसे **नेशनल सोशलिस्ट पार्टी** का नया नाम दिया। इसी पार्टी को बाद में **नात्सी पार्टी** के नाम से जाना गया।
- 1923: हिटलर ने बवेरिया पर कब्जा करने, बर्लिन तक मार्च करने और महामंदी के दौरान सत्ता पर कब्जा करने की योजना बनाई, जिससे नाज़ीवाद एक जन आंदोलन बन गया। नाज़ी प्रचार ने बेहतर भविष्य की उम्मीद जगाई।
- 1928: हिटलर की नाज़ी पार्टी को रीचस्टैग- जर्मन संसद में 2.6 प्रतिशत से ज्यादा वोट नहीं मिले। वर्ष 1932 तक, यह 37 प्रतिशत वोटों के साथ सबसे बड़ी पार्टी बन गई थी।
- 1933: 30 जनवरी 1933 को राष्ट्रपति हिंडनबर्ग ने हिटलर को चांसलरशिप की पेशकश की, जो कि मंत्रियों के मंत्रिमंडल में सर्वोच्च पद था।
- हिटलर एक शक्तिशाली और करिश्माई वक्ता था। उसके जुनून और उसके शब्दों ने लोगों को प्रभावित किया। उसने एक मजबूत राष्ट्र बनाने, वर्साय संधि के अन्याय को खत्म करने और जर्मन लोगों की गरिमा को बहाल करने का वादा किया। उसने काम की तलाश करने वालों के लिए रोजगार और युवाओं के लिए एक सुरक्षित भविष्य का वादा किया। उसने सभी विदेशी प्रभावों को खत्म करने और जर्मनी के खिलाफ सभी विदेशी 'षड्यंत्रों' का विरोध करने का वादा किया।
- उसने राजनीति की एक नई शैली तैयार की। यह जन-आंदोलन के तमाम पर आधारित थी। नाज़ियों ने हिटलर के प्रति समर्थन प्रदर्शित करने और लोगों में एकता की भावना पैदा करने के लिए बड़ी रैलियाँ एवं सार्वजनिक बैठकें कीं।
- वह अनुष्ठानों के महत्त्व को भी समझता था। **स्वस्तिक के साथ लाल बैनर, नाज़ी सलामी और भाषणों के बाद तालियों की रस्मी गड़गड़ाहट**, ये सभी शक्ति के इस तमाशे का हिस्सा थे। नाज़ी प्रचार ने कुशलतापूर्वक हिटलर को एक मसीहा, एक उद्धारक के रूप में प्रस्तुत किया, जो लोगों को उनके संकट से मुक्ति दिलाने के लिए आया था।



चित्र 6.7: न्यूरेमबर्ग रैली, वर्ष 1936 (इस तरह की रैलियाँ प्रत्येक वर्ष आयोजित की जाती थीं। इनका महत्त्वपूर्ण कार्य नाज़ी शक्ति का प्रदर्शन था, जिसमें विभिन्न संगठन हिटलर के सामने परेड करते थे, वफादारी की शपथ लेते थे और उसके भाषणों को सुनते थे।)

विचारणीय बिंदु

हिटलर के उदय और उसके देवत्व के कारण नाज़ीवाद के चरमपंथ को बढ़ावा मिला। क्या आप ऐसे उदाहरण के बारे में सोच सकते हैं, जहाँ एक मजबूत और करिश्माई नेता के देवत्व के कारण उस समय में चरमपंथ को बढ़ावा मिला हो?



लोकतंत्र का ध्वंस:

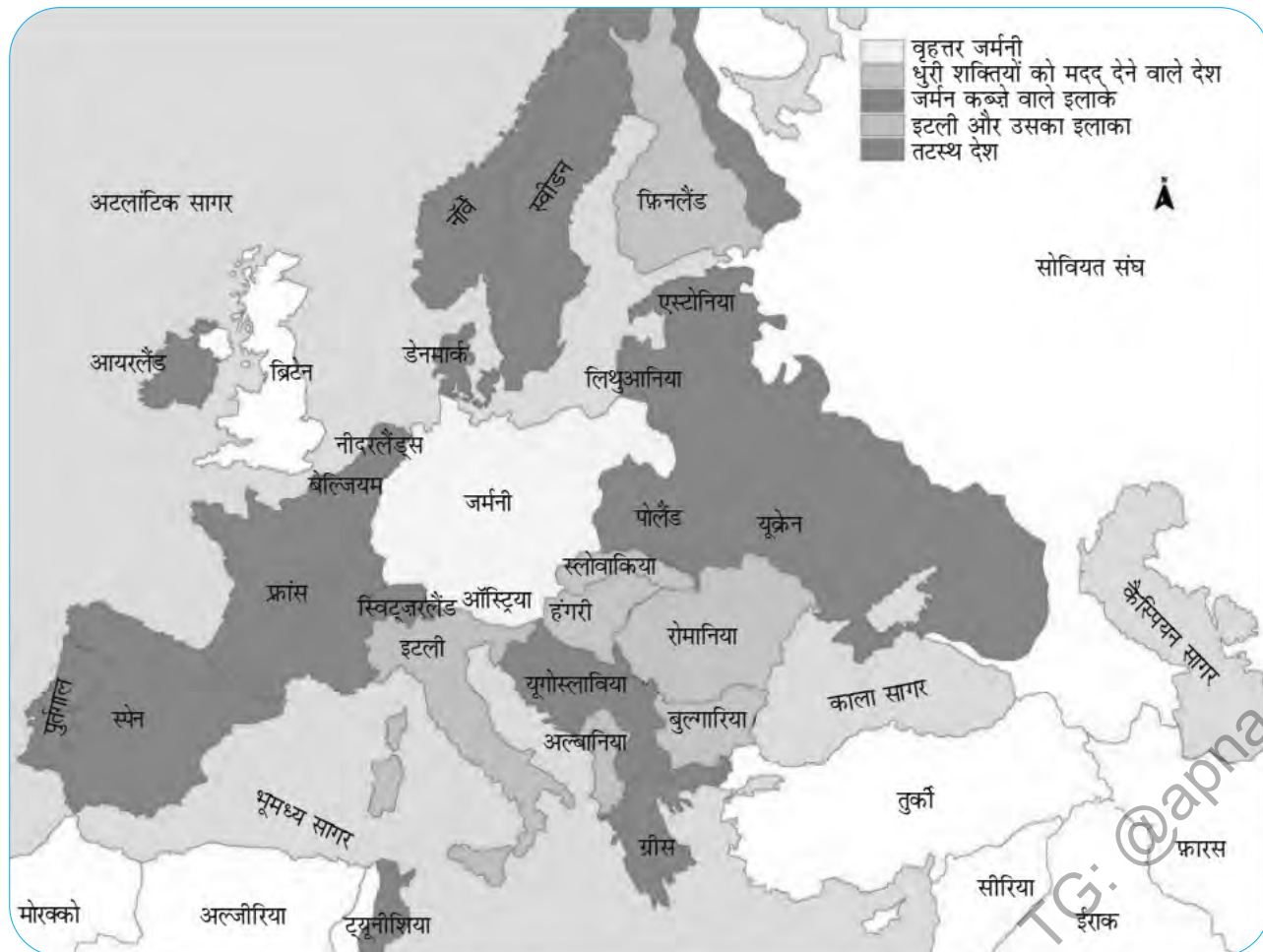
- हिटलर ने लोकतांत्रिक शासन की संरचनाओं को ध्वस्त करना शुरू कर दिया। इसका प्रारंभ फरवरी में जर्मन संसद भवन के रहस्यमय अग्निकांड से हुआ। 28 फरवरी 1933 के अग्नि आदेश ने भाषण, प्रेस और सभा की स्वतंत्रता जैसे नागरिक अधिकारों को अनिश्चित काल के लिए निलंबित कर दिया, जिसकी गारंटी वीमर संविधान द्वारा दी गई थी। कम्युनिस्टों का गंभीर दमन किया गया और उन्हें एकाग्रता शिविरों में भेज दिया गया।
- 3 मार्च 1933 को **प्रसिद्ध विशेषाधिकार अधिनियम (इनेबलिंग ऐक्ट)** पारित किया गया। इस कानून के ज़रिए जर्मनी में बाकायदा तानाशाही स्थापित कर दी गई। इस कानून ने हिटलर को संसद को हाशिये पर धकेलने और केवल अध्यादेशों के ज़रिए शासन चलाने का निरंकुश अधिकार प्रदान कर दिया। नात्सी पार्टी और उससे जुड़े संगठनों के अलावा सभी राजनीतिक पार्टियों एवं ट्रेड यूनियनों पर पाबंदी लगा दी गई।
- राज्य ने अर्थव्यवस्था, मीडिया, सेना और न्यायपालिका पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित किया। विशेष निगरानी और सुरक्षा बल बनाए गए। हरी वर्दी में मौजूदा नियमित पुलिस और एसए या स्टोर्म ट्रूपर्स के अलावा, सुरक्षा बलों में अब गेस्टापो (गुप्त राज्य पुलिस), एसएस (सुरक्षा दस्ते), आपराधिक पुलिस एवं सुरक्षा सेवा (एसडी) शामिल थे।
- उन्हें संविधान से इतर भी कुछ शक्तियाँ प्रदान की गईं। लोगों को अब गेस्टापो यातना कक्षों में हिरासत में लिया जा सकता था, उन्हें घेरकर एकाग्रता शिविरों में भेजा जा सकता था, उन्हें इच्छानुसार निर्वासित किया जा सकता था या बिना किसी कानूनी प्रक्रिया के गिरफ्तार किया जा सकता था। पुलिस बलों को दंड से मुक्त होकर शासन करने की शक्तियाँ प्राप्त हो गईं। इस प्रकार जर्मनी सबसे ख़ूब आपराधिक राज्य बन गया।



चित्र 6.8: हिटलर द्वारा SA और SS समूहों को संबोधन (ऐसे संबोधनों का उद्देश्य नाज़ी आंदोलन की भव्यता और शक्ति को दिखाना था)

पुनर्निर्माण

- **आर्थिक सुधार:** हिटलर ने अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने की जिम्मेदारी अर्थशास्त्री ह्यालमार शाख्त को सौंपी।
 - शाख्त ने सबसे पहले सरकारी पैसे से चलाए जाने वाले रोजगार संवर्धन कार्यक्रम के ज़रिए सौ फ़ीसदी उत्पादन और सौ फ़ीसदी रोजगार उपलब्ध कराने का लक्ष्य तय किया। मशहूर जर्मन सुपर हाइवे और जनता की कार-फ़ॉक्सवैगन-इस परियोजना की देन थी।
 - जर्मनी को इंग्लैंड का मौन समर्थन प्राप्त था, जिसने वर्सेल्स के फैसले को बहुत कठोर माना था।
- **विदेश नीति में हिटलर ने शीघ्र सफलता प्राप्त की।**
 - **1933:** हिटलर ने लीग ऑफ नेशंस से अपना नाम वापस ले लिया।
 - **1936:** उसने राइनलैंड पर फिर से कब्ज़ा कर लिया।
 - **1938:** उसने 'एक जन, एक साम्राज्य और एक नेता' के नारे के तहत ऑस्ट्रिया एवं जर्मनी को एकीकृत किया। उसने चेकोस्लोवाकिया से जर्मन भाषी सुडेटेनलैंड को छीन लिया और पूरे देश पर कब्ज़ा कर लिया। देश और विदेश में मिली इन त्वरित सफलताओं ने देश की नियति को पलट दिया।
 - **1939:** इस साल सितंबर में जर्मनी ने पोलैंड पर आक्रमण किया। इससे फ्रांस और इंग्लैंड के साथ युद्ध शुरू हो गया।
 - **1940:** सितंबर 1940 में जर्मनी, इटली और जापान के बीच एक त्रिपक्षीय समझौते पर हस्ताक्षर किए गए, जिससे हिटलर का अंतरराष्ट्रीय शक्ति पर दावा अंततः मजबूत हुआ।



चित्र 6.9: नाजी शक्ति का विस्तार (यूरोप, 1942)

- यूरोप के एक बड़े हिस्से में नाजी जर्मनी के समर्थन वाली कठपुतली सरकारें स्थापित हो चुकी थीं। 1940 के अंत तक हिटलर अपनी शक्ति के शिखर पर था। उसका दीर्घकालिक लक्ष्य पूर्वी यूरोप पर विजय प्राप्त करना था। वह जर्मनों के लिए खाद्य आपूर्ति और रहने की जगह सुनिश्चित करना चाहता था।

कुछ महत्वपूर्ण तिथियाँ

- 1 अगस्त, 1914: प्रथम विश्व युद्ध की शुरुआत
- 9 नवंबर, 1918: जर्मनी का आत्मसमर्पण और युद्ध की समाप्ति
- 9 नवंबर, 1918: वीमर गणराज्य की घोषणा
- 28 जून, 1919: वर्साय की संधि
- 30 जनवरी, 1933: हिटलर जर्मनी का चांसलर बना
- 1 सितंबर, 1939: जर्मनी ने पोलैंड पर आक्रमण किया और द्वितीय विश्व युद्ध की शुरुआत हुई
- 22 जून, 1941: जर्मनी ने यूएसएसआर पर आक्रमण किया
- 23 जून, 1941: यहूदियों की सामूहिक हत्या शुरू
- 8 दिसंबर, 1941: संयुक्त राज्य अमेरिका ने द्वितीय विश्व युद्ध में भाग लिया।
- 27 जनवरी, 1945: सोवियत सैनिकों ने ऑशविट्ज़ को मुक्त कराया।
- 8 मई, 1945: यूरोप में मित्र राष्ट्रों की विजय

द्वितीय विश्व युद्ध और उसके बाद की क्षति:

- जून 1941 में, हिटलर ने सोवियत संघ पर हमला कर दिया। इस ऐतिहासिक भूल में हिटलर ने जर्मनी के पश्चिमी मोर्चे को ब्रिटिश हवाई बमबारी के सामने और पूर्वी मोर्चे को शक्तिशाली सोवियत सेनाओं के सामने उजागर कर दिया। सोवियत लाल सेना ने स्टेलिनग्राद में जर्मनी को करारी और अपमानजनक हार दी। उसके बाद आधी सदी तक पूरे पूर्वी यूरोप पर सोवियत आधिपत्य स्थापित रहा।
- अमेरिका इस युद्ध में फँसने से लगातार बचता रहा। अमेरिका पहले विश्वयुद्ध की वजह से पैदा हुई आर्थिक समस्याओं को दोबारा नहीं झेलना चाहता था। लेकिन वह लंबे समय तक युद्ध से दूर भी नहीं रह सकता था। पूरब में जापान की ताकत फैलती जा रही थी। उसने फ्रेंच इंडो-चाइना पर कब्जा कर लिया था और प्रशांत महासागर में अमेरिकी नौसैनिक ठिकानों पर हमले की पूरी योजना बना ली थी।
- जब जापान ने हिटलर को समर्थन दिया और पर्ल हार्बर पर अमेरिकी ठिकानों को बमबारी का निशाना बनाया तो अमेरिका भी दूसरे विश्वयुद्ध में कूद पड़ा।
- युद्ध मई 1945 में हिटलर की हार और जापान के हिरोशिमा पर अमेरिका द्वारा परमाणु बम गिराए जाने के साथ समाप्त हुआ।

नाजीवाद: एक नस्लीय विश्वदृष्टिकोण

“क्योंकि यह धरती किसी को आवंटित नहीं की गई है और न ही इसे किसी को उपहार के रूप में दिया गया है। यह उन लोगों को ईश्वर द्वारा प्रदान की जाती है जिनके दिल में इसे जीतने का साहस, इसे संरक्षित करने की ताकत और इसे हल में लगाने का साहस होता है... इस दुनिया का प्राथमिक अधिकार जीवन का अधिकार है, जब तक कि किसी के पास इसके लिए ताकत हो। इसलिए इस अधिकार के आधार पर एक सशक्त राष्ट्र हमेशा अपने क्षेत्र को अपनी आबादी के आकार के अनुकूल बनाने के तरीके खोजेगा।” हिटलर, सीक्रेट बुक, एड. टेलफोर्ड टेलर।

“ऐसे युग में जब पृथ्वी धीरे-धीरे राज्यों में विभाजित हो रही है, जिनमें से कुछ लगभग पूरे महाद्वीपों को अपने में समाहित कर लेते हैं, हम एक ऐसे गठन के संबंध में विश्व शक्ति की बात नहीं कर सकते, जिसकी राजनीतिक मातृभूमि पाँच सौ किलोमीटर के बेतुके क्षेत्र तक सीमित हो।” हिटलर, मेन कैप, पृ. 644.

- नात्सी विचारधारा हिटलर के विश्व दृष्टिकोण का पर्यायवाची थी। इस विश्व दृष्टिकोण में सभी समाजों को बराबरी का हक नहीं था, वे नस्ली आधार पर या तो बेहतर थे या कमतर थे। इस नज़रिये में ब्लॉन्ड, नीली आँखों वाले, नॉर्डिक जर्मन आर्य सबसे ऊपरी और यहूदी सबसे निचली पायदान पर आते थे। यहूदियों को नस्ल विरोधी, यानी आर्यों का कट्टर शत्रु माना जाता था। **नाजी तर्क सरल था:** सबसे मजबूत नस्ल बच जाएगी और कमजोर लोग नष्ट हो जाएँगे। आर्यन नस्ल सबसे अच्छी थी। इसे अपनी पवित्रता बनाए रखनी थी, मजबूत बनना था और दुनिया पर हावी होना था।
- यहूदियों को एक नस्ल-विरोधी, आर्यों का कट्टर दुश्मन माना जाने लगा। अन्य सभी रंग-बिरंगे लोगों को उनकी बाहरी विशेषताओं के आधार पर बीच में रखा गया। यह नाजी विचारधारा हिटलर के विश्वदृष्टिकोण का पर्याय थी।



चित्र 6.10: ऑशविट्ज़ में निर्वासित किए जा रहे ज़िप्सियों को ले जाती पुलिस, वर्ष 1943-1944

- ❑ हिटलर का नस्लवाद चार्ल्स डार्विन और हर्बर्ट स्पेंसर जैसे विचारकों से उधार लिया गया था। डार्विन ने प्राकृतिक चयन और विकास की अवधारणा दी। हर्बर्ट स्पेंसर ने 'अति जीविता का सिद्धांत' (सरवाइवल ऑफ द फ़िटिस्ट) जो सबसे योग्य है, वही जिंदा बचेगा-यह विचार दिया। इस विचार का मतलब यह था कि जो प्रजातियाँ बदलती हुई वातावरणीय परिस्थितियों के अनुसार खुद को ढाल सकती हैं, वहीं पृथ्वी पर जिंदा रहती हैं। हालाँकि, उनके विचारों का उपयोग नस्लवादी विचारकों और राजनेताओं ने विजित लोगों पर साम्राज्यवादी शासन को सही ठहराने के लिए किया।
- ❑ हिटलर की विचारधारा का दूसरा पहलू लेबेन्स्राम या जीवन- परिधि की भू-राजनीतिक अवधारणा से संबंधित था। उनका मानना था कि बसने के लिए नए क्षेत्रों का अधिग्रहण किया जाना चाहिए। इससे मातृभूमि का क्षेत्रफल बढ़ेगा।
- ❑ इससे जर्मन राष्ट्र के भौतिक संसाधन और शक्ति भी बढ़ेगी। हिटलर का इरादा पूर्व की ओर बढ़कर जर्मन सीमाओं का विस्तार करना था, ताकि सभी जर्मन भौगोलिक रूप से एक ही स्थान पर केंद्रित हो सकें। पोलैंड इस प्रयोग के लिए प्रथम प्रयोगशाला बन गया।

नस्लवादी राज्य की स्थापना:

- ❑ नाज़ी सिर्फ 'शुद्ध और स्वस्थ नॉर्डिक आर्यों' का समाज चाहते थे। सिर्फ उन्हें ही 'वाँ छनीय' माना जाता था। सिर्फ उन्हें ही उन सभी लोगों के मुकाबले समृद्ध और समृद्ध होने के योग्य माना जाता था जिन्हें 'अवाँ छनीय' माना जाता था।
- ❑ वे उन सभी लोगों को शारीरिक रूप से समाप्त करके शुद्ध जर्मनों का एक विशेष नस्लीय समुदाय चाहते थे जिन्हें विस्तारित साम्राज्य में 'अवाँ छनीय' माना जाता था। इनमें केवल यहूदी ही नहीं, बल्कि नाज़ी जर्मनी में रहने वाले कई जिप्सी और अश्वेतों को नस्लीय रूप से 'हीन' माना जाता था जो 'श्रेष्ठ आर्य' नस्ल की जैविक शुद्धता के लिए खतरा थे। यहाँ तक कि रूसियों और पोलस को भी अमानवीय माना जाता था। उन्हें व्यापक रूप से सताया जाता था।
- ❑ यहाँ तक कि उन जर्मनों को भी जिन्हें अशुद्ध या असामान्य माना जाता था, अस्तित्व में रहने का कोई अधिकार नहीं था। 'इच्छामृत्यु कार्यक्रम' के तहत कई जर्मन जिन्हें मानसिक या शारीरिक रूप से अयोग्य माना जाता था, उन्हें मार दिया गया। पोलैंड और रूस के अन्य हिस्सों से पकड़े गए नागरिकों को दास श्रम के रूप में काम करने के लिए मजबूर किया गया। उनमें से अधिकांश लोग बेहिसाब काम के बोझ और भूख से मर गए।



चित्र 6.11: यह उन मालवाहक गाड़ियों में से एक है, जिसका उपयोग यहूदियों को मृत्यु कक्षों में भेजने के लिए किया जाता था

'यहूदी समस्या' का समाधान:

- ❑ नाज़ी जर्मनी में यहूदी सबसे ज्यादा पीड़ित रहे। यहूदियों के प्रति नाज़ी नफ़रत की एक वजह यहूदियों के प्रति पारंपरिक ईसाई दुश्मनी थी। उन्हें ईसा मसीह के हत्यारे और सूदखोर के रूप में स्टीरियोटाइप किया गया था।
- ❑ मध्यकाल तक आते-आते यहूदियों को ज़मीन के मालिक होने से रोक दिया गया था और वे मुख्य रूप से व्यापार एवं पैसे उधार देकर अपना जीवन यापन करते थे। वे अलग-अलग चिन्हित इलाकों में रहते थे, जिन्हें यहूदी बस्ती कहा जाता था। हिटलर की यहूदियों के प्रति नफ़रत नस्ल के छद्म वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित थी, जो मानते थे कि धर्म परिवर्तन 'यहूदी समस्या' का समाधान नहीं है। इसे केवल उनके पूर्ण उन्मूलन के माध्यम से हल किया जा सकता है।
- ❑ सन् 1933 से 1938 तक नात्सियों ने यहूदियों को तरह-तरह से आतंकित किया, उन्हें दरिद्र कर आजीविका के साधनों से हीन कर दिया और उन्हें शेष समाज से अलग-थलग कर डाला। यहूदी देश छोड़कर जाने लगे। सन् 1939-45 के दूसरे दौर में यहूदियों को कुछ खास इलाकों में इकट्ठा करने और अंततः पोलैंड में बनाए गए गैस चेंबरों में ले जाकर मार देने की रणनीति अपनाई गई।

नस्लीय कल्पनालोक (यूटोपिया):

- ❑ नाज़ियों के लिए नरसंहार और युद्ध एक ही सिक्के के दो पहलू बन गए थे। कब्जे वाले पोलैंड को विभाजित कर दिया गया और उत्तर-पश्चिमी पोलैंड का अधिकांश हिस्सा जर्मनी में मिला लिया गया। पोलिश लोगों को अपने घर और संपत्ति छोड़ने के लिए मजबूर किया गया।
- ❑ पोलिश लोगों को जनरल गवर्नमेंट नामक दूसरे हिस्से में मवेशियों की तरह रखा जाता था, जो साम्राज्य के सभी 'अवाँ छनीय' लोगों का ठिकाना था। जनरल गवर्नमेंट यहूदियों के लिए हत्या के मैदान के रूप में भी काम करता था। इसमें सबसे बड़ी यहूदी बस्तियाँ और गैस चेंबर थे।



चित्र 6.12: मौत के कारखानों में आते यहूदी बच्चे जिन्हें गैस से मार दिया जाएगा

- ❑ पोलिश बुद्धिजीवियों के सदस्यों की बड़ी संख्या में हत्या की गई ताकि पूरे लोगों को बौद्धिक और आध्यात्मिक रूप से गुलाम बनाए रखा जा सके।
- ❑ आर्य जैसे लगने वाले पोलैंड के बच्चों को उनके माँ-बाप से छीन कर जाँच के लिए 'नस्ल विशेषज्ञों' के पास पहुँचा दिया गया। अगर वे नस्ली जाँच में कामयाब हो जाते तो उन्हें जर्मन परिवारों में पाला जाता और अगर ऐसा नहीं होता तो उन्हें अनाथाश्रमों में डाल दिया जाता जहाँ उनमें से ज्यादातर मर जाते थे। जनरल गवर्नमेंट में कुछ विशालतम घेरो और गैस चेंबर भी थे इसलिए यहाँ यहूदियों को बड़े पैमाने पर मारा जाता था।

नात्सी जर्मनी में युवाओं की स्थिति

- ❑ युवाओं में हिटलर की दिलचस्पी जुनून की हद तक पहुँच चुकी थी। उसका मानना था कि एक शक्तिशाली नात्सी समाज की स्थापना के लिए बच्चों को नात्सी विचारधारा की घुट्टी पिलाना बहुत जरूरी है। इसके लिए स्कूल के भीतर और बाहर, दोनों जगह बच्चों पर पूरा नियंत्रण आवश्यक था।
- ❑ जर्मन और यहूदी एक साथ बैठ नहीं सकते थे या एक साथ खेल नहीं सकते थे। सभी 'अर्वाँ छित बच्चे' - यहूदी, शारीरिक रूप से विकलांग, जिप्सी समुदाय को स्कूलों से निकाल दिया गया। केवल 'अच्छे जर्मन' बच्चों को नाजी स्कूली शिक्षा की प्रक्रिया के अधीन किया गया, वैचारिक प्रशिक्षण की एक लंबी अवधि।

जर्मन लेबर फ्रंट के प्रमुख रॉबर्ट ले ने कहा था:

हम तभी से काम शुरू कर देते हैं जब बच्चा तीन साल का होता है। जैसे ही वह जरा-सा भी सोचने लगता है उसे लहराने के लिए एक छोटा-सा झंडा थमा दिया जाता है। इसके बाद स्कूल, हिटलर यूथ और सैनिक सेवा का नंबर आता है। लेकिन यह सब कुछ पूरा हो जाने के बाद भी हम किसी को छोड़ते नहीं हैं। लेबर फ्रंट उन्हें अपनी गिरफ्त में ले लेता है। चाहे उन्हें अच्छा लगे या बुरा, कब्र तक यह उनका पीछा नहीं छोड़ता।

- ❑ स्कूल की पाठ्यपुस्तकों को फिर से लिखा गया। नस्ल के बारे में नाजी विचारों को सही ठहराने के लिए नस्लीय विज्ञान की शुरुआत की गई। बच्चों को वफादार और विनम्र होना, यहूदियों से नफरत करना और हिटलर की पूजा करना सिखाया गया। खेल को बच्चों में हिंसा और आक्रामकता की भावना को बढ़ावा देने के तरीके के रूप में देखा जाता था। हिटलर का मानना था कि मुक्केबाजी बच्चों को मजबूत, मजबूत और मर्दाना बना सकती है।
- ❑ जर्मन युवाओं को 'राष्ट्रीय समाजवाद की भावना' में शिक्षित करने के लिए युवा संगठनों को जिम्मेदार बनाया गया। दस साल के बच्चों को जंगवोल्क में प्रवेश करना पड़ता था। **14 साल की उम्र में, सभी लड़कों को नाजी युवा संगठन: 'हिटलर यूथ' में शामिल होना पड़ता था।** यहाँ उन्होंने युद्ध की पूजा करना, आक्रामकता और हिंसा का महिमामंडन करना, लोकतंत्र की निंदा करना तथा यहूदियों, कम्युनिस्टों, जिप्सियों एवं उन सभी से नफरत करना सीखा जिन्हें 'अर्वाँ छनीय' के रूप में वर्गीकृत किया गया था।
- ❑ 18 साल की उम्र में, कठोर वैचारिक और शारीरिक प्रशिक्षण की अवधि के बाद वे श्रम सेवा में शामिल हो गए तथा उन्हें सशस्त्र बलों में सेवा करनी पड़ी एवं नाजी संगठनों में से एक में शामिल होना पड़ा।
- ❑ **नाज़ियों की युवा लीग की स्थापना सन् 1922 में हुई थी।** बाद में इसका नाम बदलकर हिटलर यूथ कर दिया गया। नाजी नियंत्रण के तहत युवा आंदोलन को एकजुट करने के लिए, अन्य सभी युवा संगठनों को व्यवस्थित रूप से भंग कर दिया गया और अंततः उन पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

न्यूरेम्बर्ग पार्टी रैली में औरतों को संबोधित करते हुए 8 सितंबर 1934 को हिटलर ने कहा था:

हम इस बात को अच्छा नहीं मानते कि औरतें मर्द की दुनिया में, उसके मुख्य दायरे में दखल दें। हमारी नज़र में यह कुदरती बात है कि ये दोनों दुनिया एक-दूसरे से अलग-अलग हैं...। जिस तरह मर्द अपने साहस के रूप में युद्ध के मोर्चे पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देता है उसी तरह औरतें अपने अनंत आत्मबलिदान, अनंत पीड़ा और दर्द के रूप में अपना योगदान देती हैं। हर बच्चा जो औरत संसार में लाती है वह उसके लिए एक युद्ध ही है, अपने समाज को जिंदा रखने के लिए औरत द्वारा छेड़ा गया युद्ध।

मातृत्व की नात्सी सोच:

- ❑ नात्सी जर्मनी में प्रत्येक बच्चे को बार-बार यह बताया जाता था कि औरतें बुनियादी तौर पर मर्दों से भिन्न होती हैं।
- ❑ उन्हें समझाया जाता था कि पुरुषों और महिलाओं के लिए समान अधिकारों की लड़ाई समाज को नष्ट कर देगी। लड़कों को आक्रामक, मर्दाना और दृढ़ हृदय होना सिखाया जाता था जबकि लड़कियों को बताया जाता था कि उन्हें अच्छी माँ बनना है एवं शुद्ध रक्त वाले आर्य बच्चों का पालन-पोषण करना है।
- ❑ लड़कियों को नस्ल की शुद्धता बनाए रखनी थी, यहूदियों से दूरी बनानी थी, घर की देखभाल करनी थी और अपने बच्चों को नाजी मूल्य सिखाना था। उन्हें आर्य संस्कृति और नस्ल का वाहक बनना था।

न्यूरेम्बर्ग पार्टी रैली में 8 सितंबर 1934 को ही हिटलर ने यह भी कहा था:

'औरत किसी समुदाय के संरक्षण में सबसे स्थिर तत्त्व है...। उसे इस बात का सबसे अच्छी तरह पता होता है कि अपनी नस्ल को खत्म होने से बचाने के लिए क्या-क्या चीजें महत्वपूर्ण होती हैं, क्योंकि उसी के बच्चे हैं जो इस सारी पीड़ा से सबसे पहले प्रभावित होंगे...। इसीलिए हमने नस्ली समुदाय के संघर्ष में औरत को भी वही जगह दी है जो प्रकृति और नियति के अनुसार है।'

- सन् 1933 में हिटलर ने कहा था 'मेरे राज्य की सबसे महत्वपूर्ण नागरिक माँ है।' लेकिन नात्सी जर्मनी में सारी माताओं के साथ भी एक जैसा बर्ताव नहीं होता था। जो औरतें नस्ली तौर पर अवांछित बच्चों को जन्म देती थीं उन्हें दंडित किया जाता था जबकि नस्ली तौर पर वांछित दिखने वाले बच्चों को जन्म देने वाली माताओं को इनाम दिए जाते थे। ऐसी माताओं को अस्पताल में विशेष सुविधाएँ दी जाती थीं, दुकानों में उन्हें ज्यादा छूट मिलती थी और थियेटर व रेलगाड़ी के टिकट उन्हें सस्ते में मिलते थे। हिटलर ने खूब सारे बच्चों को जन्म देने वाली माताओं के लिए वैसे ही तमगे देने का इंतजाम किया था जिस तरह के तमगे सिपाहियों को दिए जाते थे। चार बच्चे पैदा करने वाली माँ को काँसे का, छः बच्चे पैदा करने वाली माँ को चाँदी का और आठ या उससे ज्यादा बच्चे पैदा करने वाली माँ को सोने का तमगा दिया जाता था।
- निर्धारित आचार संहिता से किसी भी तरह का विचलन सार्वजनिक रूप से निंदा की जाती थी और इसे आपराधिक अपराध माना जाता था। जो 'आर्य' महिलाएँ यहूदियों, पोलिश और रूसियों के साथ संपर्क बनाए रखती थीं, उन्हें जेल में डाल दिया जाता था तथा उनके सिर मुंडे हुए, चेहरे काले किए हुए एवं गले में तख्तियाँ लटकाकर पूरे शहर में घुमाया जाता था, जिस पर लिखा होता था 'मैंने राष्ट्र के सम्मान को कलंकित किया है'।

प्रचार की कला:

- नात्सी शासन ने भाषा और मीडिया का बड़ी होशियारी से इस्तेमाल किया तथा उसका जबर्दस्त फायदा उठाया। उन्होंने अपने तौर-तरीकों को बयान करने के लिए जो शब्द ईजाद किए थे वे न केवल भ्रामक बल्कि दिल दहला देने वाले शब्द थे।
- नात्सियों ने अपने अधिकृत दस्तावेजों में 'हत्या' या 'मौत' जैसे शब्दों का कभी इस्तेमाल नहीं किया। सामूहिक हत्याओं को विशेष व्यवहार, अंतिम समाधान (यहूदियों के संदर्भ में), यूथनेज़िया (विकलांगों के लिए), चयन और संक्रमण-मुक्ति आदि शब्दों से व्यक्त किया जाता था।
- 'इवैक्युएशन' (खाली कराना) का आशय था लोगों को गैस चेंबरों में ले जाना। क्या आपको मालूम है कि गैस चेंबरों को क्या कहा जाता था? उन्हें 'संक्रमण मुक्ति-क्षेत्र' कहा जाता था। गैस चेंबर स्नानघर जैसे दिखाई देते थे और उनमें नकली फव्वारे भी लगे होते थे।
- मीडिया का सावधानीपूर्वक उपयोग शासन के लिए समर्थन जीतने और इसके विश्वदृष्टिकोण को लोकप्रिय बनाने के लिए किया गया था। नाज़ी विचारों को दृश्य छवियों, फिल्मों, रेडियो, पोस्टर, आकर्षक नारों और पर्चों के माध्यम से फैलाया गया था। पोस्टरों में, जर्मनों के 'दुश्मनों' के रूप में पहचाने जाने वाले समूहों को स्टीरियोटाइप किया गया, उनका मजाक उड़ाया गया, उनके साथ दुर्व्यवहार किया गया और उन्हें बुरा बताया गया। समाजवादियों और उदारवादियों को कमजोर एवं पतित के रूप में पेश किया गया।
- यहूदियों के प्रति नफ़रत पैदा करने के लिए प्रोपेगैंडा फ़िल्में बनाई गईं। सबसे बदनाम फ़िल्म 'द इटरनल ज्यू' थी। रूढ़िवादी यहूदियों को स्टीरियोटाइप और चिह्नित किया गया। उन्हें कीड़े-मकौड़े, चूहे और कीट कहा जाता था। उन्होंने खुद को एकमात्र पार्टी के रूप में चित्रित किया जो अकेले ही उनकी सभी समस्याओं का समाधान कर सकती है।

आम जनता और मानवता के विरुद्ध अपराध:

- नाज़ीवाद आज उस विचारधारा को दर्शाता है जिसने जर्मन समाज को इस हद तक कट्टरपंथी बना दिया कि यहूदियों और अन्य लोगों की सामूहिक हत्याएँ 'सामान्य' एवं न्यायसंगत लगने लगीं। आम लोग दुनिया को नाज़ी नज़र से देखते थे और नाज़ी भाषा में अपनी बात कहते थे। जब वे किसी यहूदी जैसे दिखने वाले व्यक्ति को देखते थे तो उनके अंदर नफ़रत और गुस्सा उमड़ पड़ता था। लोगों को वाकई लगता था कि नाज़ीवाद समृद्धि लाएगा और आम खुशहाली में सुधार लाएगा। हालाँकि हर जर्मन नाज़ी नहीं था, लेकिन ज्यादातर अन्य लोग निष्क्रिय दर्शक और उदासीन गवाह थे।
- शार्लोट बेराइट ने लोगों के सपनों को गुप्त रूप से अपनी डायरी में दर्ज किया और बाद में उन्हें 'थर्ड रीच ऑफ़ ड्रीम्स' नामक एक बेहद निराशाजनक किताब में प्रकाशित किया। वह बताती हैं कि कैसे यहूदी खुद अपने बारे में नाज़ी रूढ़ियों पर विश्वास करने लगे। गैस चेंबर में पहुँचने से पहले ही यहूदी कई बार मर गए।

मौत का सिलसिला

बहिष्कार, यहूदी बस्ती और विनाश के चरण

चरण 1: बहिष्कार 1933-1939

'आपको हमारे बीच नागरिक के रूप में रहने का कोई अधिकार नहीं है'

न्यूरेम्बर्ग नागरिकता अधिकार, सितंबर 1935:

1. जर्मन या उससे संबंधित रक्त वाले व्यक्ति ही जर्मन नागरिक होंगे और उन्हें जर्मन साम्राज्य का संरक्षण मिलेगा।
2. यहूदियों और जर्मनों के बीच विवाह पर पाबंदी।
3. यहूदियों और जर्मनों के बीच विवाहेतर संबंधों को अपराध घोषित कर दिया गया।
4. यहूदियों द्वारा राष्ट्रीय ध्वज फहराने पर पाबंदी लगा दी गई।



चित्र 6.13: पार्क में रखी बेंच: केवल आर्यों के लिए

अन्य कानूनी उपाय:

- यहूदी व्यवसायों का बहिष्कार।
- सरकारी सेवाओं से निकाला जाना।
- यहूदियों की संपत्ति की जब्ती और बिक्री।

इसके अलावा नवंबर 1938 के एक जनसंहार में यहूदियों की संपत्तियों को तहस-नहस किया गया, लूटा गया, उनके घरों पर हमले हुए, यहूदी प्रार्थनाघर (Synagogues) जला दिए गए और उन्हें गिरफ्तार किया गया। इस घटना को 'नाइट ऑफ़ ब्रोकेन ग्लास' के नाम से याद किया जाता है।

दूसरा चरण: दंडवाबंदी (Ghettoisation): 1940-44

तुम्हें हमारे बीच रहने का कोई हक नहीं।

सितंबर 1941 से सभी यहूदियों को हुक्म दिया गया कि वह डेविड का पीला सितारा अपनी छाती पर लगा कर रखेंगे। उनके पासपोर्ट, तमाम कानूनी दस्तावेजों और घरों के बाहर भी यह पहचान चिह्न छाप दिया गया। जर्मनी में उन्हें यहूदी मकानों में और पूर्वी क्षेत्र के लोट्ख एवं वारसा जैसी घंटा बस्तियों में कष्टपूर्ण व दखिता की स्थिति में रखा जाता था। ये बेहद पिछड़े और निर्धन इलाके थे। घंटों में दाखिल होने से पहले यहूदियों को अपनी सारी संपत्ति छोड़ देने के लिए मजबूर किया गया। कुछ ही समय में घंटी बस्तियों में वंचना, भुखमरी, गंदगी और बीमारियों का साम्राज्य व्याप्त हो गया।

चरण 3: सर्वनाश 1941 के बाद



चित्र 6.14: यह चिह्न यह घोषित करता है कि यह उत्तरी समुद्र स्नान क्षेत्र यहूदियों से मुक्त है



चित्र 6.15: 'अंतिम समाधान' से पहले कैदियों से छीने गए जूते



चित्र 6.16: एक एकाग्रता शिविर

'तुम्हें जीने का कोई अधिकार नहीं'

समूचे यूरोप के यहूदी मकानों, यातना गृहों और घंटों बस्तियों में रहने वाले यहूदियों को मालगाड़ियों में भर-भर कर मौत के कारखानों में लाया जाने लगा पोलेंड तथा अन्य पूर्वी इलाकों में, मुख्य रूप से बेलसेक, औपविला, सोधीयोर, प्रवलिका, चेल्मनो, एवं मायानेक में उन्हें गैस चेंबरों औद्योगिक व वैज्ञानिक तकनीकों के सहारे बहुत सारे लोगों को पलक झपकते मौत के घाट उतार दिया गया।

जर्मनी के लिए प्रतिशोध:

- मई 1945 में जर्मनी ने मित्र राष्ट्रों के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। हिटलर, उसके प्रचार मंत्री गोएबल्स और उसके पूरे परिवार ने अप्रैल में बर्लिन बंकर में सामूहिक रूप से आत्महत्या कर ली।
- युद्ध के अंत में, नूर्नबर्ग में एक अंतरराष्ट्रीय सैन्य न्यायाधिकरण की स्थापना की गई, ताकि शांति के विरुद्ध अपराध, युद्ध अपराध और मानवता के विरुद्ध अपराध के लिए नाजी युद्ध अपराधियों पर मुकदमा चलाया जा सके।
- युद्ध के दौरान जर्मनी के आचरण, विशेष रूप से मानवता के विरुद्ध अपराध ने गंभीर नैतिक प्रश्न उठाए और दुनिया भर में उसके कृत्यों की निंदा हेतु सभी का ध्यान आकर्षित किया।
- द्वितीय विश्व युद्ध में, जर्मनी ने एक नरसंहार युद्ध छेड़ा था, जिसके परिणामस्वरूप यूरोप के निर्दोष नागरिकों के चयनित समूहों की सामूहिक हत्या हुई। मारे गए लोगों में 6 मिलियन यहूदी, 200,000 जिप्सी, 1 मिलियन पोलिश नागरिक, 70,000 जर्मन शामिल थे जिन्हें मानसिक और शारीरिक रूप से विकलांग माना जाता था, इसके अलावा असंख्य राजनीतिक विरोधियों को ऑशविट्ज़ जैसे विभिन्न हत्या केंद्रों में उन्हें गैस से मार डाला।



चित्र 6.17: हिटलर (बीच में) और गोएबल्स (बाएँ), 1932 में एक आधिकारिक बैठक के बाद निकलते हुए।

- ❑ नूर्नबर्ग न्यायाधिकरण ने केवल ग्यारह प्रमुख नाज़ियों को मौत की सजा सुनाई। कई अन्य को आजीवन कारावास की सजा दी गई। प्रतिशोध तो हुआ, लेकिन नाज़ियों को दी गई सजा, उनके अपराधों की क्रूरता और सीमा की तुलना में बहुत कम थी।

महाध्वंस (होलोकॉस्ट) के बारे में जानकारीयाँ:

- ❑ नात्सी तौर-तरीकों की जानकारी नात्सी शासन के आखिरी सालों में रिस-रिस कर जर्मनी से बाहर जाने लगी थी। लेकिन, वहाँ कितना भीषण रक्तपात और बर्बर दमन हुआ था, इसका असली अंदाज़ा तो दुनिया को युद्ध खत्म होने एवं जर्मनी के हार जाने के बाद ही लग पाया। जर्मन समाज तो मलबे में दबे एक पराजित राष्ट्र के रूप में अपनी दुर्दशा से दुखी था ही, लेकिन यहूदी भी चाहते थे कि दुनिया उन भीषण अत्याचारों और पीड़ाओं को याद रखे जो उन्होंने नात्सी कत्लेआम में झेली थीं।
- ❑ यहूदी चाहते थे कि दुनिया नाज़ी हत्या अभियानों के दौरान उनके द्वारा सहे गए अत्याचारों और पीड़ाओं को याद रखे- जिसे होलोकॉस्ट भी कहा जाता है, लेकिन नाज़ी नेतृत्व ने कार्यालयों में उपलब्ध सभी सबूतों को नष्ट करने का हर संभव प्रयास किया।
- ❑ फिर भी होलोकॉस्ट का इतिहास और स्मृति आज दुनिया के कई हिस्सों में संस्मरणों, कथाओं, वृत्तचित्रों, कविताओं, स्मारकों और संग्रहालयों में जीवित है। ये उन लोगों के लिए श्रद्धांजलि हैं जिन्होंने इसका विरोध किया, उन लोगों के लिए एक शर्मनाक अनुस्मारक जिन्होंने सहयोग किया, और उन लोगों के लिए एक चेतावनी जिन्होंने चुपचाप देखा।

विचारणीय बिंदु

नाज़ी जर्मनी के अधीन यहूदी समुदाय मुख्य लक्ष्य थे। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान पूरे यूरोप से यहूदियों को उत्पीड़न का सामना करना पड़ा। आज भी यहूदी राज्य इजराइल को अरब देशों से खतरों का सामना करना पड़ रहा है। क्या आप उन कारणों का पता लगा सकते हैं कि यहूदियों को ऐसे उत्पीड़न का सामना क्यों करना पड़ा या आज भी क्यों करना पड़ रहा है।



निष्कर्ष

नाज़ीवाद, एक चरमपंथी विचारधारा है, जो घृणा, नस्लीय श्रेष्ठता और अधिनायकवाद में निहित है। इस विचारधारा ने लाखों लोगों का भीषण रक्तपात कर, बर्बर दमन किया। इसने होलोकॉस्ट को जन्म दिया, एक नरसंहार जो मानवता के खिलाफ सबसे जघन्य अपराधों में से एक है। इस अवधि पर विचार करना चरमपंथी विचारधाराओं, असहिष्णुता और लोकतांत्रिक मूल्यों के क्षरण के खतरों के खिलाफ एक सख्त चेतावनी के रूप में कार्य करता है। यह मानवाधिकारों की रक्षा, समावेशिता को बढ़ावा देने और समझ एवं सहानुभूति की संस्कृति को बढ़ावा देने में सतर्कता के महत्त्व पर प्रकाश डालता है।

महत्त्वपूर्ण शब्दावलियाँ

- ❖ **नरसंहार:** बड़े पैमाने पर हत्या करना जिससे लोगों के बड़े वर्ग का विनाश हो।
- ❖ **क्षीण करना:** कम करना, खाली करना।
- ❖ **क्षतिपूर्ति:** जिस संपत्ति को नुकसान पहुँचाया गया हो उसकी भरपाई करना।
- ❖ **वॉल स्ट्रीट एक्सचेंज:** संयुक्त राज्य अमेरिका में स्थित दुनिया के सबसे बड़े स्टॉक एक्सचेंज का नाम।
- ❖ **सर्वहाराकरण:** मजदूर वर्ग के स्तर तक दरिद्र हो जाना।
- ❖ **प्रचार:** लोगों की राय को प्रभावित करने के उद्देश्य से सीधे तौर पर संदेश का एक विशिष्ट प्रकार (पोस्टर, फिल्म, भाषण आदि के माध्यम से)।
- ❖ **एकाग्रता शिविर:** एक ऐसा शिविर जहाँ लोगों को अलग-थलग कर दिया जाता था और बिना किसी कानूनी प्रक्रिया के हिरासत में रखा जाता था। आमतौर पर, यह बिजली से चलने वाले कांटेदार तार की बाड़ से घिरा होता था।
- ❖ **नॉर्डिक जर्मन आर्यन:** आर्यन के रूप में वर्गीकृत लोगों की एक शाखा। वे उत्तरी यूरोपीय देशों में रहते थे और उनका मूल जर्मन या उससे संबंधित था।
- ❖ **जिप्सी:** जिन समूहों को 'जिप्सी' के रूप में वर्गीकृत किया गया था, उनकी अपनी सामुदायिक पहचान थी। सिंती और रोमा दो ऐसे समुदाय थे। उनमें से अनेक समूहों ने भारत में अपनी उत्पत्ति का पता लगाया।
- ❖ **गरीब:** ऐसा व्यक्ति, समाज या देश जिसके पास मूलभूत आवश्यकताओं का अभाव हो।
- ❖ **उत्पीड़न:** किसी समूह या धर्म से संबंधित लोगों को व्यवस्थित, संगठित दंड देना।
- ❖ **सूदखोर:** अत्यधिक ब्याज वसूलने वाले साहूकार; अक्सर गाली के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।
- ❖ **जंगवोल्क:** 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के लिए नाज़ी युवा समूह।
- ❖ **सभास्थल:** यहूदी धर्म के लोगों के लिए पूजा स्थल।



जीविका, अर्थव्यवस्था एवं समाज

संदर्भ: इस अध्याय में NCERT पाठ्यपुस्तक की कक्षा-IX (भारत और समकालीन विश्व-I) के अध्याय-4 व 5 का सारांश शामिल है।

परिचय

इस अध्याय में हम देखेंगे कि आधुनिक विश्व में वनवासियों और चरवाहों के जीवन में किस तरह बदलाव आया एवं उन्होंने इन बदलावों को आकार देने में किस तरह भूमिका निभाई। आधुनिक विश्व का उदय कैसे हुआ है, इस बात पर विचार करते हुए हम अक्सर कारखानों और शहरों पर तथा बाज़ार को आपूर्ति करने वाले औद्योगिक एवं कृषि क्षेत्रों पर ही ध्यान देते हैं। हम यह भूल जाते हैं कि इन क्षेत्रों के बाहर दूसरी अर्थव्यवस्थाएँ भी हैं, दूसरे लोग भी हैं जो राष्ट्र के लिए महत्त्व रखते हैं। आधुनिक दृष्टि से देखने पर ऐसा लगता है कि चरवाहों और वनवासियों, घुमंतू किसानों एवं खाने की चीजें बिन कर गुजर करने वालों की जिंदगी अतीत में ही कहीं अटक कर रह गई है। समकालीन विश्व के उदय का अध्ययन करते हुए उनके प्रति हमारा रवैया कुछ ऐसा रहता है मानो उनकी जिंदगी का कोई महत्त्व ही न हो। इस अध्याय में इस बात को रेखांकित किया गया है कि हमें उनकी जिंदगी के बारे में जानना चाहिए; हमें देखना चाहिए कि वे अपनी दुनिया को कैसे व्यवस्थित करते हैं और कैसे अपनी रोजी-रोटी चलाते हैं। ये लोग भी पूरी तरह उसी दुनिया का हिस्सा हैं जिसमें हम आज रह रहे हैं। वे गुजरे हुए जमाने के बचे-खुचे लोग नहीं हैं।

वन्य समाज और उपनिवेशवाद:

- कागज, फर्नीचर, रंग, मसाले, बीड़ी में तेंदू पत्ता, गोंद, शहद, कॉफी, चाय, रबर, साल के बीजों से तेल, खाल और चमड़े को चमड़े में बदलने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला चर्मशोधक (टैनिन) या औषधीय प्रयोजनों के लिए इस्तेमाल की जाने वाली जड़ी-बूटियाँ और जड़ें जैसी चीजें सभी जंगल से आती हैं। वे बाँस, ईंधन के लिए लकड़ी, घास, लकड़ी का कोयला, पैकेजिंग, फल, फूल, जानवर, पक्षी और कई अन्य चीजें भी प्रदान करते हैं।
- अमेज़न के जंगलों या पश्चिमी घाटों में एक जंगल के टुकड़े में 500 से अधिक विभिन्न पौधों की प्रजातियाँ पाई जा सकती हैं। हालाँकि विविधता तेजी से लुप्त होती जा रही है।
- औद्योगीकरण की अवधि (1700 - 1995) के बीच, 13.9 मिलियन वर्ग किमी जंगल या दुनिया के कुल क्षेत्रफल का 9.3% औद्योगिक उपयोगों, खेती, चारागाह और ईंधन की लकड़ी के लिए साफ किया गया था।

वनो का विनाश क्यों

- वनों का विनाश क्यों वनों के लुप्त होने को सामान्यतः वन विनाश कहते हैं।
- वन-विनाश कोई नई समस्या नहीं है। वैसे तो यह प्रक्रिया कई सदियों से चली आ रही थी, लेकिन औपनिवेशिक शासन के दौरान इसने कहीं अधिक व्यवस्थित और व्यापक रूप ग्रहण कर लिया। आइए, **भारत में वन विनाश के कुछ कारणों पर गौर करें।**

ज़मीन की बेहतरी:

- सन् 1600 में हिंदुस्तान के कुल भू-भाग के लगभग छठे हिस्से पर खेती होती थी। आज यह आँकड़ा बढ़ कर आधे तक पहुँच गया है।
- इन सदियों के दौरान जैसे-जैसे आबादी बढ़ती गई और खाद्य पदार्थों की माँग में भी वृद्धि हुई, वैसे-वैसे किसान भी जंगलों को साफ करके खेती की सीमाओं को विस्तार देते गए। औपनिवेशिक काल में खेती में तेजी से फैलाव आया।

लकोटा जनजाति

महान उत्तरी अमेरिकी मैदानों में रहने वाले लकोटा जनजाति जैसे मूल अमेरिकी लोगों की अर्थव्यवस्था विविधतापूर्ण थी। वे मक्का की खेती करते थे, जंगली पौधों की तलाश करते थे और बाइसन का शिकार करते थे। बाइसन के लिए विशाल क्षेत्रों को खुला रखना अंग्रेज़ बसने वालों को बेकार लगता था। 1860 के दशक के बाद बड़ी संख्या में बाइसन मारे गए।

- औपनिवेशिक युग में, कई कारणों से खेती का तेजी से विस्तार हुआ।
 1. अंग्रेजों ने सीधे तौर पर वाणिज्यिक फसलों के उत्पादन को प्रोत्साहित किया।
 2. 19वीं सदी के यूरोप में जूट, चीनी, गेहूँ और कपास जैसी फसलों की माँग बढ़ गई, जहाँ बढ़ती शहरी आबादी को खिलाने के लिए खाद्यान्न की ज़रूरत थी और औद्योगिक उत्पादन के लिए कच्चे माल की ज़रूरत थी।
 3. उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में, जंगलों को अनुत्पादक माना जाता था और उन्हें खेती के तहत लाया जाना था ताकि भूमि कृषि उत्पाद तथा राजस्व पैदा कर सके एवं राज्य की आय बढ़ा सके। परिणामस्वरूप, 1880 और 1920 के बीच खेती का क्षेत्रफल 6.7 मिलियन हेक्टेयर तक बढ़ गया।

पटरी पर स्लीपर

- उन्नीसवीं सदी की शुरुआत तक इंग्लैंड में बलूत (ओक) के जंगल लुप्त होने लगे थे। इसकी वजह से शाही नौसेना के लिए लकड़ी की आपूर्ति में मुश्किल आ खड़ी हुई।
- मज़बूत और टिकाऊ लकड़ी की नियमित आपूर्ति के बिना अंग्रेजी जहाज़ भला कैसे बन सकते थे? और जहाज़ों के बिना शाही सत्ता कैसे बचाई और बनाए रखी जा सकती थी? 1820 के दशक में खोजी दस्ते हिंदुस्तान की वन-संपदा का अन्वेषण करने के लिए भेजे गए।
- एक दशक के भीतर बड़े पैमाने पर पेड़ काटे जाने लगे और भारी मात्रा में लकड़ी का हिंदुस्तान से निर्यात होने लगा।
- औपनिवेशिक व्यापार और शाही सैनिकों की आवाजाही के लिए रेलवे ज़रूरी थी। इंजनों को चलाने के लिए ईंधन के रूप में लकड़ी की ज़रूरत होती थी और रेलवे लाइन बिछाने के लिए पटरियों को एक साथ रखने के लिए स्लीपर ज़रूरी थे। 1850 के दशक से रेलवे के प्रसार ने एक नई माँग पैदा की क्योंकि रेलवे ट्रैक के प्रत्येक मील के लिए 1,760 - 2,000 स्लीपर की ज़रूरत थी (चित्र 7.1 देखें)।

क्या आप जानते हैं ?

किसी स्थान पर खेती न होने का मतलब यह नहीं है कि वह भूमि निर्जन थी। ऑस्ट्रेलिया में, जब श्वेत लोग उतरे, तो उन्होंने दावा किया कि महाद्वीप खाली है या टेरा नुलियस है। वास्तव में, उन्हें आदिवासी पगंडियों द्वारा परिदृश्य के माध्यम से निर्देशित किया गया था, और आदिवासी मार्गदर्शकों द्वारा उनका नेतृत्व किया गया था। ऑस्ट्रेलिया में विभिन्न आदिवासी समुदायों ने स्पष्ट रूप से सीमांकित क्षेत्र बनाए थे। ऑस्ट्रेलिया के नगारिंदजेरी लोगों ने अपने पहले पूर्वज, नगुरुंडेरी के प्रतीकात्मक शरीर के साथ अपनी भूमि का भूखंड बनाया। इस भूमि में पाँच अलग-अलग वातावरण शामिल थे: खारा पानी, नदी के किनारे, झीलें, झाड़ियाँ और रेगिस्तानी मैदान, जो अलग-अलग सामाजिक-आर्थिक ज़रूरतों को पूरा करते थे।

क्या आप जानते हैं ?

औपनिवेशिक काल में हाथियों का उपयोग अक्सर जंगलों और लकड़ी के गोदामों में भारी लकड़ी उठाने के लिए किया जाता था।



चित्र 7.1: सिंहभूम के जंगलों में साल के लट्ठों को स्लीपरों में बदलना, छोटानागपुर, मई 1897। वन विभाग ने आदिवासियों को पेड़ काटने और रेलवे के स्लीपर के रूप में काम आने वाले चिकने तख्ते बनाने के लिए काम पर रखा था। साथ ही, उन्हें अपने घर बनाने के लिए इन पेड़ों को काटने की अनुमति नहीं थी।

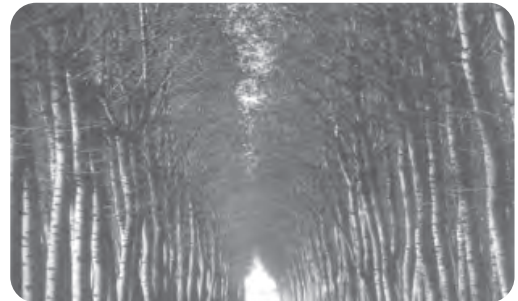
- 1860 के दशक से, रेलवे नेटवर्क का तेजी से विस्तार हुआ। 1946 तक, पटरियों की लंबाई 1890 में 25,500 किलोमीटर से बढ़कर 765,000 किलोमीटर से अधिक हो गई थी।
- अकेले मद्रास प्रेसीडेंसी में स्लीपर के लिए सालाना 35,000 पेड़ काटे जा रहे थे।
- सरकार ने आवश्यक मात्रा में आपूर्ति करने के लिए व्यक्तियों को ठेके दिए, जिसके कारण रेलवे पटरियों के आसपास के जंगल तेजी से गायब हो गए।

बागान

- यूरोप में चाय, कॉफी और रबड़ की बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए इन वस्तुओं के बागान बने एवं इनके लिए भी प्राकृतिक वनों का एक भारी हिस्सा साफ़ किया गया।
- औपनिवेशिक सरकार ने जंगलों को अपने कब्जे में लेकर उनके विशाल हिस्सों को बहुत सस्ती दरों पर यूरोपीय बागान मालिकों को सौंप दिया। इन इलाकों की बाड़ाबंदी करके जंगलों को साफ़ कर दिया गया और चाय-कॉफी की खेती की जाने लगी।

व्यावसायिक वानिकी का उदय:

- अंग्रेजों को चिंता थी कि स्थानीय लोगों द्वारा वनों का उपयोग और व्यापारियों द्वारा पेड़ों की अंधाधुंध कटाई से वन नष्ट हो जाएँगे। इसलिए उन्होंने सलाह के लिए एक जर्मन विशेषज्ञ, डिट्रिच ब्रैंडिस को आमंत्रित करने का फैसला किया और उन्हें भारत में वनों का पहला महानिरीक्षक बनाया गया।
- ब्रैंडिस ने महसूस किया कि वनों के प्रबंधन के लिए एक उचित प्रणाली शुरू की जानी चाहिए और लोगों को संरक्षण के विज्ञान में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।
- वन संसाधनों के उपयोग के बारे में नियम बनाए जाने चाहिए और लकड़ी के उत्पादन के लिए वनों को संरक्षित करने के लिए पेड़ों की कटाई तथा चराई को प्रतिबंधित किया जाना चाहिए। साथ ही, जो कोई भी इस प्रणाली का पालन किए बिना पेड़ों को काटता है, उसे दंडित किया जाना चाहिए।
- इसलिए उन्होंने सन् 1864 में भारतीय वन सेवा की स्थापना की और 1865 के भारतीय वन अधिनियम को तैयार करने में मदद की। सन् 1906 में देहरादून में इंपीरियल फॉरेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट की स्थापना की गई। उन्होंने 'वैज्ञानिक वानिकी' नामक प्रणाली सिखाई (चित्र 7.2 देखें)।
- अब पारिस्थितिकीविदों सहित कई लोगों को लगता है कि यह प्रणाली बिल्कुल भी वैज्ञानिक नहीं है। वैज्ञानिक वानिकी में प्राकृतिक वनों को काटकर उनकी जगह पर सीधी कतारों में एक प्रकार का वृक्ष लगाया जाता था जिसे वृक्षारोपण कहते हैं।
- वन अधिकारियों ने वनों का सर्वेक्षण किया, विभिन्न प्रकार के वृक्षों के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र का अनुमान लगाया और वन प्रबंधन के लिए कार्य योजनाएँ बनाई।
- उन्होंने योजना बनाई कि हर साल वृक्षारोपण क्षेत्र का कितना हिस्सा काटा जाए और फिर से वृक्षारोपण किया जाए ताकि कुछ वर्षों में इसे फिर से काटा जा सके।
- 1865 के वन अधिनियम में 1878 और फिर 1927 में संशोधन किया गया।
- 1878 के वन अधिनियम ने वनों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया: आरक्षित, संरक्षित और ग्राम वन।
- आरक्षित वन' सबसे अच्छे वन थे। ग्रामीण इन वनों से कुछ भी नहीं ले सकते थे, यहाँ तक कि अपने उपयोग के लिए भी नहीं।
- घर बनाने या ईंधन के लिए, ग्रामीण संरक्षित या ग्राम वनों से लकड़ी ले सकते थे।



चित्र 7.2: टस्कनी, इटली में चिनार का जंगल। चिनार के जंगल मुख्य रूप से लकड़ी के लिए अच्छे होते हैं। इनका उपयोग पत्तियों, फलों या अन्य उत्पादों के लिए नहीं किया जाता है। पेड़ों की सीधी रेखाएँ, सभी एक समान ऊँचाई के। यह वह मॉडल है जिसे 'वैज्ञानिक' वानिकी ने बढ़ावा दिया है।

लोगों का जीवन कैसे प्रभावित हुआ?

- ग्रामीण विभिन्न आवश्यकताओं जैसे ईंधन, चारे व पत्तों की पूर्ति के लिए वन में विभिन्न प्रजातियों का मेल चाहते थे, वहीं वन-विभाग को ऐसे पेड़ों की जरूरत थी जो जहाजों और रेलवे के लिए इमारती लकड़ी मुहैया करा सकें, ऐसी लकड़ियाँ जो सख्त, लंबी एवं सीधी हों। इसलिए सागौन और साल जैसी प्रजातियों को प्रोत्साहित किया गया तथा दूसरी किस्में काट डाली गईं।
- वन क्षेत्रों में, लोग कई चीजों के लिए वन उत्पादों-जड़ों, पत्तियों, फलों और कंदों का उपयोग करते हैं। उदाहरण के लिए, फल और कंद खाने के लिए पौष्टिक होते हैं, खासकर मानसून के दौरान; जड़ी-बूटियों का उपयोग दवा के लिए किया जाता है; जुए और हल जैसे कृषि उपकरणों के लिए लकड़ी; बाड़, टोकरियाँ और छतरियाँ बनाने के लिए बाँस; सूखे हुए लौकी का उपयोग पोर्टेबल पानी की बोतल के रूप में किया जा सकता है; पत्तियों को एक साथ जोड़कर डिस्पोजेबल प्लेट और कप बनाए जा सकते हैं; सियादी (बौहिनिया वाह्नी) लता का उपयोग रस्सियाँ बनाने के लिए किया जा सकता है; सेमुर (रेशमी-कपास) के पेड़ की काँटदार छाल का उपयोग सब्जियों को पीसने के लिए किया जाता है; खाना पकाने और दीये जलाने के लिए महुआ के पेड़ के फलों से तेल निकाला जा सकता है।

महुआ

गांव के लोग सुबह होने से पहले ही उठकर जंगल में जाकर जंगल में गिरे महुआ के फूलों को इकट्ठा करते हैं। महुआ के फूलों को खाया जा सकता है या शराब बनाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। इसके बीजों का इस्तेमाल तेल बनाने के लिए किया जा सकता है।

तेंदू पत्ते

तेंदू पत्तों की बिक्री जंगलों में रहने वाले कई लोगों के लिए आय का एक प्रमुख स्रोत है। प्रत्येक बंडल में लगभग 50 पत्ते होते हैं, और यदि कोई व्यक्ति कड़ी मेहनत करता है तो वह शायद एक दिन में 100 बंडल तक इकट्ठा कर सकता है। महिलाएँ, बच्चे और बूढ़े मुख्य संग्रहकर्ता हैं।

- ❑ वन अधिनियम के चलते देश भर में गाँव वालों की मुश्किलें बढ़ गईं। इस कानून के बाद घर के लिए लकड़ी काटना, पशुओं को चराना, कंद-मूल-फल इकट्ठा करना आदि रोज़मर्रा की गतिविधियाँ गैरकानूनी बन गईं।
- ❑ अब उनके पास जंगलों से लकड़ी चुराने के अलावा कोई चारा नहीं बचा और पकड़े जाने की स्थिति में वे वन रक्षकों की दया पर होते जो उनसे घूस ऐंठते थे।
- ❑ जलावनी लकड़ी एकत्र करने वाली औरतें विशेष तौर से परेशान रहने लगीं। मुफ्त खाने-पीने की माँग करके लोगों को तंग करना पुलिस और जंगल के चौकीदारों के लिए सामान्य बात थी।

तौंग्या खेती

यह एक ऐसी प्रणाली थी जिसमें स्थानीय किसानों को बागानों के भीतर अस्थायी रूप से खेती करने की अनुमति दी जाती थी। पुरुष लोहे की नोक वाले लंबे बांस के डंडों का उपयोग करके मिट्टी में छेद बनाते हैं। महिलाएँ प्रत्येक छेद में धान बोती हैं।

वनों के नियमन से खेती कैसे प्रभावित हुई?

- ❑ यूरोपीय उपनिवेशवाद का सबसे गहरा प्रभाव झूम या घुमंतू खेती की प्रथा पर दिखाई पड़ता है।
- ❑ एशिया, अफ्रीका व दक्षिण अमेरिका के अनेक भागों में यह खेती का एक परंपरागत तरीका है। इसके कई स्थानीय नाम हैं जैसे- दक्षिण-पूर्व एशिया में लादिंग, मध्य अमेरिका में मिलपा, अफ्रीका में चितमेन या तावी व श्रीलंका में चेना। हिंदुस्तान में घुमंतू खेती के लिए धया, पेंदा, बेवर, नेवड़, झूम, पोडू, खंदाद और कुमरी ऐसे ही कुछ स्थानीय नाम हैं।
- ❑ इस खेती में, जंगल के कुछ हिस्सों को बारी-बारी से काटा और जलाया जाता है। पहली मानसून की बारिश के बाद राख में बीज बोए जाते हैं और अक्टूबर-नवंबर तक फसल काट ली जाती है।
- ❑ ऐसे भूखंडों पर कुछ वर्षों तक खेती की जाती है और फिर जंगल को फिर से उगाने के लिए 12 से 18 वर्षों तक परती छोड़ दिया जाता है।
- ❑ मध्य भारत और अफ्रीका में, इन भूखंडों पर उगाई जाने वाली फसलें बाजरा, ब्राजील में कसावा तथा लैटिन अमेरिका के अन्य हिस्सों में मक्का एवं सेम हो सकती हैं।
- ❑ यूरोपीय वनपाल इस प्रथा को जंगलों के लिए हानिकारक मानते थे, क्योंकि उन्हें लगता था कि हर कुछ वर्षों में खेती के लिए इस्तेमाल की जाने वाली भूमि पर रेलवे की लकड़ी के लिए पेड़ नहीं उगाए जा सकते। इसके अलावा जंगलों को जलाने से आग फैलने और कीमती लकड़ी के जलने का खतरा बढ़ गया।
- ❑ स्थानांतरित खेती से सरकार के लिए करों की गणना करना भी मुश्किल हो गया, इसलिए उसने स्थानांतरित खेती पर प्रतिबंध लगाने का फैसला किया।
- ❑ परिणामस्वरूप, कई समुदायों को जंगलों में अपने घरों से जबरन विस्थापित होना पड़ा। कुछ को अपना व्यवसाय बदलना पड़ा, जबकि कुछ ने बड़े और छोटे विद्रोहों के माध्यम से विरोध किया।
- ❑ बैगा मध्य भारत का एक वन समुदाय है। वर्ष 1892 में, जब उनकी स्थानांतरित खेती बंद कर दी गई, तो उन्होंने सरकार के समक्ष याचिका दायर की।

शिकार की आज़ादी किसे थी?

- ❑ जंगल संबंधी नए कानूनों ने वनवासियों के जीवन को एक और तरह से प्रभावित किया। वन कानूनों के पहले जंगलों में या उनके आसपास रहने वाले बहुत सारे लोग हिरन, तीतर जैसे छोटे-मोटे शिकार करके जीवनयापन करते थे। यह पारंपरिक प्रथा अब गैर-कानूनी हो गई। शिकार करते हुए पकड़े जाने वालों को अवैध शिकार के लिए दंडित किया जाने लगा।
- ❑ जबकि कानूनों ने लोगों को शिकार करने के उनके पारंपरिक अधिकारों से वंचित कर दिया, बड़े जानवरों का शिकार एक खेल बन गया।
- ❑ भारत में, बाघों और अन्य जानवरों का शिकार सदियों से दरबार और कुलीन वर्ग की संस्कृति का हिस्सा रहा है। कई मुगल चित्रों में राजकुमारों और सम्राटों को शिकार का आनंद लेते हुए दिखाया गया है। लेकिन औपनिवेशिक शासन के तहत शिकार का पैमाना इस हद तक बढ़ गया कि विभिन्न प्रजातियाँ लगभग विलुप्त हो गईं।

पुतुमायो में रबड़ की निकासी

दुनिया भर में, बागानों में काम की स्थितियाँ भयावह थी। ऐमेजॉन के पुतुमायो क्षेत्र में 'पेरुवियन रबड़ कंपनी' (ब्रिटिश व पेरुवियन साझे में) द्वारा रबड़ की निकासी हुई तो तोस कहे जाने वाले स्थानीय इंडियनों की बेगार पर निर्भर थी। 1900-1912 के बीच पुतुमायो में 4,000 टन रबड़ का उत्पादन हुआ और इसी दौरान इंडियन आबादी में यंत्रणा, रोगों और पलायन के चलते 30,000 की गिरावट आयी। रबड़ कंपनी के एक वेतनभोगी ने वर्णन किया है कि रबड़ का संग्रह कैसे किया जाता था। मैनेजर ने सैकड़ों इंडियनों को स्टेशन पर उपस्थित होने का निर्देश दिया:

उसने अपनी कार्बाइन और छुरा पकड़ा और इन बेबस इंडियनों का कत्लेआम शुरू कर दिया। थोड़ी ही देर में बच्चों, महिलाओं और पुरुषों की 150 लाशों से जमीन ढक गयी। खून से नहाए हुए, दया की भीख माँगते जिंदा बचे लोगों को मुद्दों के ढेर के साथ जला दिया गया और मैनेजर चिल्लाया, "मैं उन सभी इंडियनों को खत्म कर देना चाहता हूँ जो रबड़ लाने के लिए दिए गए मेरे आदेश को नहीं मानते हैं।"

निकोलस डवर्स (सं.) कॉलोनिअलिज्म ऐन्ड कल्चर (1992) में माइकेल ताउसिंग, 'कल्चर ऑफ़ टेरर स्पेस ऑफ़ डैथ'।

- अंग्रेजों ने बड़े जानवरों को जंगली, आदिम और बर्बर समाज के संकेत के रूप में चिन्हित किया। उनका मानना था कि खतरनाक जानवरों को मारकर अंग्रेज भारत को सभ्य बना देंगे। उन्होंने बड़े जानवरों को मारने के लिए इस आधार पर पुरस्कार भी दिए कि वे किसानों के लिए खतरा पैदा करते हैं।
- 1875-1925 की अवधि में 80,000 से अधिक बाघ, 150,000 तेंदुए और 200,000 भेड़ियों को इनाम के तौर पर मारा गया। धीरे-धीरे बाघ को एक खेल ट्रॉफी के रूप में देखा जाने लगा।
- अकेले सरगुजा के महाराजा ने 1957 तक 1,157 बाघों और 2,000 तेंदुओं को गोली मारी। एक ब्रिटिश प्रशासक जॉर्ज यूल ने 400 बाघों को मार डाला।
- शुरू में जंगलों के कुछ क्षेत्र शिकार के लिए आरक्षित थे।
- काफी समय बाद पर्यावरणविदों और संरक्षकों ने तर्क देना शुरू किया कि जानवरों की इन सभी प्रजातियों को संरक्षित करने की आवश्यकता है, न कि इनको मारा जाना चाहिए।

नए व्यापार, नए रोजगार और नई सेवाएँ:

- जंगलों पर वन विभाग का नियंत्रण स्थापित हो जाने से लोगों को कई तरह के नुकसान हुए, लेकिन कुछ लोगों को व्यापार के नए अवसरों का लाभ भी मिला। कई समुदाय अपने परंपरागत पेशे छोड़ कर वन-उत्पादों का व्यापार करने लगे।
- महज हिंदुस्तान ही नहीं बल्कि दुनिया भर में कुछ ऐसा हुआ। उदाहरण के लिए, 19वीं शताब्दी के मध्य में रबर की बढ़ती माँग के साथ, ब्राजील के अमेज़न के मुंदुरुकु लोग जो ऊँचे इलाकों में गाँवों में रहते थे और कसावा की खेती करते थे, व्यापारियों को आपूर्ति करने के लिए जंगली रबर के पेड़ों से लेटेक्स इकट्ठा करने लगे। धीरे-धीरे, वे व्यापारिक चौकियों पर रहने लगे और पूरी तरह से व्यापारियों पर निर्भर हो गए।
- भारत में, मध्यकालीन काल से ही, हमारे पास आदिवासी समुदायों द्वारा बंजारा जैसे खानाबदोश समुदायों के माध्यम से हाथियों और अन्य वन उत्पादों जैसे खाल, सींग, रेशम के कोकून, हाथीदाँत, बाँस, मसाले, रेशे, घास, गोंद एवं राल का व्यापार करने के रिकॉर्ड हैं।
- अंग्रेजों के आने के साथ, सरकार ने व्यापार को पूरी तरह से विनियमित किया, और कई बड़ी यूरोपीय व्यापारिक फर्मों को विशेष क्षेत्रों के वन उत्पादों में व्यापार करने का एकमात्र अधिकार दिया।
- स्थानीय लोगों द्वारा चराई और शिकार प्रतिबंधित कर दिया गया। इस प्रक्रिया में, मद्रास प्रेसीडेंसी के कोरवा, कराचा और येरुकुला जैसे कई चरवाहे तथा खानाबदोश समुदायों ने अपनी आजीविका खो दी।
- उनमें से कुछ को 'आपराधी कबीले' कहा जाने लगा और उन्हें सरकारी निगरानी में कारखानों, खदानों एवं और बागानों में काम करने के लिए मजबूर किया गया।
- काम के नए अवसरों का मतलब हमेशा लोगों की जीवन स्थिति को बेहतर करना नहीं होता है। उदाहरण के लिए, असम में, झारखंड के संथाल और ओरांव तथा छत्तीसगढ़ के गोंड जैसे वन समुदायों के पुरुषों एवं महिलाओं को चाय बागानों में काम करने के लिए भर्ती किया गया था व उनकी मजदूरी कम थी और काम की परिस्थितियाँ बहुत खराब थीं। वे आसानी से अपने गृह गाँवों में वापस नहीं जा सकते थे, जहाँ से उन्हें भर्ती किया गया था।

वन-विद्रोह:

- हिंदुस्तान और दुनिया भर में वन्य समुदायों ने अपने ऊपर थोपे गए बदलावों के खिलाफ़ बगावत की।
- संथाल परगना में सीधू और कानू छोटा नागपुर में बिरसा मुंडा तथा आंध्र प्रदेश में अल्लूरी सीताराम राजू को लोकगीतों एवं कथाओं में अंग्रेजों के खिलाफ़ उभरे आंदोलनों के नायक के रूप में आज भी याद किया जाता है। अब हम बस्तर रियासत में 1910 में हुए ऐसे ही एक विद्रोह का विस्तार से अध्ययन करेंगे।



चित्र 7.3: 2000 में बस्तर

1947 में बस्तर राज्य का कांकेर राज्य में विलय कर दिया गया और मध्य प्रदेश में बस्तर जिला बना दिया गया। 1998 में इसे फिर से तीन जिलों कांकेर, बस्तर और दंतेवाड़ा में विभाजित कर दिया गया। 2001 में, ये छत्तीसगढ़ का हिस्सा बन गए। 1910 का विद्रोह सबसे पहले कांग्रेस वन क्षेत्र (घेरा हुआ) में शुरू हुआ और जल्द ही राज्य के अन्य हिस्सों में फैल गया।

बस्तर के लोग:

- ❑ बस्तर छत्तीसगढ़ के सबसे दक्षिणी छोर पर आंध्र प्रदेश, उड़ीसा व महाराष्ट्र की सीमाओं से लगा हुआ क्षेत्र है। बस्तर का केंद्रीय भाग पठारी है।
- ❑ इस पठार के उत्तर में छत्तीसगढ़ का मैदान और दक्षिण में गोदावरी का मैदान है। इंद्रावती नदी बस्तर के आर-पार पूरब से पश्चिम की तरफ बहती है। (चित्र 7.3 देखें)
- ❑ बस्तर में मरिया और मुरिया गोंड, धुवा, भतरा, हलबा आदि अनेक आदिवासी समुदाय रहते हैं। अलग-अलग ज़बानें बोलने के बावजूद इनके रीति-रिवाज और विश्वास एक जैसे हैं।
- ❑ बस्तर के लोग मानते हैं कि हरेक गाँव को उसकी जमीन 'धरती माँ' से मिली है और बदले में वे प्रत्येक खेतिहर त्यौहार पर धरती को चढ़ावा चढ़ाते हैं। धरती के अलावा वे नदी, जंगल व पहाड़ों की आत्मा को भी उतना ही मानते हैं।
- ❑ चूँकि हर गाँव को अपनी चौहद्दी पता होती है इसलिए ये लोग इन सीमाओं के भीतर समस्त प्राकृतिक संपदाओं की देखभाल करते हैं।
- ❑ यदि एक गाँव के लोग दूसरे गाँव के जंगल से थोड़ी लकड़ी लेना चाहते हैं तो इसके बदले में वे एक छोटा शुल्क अदा करते हैं जिसे देवसारी, दांड या मान कहा जाता है।
- ❑ कुछ गाँव अपने जंगलों की हिफाज़त के लिए चौकीदार रखते हैं जिन्हें वेतन के रूप में हर घर से थोड़ा-थोड़ा अनाज दिया जाता है। हर वर्ष एक बड़ी सभा का आयोजन होता है जहाँ एक परगने (गाँवों का समूह) के गाँवों के मुखिया जुटते हैं और जंगल सहित तमाम दूसरे अहम मुद्दों पर चर्चा करते हैं।

लोगों के भय:

- औपनिवेशिक सरकार ने वर्ष 1905 में जब जंगल के दो-तिहाई हिस्से को आरक्षित करने, घुमंतू खेती को रोकने और शिकार व वन्य उत्पादों के संग्रह पर पाबंदी लगाने जैसे प्रस्ताव रखे तो बस्ती के लोग बहुत पेशान हो गए।
- कुछ गाँवों को आरक्षित वनों में इस शर्त पर रहने दिया गया कि वे वन-विभाग के लिए पेड़ों की कटाई और ढुलाई का काम मुफ्त करेंगे तथा जंगल को आग से बचाए रखेंगे। बाद में इन्हीं गाँवों को 'वन ग्राम' कहा जाने लगा।
- बाकी गाँवों के लोग बगैर किसी सूचना या मुआवजे के हटा दिए गए।
- काफ़ी समय से गाँव वाले ज़मीन के बढ़े हुए लगान तथा औपनिवेशिक अफ़सरों के हाथों बेगार और चीज़ों की निरंतर माँग से त्रस्त थे। इसके बाद भयानक अकाल का दौर आया पहले सन् 1899-1900 में और फिर सन् 1907-1908 में। वन आरक्षण ने चिंगारी का काम किया।
- लोगों ने बाज़ारों में, त्यौहारों के मौके पर और जहाँ कहीं भी कई गाँवों ख़ोत के मुखिया एवं पुजारी इकट्ठा होते थे वहाँ जमा होकर इन मुद्दों पर चर्चा करना प्रारंभ कर दिया।
- काँग्रेस वनों के धुरवा समुदाय के लोग इस मुहिम में सबसे आगे थे, क्योंकि आरक्षण सबसे पहले यहीं लागू हुआ था। हालाँकि कोई एक व्यक्ति इनका नेता नहीं था, लेकिन बहुत सारे लोग नेथानार गाँव के गुंडा धूर को इस आंदोलन की एक अहम शख्सियत मानते हैं।
- सन् 1910 में आम की टहनियाँ, मिट्टी के ढेले, मिर्च और तीर गाँव गाँव चक्कर काटने लगे। यह गाँवों में अंग्रेज़ों के खिलाफ़ बगावत का संदेश था।
- लगभग प्रत्येक गाँव ने इस बगावत के खर्चे में कुछ न कुछ मदद दी। बाज़ार लूटे गए, अफ़सरों और व्यापारियों के घर, स्कूल तथा पुलिस थानों को लूटा व जलाया गया एवं अनाज का पुनर्वितरण किया गया।
- जिन पर हमले हुए उनमें से ज़्यादातर लोग औपनिवेशिक राज्य और इसके दमनकारी कानूनों से किसी न किसी तरह जुड़े थे।
- अंग्रेज़ों ने बगावत को कुचल देने के लिए सैनिक भेजे। आदिवासी नेताओं ने बातचीत करनी चाही लेकिन अंग्रेज़ फ़ौज ने उनके तंबूओं को घेर कर उन पर गोलियाँ चला दीं। इसके बाद बगावत में शरीक लोगों पर कोड़े बरसाते और उन्हें सज़ा देते सैनिक गाँव-गाँव घूमने लगे। ज़्यादातर गाँव खाली हो गए, क्योंकि लोग भाग कर जंगलों में चले गए थे।
- अंग्रेज़ों को फिर से नियंत्रण पाने में तीन महीने (फ़रवरी-मई) लग गए। फिर भी वे गुंडा धूर को कभी नहीं पकड़ सके।
- विद्रोहियों की सबसे बड़ी जीत यह रही आरक्षण का काम कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया गया और आरक्षित क्षेत्र को भी वर्ष 1910 से पहले की योजना से लगभग आधा कर दिया गया।
- बस्तर के जंगलों और लोगों की कहानी यहीं खत्म नहीं होती। आजादी के बाद भी लोगों को जंगलों से बाहर रखने और जंगलों को औद्योगिक उपयोग के लिए आरक्षित रखने की नीति कायम रही।
- 1970 के दशक में, विश्व बैंक ने प्रस्ताव रखा कि कागज़ उद्योग को लुगदी उपलब्ध कराने के लिए 4,600 हेक्टेयर प्राकृतिक साल वनों की जगह देवदार के पेड़ लगाए जाएँ। लेकिन, स्थानीय पर्यावरणविदों के विरोध के फलस्वरूप इस परियोजना को रोक दिया गया। एशिया के ही एक अन्य हिस्से इंडोनेशिया में घटित समकालीन घटनाओं का परिदृश्य इस प्रकार है।

जावा के जंगलों में हुए बदलाव:

- जावा को आजकल इंडोनेशिया के चावल उत्पादक द्वीप के रूप में जाना जाता है। लेकिन एक ज़माने में यह क्षेत्र अधिकांशतः वनाच्छादित था।
- इंडोनेशिया एक डच उपनिवेश था और जैसा कि हम देखेंगे, भारत व इंडोनेशिया के वन कानूनों में कई समानताएँ थीं। इंडोनेशिया में जावा ही वह क्षेत्र है जहाँ डचों ने वन-प्रबंधन की शुरुआत की थी। अंग्रेज़ों की तरह वे भी जहाज़ बनाने के लिए जावा से लकड़ी हासिल करना चाहते थे।
- सन् 1600 में जावा की अनुमानित आबादी 34 लाख थी। हालाँकि उपजाऊ मैदानों में ढेर सारे गाँव थे लेकिन पहाड़ों में भी घुमंतू खेती करने वाले अनेक समुदाय रहते थे।

जावा के लकड़हारे:

- जावा में कलांग समुदाय के लोग कुशल लकड़हारे और उनका महत्त्व इस बात से आँका जा सकता है कि 1755 माताराम रियासत बँटी तो यहाँ के 6,000 कलांग में बराबर-बराबर बाँट दिया गया।
- उनके कौशल कर राजाओं के महल बनाना बहुत घुमंतू किसान थे। जब जावा की परिवारों को भी दोनों राज्यों के बगैर सागौन की कटाई मुश्किल था।
- डचों ने जब अठारहवीं सदी में वनों पर नियंत्रण स्थापित करना प्रारंभ किया।
- वर्ष 1770 में कलांगों ने एक डच किले पर प्रतिरोध किया लेकिन इस विद्रोह को दबा दिया गया।

इव वैज्ञानिक वानिकी:

- उन्नीसवीं सदी में जब लोगों के साथ-साथ इलाकों पर भी नियंत्रण स्थापित करना जरूरी लगने लगा उपनिवेशकों ने जावा में वन-कानून लागू कर ग्रामीणों की जंगल तक पहुँच पर बंदिशें थोप दीं।
- इसके बाद नाव या घर बनाने जैसे खास उद्देश्यों के लिए, सिर्फ चुने हुए जंगलों से लकड़ी काटी जा सकती थी और वह भी कड़ी निगरानी में।
- ग्रामीणों को मवेशी चराने, बिना परमिट लकड़ी ढोने या जंगल से गुजरने वाली सड़क पर घोड़ा-गाड़ी अथवा जानवरों पर चढ़ कर आने-जाने के लिए दंडित किया जाने लगा।
- भारत की ही तरह यहाँ भी जहाज़ और रेल-लाइनों के निर्माण ने वन-प्रबंधन तथा वन-सेवाओं को लागू करने की आवश्यकता पैदा कर दी।
- वर्ष 1882 में अकेले जावा से ही 2,80,000 स्लीपरों का निर्यात किया गया। जाहिर है कि पेड़ काटने, लट्टों को ढोने और स्लीपर तैयार करने के लिए श्रम की आवश्यकता थी।
- डचों ने पहले तो जंगलों में खेती की ज़मीनों पर लगान लगा दिया और बाद में कुछ गाँवों को इस शर्त पर इससे मुक्त कर दिया कि वे सामूहिक रूप से पेड़ काटने एवं लकड़ी ढोने के लिए भैंसों उपलब्ध कराने का काम मुफ्त में किया करेंगे।
- इस व्यवस्था को ब्लैन्डिंगडिस्टेंस के नाम से जाना गया। बाद में वन-ग्रामवासियों को लगान-माफ़ी के बजाय थोड़ा-बहुत मेहनताना तो दिया जाने लगा लेकिन वन-भूमि पर खेती करने के उनके अधिकार सीमित कर दिए गए।

विचारणीय बिंदु

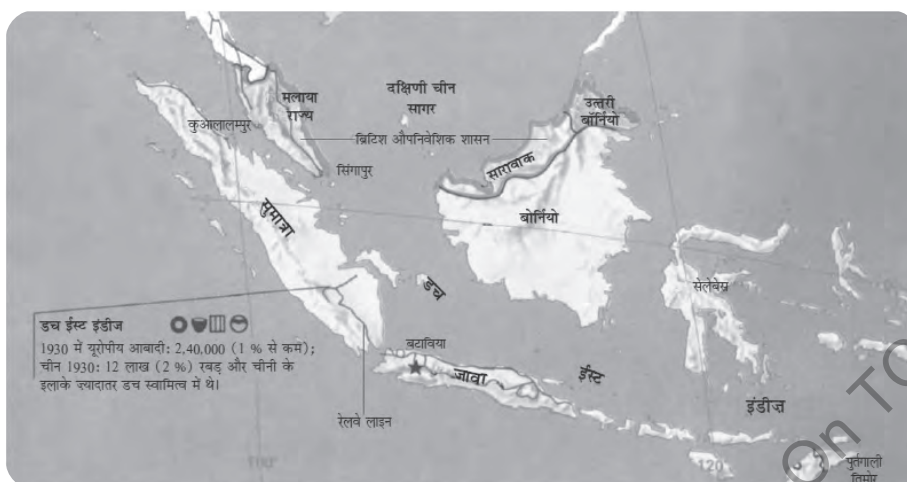
आपके अनुसार, डच औपनिवेशिक शासन ने वन प्रबंधन और जावा में कलंग जैसे समुदायों की आजीविका को कैसे प्रभावित किया, तथा इन नीतियों के वनों एवं लोगों के जन जीवन पर क्या परिणाम देखे गए?

औपनिवेशिक शासन का चरवाहे समुदाय पर बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है और इसने उनके जीवन के तरीके को बदल दिया है। क्या आपको लगता है कि भारत के विभिन्न क्षेत्रों में चरवाहों पर औपनिवेशिक शासन का प्रभाव अलग-अलग है? आपके अनुसार, स्थानीय कारकों और भूगोल ने चरवाहे समुदायों की चुनौतियों तथा अनुकूलन को कैसे प्रभावित किया होगा?



सामिन की चुनौती:

- सन् 1890 के आसपास सागौन के जंगलों में स्थित रान्दुब्लातुंग गाँव के निवासी सुरोन्तिको सामिन ने जंगलों पर राजकीय मालिकाने पर सवाल खड़ा करना प्रारंभ कर दिया।
- उसका तर्क था कि चूँकि हवा, पानी, ज़मीन और लकड़ी राज्य की बनाई हुई नहीं हैं, इसलिए उन पर उसका अधिकार नहीं हो सकता। जल्दी ही एक व्यापक आंदोलन खड़ा हो गया।
- वर्ष 1907 तक 3,000 परिवार उसके विचारों को मानने लगे थे। डच जब ज़मीन का सर्वेक्षण करने आए तो कुछ सामिनवादियों ने अपनी ज़मीन पर लेट कर इसका विरोध किया जबकि दूसरों ने लगान या जुर्माना भरने या बेगार करने से इनकार कर दिया।



चित्र 7.4: इंडोनेशियाई वन

युद्ध और वन-विनाश:

- पहले और दूसरे विश्वयुद्ध का जंगलों पर गहरा असर पड़ा।
- भारत में तमाम चालू कार्ययोजनाओं को स्थगित करके वन विभाग ने अंग्रेजों की जंगी जरूरतों को पूरा करने के लिए बेतहाशा पेड़ काटे।
- जावा पर जापानियों के कब्जे से ठीक पहले डचों ने 'भस्म-कर-भागो नीति' (Scorched Earth Policy) अपनायी जिसके तहत आरा मशीनों और सागौन के विशाल लट्ठों के ढेर जला दिए गए जिससे वे जापानियों के हाथ न लग पाएँ।
- इसके बाद जापानियों ने वनवासियों को जंगल काटने के लिए बाध्य करके अपने युद्ध उद्योग के लिए जंगलों का निर्मम दोहन किया। बहुत सारे गाँव वालों ने इस अवसर का लाभ उठा कर जंगल में अपनी खेती का विस्तार किया।
- जंग के बाद इंडोनेशियाई वन सेवा के लिए इन जमीनों को वापस हासिल कर पाना कठिन था। हिंदुस्तान की ही तरह यहाँ भी खेती योग्य भूमि के प्रति लोगों की चाह और जमीन को नियन्त्रित करने तथा लोगों को उससे बाहर रखने की वन विभाग की जिद के बीच टकराव पैदा हुआ।

वानिकी में नए बदलाव:

- अस्सी के दशक से एशिया और अफ्रीका की सरकार को यह समझ में आने लगा कि वैज्ञानिक वानिकी तथा वन समुदायों को जंगलों से बाहर रखने की नीतियों के चलते बार-बार टकराव पैदा होते हैं।
- सरकार ने यह भी मान लिया है कि इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए वन प्रदेशों में रहने वालों की मदद लेनी होगी।
- मिज़ोरम से लेकर केरल तक हिंदुस्तान में हर कहीं घने जंगल सिर्फ इसलिए बच पाए कि ग्रामीणों ने सरना, देवराकुडु, कान, राई इत्यादि नामों से पवित्र बगीचा समझ कर इनकी रक्षा की।
- कुछ गाँव तो वन रक्षकों पर निर्भर रहने के बजाय अपने जंगलों की चौकसी आप करते रहे हैं इसमें हर परिवार बारी-बारी से अपना योगदान देता है, बजाय इसके कि इसे वन रक्षकों पर छोड़ दिया जाए।

आधुनिक विश्व में वस्वाहे:

- खानाबदोश वे लोग होते हैं जो एक जगह नहीं रहते बल्कि अपनी आजीविका कमाने के लिए एक इलाके से दूसरे इलाके में जाते हैं।
- भारत के कई हिस्सों में, खानाबदोश चरवाहे अपनी बकरियों और भेड़ों या ऊँटों तथा मवेशियों के झुंड के साथ घूमते हैं।
- पर्यावरणविदों और अर्थशास्त्रियों ने धीरे-धीरे यह पहचानना शुरू कर दिया है कि चरवाहे खानाबदोश जीवन का एक ऐसा रूप है जो दुनिया के कई पहाड़ी और शुष्क क्षेत्रों के लिए बिल्कुल उपयुक्त है।

घुमंतू वस्वाहे और उनकी आवाजाही

पहाड़ों पर

□ जम्मू और कश्मीर के गुज्जर बकरवाला:

- वे अपने पशुओं के लिए चारागाह की तलाश में 19वीं सदी में जम्मू और कश्मीर चले गए तथा आज भी वे बकरी एवं भेड़ के महान चरवाहे हैं।
- धीरे-धीरे, उन्होंने खुद को इस क्षेत्र में स्थापित कर लिया, और हर साल गर्मियों एवं सर्दियों के चरागाहों के बीच चले जाते थे।
- सर्दियों में, जब ऊँचे पहाड़ बर्फ से ढके होते थे, तो सिवालिक पर्वतमाला की निचली पहाड़ियों में सूखे झाड़ीदार जंगल उनके झुंडों के लिए चारागाह प्रदान करते थे। अप्रैल के अंत तक वे अपने ग्रीष्मकालीन चरागाहों के लिए उत्तर की ओर बढ़ने लगे।



मध्य गढ़वाल ऊँचे पहाड़ों में एक गुज्जर मंडप

गुज्जर गड़रिये बुग्याल में मिलाने वाले रिगल (एक तरह का पहाड़ी बॉस) और घास से बने मंडपों में रहते हैं। इन्हीं मंडपों का इस्तेमाल कार्यस्थल के रूप में भी होता था। यहाँ गुज्जर घी निकालते थे और उसे बेचते थे। वर्तमान समय में बसों एवं ट्रकों में भरकर भी दूध ले जाने लगे हैं। मंडप 10000 से 11000 फुट की ऊँचाई पर होते हैं। भैसे इससे ज्यादा ऊँचाई पर नहीं जा सकती।

चित्र 7.5: मध्य गढ़वाल में ऊँचे पहाड़ों पर एक गुज्जर मंडप

- इस यात्रा के लिए कई परिवार एक साथ आए, जिसे काफिला के रूप में जाना जाता है।
 - उन्होंने पीर पंजाल दर्रे को पार किया और कश्मीर की घाटी में प्रवेश किया। गर्मियों की शुरुआत के साथ, पहाड़ हरे-भरे हो गए और पशुओं के झुंडों के लिए भरपूर पौष्टिक चारा उपलब्ध कराया।
 - सितंबर के अंत तक बकरवाल फिर से अपने शीतकालीन आधार पर वापस चल पड़े।
- ❑ **हिमाचल प्रदेश के गद्दी चरवाहे:**
- वे भी अपनी सर्दियाँ शिवालिक पर्वतमाला की निचली पहाड़ियों में बिताते थे, झाड़ियों वाले जंगलों में अपने झुंडों को चराते थे और अप्रैल तक वे उत्तर की ओर चले जाते थे तथा गर्मियों में लाहुल एवं स्पीति में रहते थे।
 - जब बर्फ पिघल गई और ऊँचे दर्रे साफ हो गए, तो उनमें से कई ऊँचे पहाड़ी घास के मैदानों की ओर चले गए एवं सितंबर तक वे वापस लौट आए।
 - रास्ते में वे एक बार फिर लाहुल और स्पीति के गाँवों में रुके, अपनी गर्मियों की फसल काटी एवं अपनी सर्दियों की फसल बोई। फिर वे अपने झुंड के साथ शिवालिक पहाड़ियों पर अपने सर्दियों के चरागाहों के लिए उतर गए।
 - अगले अप्रैल में, उन्होंने फिर से अपनी बकरियों और भेड़ों के साथ गर्मियों के घास के मैदानों की ओर अपना मार्च शुरू किया।
- ❑ **गढ़वाल और कुमाऊँ के गुज्जर चरवाहे:**
- गढ़वाल और कुमाऊँ में गुज्जर चरवाहे सर्दियों में भाबर के सूखे जंगलों में उतर आते थे तथा गर्मियों में ऊँचे घास के मैदानों बुग्यालों में चले जाते थे।
 - उनमें से कई मूल रूप से जम्मू से थे और 19वीं शताब्दी में अच्छे चरागाहों की तलाश में उत्तर प्रदेश की पहाड़ियों में आए थे (चित्र 7.5 देखें)।
- ❑ ग्रीष्म और शीत चरागाहों के बीच चक्रीय आवागमन का यह पैटर्न हिमालय के कई चरवाहे समुदायों की खासियत थी, जिनमें भोटिया, शेर्पा और किन्नोरी शामिल थे।
- ❑ जब एक जगह चरागाह खत्म हो जाता था या अनुपयोगी हो जाता था तो वे अपने झुंडों को नए इलाकों में ले जाते थे।
- ❑ इस निरंतर चक्रीय आवागमन ने चरागाहों को फिर से ठीक होने दिया और उनके अत्यधिक उपयोग को रोका।

पठारों, मैदानों और रेगिस्तानों में

- ❑ चरवाहे सिर्फ पहाड़ों में ही नहीं रहते थे। वे पठारों, मैदानों और रेगिस्तानों में भी बहुत बड़ी संख्या में मौजूद थे।
- ❑ **धंगर महाराष्ट्र का एक जाना-माना चरवाहा समुदाय है:**
- बीसवीं सदी की शुरुआत में इस समुदाय की आबादी लगभग 4,67,000 थी।
 - उनमें से ज्यादातर गड़रिये या चरवाहे थे हालाँकि कुछ लोग कंबल और चादरें भी बनाते थे जबकि कुछ भैंस पालते थे। धंगर गड़रिये बरसात के दिनों में महाराष्ट्र के मध्य पठारों में रहते थे। यह एक अर्ध-शुष्क इलाका था जहाँ बारिश बहुत कम होती थी और मिट्टी भी खास उपजाऊ नहीं थी। चारों तरफ सिर्फ कंटीली झाड़ियाँ होती थीं।
 - बाजरे जैसी सूखी फसलों के अलावा यहाँ और कुछ नहीं उगता था। मॉनसून में यह पट्टी धंगरों के जानवरों के लिए एक विशाल चरागाह बन जाती थी। अक्टूबर के आसपास धंगर बाजरे की कटाई करते थे और चरागाहों की तलाश में पश्चिम की तरफ चल पड़ते थे। करीब महीने भर पैदल चलने के बाद वे अपने रेवड़ों के साथ कोंकण के इलाके में जाकर डेरा डाल देते थे।
 - अच्छी बारिश और उपजाऊ मिट्टी की बदौलत इस इलाके में खेती खूब होती थी। कोंकणी किसान भी इन चरवाहों का दिल खोलकर स्वागत करते थे।
 - जिस समय धंगर कोंकण पहुँचते थे उसी समय कोंकण के किसानों को खरीफ की फसल काट कर अपने खेतों को रबी की फसल के लिए दोबारा उपजाऊ बनाना होता था।
 - धनगर झुंड खेतों में खाद डालते थे और पराली खाते थे। कोंकणी किसान चावल की आपूर्ति भी करते थे जिसे चरवाहे पठार पर ले जाते थे जहाँ अनाज की कमी थी।
 - मानसून के आगमन के साथ ही वे अपने झुंडों के साथ कोंकण और तटीय क्षेत्रों को छोड़कर सूखे पठार पर अपनी बस्तियों में लौट आते थे।



चित्र 7.6: थार रेगिस्तान में चरते राइका समुदाय के ऊँट केवल ऊँट ही यहाँ पाई जाने वाली सूखी और काटेदार झाड़ियों पर जीवित रह सकते हैं; लेकिन पर्याप्त भोजन प्राप्त करने के लिए उन्हें बहुत बड़े क्षेत्र में चरना पड़ता है।

□ कर्नाटक और आंध्र प्रदेश में गोल्ला, कुरुमा तथा कुरुबा समुदाय:

- कर्नाटक और आंध्र प्रदेश में भी सूखे मध्य पठार घास एवं पत्थरों से अटे पड़े थे। इनमें मवेशियों, भेड़-बकरियों और गड़ियों का ही बसेरा रहता था।
- गोल्ला मवेशी चराते थे जबकि कुरुमा और कुरुबा भेड़ तथा बकरियाँ पालते थे एवं बुने हुए कंबल बेचते थे।
- वे जंगल के पास रहते थे, ज़मीन के छोटे-छोटे टुकड़ों पर खेती करते थे, कई तरह के छोटे-मोटे व्यापार करते थे और अपने झुंडों की देखभाल करते थे।
- पहाड़ी चरवाहों के विपरीत, यह मानसून और शुष्क मौसम का परिवर्तन था जो उनके आंदोलन की मौसमी लय को परिभाषित करता था।
- शुष्क मौसम में वे तटीय इलाकों में चले जाते थे और बारिश आने पर चले जाते थे।
- केवल भैंसों को मानसून के महीनों के दौरान तटीय क्षेत्रों की दलदली, गीली परिस्थितियाँ पसंद थीं और अन्य झुंडों को शुष्क पठार पर ले जाना पड़ा।

□ उत्तर प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र का बंजारा समुदाय:

- चरवाहों में एक जाना-पहचाना नाम बंजारों का भी है। बंजारे उत्तर प्रदेश, पंजाब, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र के कई इलाकों में रहते थे।
- ये लोग बहुत दूर-दूर तक चले जाते थे और रास्ते में अनाज तथा चारे के बदले गाँव वालों को खेत जोतने वाले जानवर एवं दूसरी चीजें बेचते जाते थे। वे जहाँ भी जाते अपने जानवरों के लिए अच्छे चरागाहों की खोज में रहते।

□ राजस्थान के रेगिस्तान का राइका समुदाय:

- इस क्षेत्र में वर्षा कम और अनिश्चित थी। खेती की गई भूमि पर, हर साल फसल में उतार-चढ़ाव होता रहता है।
- विशाल क्षेत्रों में कोई फसल नहीं उगाई जा सकती थी।
- इसलिए उन्होंने खेती के साथ-साथ पशुपालन भी शुरू कर दिया।
- मानसून के दौरान बाड़मेर, जैसलमेर, जोधपुर और बीकानेर के रायका अपने गृह गाँवों में रहते थे, जहाँ चारागाह उपलब्ध था।
- अक्टूबर तक, जब ये चरागाह सूख जाते थे और खत्म हो जाते थे, तो वे दूसरे चारागाह तथा पानी की तलाश में निकल जाते थे, एवं अगले मानसून के दौरान फिर से लौट आते थे (चित्र 7.6 देखें)।
- रायकाओं का एक समूह जिसे मारू (रेगिस्तानी) रायका के नाम से जाना जाता है, ऊँट चराता था और उनकी बस्ती को ढांडी कहा जाता है। दूसरा समूह भेड़ और बकरी पालता था (चित्र 7.7 देखें)।



चित्र 7.7: मारू राइका समुदाय की वंशावली बताने वाला वंशावलीकार समुदाय के इतिहास का वर्णन करता है। ऐसी मौखिक परंपराएँ चरवाहे समूहों को अपनी पहचान का एहसास कराती हैं। ये मौखिक परंपराएँ हमें बता सकती हैं कि कोई समूह अपने अतीत को किस तरह देखता है।

- इस तरह हम देख सकते हैं कि चरवाहा समुदायों की जिंदगी कई चीजों के बारे में काफी सोच-विचार करके आगे बढ़ती थी।
- उन्हें यह तय करना था कि झुंड एक क्षेत्र में कितने समय तक रह सकते हैं, उन्हें पानी और चारागाह कहाँ मिल सकता है, उनकी गतिविधियों के समय की गणना करने की आवश्यकता थी, तथा यह सुनिश्चित करना था कि वे विभिन्न क्षेत्रों से होकर जा सकें।
- उन्हें रास्ते में किसानों के साथ संबंध स्थापित करने थे, ताकि झुंड कटे हुए खेतों में चर सकें और मिट्टी को खाद दे सकें।

औपनिवेशिक शासन और चरवाहों का जीवन:

- औपनिवेशिक शासन के दौरान चरवाहों की जिंदगी में गहरे बदलाव आए। उनके चरागाह सिमट गए, इधर-उधर आने-जाने पर बंदिशें लगने लगीं और उनसे जो लगान वसूल किया जाता था उसमें भी वृद्धि हुई। खेती में उनका हिस्सा घटने लगा और उनके पेशे और हुनरों पर भी बहुत बुरा असर पड़ा।
- पहली बात: औपनिवेशिक राज्य सभी चरागाह भूमि को खेती योग्य खेतों में बदलना चाहता था। भूमि राजस्व इसके वित्त के मुख्य स्रोतों में से एक था।

- खेती का विस्तार करके वह अपने राजस्व संग्रह को बढ़ा सकता था और साथ ही इंग्लैंड में आवश्यक जूट, कपास, गेहूँ और अन्य कृषि उपज का अधिक उत्पादन कर सकता था।
- औपनिवेशिक अधिकारियों के लिए सभी बंजर भूमि को 'बंजर भूमि' माना जाता था; इससे न तो राजस्व मिलता था और न ही कृषि उपज।
- उन्नीसवीं सदी के मध्य से, देश के विभिन्न हिस्सों में बंजर भूमि नियम लागू किए गए और इसके तहत बंजर भूमि को अपने कब्जे में लेकर चुनिंदा व्यक्तियों को दे दिया गया।

विचारणीय बिंदु

क्या आपको लगता है कि चरवाहा के पर्यावरणीय लाभ, जैसे कि सतत भूमि उपयोग और गतिशीलता, वर्तमान समय में भी प्रासंगिक हैं? ये प्रथाएँ वर्तमान पर्यावरणीय चिंताओं के साथ कैसे संरेखित हो सकती हैं?



- इन व्यक्तियों को कई तरह की रियायतें दी गईं और इन जमीनों पर बसने के लिए प्रोत्साहित किया गया। उनमें से कुछ को नए साफ किए गए क्षेत्रों में गाँवों का मुखिया बनाया गया।
- अधिकांश क्षेत्रों में ली गई भूमि वास्तव में चरागाह थी, इसलिए खेती के विस्तार का मतलब अनिवार्य रूप से चरागाहों का खत्म होना और पशुपालकों के लिए समस्या पैदा करना था।
- ❑ **दूसरी बात:** 19वीं सदी के मध्य तक, विभिन्न वन अधिनियम भी लागू किए जा रहे थे। जंगलों को आरक्षित और संरक्षित जैसी श्रेणियों में बाँटा गया। देवदार या साल जैसी व्यावसायिक रूप से मूल्यवान लकड़ी पैदा करने वाले जंगलों को 'आरक्षित' घोषित कर दिया गया था। किसी भी चरवाहे को इन जंगलों में जाने की अनुमति नहीं थी।
 - अन्य वनों को 'संरक्षित' के रूप में वर्गीकृत किया गया था और इनमें चरवाहों को चरने के कुछ पारंपरिक अधिकार दिए गए थे, लेकिन उनकी गतिविधियों पर बहुत प्रतिबंध थे।
 - अधिकारियों का मानना था कि चरने से जंगल के तल पर उगने वाले पौधों और पेड़ों की नई टहनियाँ नष्ट हो जाती हैं। इससे नए पेड़ उगने में बाधा होती है।
 - इन वन अधिनियमों ने चरवाहों को कई जंगलों में प्रवेश करने से रोक दिया, जो पहले उनके मवेशियों के लिए बहुमूल्य चारा उपलब्ध कराते थे।
 - यहाँ तक कि जिन क्षेत्रों में उन्हें प्रवेश की अनुमति थी, वहाँ भी उन्हें प्रवेश के लिए परमिट की आवश्यकता थी। उनके प्रवेश और प्रस्थान का समय निर्दिष्ट था तथा जंगल में उनके द्वारा बिताए जाने वाले दिनों की संख्या सीमित थी।
 - चारा उपलब्ध होने, घास रसीली होने और जंगल में बहुत अधिक झाड़ियाँ होने पर भी चरवाहे उस क्षेत्र में नहीं रह सकते थे। उन्हें वहाँ से जाना पड़ा क्योंकि उन्हें जारी किए गए वन विभाग के परमिट अब उनके जीवन पर हावी हो गए थे। अगर वे अधिक समय तक वहाँ रहते तो उन पर जुर्माना लगाया जा सकता था।
- ❑ **तीसरी बात:** ब्रिटिश अधिकारी अक्सर घुमंतू व खानाबदोश लोगों को शक की नजर से देखते थे। वे उन घुमंतू कारीगरों और व्यापारियों पर भरोसा नहीं करते थे जो गाँवों में अपना सामान बेचते थे, तथा चरवाहे जो हर मौसम में अपने निवास स्थान बदलते रहते थे एवं अच्छे चरागाहों की तलाश में इधर-उधर घूमते रहते थे।
 - औपनिवेशिक सरकार गाँवों में रहने वाली आबादी पर शासन करना चाहती थी, जो निश्चित स्थानों पर रहती थी और जिनके पास विशेष क्षेत्रों पर निश्चित अधिकार होते थे। ऐसी आबादी को पहचानना और नियंत्रित करना आसान था।
 - जो लोग स्थायी रूप से बसे हुए थे, उन्हें शांतिप्रिय और कानून का पालन करने वाला माना जाता था तथा जो खानाबदोश थे, उन्हें अपराधी माना जाता था।
 - वर्ष 1871 में, आपराधिक जनजाति अधिनियम पारित किया गया था। इस अधिनियम द्वारा शिल्पकारों, व्यापारियों और चरवाहों के कई समुदायों को आपराधिक जनजातियों के रूप में वर्गीकृत किया गया था तथा उन्हें स्वभाव एवं जन्म से अपराधी बताया गया था।
 - जब यह अधिनियम लागू हुआ, तो इन समुदायों से अपेक्षा की गई कि वे केवल अधिसूचित गाँव की बस्तियों में ही रहें और उन्हें बिना परमिट के बाहर जाने की अनुमति नहीं थी। साथ ही, गाँव की पुलिस उन पर लगातार नज़र रखती थी।
- ❑ **चौथी बात:** अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए अंग्रेजों ने लगान वसूलने का हर संभव रास्ता अपनाया। औपनिवेशिक सरकार ने भूमि, नहर के पानी, नमक, व्यापारिक वस्तुओं और यहाँ तक कि पशुओं पर भी कर लगाया।
 - चरवाहों को चरागाहों पर चरने वाले हर जानवर पर कर देना पड़ता था।
 - 19वीं सदी के मध्य में भारत के ज्यादातर चरागाह क्षेत्रों में चरागाह कर लागू किया गया। मवेशियों के प्रति व्यक्ति कर में तेजी से वृद्धि हुई और संग्रह की प्रणाली को और भी कुशल बनाया गया।
 - 1850 और 1880 के दशक के बीच कर वसूलने का अधिकार ठेकेदारों को नीलाम कर दिया गया और ये ठेकेदार जितना ज्यादा हो सके उतना ज्यादा कर वसूलने की कोशिश करते थे ताकि वे राज्य को चुकाए गए पैसे को वापस पा सकें एवं साल के भीतर ज्यादा से ज्यादा मुनाफ़ा कमा सकें।
 - 1880 के दशक तक सरकार ने चरवाहों से सीधे कर वसूलना शुरू कर दिया।
 - उनमें से हर एक चरवाहे को चरागाह क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए एक पास दिया गया और उसे कर चुकाना पड़ा। उसके पास जितने मवेशी थे और उसने जितना कर चुकाया, उसे पास पर दर्ज किया गया।



चित्र 7.8: भारत में चरवाहा समुदाय

चित्र 7.9: अफ्रीका में चरवाहा समुदाय

- वे दूध, मांस, जानवरों की खाल और ऊन बेचते हैं। कुछ लोग व्यापार और परिवहन के ज़रिए भी कमाते हैं, दूसरे लोग चरवाही गतिविधि को कृषि के साथ जोड़ते हैं; फिर भी कुछ लोग चरवाही से होने वाली अपनी अल्प और अनिश्चित आय को पूरा करने के लिए कई तरह के छोटे-मोटे काम करते हैं।
- भारत के चरवाहों की तरह, अफ्रीकी चरवाहों का जीवन औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक काल में नाटकीय रूप से बदल गया है।

मासाई समुदाय की चरागाह भूमि के हास पर एक नज़र:

- मासाई पशुपालक मोटे तौर पर पूर्वी अफ्रीका के निवासी हैं।
- इनमें से लगभग 3,00,000 दक्षिणी कीनिया में और करीब 1,50,000 तंजानिया में रहते हैं।
- अभी हम देखेंगे कि नए कानूनों और बंदिशों ने किस तरह न केवल उनकी ज़मीन उनसे छीन ली बल्कि उनकी आवाजाही पर भी बहुत सारी पाबंदियाँ थोप दी हैं।
- इन कानूनों के कारण सूखे के दिनों में उनकी जिंदगी गहरे तौर पर बदल गई है और उनके सामाजिक संबंध भी एक नई शकल में ढल गए हैं।
- मासाई शब्द की उत्पत्ति मा शब्द से हुई है। मा-साई का अर्थ है 'मेरे लोग'। मासाई पारंपरिक रूप से खानाबदोश और चरवाहे लोग हैं जो जीविका के लिए दूध और मांस पर निर्भर रहते हैं। उच्च तापमान और कम वर्षा के कारण शुष्क, धूल भरी और अत्यधिक गर्म परिस्थितियाँ बनती हैं। भूमध्यरेखीय गर्मी की इस अर्ध-शुष्क भूमि में सूखे की स्थिति आम है। ऐसे समय में चरवाहे जानवर बढ़ी संख्या में मर जाते हैं।
- वर्ष 1885 में, ब्रिटिश केन्या और जर्मन तंजानिया के बीच एक अंतरराष्ट्रीय सीमा के साथ मासाईलैंड को आधे में काट दिया गया।
- इसके बाद, सबसे अच्छी चरागाह भूमि धीरे-धीरे श्वेत लोगों द्वारा बसा ली गई और मासाई को दक्षिण केन्या तथा उत्तरी तंजानिया के एक छोटे से क्षेत्र में धकेल दिया गया।
- मासाई लोगों ने अपनी पूर्व-औपनिवेशिक भूमि का लगभग 60% हिस्सा खो दिया और वे अनिश्चित वर्षा एवं खराब चरागाह वाले शुष्क क्षेत्र तक सीमित हो गए।
- 19वीं सदी के उत्तरार्ध से, पूर्वी अफ्रीका में ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार ने स्थानीय किसान समुदायों को खेती का विस्तार करने के लिए प्रोत्साहित किया, जिससे चरागाह भूमि खेती योग्य खेतों में बदल गई।



चित्र 7.10: मासाई

तांगानिका पर

ब्रिटेन ने प्रथम विश्व युद्ध के दौरान जर्मन पूर्वी अफ्रीका पर विजय प्राप्त की। 1919 में तांगानिका ब्रिटिश नियंत्रण में आ गया। 1961 में इसने स्वतंत्रता प्राप्त की और 1964 में ज़ांज़ीबार के साथ मिलकर तंजानिया का गठन किया।

अतिरिक्त जानकारी

घास के बिना, पशुधन (मवेशी, बकरी और भेड़) कुपोषित हैं, जिसका अर्थ है कि परिवारों और उनके बच्चों के लिए कम भोजन उपलब्ध है। सूखे और खाद्यान्न की कमी से सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्र एम्बोसेली नेशनल पार्क के आस-पास के क्षेत्र हैं, जिसने पिछले साल पर्यटन से लगभग 240 मिलियन केन्याई शिलिंग (अनुमानित \$3.5 मिलियन अमेरिकी डॉलर) कमाए थे। इसके अलावा, किलिमंजारो जल परियोजना इस क्षेत्र के समुदायों से होकर गुजरती है, लेकिन ग्रामीणों को सिंचाई या पशुधन के लिए पानी का उपयोग करने से रोक दिया गया है। दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका में नामीबिया में, काओकोलैंड चरवाहे पारंपरिक रूप से काओकोलैंड और पास के ओवम्बोलैंड के बीच घूमते थे तथा वे पड़ोसी बाजारों में खाल, मांस और अन्य व्यापारिक उत्पाद बेचते थे। यह सब क्षेत्रीय सीमाओं की नई प्रणाली के साथ बंद हो गया, जिसने क्षेत्रों के बीच आवाजाही को प्रतिबंधित कर दिया।

- पूर्व-औपनिवेशिक काल में, मासाई चरवाहों ने अपने कृषि पड़ोसियों पर आर्थिक और राजनीतिक रूप से प्रभुत्व जमाया था, लेकिन औपनिवेशिक शासन के अंत तक स्थिति उलट गई थी।
- चारागाह भूमि के बड़े क्षेत्रों को भी केन्या में मासाई मारा और सांबुरु राष्ट्रीय उद्यान तथा तंजानिया में सेरेनगेटी पार्क जैसे खेल रिजर्व में बदल दिया गया था।
- चरवाहों को इन रिजर्व में प्रवेश करने की अनुमति नहीं थी। वे न तो जानवरों का शिकार कर सकते थे और न ही इन क्षेत्रों में अपने झुंड चरा सकते थे।
- बहुत सारे चरागाहों को शिकारगाह बना दिया गया। कीनिया में मासाई मारा व साम्बूरू नेशनल पार्क और तंजानिया में सेरेनगेटी पार्क जैसे शिकारगाह इसी तरह अस्तित्व में आए थे।
- इन आरक्षित जंगलों में चरवाहों का आना मना था। इन इलाकों में न तो वे शिकार कर सकते थे और न अपने जानवरों को चरा सकते थे। ऐसे बहुत सारे आरक्षित जंगलों में अब तक मासाई अपने ढोर-डंगर चराया करते थे।
- मिसाल के तौर पर सेरेनगेटी नेशनल पार्क का 14,760 वर्ग किलोमीटर से भी ज्यादा क्षेत्रफल मासाइयों के चरागाहों कब्ज़ा करके बनाया गया था।
- बेहतरीन चरागाह भूमि और जल संसाधनों के नुकसान ने भूमि के उस छोटे से क्षेत्र पर दबाव बनाया जिसके भीतर मासाई सीमित थे। इसका मतलब अंततः चरागाहों की गुणवत्ता में गिरावट थी। चारे की हमेशा कमी रहती थी। मवेशियों को खिलाना एक लगातार समस्या बन गई।

सरहदें बंद हो गईं:

- उन्नीसवीं सदी में चरवाहे चरागाहों की खोज में बहुत दूर-दूर तक चले जाते थे। जब एक जगह के चरागाह सूख जाते थे तो वे अपने रेवड़ लेकर किसी और जगह चले जाते थे।
- वे पारंपरिक गहरे लाल रंग के शुका, चमकीले मनके वाले मासाई गहने पहनते हैं और पाँच फुट लंबे, स्टील की नोक वाले भाले रखते हैं। उनके जटिल रूप से लटों वाले बालों की लंबी तहें गेरू से लाल रंग की हैं। परंपरा के अनुसार वे उगते सूरज का सम्मान करने के लिए पूर्व की ओर मुंह करते हैं। योद्धा समाज की सुरक्षा के प्रभारी होते हैं, जबकि लड़के पशुधन चराने के लिए जिम्मेदार होते हैं। सूखे के मौसम के दौरान, योद्धा और लड़के दोनों पशुधन चराने की जिम्मेदारी लेते हैं। आज भी, युवा पुरुष योद्धा बनने से पहले एक विस्तृत अनुष्ठान से गुजरते हैं, हालाँकि वास्तव में यह अब आम नहीं है। उन्हें लगभग 4 महीने तक पूरे क्षेत्र में यात्रा करनी चाहिए, एक घटना के साथ समाप्त होती है जहाँ वे घर की ओर दौड़ते हैं और एक हमलावर के रवैये के साथ प्रवेश करते हैं। समारोह के दौरान, लड़के ढीले कपड़े पहनते
- लेकिन उन्नीसवीं सदी के आखिरी दशकों से औपनिवेशिक सरकार उनकी आवाजाही पर तरह-तरह की पाबंदियाँ लगाने लगी।
- मासाई की तरह, अन्य चरवाहे समूहों को भी विशेष रिजर्व के दायरे में रहने के लिए मजबूर किया गया और इन रिजर्व की सीमाएँ ही वे सीमाएँ बन गईं, जिनके भीतर वे अब घूम सकते थे।
- उन्हें विशेष परमिट के बिना अपने स्टॉक के साथ बाहर जाने की अनुमति नहीं थी, जिसे बिना पोरेशानी और उत्पीड़न के प्राप्त करना फिर से मुश्किल था।
- नियमों का उल्लंघन करने के दोषी पाए जाने वालों को कड़ी सजा दी जाती थी और उन्हें श्वेत क्षेत्रों के बाज़ारों में प्रवेश करने की भी अनुमति नहीं थी। कई क्षेत्रों में, उन्हें किसी भी तरह के व्यापार में भाग लेने से प्रतिबंधित किया गया था।
- पहले, चरवाहे न केवल पशुओं के झुंड की देखभाल करते थे, बल्कि विभिन्न उत्पादों का व्यापार भी करते थे। औपनिवेशिक शासन के तहत प्रतिबंधों ने उनकी व्यापारिक गतिविधियों को पूरी तरह से नहीं रोका, बल्कि कई तरह के प्रतिबंध लगा दिए।
- श्वेत बसने वाले और यूरोपीय उपनिवेशवादी चरवाहों को खतरनाक एवं बर्बर मानते थे। ऐसे लोग जिनके साथ सभी तरह के संपर्क कम से कम करने थे।
- हालाँकि, सभी संपर्कों को काटना कभी संभव नहीं था, क्योंकि श्वेत उपनिवेशवादियों को खदानें खोदने और सड़कें एवं शहर बनाने के लिए काले श्रमिकों पर निर्भर रहना पड़ता था।
- नई क्षेत्रीय सीमाओं और उन पर लगाए गए प्रतिबंधों ने उनके पशुपालन और व्यापारिक गतिविधियों दोनों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला।



चित्र 7.11: योद्धा

जब चरागाह सूख जाते हैं-

सूखा दुनिया भर के चरवाहों की जिंदगी पर असर डालता है। जिस साल बारिश नहीं होती और चरागाह सूख जाते हैं अगर उस साल मवेशियों को किसी हरे-भरे इलाके में न ले जाया जाए तो उनके सामने भुखमरी का संकट पैदा हो जाता है। इसीलिए परंपरागत तौर पर चरवाहे घुमंतू स्वभाव के लोग होते हैं, वे यहाँ से वहाँ जाते ही रहते हैं। इसी घुमंतूपनी की वजह से वे बुरे वक्त का सामना कर पाते हैं और संकट से बच निकलते हैं।

- लेकिन औपनिवेशिक शासन की स्थापना के बाद तो मासाइयों को एक निश्चित इलाके में कैद कर दिया गया था। उनके लिए एक इलाका आरक्षित कर दिया गया और चरागाहों की खोज में यहाँ-वहाँ भटकने पर रोक लगा दी गई। उन्हें बेहतरीन चरागाहों से महरूम कर दिया गया और एक ऐसी अर्ध-शुष्क पट्टी में रहने पर मजबूर कर दिया गया जहाँ सूखे की आशंका हमेशा बनी रहती थी। क्योंकि ये लोग संकट के समय भी अपने जानवरों को लेकर ऐसी जगह नहीं जा सकते थे जहाँ उन्हें अच्छे चरागाह मिल सकते थे। इसलिए सूखे के सालों में मासाइयों के बहुत सारे मवेशी भूख और बीमारियों की वजह से मारे जाते थे।
- 1930 की एक जाँच से पता चला कि कीनिया में मासाइयों के पास 7,20,000 मवेशी, 8,20,000 भेड़ और 1,71,000 गधे थे। वर्ष 1933 और 1934 में पड़े केवल दो साल के सूखे के बाद इनमें आधे से ज्यादा जानवर मर चुके थे।
- जैसे-जैसे चरागाहों का क्षेत्र सिकुड़ता गया, सूखे का प्रतिकूल प्रभाव भी बढ़ता गया। लगातार खराब वर्षों के कारण चरवाहों के पास पशुओं की संख्या में लगातार कमी आती गई।

सब पर एक जैसा असर नहीं पड़ा:

- औपनिवेशिक काल में अफ्रीका के बाकी स्थानों की तरह मासाईलैंड में भी आए बदलावों से सारे चरवाहों पर एक जैसा असर नहीं पड़ा।
- उपनिवेश बनने से पहले मासाई समाज दो सामाजिक श्रेणियों में बँटा हुआ था वरिष्ठ जन (एल्डर्स) और योद्धा (वॉरियर्स)।
 - वरिष्ठ जन शासन चलाते थे। समुदाय से जुड़े मामलों पर विचार-विमर्श करने और अहम फैसले लेने के लिए वे समय-समय पर सभा करते थे।
 - योद्धाओं में ज्यादातर नौजवान होते थे जिन्हें मुख्य रूप से लड़ाई लड़ने और कबीले की हिफाजत करने के लिए तैयार किया जाता था। (चित्र 7.11 देखें)।
- वे समुदाय की रक्षा करते थे और दूसरे कबीलों के मवेशी छीन कर लाते थे। जहाँ जानवर ही संपत्ति हो वहाँ हमला करके दूसरों के जानवर छीन लेना एक महत्वपूर्ण काम होता था। अलग-अलग चरवाहा समुदायों की ताकत इन्हीं हमलों से तय होती थी।

- ❑ युवा पुरुषों को योद्धा वर्ग के सदस्य के रूप में पहचाना जाने लगा जब उन्होंने अन्य चरवाहे समूहों के मवेशियों पर छापा मारकर और युद्धों में भाग लेकर अपनी मर्दानगी साबित की। हालाँकि, वे बुजुर्गों के अधिकार के अधीन थे।
- ❑ मासाई के मामलों को प्रशासित करने के लिए, अंग्रेजों ने मासाई के विभिन्न उप-समूहों के प्रमुखों को नियुक्त किया, जिन्हें जनजाति के मामलों के लिए जिम्मेदार बनाया गया था।
- ❑ अंग्रेजों ने छापामारी और युद्ध पर कई तरह के प्रतिबंध लगाए। नतीजतन, बुजुर्गों और योद्धाओं दोनों के पारंपरिक अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।
- ❑ अंग्रेजों द्वारा नियुक्त प्रमुखों के पास एक नियमित आय थी जिससे वे जानवर, सामान और ज़मीन खरीद सकते थे, जिसका मतलब था धन संचय करना। वे गरीब पड़ोसियों को भी पैसे उधार देते थे जिन्हें कर चुकाने के लिए नकदी की ज़रूरत होती थी।
- ❑ उनमें से कई लोग शहरों में रहने लगे और व्यापार में शामिल हो गए तथा उन्होंने अपनी पत्नियों एवं बच्चों को जानवरों की देखभाल के लिए गाँवों में ही रहने के लिए छोड़ दिया।
- ❑ ये प्रमुख युद्ध और सूखे की तबाही से बचने में कामयाब रहे, क्योंकि उनके पास चरवाहे तथा गैर-चरवाहे दोनों तरह की आय थी एवं जब उनका स्टॉक खत्म हो जाता तो वे जानवर खरीद सकते थे।
- ❑ लेकिन गरीब चरवाहों का जीवन अलग था जो केवल अपने पशुओं पर निर्भर थे। युद्ध और अकाल के समय, उन्होंने लगभग सब कुछ खो दिया एवं उन्हें शहरों में काम की तलाश करनी पड़ी।
- ❑ कुछ लोग कोयला जलाने का काम करके अपना जीवन चलाते थे, तो कुछ लोग छोटे-मोटे काम करते थे। संयोगवश कुछ लोगों को सड़क या इमारत निर्माण में ज़्यादा नियमित काम मिल जाता था।
- ❑ इस तरह मासाई समाज में दो स्तरों पर बदलाव आए।
 1. पहला, वरिष्ठ जनों और योद्धाओं के बीच उम्र पर आधारित परंपरागत फ़र्क पूरी तरह खत्म भले न हुआ हो पर बुरी तरह अस्त-व्यस्त ज़रूर हो गया।
 2. दूसरा, अमीर और गरीब चरवाहों के बीच नया भेदभाव पैदा हुआ।

विचारणीय बिंदु

मासाई समुदाय को ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन द्वारा लाए गए परिवर्तनों का सामना करना पड़ा। इसने सीधे तौर पर उनके रहन-सहन व जीवनशैली को प्रभावित किया। आपको क्या लगता है कि औपनिवेशिक मासाई समाज में हुए परिवर्तन, जिसमें ब्रिटिश-नियुक्त प्रमुखों का प्रभाव और धन भेद का उदय शामिल है, ने मासाई समुदाय की सामाजिक संरचना और आर्थिक कल्याण को कैसे प्रभावित किया? साथ ही, क्या आपको इस बात में कोई समानता दिखाई देती है जिसने भारतीय आदिवासी समाज में समान प्रभाव डाला?



निष्कर्ष

इस प्रकार, हम देखते हैं कि वैश्विक परिवर्तनों ने दुनिया के विभिन्न समुदायों सहित चरवाहा समुदाय पर अलग-अलग प्रभाव डाले हैं। नए कानूनों और सीमाओं ने उनकी आवाजाही को प्रभावित किया। जैसे-जैसे चरागाह कम होते गए, पशुओं को चराना कठिन हो गया और जो बची हुई ज़मीन थी, उसका अत्यधिक उपयोग भी उसे बेकार बना रहा था। अब उनकी समस्याएँ पहले से और बढ़ गईं, क्योंकि पशु बड़ी संख्या में मरने लगे। नए नियमों के कारण वे नए चरागाहों की तलाश नहीं कर पा रहे थे। हम तब तक समकालीन दुनिया को समझ नहीं सकते जब तक हम समाजों और लोगों के जीवन में बदलावों को न देखें। आधुनिकीकरण के कारण, उद्योग और परिवहन के विकास ने लकड़ी और अन्य उत्पादों के लिए नए बाजार बनाए। इन परिवर्तनों ने उन समुदायों के जीवन को प्रभावित किया जो इन संसाधनों पर निर्भर थे, उन्हें नए तरीकों से काम करने और अपनी आजीविका अर्जित करने के लिए मजबूर किया।

महत्वपूर्ण शब्दावल्याँ

- ❖ **स्लीपर:** रेलवे ट्रैक पर बिछाए गए लकड़ी के तख्ते। जिनके माध्यम से ट्रैक को संतुलित स्थिति में रखा जाता है।
- ❖ **वैज्ञानिक वानिकी:** वन विभाग द्वारा नियंत्रित पेड़ों की कटाई की एक प्रणाली, जिसमें पुराने पेड़ों को काटकर नए पेड़ लगाए जाते हैं।
- ❖ **भाबर:** गढ़वाल और कुमाऊँ की तलहटी के नीचे अवस्थित सूखा वन क्षेत्र।
- ❖ **बुग्याल:** ऊँचे पहाड़ों में स्थित विशाल घास के मैदान (विशेषकर उत्तराखंड के चरागाह)।
- ❖ **खरीफ:** शरद ऋतु की फसल, जिसे आमतौर पर सितंबर और अक्टूबर के बीच काटा जाता है।
- ❖ **रबी:** वसंत ऋतु की फसल, जिसे आमतौर पर मार्च और अप्रैल के बाद काटा जाता है।
- ❖ **स्टबल:** कटाई के बाद जमीन में छोड़े गए अनाज के डंठल के निचले सिरे या फसल अवशेष।
- ❖ **प्रथागत अधिकार:** अधिकार जो लोगों को रीति-रिवाज और परंपरा के अनुसार प्राप्त होते हैं।



यूरोप में राष्ट्रवाद का उदय

संदर्भ: इस अध्याय में NCERT पाठ्यपुस्तक की कक्षा-X (भारत और समकालीन विश्व-II) के अध्याय-1 व 2 का सारांश शामिल है।

परिचय

राष्ट्रवाद एक जटिल और बहुआयामी घटना है जिसने सदियों से यूरोप के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह एक शक्तिशाली शक्ति है जिसने लोगों को अपने अधिकारों, अपनी स्वतंत्रता और अपनी पहचान के लिए लड़ने के लिए प्रेरित किया है। यह अध्याय उन समस्त ऐतिहासिक घटनाओं और प्रक्रियाओं की पड़ताल करता है जिनके परिणामस्वरूप यूरोप में राष्ट्रवाद का उदय हुआ और इसने महाद्वीप के राजनीतिक परिदृश्य को कैसे बदल दिया। हम यूरोप में राष्ट्रवाद के विकास को आकार देने वाले प्रमुख विचारों, आंदोलनों और आंकड़ों की जाँच करेंगे और साथ ही समझेंगे कि महाद्वीप के इतिहास पर इसका क्या प्रभाव पड़ा। फ्रांसीसी क्रांति से लेकर जर्मनी और इटली के एकीकरण तक, ग्रीस और बाल्कन में स्वतंत्रता के संघर्ष से लेकर फासीवाद और अधिनायकवाद के उदय तक, यह अध्याय यूरोप में राष्ट्रवाद के उदय और इसकी स्थायी विरासत का व्यापक अवलोकन प्रदान करता है। इसमें भारत में आधुनिक राष्ट्रवाद का उदय और उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन से इसका संबंध स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। हम जाँच करेंगे कि विभिन्न सामाजिक समूहों ने आंदोलन में कैसे भाग लिया और कांग्रेस ने राष्ट्रीय आंदोलन को कैसे विकसित करने की कोशिश की। हम आंदोलन को आकार देने में महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू जैसे प्रमुख नेताओं की भूमिका और ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए उनके द्वारा अपनाई गई रणनीतियों पर भी नज़र डालेंगे। इस अध्याय के माध्यम से, हम भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की जटिल और बहुआयामी प्रकृति और इसके लक्ष्यों को प्राप्त करने में आने वाली चुनौतियों के बारे में गहन समझ विकसित करेंगे।

यूरोप में राष्ट्रवाद का उदय

19वीं सदी के मध्य से पहले, यूरोप की पहचान बहुराष्ट्रीय राजवंशीय साम्राज्यों के जटिल जाल से थी। निरंकुश राजतंत्र का बोलबाला था, जिसमें राजा और रानियाँ अपनी प्रजा पर निर्विवाद अधिकार रखते थे। 1789 की फ्रांसीसी क्रांति के दौरान बोल गए राष्ट्रवाद के बीज धीरे-धीरे अंकुरित हुए, जिसके कारण 20वीं सदी की शुरुआत तक दुनिया के अधिकांश हिस्सों में लोकतांत्रिक राष्ट्र-राज्यों का निर्माण हुआ।

फ्रेडेरिक सोरियू का विश्व का विज़न (Frédéric Sorrieu Vision of the World)

1848 में, एक फ्रांसीसी कलाकार फ्रेड्रिक सॉरयू ने चार चित्रों की एक श्रृंखला बनाई। इनमें उसने सपनों का एक संसार रचा जो उसके शब्दों में 'जनतांत्रिक और सामाजिक गणतंत्रों' से मिल कर बना था।

- इस श्रृंखला के पहले चित्र में, यूरोप और अमेरिका के लोगों को एक लंबी रेलगाड़ी में मार्च करते हुए और स्टैच्यू ऑफ लिबर्टी को श्रद्धांजलि देते हुए दिखाया गया है। एक हाथ में ज्ञान की मशाल एक महिला आकृति द्वारा और दूसरे हाथ में मानव अधिकारों का चार्टर थामे हुए थे।
- जमीन पर, निरंकुश संस्थाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रतीकों के टूटे हुए अवशेष बिखरे हुए हैं, जो एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक बदलाव का प्रतिनिधित्व करते हैं।
- सोरियू की काल्पनिक दृष्टि के अनुसार, दुनिया के लोगों को अलग-अलग राष्ट्रों के रूप में समूहीकृत किया गया है, जिन्हें उनके झंडों और राष्ट्रीय पोशाक के माध्यम से पहचाना जाता है।



चित्र 8.1: विश्वव्यापी लोकतांत्रिक और सामाजिक गणराज्यों का सपना - राष्ट्रों के बीच समझौता, फ्रेडेरिक सोरियू द्वारा तैयार एक प्रिंट, 1848

- ❑ जुलूस का नेतृत्व संयुक्त राज्य अमेरिका और स्विट्जरलैंड कर रहे थे, उसके बाद फ्रांस और जर्मनी थे। जर्मन लोगों के बाद ऑस्ट्रिया, किंगडम ऑफ द टू सिसिली, लोम्बार्डी, पोलैंड, इंग्लैंड, आयरलैंड, हंगरी और रूस के लोग आए।
 - ❑ ऊपर स्वर्ग से, मसीह, संत और देवदूत दृश्य को देखते हैं। कलाकार ने इनका उपयोग दुनिया के देशों के बीच भाईचारे के प्रतीक के रूप में किया है।
- 19वीं शताब्दी के दौरान, राष्ट्रवाद यूरोप में एक परिवर्तनकारी शक्ति के रूप में उभरा, जिसके परिणामस्वरूप बहुराष्ट्रीय राजवंशीय साम्राज्यों के स्थान पर राष्ट्र-राज्यों की स्थापना हुई।

फ्रांसीसी क्रांति और राष्ट्र का विचार



चित्र 8.2: 1815 में वियना कांग्रेस के बाद यूरोप

- ❑ राष्ट्रवाद की पहली स्पष्ट अभिव्यक्ति 1789 में फ्रांसीसी क्रांति के साथ हुई।
- ❑ 1789 में फ्रांस एक ऐसा राज्य था जिसके संपूर्ण भू-भाग पर एक निरंकुश राजा का आधिपत्य था। फ्रांसीसी क्रांति से जो राजनीतिक और संवैधानिक बदलाव हुए, उनसे प्रभुसत्ता राजतंत्र से निकल कर फ्रांसीसी नागरिकों के समूह में हस्तांतरित हो गई।
- ❑ क्रांति ने घोषणा की कि अब लोगों द्वारा राष्ट्र का गठन होगा और वे ही उसकी नियति तय करेंगे।
- ❑ नेपोलियन ने, निस्संदेह, फ्रांस में लोकतंत्र को नष्ट कर दिया था, लेकिन प्रशासनिक क्षेत्र में उसने पूरी व्यवस्था को अधिक तर्कसंगत और कुशल बनाने के लिए क्रांतिकारी सिद्धांतों को शामिल किया था।
- ❑ 1804 की नागरिक संहिता - जिसे नेपोलियन संहिता के रूप में जाना जाता है, ने जन्म के आधार पर सभी विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया, कानून के समक्ष समानता स्थापित की और संपत्ति के अधिकार को सुरक्षित किया।

यूरोप में राष्ट्रवाद का निर्माण

ऐतिहासिक यूरोप में जर्मनी, इटली और स्विट्जरलैंड राज्यों, डचियों और कैंटन में विभाजित थे, जिनमें से प्रत्येक स्वायत्त नेताओं के शासन के अधीन था। इस बीच, पूर्वी और मध्य यूरोप निरंकुश राजतंत्रों द्वारा शासित थे, जो अपने क्षेत्रों में विविध लोगों की मेजबानी करते थे।

कुलीन वर्ग और नया मध्यम वर्ग

- ❑ सामाजिक और राजनीतिक रूप से ज़मीन का मालिक कुलीन वर्ग यूरोपीय महाद्वीप का सबसे प्रभुत्वशाली वर्ग था। इस वर्ग के सदस्य एक साझा जीवन शैली से बंधे हुए थे जो क्षेत्रीय विभाजनों के आर-पार व्याप्त थी। वे ग्रामीण इलाकों में जायदाद और शहरी-हवेलियों के मालिक थे।



चित्र 8.3: जर्मनी के जेइब्रुकेन में स्वतंत्रता के वृक्ष का रोपण

- राजनीतिक कार्यों के लिए तथा उच्च वर्गों के बीच वे फ्रेंच भाषा का प्रयोग करते थे। उनके परिवार अक्सर वैवाहिक बंधनों से आपस में जुड़े होते थे। मगर यह शक्तिशाली कुलीन वर्ग संख्या के लिहाज से एक छोटा समूह था। जनसंख्या के अधिकांश लोग कृषक थे। पश्चिम में ज्यादातर जमीन पर किराएदार और छोटे काश्तकार खेती करते थे जबकि पूर्वी और मध्य यूरोप में भूमि विशाल जागीरों में बँटी थी जिस पर भूदास खेती करते थे। पश्चिमी और मध्य यूरोप के हिस्सों में औद्योगिक उत्पादन और व्यापार में वृद्धि से शहरों का विकास और वाणिज्यिक वर्गों का उदय हुआ जिनका अस्तित्व बाजार के लिए उत्पादन पर टिका था।
- इंग्लैंड में औद्योगीकरण अठारहवीं सदी के दूसरे भाग में आरंभ हुआ लेकिन फ्रांस और जर्मनी के राज्यों के कुछ हिस्सों में यह उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान ही हुआ। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप नए सामाजिक समूह अस्तित्व में आए श्रमिक-वर्ग के लोग और मध्य वर्ग जो उद्योगपतियों, व्यापारियों और सेवा क्षेत्र के लोगों से बने। मध्य और पूर्वी यूरोप में इन समूहों का आकार उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशकों तक छोटा था। कुलीन विशेषाधिकारों की समाप्ति के बाद शिक्षित और उदारवादी मध्य वर्गों के बीच ही राष्ट्रीय एकता के विचार लोकप्रिय हुए।

विचारणीय बिंदु

क्या आप 18वीं शताब्दी में मजदूर वर्ग और मध्यम वर्ग के उदय को आकार देने में औद्योगीकरण की भूमिका और राष्ट्रवादी आंदोलनों पर इसके प्रभाव के बारे में सोच सकते हैं?



उदारवादी राष्ट्रवाद के क्या मायने थे?

- रोप में उन्नीसवीं सदी के शुरुआती दशकों में राष्ट्रीय एकता से संबंधित विचार उदारवाद से करीब से जुड़े थे। **उदारवाद** यानी **liberalism** शब्द लातिन भाषा के मूल **liber** पर आधारित है जिसका अर्थ है 'आजाद'।
- नए मध्य वर्गों के लिए उदारवाद का मतलब था व्यक्ति के लिए आजादी और कानून के समक्ष सबकी बराबरी। राजनीतिक रूप से उदारवाद एक ऐसी सरकार पर जोर देता था जो सहमति से बनी हो।
- फ्रांसीसी क्रांति के बाद से उदारवाद निरंकुश शासक और पादरीवर्ग के विशेषाधिकारों की समाप्ति, संविधान तथा संसदीय प्रतिनिधि सरकार का पक्षधर था। उन्नीसवीं सदी के उदारवादी निजी संपत्ति के स्वामित्व की अनिवार्यता पर भी बल देते थे। लेकिन यह जरूरी नहीं था कि कानून के समक्ष बराबरी का विचार सबके लिए मताधिकार (suffrage) के पक्ष में था।
- आप याद करें कि क्रांतिकारी फ्रांस उदारवादी प्रजातंत्र का पहला राजनीतिक प्रयोग था और वहाँ मत देने और चुने जाने का अधिकार केवल संपत्तिवान पुरुषों को ही हासिल था। संपत्ति-विहीन पुरुष और सभी महिलाओं को राजनीतिक अधिकारों से वंचित रखा गया था।
- 1834 में प्रशिया द्वारा शुरू किया गया, एक सीमा शुल्क संघ, जिसे ज़ोलवेरिन के रूप में जाना जाता है, का गठन किया गया और अधिकांश जर्मन राज्यों ने इसे अपनाया।
- संघ ने टैरिफ बाधाओं को समाप्त कर दिया और मुद्राओं की संख्या तीस से घटाकर दो कर दी।
- रेलवे के एक नेटवर्क के निर्माण ने गतिशीलता को और बढ़ावा दिया, जिससे राष्ट्रीय एकीकरण के लिए आर्थिक हितों का दोहन हुआ।



चित्र 8.4: चिंतकों का क्लब, लगभग 1820 का एक अनाम व्यंग्य चित्र

1815 के बाद एक नया रुढ़िवाद

- 1815 में नेपोलियन की पराजय के बाद यूरोपीय सरकारें रुढ़िवाद की भावना से प्रेरित थीं।
- रुढ़िवादी पारंपरिक संस्थाओं को संरक्षित करने में विश्वास करते थे: **राजशाही, चर्च, सामाजिक पदानुक्रम, संपत्ति और परिवार।**
- निरंकुश यूरोपीय राजतंत्रों को सशक्त बनाने के लिए, एक आधुनिक सेना, कुशल नौकरशाही, गतिशील अर्थव्यवस्था और सामंतवाद और दासता के उन्मूलन पर ध्यान केंद्रित करना आवश्यक था।
- 1815 में, ब्रिटेन, रूस, प्रशा और ऑस्ट्रिया जैसी यूरोपीय शक्तियाँ जिन्होंने मिलकर नेपोलियन को हराया था के प्रतिनिधि यूरोप के लिए एक समझौता तैयार करने के लिए वियना में मिले।



चित्र 8.5: ग्यूसेपे मेत्सिनी और बर्न में 'यंग यूरोप' की स्थापना, 1833

- ❑ इस सम्मेलन (Congress) की मेजबानी ऑस्ट्रिया के चांसलर ड्यूक मैटरनिख ने की। इसमें प्रतिनिधियों ने 1815 की वियना संधि (Treaty of Vienna) तैयार की जिसका उद्देश्य उन कई सारे बदलावों को खत्म करना था जो नेपोलियाई युद्धों के दौरान हुए थे।
- ❑ फ्रांसीसी क्रांति के दौरान हटाए गए बूबों वंश को सत्ता में बहाल किया गया और फ्रांस ने उन इलाकों को खो दिया जिन पर कब्जा उसने नेपोलियन के अधीन किया गया था।
- ❑ फ्रांस की सीमाओं पर कई राज्य कायम कर दिए गए ताकि भविष्य में फ्रांस विस्तार न कर सके। उदार राष्ट्रवादियों ने प्रेस की स्वतंत्रता पर ध्यान केंद्रित करते हुए रूढ़िवादी व्यवस्था का विरोध किया।

क्रांतिकारी

- ❑ 1815 के बाद के वर्षों में दमन के भय ने अनेक उदारवादी-राष्ट्रवादियों को भूमिगत कर दिया। बहुत सारे यूरोपीय राज्यों में क्रांतिकारियों को प्रशिक्षण देने और विचारों का प्रसार करने के लिए गुप्त संगठन उभर आए।
- ❑ उस समय क्रांतिकारी होने का मतलब उन राजतंत्रीय व्यवस्थाओं का विरोध करने से था जो वियना कांग्रेस के बाद स्थापित की गई थीं। साथ ही स्वतंत्रता और मुक्ति के लिए प्रतिबद्ध होना और संघर्ष करना क्रांतिकारी होने के लिए जरूरी था। ज्यादातर क्रांतिकारी राष्ट्र-राज्यों की स्थापना को आजादी के इस संघर्ष का अनिवार्य हिस्सा मानते थे।
- ❑ ऐसा ही वह व्यक्ति था इटली का क्रांतिकारी ज्युसेपी मेत्सिनी। उनका जन्म 1805 में जेनोआ में हुआ था और वह कार्बोनारी नामक गुप्त संगठन का सदस्य बन गया। चौबीस साल की युवावस्था में लिगुरिया में क्रांति करने के लिए उसे बहिष्कृत कर दिया गया।
- ❑ उसके बाद, जिसेपे माजिनी ने बर्न में यंग यूरोप की शुरुआत की। उन्होंने पोलैंड, फ्रांस, इटली और जर्मनी के युवा लोगों को एक साथ लाया जो एक ही चीजों में विश्वास करते थे। (चित्र 8.5 देखें)

क्रांतियों का युग (1830-1848)

- ❑ प्रथम विद्रोह फ्रांस में जुलाई 1830 में हुआ। बूबों राजा, जिन्हें 1815 के बाद हुई रूढ़िवादी प्रतिक्रिया के दौरान सत्ता में बहाल किया गया था, उन्हें अब उदारवादी क्रांतिकारियों ने उखाड़ फेंका।
- ❑ उनकी जगह एक संवैधानिक राजतंत्र स्थापित किया गया जिसका अध्यक्ष लुई फिलिप था।
- ❑ 'जुलाई क्रांति' से ब्रसेल्स में भी विद्रोह भड़क गया जिसके फलस्वरूप यूनाइटेड किंगडम ऑफ द नीदरलैंड्स से अलग हो गया।
- ❑ 1821 में, यूनानियों ने अपनी स्वतंत्रता के लिए एक दृढ़ संघर्ष किया।

रुमानी कल्पना और राष्ट्रीय भावना

- ❑ राष्ट्रवाद का विकास केवल युद्धों और क्षेत्रीय विस्तार से नहीं हुआ। राष्ट्र के विचार के निर्माण में संस्कृति ने एक अहम भूमिका निभाई। कला, काव्य, कहानियों-किस्सों और संगीत ने राष्ट्रवादी भावनाओं को गढ़ने और व्यक्त करने में सहयोग दिया।
- ❑ रुमानीवाद, एक आकर्षक सांस्कृतिक लहर, जिसने अपने राष्ट्र के लिए प्रेम के एक अनूठे और भावुक रूप को प्रज्वलित किया, जिसने समाज पर एक अमिट छाप छोड़ी।
- ❑ भाषा ने भी राष्ट्रवादी भावनाओं को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- ❑ रूसी कब्जे के बाद, पोलिश भाषा को स्कूलों से बाहर कर दिया गया और रूसी भाषा को हर जगह लागू किया गया।
- ❑ 1831 में, रूसी शासन के खिलाफ एक सशस्त्र विद्रोह हुआ जिसे अंततः कुचल दिया गया।

भूख, कठिनाईयाँ और जनविद्रोह

- ❑ 1830 के दशक में यूरोप को आर्थिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा।
- ❑ 19वीं सदी के पहले भाग में यूरोप की जनसंख्या में काफी वृद्धि हुई।
- ❑ खाद्य पदार्थों की कीमतों में वृद्धि और प्रतिकूल फसल के कारण शहरी केंद्रों और ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक गरीबी फैल गई।
- ❑ 1848 ऐसा ही एक वर्ष था। खाने-पीने की कमी और व्यापक बेरोजगारी से पेरिस के लोग सड़कों पर उतर आए। जगह-जगह अवरोध लगाए गए और लुई फिलिप को भागने पर मजबूर किया गया।
- ❑ राष्ट्रीय सभा (National Assembly) ने एक गणतंत्र की घोषणा करते हुए 21 वर्ष से ऊपर सभी वयस्क पुरुषों को मताधिकार प्रदान किया और काम के अधिकार की गारंटी दी। रोजगार उपलब्ध कराने के लिए राष्ट्रीय कारखाने स्थापित किए गए।



चित्र 8.6: किसानों का विद्रोह, 1848

उदारवादियों की क्रांति: 1848

- 1848 में जब अनेक यूरोपीय देशों में गरीबी, बेरोजगारी और भुखमरी से ग्रस्त किसान-मजदूर विद्रोह कर रहे थे तब उसके समानांतर पढ़े-लिखे मध्यवर्गों की एक क्रांति भी हो रही थी।
- फरवरी 1848 की घटनाओं से राजा को गद्दी छोड़नी पड़ी थी और एक गणतंत्र की घोषणा की गई जो सभी पुरुषों के सार्विक मताधिकार पर आधारित था।
- एक अखिल जर्मन राष्ट्रीय सभा के चुनाव में भाग लेने के लिए फ्रैंकफर्ट में बड़ी संख्या में राजनीतिक संघ एकत्र हुए।
- 18 मई, 1848 को, 831 निर्वाचित प्रतिनिधियों के एक समूह ने फ्रैंकफर्ट संसद के लिए बुलाए जाने वाले सेंट पॉल चर्च तक मार्च किया।
- जर्मन राष्ट्र के लिए तैयार किए गए संविधान का नेतृत्व एक राजशाही द्वारा किया गया था, जो संसद के अधीन था।
- फ्रेडरिक विल्हेम IV ने निर्वाचित विधानसभा के खिलाफ अन्य राजाओं के साथ गठबंधन करते हुए क्राउन को अस्वीकार कर दिया।
- मध्य वर्ग और महिलाओं ने संसद में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- महिलाओं ने अपने स्वयं के राजनीतिक संघों की स्थापना की, समाचार पत्रों की स्थापना की, राजनीतिक घटनाओं में सक्रिय रूप से भाग लिया। हालाँकि अफसोस की बात यह है कि विधानसभा चुनावों के दौरान उन्हें मताधिकार से वंचित कर दिया गया।
- 1848 के बाद, मध्य और पूर्वी यूरोपीय निरंकुश राजतंत्रों ने वास्तव में 1815 से पहले पश्चिमी यूरोप के समान परिवर्तन अपनाए। हैब्सबर्ग प्रभुत्व और रूस दोनों में दासता और बंधुआ मजदूरी को समाप्त कर दिया गया।



चित्र 8.7: सेंट पॉल चर्च में फ्रैंकफर्ट संसद

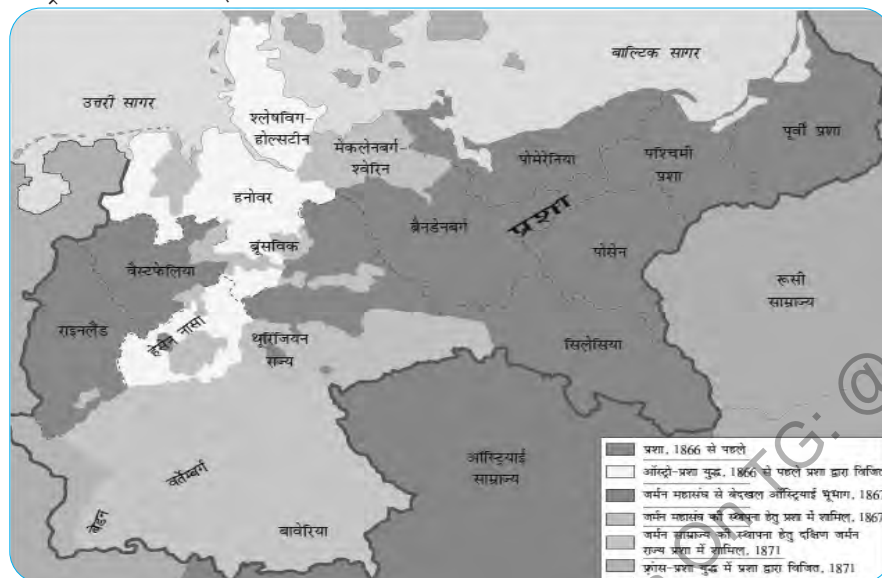


चित्र 8.8: वर्साय के “हॉल ऑफ़ मिरर्स” में जर्मन साम्राज्य की घोषणा, एंटोन वॉन वर्नर की कृति

जर्मनी और इटली का निर्माण

जर्मनी-क्या सेना राष्ट्र की निर्माता हो सकती है?

- 1848 के बाद यूरोप में राष्ट्रवाद का जनतंत्र और क्रांति से अलगाव होने लगा। राज्य की सत्ता को बढ़ाने और पूरे यूरोप पर राजनीतिक प्रभुत्व हासिल करने के लिए रुढ़िवादियों ने अक्सर राष्ट्रवादी भावनाओं का इस्तेमाल किया।



चित्र 8.9: जर्मनी का एकीकरण (1866-71)

- हालाँकि, राष्ट्र-निर्माण की इस उदार पहल को राजशाही और सेना की संयुक्त ताकतों द्वारा दबा दिया गया, जिसका समर्थन प्रशिया के जंकर नामक बड़े भूस्वामियों ने किया।
- प्रशिया ने राष्ट्रीय एकीकरण के आंदोलन का नेतृत्व संभाला।
- मुख्यमंत्री ओटो वॉन बिस्मार्क ने प्रशिया की सेना और नौकरशाही का उपयोग करके इसे अंजाम दिया।
- सात वर्षों में तीन युद्ध - ऑस्ट्रिया, डेनमार्क और फ्रांस के साथ - प्रशिया की जीत में समाप्त हुए और एकीकरण की प्रक्रिया पूरी हुई। (चित्र 8.9 देखें)
- जनवरी 1871 में, एक प्रतिष्ठित सभा के दौरान जर्मन सम्राट के रूप में विलियम I की औपचारिक घोषणा हुई। (चित्र 8.8 देखें)
- राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया ने प्रशिया की राज्य शक्ति के निर्विवाद प्रभुत्व के लिए एक वसीयतनामा के रूप में कार्य किया।
- जर्मनी में मुद्रा, बैंकिंग, कानूनी और न्यायिक प्रणालियों का आधुनिकीकरण किया गया।



चित्र 8.10: एकीकरण से पूर्व इटली के राज्य, 1858



चित्र 8.11: एकीकरण के बाद इटली

इटली

जर्मनी की तरह इटली में भी राजनीतिक विखंडन का एक लंबा इतिहास था। इटली अनेक वंशानुगत राज्यों तथा बहु-राष्ट्रीय हैब्सबर्ग साम्राज्य में बिखरा हुआ। 19वीं शताब्दी के मध्य में, इटली सात राज्यों में विभक्त था। (चित्र 8.10 देखें)

- सार्डिनिया-पीडमोंट पर एक इतालवी राजघराने का शासन था; सभी क्षेत्रों पर अलग-अलग राजाओं का प्रभुत्व था।
- 1830 के दशक में, ग्यूसेप माज़िनी ने औपचारिक रूप से यंग इटली के नाम से एक गुप्त समाज की स्थापना की।
- मंत्री प्रमुख कावूर, जिसने इटली के प्रदेशों को एकीकृत करने वाले आंदोलन का नेतृत्व किया, न तो एक क्रांतिकारी था और न ही जनतंत्र में विश्वास रखने वाला। इतालवी अभिजात वर्ग के तमाम अमीर और शिक्षित सदस्यों की तरह वह इतालवी भाषा से कहीं बेहतर फ्रेंच बोलता था।
- 1859 में, सार्डिनिया-पीडमोंट ने ऑस्ट्रियाई सेनाओं पर जीत हासिल की, और 1860 में, दक्षिण इटली और दो सिसिली के साम्राज्य में उनके सफल विस्तार की स्थानीय किसानों के समर्थन से चिह्नित किया गया।
- संयुक्त इटली के राजा के रूप में विक्टर इमैनुएल द्वितीय की घोषणा 1861 में हुई। (चित्र 8.11 देखें)

ब्रिटेन की अजीब दास्तान

कुछ विद्वानों ने तर्क दिया है कि राष्ट्र या राष्ट्र-राज्य का मॉडल या आदर्श ग्रेट ब्रिटेन है। ब्रिटेन में राष्ट्र-राज्य का निर्माण अचानक हुई कोई उथल-पुथल या क्रांति का परिणाम नहीं था। यह एक लंबी चलने वाली प्रक्रिया का नतीजा था। अठारहवीं सदी के पहले ब्रितानी राष्ट्र था ही नहीं। ब्रितानी द्वीपसमूह में रहने वाले लोगों-अंग्रेज़, वेल्श, स्कॉट या आयरिश की मुख्य पहचान नृजातीय (Ethnic) थी। इन सभी जातीय समूहों की अपनी सांस्कृतिक और राजनीतिक परम्पराएँ थीं।

- जैसे-जैसे यह राष्ट्र धन, महत्त्व और शक्ति में लगातार बढ़ता गया, वैसे-वैसे यह शक्तिशाली होता गया।
- 1707 के यूनियन एक्ट के परिणामस्वरूप यूनाइटेड किंगडम ऑफ ग्रेट ब्रिटेन का गठन हुआ, जिससे इंग्लैंड को स्कॉटलैंड पर काफी प्रभाव मिला।

- 1801 में, आयरलैंड को औपचारिक रूप से और जबरन यूनाइटेड किंगडम में शामिल कर लिया गया।
- नवजात ब्रिटेन के प्रतीक - प्रतिष्ठित ब्रिटिश ध्वज (यूनियन जैक), राष्ट्रगान (गॉड सेव अवर नोबल किंग) और अंग्रेजी भाषा - का सक्रिय रूप से समर्थन किया गया।

राष्ट्र की दृश्य कल्पना

- 18वीं और 19वीं शताब्दी में कलाकारों ने कुशलतापूर्वक देशों को मानवीकृत किया, उन्हें अलग-अलग व्यक्तियों के रूप में चित्रित किया, जबकि राष्ट्रों को महिला रूपक आकृतियों के माध्यम से अनुग्रह और शक्ति के साथ दर्शाया गया।
- नारी रूपकों का आविष्कार कलाकारों ने उन्नीसवीं सदी में किया। फ्रांस में उसे लोकप्रिय ईसाई नाम मारीआन दिया गया जिसने जन-राष्ट्र के विचार को रेखांकित किया। उसके चिह्न भी स्वतंत्रता और गणतंत्र के थे - लाल टोपी, तिरंगा और कलगी। स्वतंत्रता का प्रतीक लाल टोपी या टूटी हुई जंजीर है, जबकि न्याय को आंखों पर पट्टी बांधे तराजू पकड़े एक महिला के रूप में दर्शाया गया।
- मारीआन की प्रतिमाएँ सार्वजनिक चौकों पर लगाई गईं ताकि जनता को एकता के राष्ट्रीय प्रतीक की याद आती रहे और लोग उससे तादात्म्य स्थापित कर सकें। मारीआन की छवि सिक्कों और डाक टिकटों पर अंकित की गई।
- फ्रांसीसी क्रांति के दौरान, स्वतंत्रता, न्याय और गणतंत्र जैसी अवधारणाओं का प्रतिनिधित्व करने के लिए महिला आकृतियों का उपयोग किया गया था।

राष्ट्रवाद और साम्राज्यवाद

- उन्नीसवीं सदी की अंतिम चौथाई तक राष्ट्रवाद का वह आदर्शवादी उदारवादी-जनतांत्रिक स्वभाव नहीं रहा जो सदी के प्रथम भाग में था। अब राष्ट्रवाद सीमित लक्ष्यों वाला संकीर्ण सिद्धांत बन गया। इस बीच के दौर में राष्ट्रवादी समूह एक-दूसरे के प्रति अनुदार होते चले गए और लड़ने के लिए हमेशा तैयार रहते थे। साथ ही प्रमुख यूरोपीय शक्तियों ने भी अपने साम्राज्यवादी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अधीन लोगों की राष्ट्रवादी आकांक्षाओं का इस्तेमाल किया।
- 1871 के बाद, रोमानिया, बुल्गारिया, अल्बानिया, ग्रीस, मैसेडोनिया, क्रोएशिया, बोस्निया-हर्जेगोविना, स्लोवेनिया, सर्बिया और मोंटेनेग्रो सहित भौगोलिक और जातीय विविधता वाला क्षेत्र बाल्कन यूरोप में राष्ट्रवादी तनाव का एक प्रमुख स्रोत बन गया।
- इस क्षेत्र के निवासियों को मोटे तौर पर स्लाव के रूप में जाना जाता था।
- ओटोमन-नियंत्रित बाल्कन में रोमांटिक राष्ट्रवाद के उदय ने आधुनिकीकरण के प्रयासों के बावजूद साम्राज्य के विघटन के कारण विस्फोटक तनाव पैदा किया।
- विभिन्न संघर्षों के कारण, बाल्कन तीव्र संघर्ष का क्षेत्र बन गया।
- इस समय के दौरान, व्यापार, उपनिवेशों और सैन्य वर्चस्व के लिए यूरोपीय शक्तियों की भयंकर प्रतिस्पर्धा ने क्षेत्रीय संघर्षों और अंततः प्रथम विश्व युद्ध (1914-1918) को जन्म दिया।
- 1914 में, यूरोप को साम्राज्यवाद के साथ राष्ट्रवाद के कारण आपदा का सामना करना पड़ा। साम्राज्यवाद-विरोधी प्रयासों के बावजूद, स्वतंत्र राष्ट्र-राज्यों का गठन चुनौतीपूर्ण साबित हुआ। 'राष्ट्र-राज्यों' की अवधारणा सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत रही।



चित्र 8.12: ब्रिटिश साम्राज्य का यशगान करता एक मानचित्र

भारत में राष्ट्रवाद

भारत और कई अन्य औपनिवेशिक देशों में आधुनिक राष्ट्रवाद का विकास उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन से जटिल रूप से जुड़ा हुआ था। औपनिवेशिक उत्पीड़न के खिलाफ साझा संघर्ष ने विभिन्न समूहों के बीच एकता की भावना पैदा की। कांग्रेस के भीतर उन्हें एकजुट करने के गांधी के प्रयासों के बावजूद, उनके अलग-अलग अनुभवों और स्वतंत्रता की व्याख्याओं के कारण संघर्ष उभरे।

विचारणीय बिंदु

क्या आप राष्ट्रवाद और साम्राज्यवाद के बीच के संबंधों पर चर्चा कर सकते हैं, खास तौर पर बाल्कन के संदर्भ में, आपके अनुसार यूरोप में संघर्ष और तनाव कैसे पैदा हुए? क्या आपको लगता है कि औपनिवेशिक साम्राज्यवाद यूरोप में राष्ट्रवाद के उदय का ही एक परिणाम है?



पहला विश्व युद्ध, खिलाफत और असहयोग

औपनिवेशिक शासन की पृष्ठभूमि में आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद पनपा। बुद्धिजीवियों, किसानों और श्रमिकों सहित विभिन्न समुदायों ने औपनिवेशिक उत्पीड़न के अपने साझा अनुभवों में समान आधार पाया। महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने इन बंधनों को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसने भारत के इतिहास में एक महत्वपूर्ण अध्याय लिखा।

- 1919 के युद्ध के बाद एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ, आर्थिक और राजनीतिक दोनों क्षेत्रों का पुनर्गठन हुआ, राष्ट्रों की दिशा तय हुई।
- 1913 से 1918 की अवधि में, आयकर की शुरुआत और सीमा शुल्क में दोगुनी वृद्धि ने आम लोगों के वित्तीय संसाधनों पर काफी दबाव डाला।
- 1918-19 में स्थिति और खराब हो गई जब फसलें खराब हो गईं, जिससे भोजन की कमी हो गई, और इन्फ्लूएंजा महामारी ने आबादी की दुर्दशा को और बढ़ा दिया।
- इस महत्वपूर्ण मोड़ पर, एक करिश्माई नेता के रूप में महात्मा गांधी प्रकट हुए। उन्होंने परिवर्तन के लिए चल रहे संघर्ष के लिए एक अभूतपूर्व रणनीति पेश की।

सत्याग्रह का विचार

- 1915 में, महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका में अपने जीवन के महत्वपूर्ण वर्ष बिताने के बाद भारत लौटे, जिसने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक महत्वपूर्ण मोड़ को चिह्नित किया।
- जन आंदोलन के लिए गांधीजी के अभिनव दृष्टिकोण, जिसे 'सत्याग्रह' के रूप में जाना जाता है, ने सत्य के महत्त्व को रेखांकित किया।
- महात्मा गांधी का गहरा विश्वास था कि अहिंसा न केवल सभी भारतीयों को एकजुट कर सकती है, बल्कि उन्हें किसी भी लड़ाई में जीत हासिल करने के लिए सशक्त भी बना सकती है, जिससे स्थायी शांति और सद्भाव को बढ़ावा मिलता है।
- 1917 में, उन्होंने बिहार के चंपारण की एक महत्वपूर्ण यात्रा की, जहाँ उन्होंने किसानों को शोषणकारी बागान प्रणाली के खिलाफ अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाने के लिए प्रेरित और संगठित किया, जिसने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में एक महत्वपूर्ण क्षण को चिह्नित किया।
- उसी वर्ष, उन्होंने गुजरात के खेड़ा जिले में किसानों के समर्थन में एक शक्तिशाली सत्याग्रह अभियान चलाया। इसके बाद, 1918 में, महात्मा गांधी अहमदाबाद चले गए, जहाँ उन्होंने शहर के कपास मिल श्रमिकों के बीच एक उत्साही सत्याग्रह आंदोलन का आयोजन किया, उनके अधिकारों की वकालत की।

रौलट एक्ट

- बिहार के चंपारण किसानों पर मिली कामयाबी से उत्साहित गांधीजी ने 1919 में प्रस्तावित रौलट एक्ट (1919) के खिलाफ एक राष्ट्रव्यापी सत्याग्रह आंदोलन चलाने का फैसला लिया।



चित्र 8.13: राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान सड़कों पर सामूहिक जुलूस एक सामान्य घटना (6 अप्रैल, 1919)



चित्र 8.14: दक्षिण अफ्रीका में भारतीय कामगार वोकसास्ट में मार्च करते हुए (6 नवंबर, 1913)

- भारतीय सदस्यों के भारी विरोध के बावजूद इस कानून को इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल ने बहुत जल्दबाजी में पारित कर दिया था।
- इस अधिनियम ने सरकार को व्यापक शक्तियाँ प्रदान कीं, जिससे उन्हें राजनीतिक गतिविधियों को दबाने और राजनीतिक कैदियों को बिना किसी मुकदमे के दो साल तक हिरासत में रखने की अनुमति मिली। बढ़ते राष्ट्रवादी जोश से डरकर, ब्रिटिश सरकार ने आंदोलन को दबाने का फैसला किया। 10 अप्रैल को अमृतसर में पुलिस ने एक शांतिपूर्ण जुलूस पर गोलियाँ चलाईं, जिससे बैंकों, डाकघरों और रेलवे स्टेशनों जैसी संस्थाओं पर व्यापक हमले हुए। मार्शल लॉ लागू किया गया और जनरल डायर ने कमान संभाली।



चित्र 8.15: जनरल डायर के 'क्रॉलिंग ऑर्डर' का ब्रिटिश सैनिकों द्वारा पालन किया जाना (अमृतसर, पंजाब, 1919)

- अमृतसर में जलियाँवाला बाग में घटित विनाशकारी घटना ने जो 13 अप्रैल, 1919 को हुई, जहाँ कुछ लोग सरकार के नए दमनकारी उपायों का विरोध करने आए थे, जबकि कुछ लोग वार्षिक बैसाखी मेले में भाग लेने आए थे। जनरल डायर ने सभी निकासों को अवरुद्ध करके भीड़ पर गोलीबारी की, जिससे कई लोग हताहत हुए। इसके बाद व्यापक रोष देखा गया, जिसके कारण हड़तालें हुईं, पुलिस के साथ झड़पें हुईं और सरकारी इमारतों पर हमले हुए। नतीजतन, महात्मा गांधी ने आगे की हिंसा को रोकने के लिए आंदोलन को रोकने का कठिन निर्णय लिया। (चित्र 8.15 देखें)
- गांधीजी ने खिलाफत के मुद्दे के महत्त्व को समझते हुए प्रथम विश्व युद्ध के बाद ओटोमन तुर्की की हार के बाद हिंदुओं और मुसलमानों को एक साथ लाया। 1919 में बॉम्बे में खिलाफत समिति के गठन ने गांधी और साथी नेताओं को 1920 में असहयोग आंदोलन शुरू करने के लिए प्रेरित किया, जिसमें खिलाफत और स्वराज दोनों की वकालत की गई।

असहयोग ही क्यों?

- अपनी प्रसिद्ध पुस्तक हिंद स्वराज (1909) में महात्मा गांधी ने कहा था कि भारत में ब्रिटिश शासन भारतीयों के सहयोग से ही स्थापित हुआ था और यह शासन इसी सहयोग के कारण चल पा रहा है। अगर भारत के लोग अपना सहयोग वापस ले लें तो साल भर के भीतर ब्रिटिश शासन ढह जाएगा और स्वराज की स्थापना हो जाएगी।
- असहयोग आंदोलन को विभिन्न चरणों में सावधानीपूर्वक योजनाबद्ध किया गया। यह सरकारी उपाधियों को आत्मसमर्पण करने के प्रतीकात्मक कार्य के साथ शुरू होता है, जो औपनिवेशिक सम्मानों की अस्वीकृति को दर्शाता है। इसके बाद, व्यापक बहिष्कार होता है, जिसमें सिविल सेवाएं, सैन्य संस्थान, कानून प्रवर्तन एजेंसियाँ, न्यायिक निकाय, विधान परिषद, शैक्षणिक संस्थान और आयातित सामान शामिल होते हैं, जो ब्रिटिश शासन के खिलाफ एकजुट रुख का प्रतिनिधित्व करते हैं। (चित्र 8.16 देखें)
- अनेक चुनौतियों और व्यापक प्रचार प्रयासों के बीच, असहयोग आंदोलन के समर्थकों और विरोधियों के बीच शब्दों और विचारधाराओं में टकराव पैदा हुआ। अंत में, दिसंबर 1920 में, सावधानीपूर्वक विचार-विमर्श के बाद, आंदोलन को आधिकारिक रूप से अपना लिया गया, जिसने स्वतंत्रता के संघर्ष में एक महत्वपूर्ण मोड़ को चिह्नित किया।



चित्र 8.16: विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार (जुलाई 1922)

आंदोलन के भीतर अलग-अलग विचारधाराएँ

असहयोग-खिलाफत आंदोलन जनवरी 1921 में शुरू हुआ। इस आंदोलन में विभिन्न सामाजिक समूहों ने हिस्सा लिया लेकिन हरेक की अपनी-अपनी आकांक्षाएँ थीं। सभी ने स्वराज के आह्वान को स्वीकार तो किया लेकिन उनके लिए उसके अर्थ अलग-अलग थे। हालाँकि इसका एक ही सूत्र था स्वराज का आह्वान, लेकिन हर समूह ने इस लक्ष्य की व्याख्या और अनुसरण अपने-अपने तरीके से किया, जिससे आंदोलन की विचारधाराओं और कार्यों की समृद्ध रूपरेखा तैयार हुई।

शहरों में आंदोलन

- इस आंदोलन की शुरुआत शहरी मध्यम वर्ग की हिस्सेदारी के साथ हुई। हजारों विद्यार्थियों ने स्कूल-कॉलेज छोड़ दिए। हेडमास्टर्स और शिक्षकों ने इस्तीफे सौंप दिए। वकीलों ने मुकदमे लड़ना बंद कर दिया। मद्रास के अलावा ज्यादातर प्रांतों में परिषद् चुनावों का बहिष्कार किया गया। मद्रास में गैर-ब्राह्मणों द्वारा बनाई गई जस्टिस पार्टी का मानना था कि काउंसिल में प्रवेश के ज़रिए उन्हें वे अधिकार मिल सकते हैं जो सामान्य रूप से केवल ब्राह्मणों द्वारा एकाधिकार किया जाता है।

- आर्थिक मोर्चे पर असहयोग का असर और भी ज्यादा नाटकीय रहा। विदेशी सामानों का बहिष्कार किया गया, शराब की दुकानों की पिकेटिंग की गई, और विदेशी कपड़ों की होली जलाई जाने लगी। 1921 से 1922 के बीच विदेशी कपड़ों का आयात आधा रह गया था। उसकी कीमत 102 करोड़ से घटकर 57 करोड़ रह गई। बहुत सारे स्थानों पर व्यापारियों ने विदेशी चीजों का व्यापार करने या विदेशी व्यापार में पैसा लगाने से इनकार कर दिया।
- जब बहिष्कार आंदोलन फैला और लोग आयातित कपड़े को छोड़कर केवल भारतीय कपड़े पहनने लगे तो भारतीय कपड़ा मिलों और हथकरघों का उत्पादन भी बढ़ने लगा। कुछ समय बाद शहरों में यह आंदोलन धीमा पड़ने लगा। इसके कई कारण थे। खादी का कपड़ा मिलों में भारी पैमाने पर बनने वाले कपड़ों के मुकाबले प्रायः महंगा होता था और गरीब उसे नहीं खरीद सकते थे।
- वे मिलों के कपड़े का लंबे समय तक बहिष्कार कैसे कर सकते थे? ब्रिटिश संस्थानों के बहिष्कार से भी समस्या पैदा हो गई। आंदोलन की कामयाबी के लिए वैकल्पिक भारतीय संस्थानों की स्थापना जरूरी थी ताकि ब्रिटिश संस्थानों के स्थान पर उनका प्रयोग किया जा सके। लेकिन वैकल्पिक संस्थानों की स्थापना की प्रक्रिया बहुत धीमी थी। फलस्वरूप, विद्यार्थी और शिक्षक सरकारी स्कूलों में लौटने लगे और वकील दोबारा सरकारी अदालतों में दिखाई देने लगे।

क्या आप जानते हैं?

1928 में, वल्लभभाई पटेल ने गुजरात के एक तालुका बारडोली में भूमि राजस्व में वृद्धि के खिलाफ किसान आंदोलन का नेतृत्व किया, जिसे बारडोली सत्याग्रह के रूप में जाना जाता है, यह आंदोलन वल्लभभाई पटेल के कुशल नेतृत्व में सफल रहा। इस संघर्ष को व्यापक रूप से प्रचारित किया गया और भारत के कई हिस्सों में अपार सहानुभूति पैदा हुई।

ग्रामीण इलाकों में विद्रोह

- शहरों से बढ़कर असहयोग आंदोलन देहात में भी फैल गया था। युद्ध के बाद देश के विभिन्न भागों में चले किसानों व आदिवासियों के संघर्ष भी इस आंदोलन में समा गए।
- आदिवासी किसानों ने महात्मा गांधी के संदेश और स्वराज के विचार का कुछ 19 और ही मतलब निकाला। उदाहरण के लिए, आंध्र प्रदेश की गूडेम पहाड़ियों कि में 1920 के दशक की शुरुआत में एक उग्र गुरिल्ला आंदोलन फैल गया। कांग्रेस इस तरह के संघर्ष को कभी स्वीकार नहीं कर सकती थी।
- किसानों की माँग थी कि लगान कम किया जाए, बेगार खत्म हो और दमनकारी जमींदारों का सामाजिक बहिष्कार किया जाए। बहुत सारे स्थानों पर जमींदारों को नाई-धोबी की सुविधाओं से भी वंचित करने के लिए पंचायतों ने नाई-धोबी बंद का फैसला लिया। जून 1920 में जवाहर लाल नेहरू ने अवध के गाँवों का दौरा किया, गाँववालों से बातचीत की और उनकी व्यथा समझने का प्रयास किया। अक्तूबर तक जवाहर लाल नेहरू, बाबा रामचंद्र तथा कुछ अन्य लोगों के नेतृत्व में अवध किसान सभा का गठन कर लिया गया।
- महीने भर में इस पूरे इलाके के गाँवों में संगठन की 300 से ज्यादा शाखाएँ बन चुकी थीं। अगले साल जब असहयोग आंदोलन शुरू हुआ तो कांग्रेस ने अवध के किसान संघर्ष को इस आंदोलन में शामिल करने का प्रयास किया लेकिन किसानों के आंदोलन में ऐसे स्वरूप विकसित हो चुके थे जिनसे कांग्रेस का नेतृत्व खुश नहीं था।
- 1921 में जब आंदोलन फैला तो तालुकदारों और व्यापारियों के मकानों पर हमले होने लगे, बाजारों में लूटपाट होने लगी और अनाज के गोदामों पर कब्जा कर लिया गया। बहुत सारे स्थानों पर स्थानीय नेता किसानों को समझा रहे थे कि गांधीजी ने ऐलान कर दिया है कि अब कोई लगान नहीं भरेगा और जमीन गरीबों में बाँट दी जाएगी। महात्मा का नाम लेकर लोग अपनी सारी कार्रवाइयों और आकांक्षाओं को सही ठहरा रहे थे।
- उन्होंने खुद को बुलेटप्रूफ, एक दिव्य अवतार भी घोषित किया। राजू ने महात्मा गांधी की महानता की प्रशंसा की, लेकिन उनका मानना था कि भारत की मुक्ति अहिंसा से नहीं, बल्कि बल के माध्यम से प्राप्त की जानी चाहिए। गुडेम विद्रोहियों ने पुलिस स्टेशनों पर हमले किए, ब्रिटिश अधिकारियों की हत्या करने का प्रयास किया और स्वराज के लिए गुरिल्ला युद्ध में शामिल हुए। 1924 में राजू के पकड़े जाने और फांसी दिए जाने से उन्हें लोक नायक का दर्जा मिला।



चित्र 8.17: चौरी चौरा, 1992

क्या आप जानते हैं?

साइमन कमीशन के खिलाफ एक शांतिपूर्ण प्रदर्शन के दौरान, लाहौर लाजपत राय पर ब्रिटिश पुलिस अधिकारियों ने हमला किया था। दुखद बात यह है कि विरोध प्रदर्शन के दौरान लगी चोटों के कारण उनकी मृत्यु हो गई।

बागानों में स्वराज

- असम के संदर्भ में, बागान श्रमिकों के लिए स्वतंत्रता का अर्थ था बिना किसी प्रतिबंध के घूमने-फिरने की स्वतंत्रता और अपने गृह गांवों के साथ अपने महत्वपूर्ण संपर्क को बनाए रखना।
- 1859 के अंतर्देशीय उत्प्रवास अधिनियम के तहत, बागान श्रमिकों को बिना अनुमति के चाय बागानों को छोड़ने की अनुमति नहीं थी, और वास्तव में, उन्हें शायद ही कभी ऐसी अनुमति दी जाती थी।
- जब उन्होंने असहयोग आंदोलन के बारे में सुना तो हजारों मजदूर अपने अधिकारियों की अवहेलना करने लगे। उन्होंने बागान छोड़ दिए और अपने घर को चल दिए। उनको लगता था कि अब गांधी राज आ रहा है इसलिए अब तो हरेक को गाँव में जमीन मिल जाएगी। लेकिन वे अपनी मंजिल पर नहीं पहुँच पाए। रेलवे और स्टीमरों की हड़ताल के कारण वे रास्ते में ही फँसे रह गए। उन्हें पुलिस ने पकड़ लिया और उनकी बुरी तरह पिटाई हुई।
- स्वराज के बारे में आदिवासी आंदोलनों की व्याख्या कांग्रेस के कार्यक्रम से अलग थी। उन्होंने इसे पीड़ा रहित युग के रूप में देखा। गांधीजी का नाम जपते हुए और 'स्वतंत्र भारत' की माँग करते हुए, वे स्थानीय सीमाओं से परे, भावनात्मक रूप से एक राष्ट्रव्यापी आंदोलन में शामिल हो गए।



चित्र 8.18: इलाहाबाद में कांग्रेस नेताओं की बैठक, 1931

सविनय अवज्ञा की ओर

फरवरी 1922 में, गांधीजी ने बढ़ती हिंसा से चिंतित होकर असहयोग आंदोलन को वापिस लेने का फैसला लिया। कांग्रेस के भीतर एक विभाजन उभर कर आया, स्वराज पार्टी ने दास और मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में परिषद की भागीदारी की वकालत की; जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस जैसे युवा नेताओं ने कट्टरपंथी जन आंदोलन और पूर्ण स्वतंत्रता के लिए जोर दिया।

- आंतरिक कलह के बीच, 1920 के दशक के उत्तरार्ध में भारतीय राजनीति दो महत्वपूर्ण कारकों द्वारा आकार ले रही थी। सबसे पहले वैश्विक आर्थिक मंदी ने कड़ी चोट की। 1926 से कृषि की कीमतें गिरती चली गईं, जो 1930 के बाद गिर गईं। कम माँग और घटते निर्यात ने किसानों को अपनी फसल बेचने और राजस्व का भुगतान करने के लिए संघर्ष करना पड़ा, जिससे ग्रामीण इलाकों में व्यापक अशांति फैल गई।
- राष्ट्रवादी आंदोलन के जवाब में, ब्रिटेन में नई टोरी सरकार ने भारत की संवैधानिक प्रणाली का गहन अध्ययन करने और सुधारों का प्रस्ताव करने के लिए सर जॉन साइमन के नेतृत्व में एक वैधानिक आयोग की स्थापना की। विवादास्पद मुद्दा यह है कि आयोग में केवल ब्रिटिश सदस्य ही शामिल थे, जिससे भारतीय दृष्टिकोणों का सटीक प्रतिनिधित्व करने की इसकी क्षमता पर चिंताएँ पैदा हुईं।
- 1928 में जब साइमन कमीशन भारत पहुँचा तो उसका स्वागत 'साइमन कमीशन वापस जाओ' (साइमन कमीशन गो बैक) के नारों से किया गया। कांग्रेस और मुस्लिम लीग, सभी पार्टियों ने प्रदर्शनों में हिस्सा लिया। इस विरोध को शांत करने के लिए वायसराय लॉर्ड इरविन ने अक्तूबर 1929 में भारत के लिए 'डोमीनियन स्टेटस' का गोलमोल सा एलान कर दिया। उन्होंने इस बारे में कोई समय सीमा भी नहीं बताई। उन्होंने सिर्फ इतना कहा कि भावी संविधान के बारे में चर्चा करने के लिए गोलमेज सम्मेलन आयोजित किया जाएगा। इस प्रस्ताव से कांग्रेस के नेता संतुष्ट नहीं थे। जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचंद्र बोस के नेतृत्व में कांग्रेस का तेज-तर्रार खेमा आक्रामक तेवर अपनाने लगा था।
- दिसंबर 1929 में जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में 'पूर्ण स्वराज' की माँग को औपचारिक रूप से मान लिया गया। तय किया गया कि 26 जनवरी 1930 को स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाया जाएगा और उस दिन लोग पूर्ण स्वराज के लिए संघर्ष की शपथ लेंगे। इस उत्सव की ओर बहुत कम ही लोगों ने ध्यान दिया। अब स्वतंत्रता के इस अमूर्त विचार को रोजमर्रा जिन्दगी के ठोस मुद्दों से जोड़ने के लिए महात्मा गांधी को कोई और रास्ता ढूँढ़ना था।



चित्र 8.19: दांडी मार्च

नमक यात्रा और सविनय अवज्ञा आंदोलन

- देश को एकजुट करने के लिए महात्मा गांधी को नमक एक शक्तिशाली प्रतीक दिखाई दिया। 31 जनवरी 1930 को उन्होंने वायसराय इरविन को एक खत लिखा। इस खत में उन्होंने 11 माँगों का उल्लेख किया था। इनमें से कुछ सामान्य माँगें थीं जबकि कुछ माँगें उद्योगपतियों से लेकर किसानों तक विभिन्न तबकों से जुड़ी थीं।



चित्र 8.20: पुलिस ने सत्याग्रहियों पर कार्रवाई की, 1930

- गांधीजी इन माँगों के ज़रिए समाज के सभी वर्गों को अपने साथ जोड़ना चाहते थे ताकि सभी उनके अभियान में शामिल हो सकें। इनमें सबसे महत्वपूर्ण माँग नमक को खत्म करने के बारे में थी। नमक का अमीर-गरीब, सभी इस्तेमाल करते थे। यह भोजन का एक अभिन्न हिस्सा था। इसीलिए नमक पर कर और उसके उत्पादन पर सरकारी इज्जारेदारी को महात्मा गांधी ने ब्रिटिश शासन का सबसे दमनकारी पहलू बताया था।
- महात्मा गांधी का यह पत्र एक अल्टीमेटम (चेतावनी) की तरह था। उन्होंने लिखा था कि अगर 11 मार्च तक उनकी माँगें नहीं मानी गईं तो कांग्रेस सविनय अवज्ञा आंदोलन छेड़ देगी। इरविन झुकने को तैयार नहीं थे। फलस्वरूप, महात्मा गांधी ने अपने 78 विश्वस्त वॉलंटियर्स के साथ नमक यात्रा शुरू कर दी। यह यात्रा साबरमती में गांधीजी के आश्रम से 240 किलोमीटर दूर दांडी नामक गुजराती तटीय क़स्बे में जाकर खत्म होनी थी। गांधीजी की टोली ने 24 दिन तक हर रोज लगभग 10 मील का सफ़र तय किया (चित्र 8.19 देखें) सविनय अवज्ञा आंदोलन, असहयोग से अलग, कानून तोड़ने को प्रोत्साहित करता था। लोगों ने न केवल अंग्रेजों का बहिष्कार किया, बल्कि औपनिवेशिक कानूनों का भी उल्लंघन किया।
- राष्ट्रवाप्यी, उन्होंने नमक कानूनों का उल्लंघन किया, विदेशी कपड़ों का बहिष्कार किया, शराब की दुकानों पर धरना दिया और अन्यायपूर्ण करों का विरोध किया। किसानों ने राजस्व भुगतान का विरोध किया, अधिकारियों ने इस्तीफा दे दिया और वन समुदायों ने वन कानूनों को चुनौती दी। कांग्रेस नेताओं की गिरफ्तारी से अशांति फैल गई। अब्दुल गफ़्फ़ार खान की गिरफ्तारी ने पेशावर में हिंसा को बढ़ावा दिया, जबकि गांधी की गिरफ्तारी के कारण शोलापुर में हमले हुए। जवाब में, सरकार ने महिलाओं और बच्चों सहित शांतिपूर्ण प्रदर्शनकारियों पर हमला करते हुए आंदोलन को बेरहमी से दबा दिया और लगभग 100,000 लोगों को गिरफ्तार कर लिया।
- 1931 में, गांधी-इरविन समझौते के माध्यम से आंदोलन को रोकने के गांधी के फैसले ने एक महत्वपूर्ण मोड़ दिया। लंदन में गोलमेज सम्मेलन में उनकी भागीदारी आशा की किरण थी, लेकिन वार्ता विफल रही। इस झटके ने भारत में नए सिरे से दमन को जन्म दिया। गांधी द्वारा सविनय अवज्ञा आंदोलन को फिर से शुरू करने से उनकी अटूट प्रतिबद्धता की झलक मिलती है, हालाँकि 1934 तक यह धीरे-धीरे कम हो गई।



चित्र 8.21: महिलाएँ राष्ट्रवादी जुलूस में शामिल



चित्र 8.22: महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और मौलाना आज़ाद (सेवाग्राम आश्रम, वर्धा, 1935)

लोगों ने आंदोलन को कैसे लिया

- गाँवों में संपन्न किसान समुदाय-जैसे गुजरात के पटीदार और उत्तर प्रदेश के जाट-आंदोलन में सक्रिय थे। व्यावसायिक फसलों की खेती करने के कारण व्यापार में मंदी और गिरती कीमतों से वे बहुत परेशान थे। जब उनकी नक़द आय खत्म होने लगी तो उनके लिए सरकारी लगान चुकाना नामुमकिन हो गया। सरकार लगान कम करने को तैयार नहीं थी। राजस्व माँगों पर सरकार की दृढ़ता ने व्यापक आक्रोश को जन्म दिया। 1931 में राजस्व संशोधन के बिना बंद होने के बाद निराशा हुई, जिसके कारण 1932 में आंदोलन फिर से शुरू होने पर कई लोग इससे दूर हो गए।
- मंदी से प्रभावित, छोटे किरायेदारों को किराया देने में चुनौतियों का सामना करना पड़ा और वे पैसे भेजने की माँग कर रहे थे। समाजवादियों और कम्युनिस्टों के नेतृत्व वाले कट्टरपंथी आंदोलनों में शामिल होने से, समर्थन की उनकी माँग कांग्रेस की 'कोई किराया नहीं' अभियानों का समर्थन करने में हिचकिचाहट से टकरा गई, जिसके परिणामस्वरूप गरीब किसानों और पार्टी के बीच अनिश्चित संबंध बन गए।
- प्रथम विश्व युद्ध (1914-18) में, भारतीय व्यापारियों और उद्योगपतियों ने लाभ कमाया और औपनिवेशिक प्रतिबंधों के खिलाफ विद्रोह किया। भारतीय औद्योगिक और वाणिज्यिक कांग्रेस और फिक्की (FICCI) जैसी संस्थाओं का गठन करके, उन्होंने शुरू में सविनय अवज्ञा का समर्थन किया।
- हालाँकि, गोलमेज सम्मेलन (round table conference) के बाद, उग्रवादी गतिविधियों, व्यापार में व्यवधान और कांग्रेस में बढ़ते समाजवादी प्रभाव के बारे में चिंताएँ पैदा हुईं, जिससे उनका उत्साह कम हो गया। सविनय अवज्ञा आंदोलन में, नागपुर के अलावा औद्योगिक श्रमिकों ने कांग्रेस से दूरी बनाए रखी। हालाँकि, कुछ ने कम वेतन और खराब परिस्थितियों के खिलाफ विरोध में गांधीवादी सिद्धांतों को शामिल किया।
- जगह-जगह पर श्रमिकों की हड़तालों के बावजूद, कांग्रेस ने साम्राज्य-विरोधी ताकतों के बीच विभाजन के डर से श्रमिकों की माँगों को शामिल करने से परहेज किया। सविनय अवज्ञा आंदोलन में, महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जुलूसों और धरना-प्रदर्शनों में सक्रिय रूप से भाग लिया।



चित्र 8.23: बाल गंगाधर तिलक, बीसवीं सदी की शुरुआत का एक प्रिंट

- उनकी व्यापक भागीदारी के बावजूद, पारंपरिक लैंगिक भूमिकाओं को बरकरार रखा गया, जिसमें गांधीजी ने महिलाओं के घरेलू कर्तव्यों पर जोर दिया। कांग्रेस ने भी संगठन के भीतर उनकी प्रतीकात्मक उपस्थिति को महत्व देते हुए महिलाओं के अधिकार को सीमित कर दिया। (चित्र 8.21 देखें)

सविनय अवज्ञा की सीमाएं

- सभी सामाजिक समूह स्वराज की अमूर्त अवधारणा से प्रभावित नहीं थे। ऐसा ही एक समूह राष्ट्र के 'अछूतों' का था। वे 1930 के बाद खुद को दलित या उत्पीड़ित कहने लगे थे। कांग्रेस ने लंबे समय तक दलितों पर ध्यान नहीं दिया क्योंकि कांग्रेस रूढ़िवादी सर्वार्थ हिंदू सनातनपंथियों से डरी हुई थी। लेकिन महात्मा गांधी ने ऐलान किया कि अस्पृश्यता (छुआछूत) को खत्म किए बिना सौ साल तक भी स्वराज की स्थापना नहीं की जा सकती। गांधी के अस्पृश्यता विरोधी प्रयासों के बावजूद, दलित नेताओं ने राजनीतिक समाधान की तलाश की, आरक्षित सीटों और अलग निर्वाचन क्षेत्रों की वकालत की। सविनय अवज्ञा में उनकी सीमित भागीदारी, विशेष रूप से महाराष्ट्र और नागपुर जैसे क्षेत्रों में, राजनीतिक सशक्तीकरण पर उनके जोर को रेखांकित करती है।
- 1930 में, अंबेडकर के दलित वर्ग संघ ने गोलमेज सम्मेलन में गांधी के साथ अलग दलित निर्वाचन क्षेत्रों की मांग को लेकर टकराव किया। इसके खिलाफ गांधी के उपवास ने समझौता किया। पूना पैक्ट 1932 ने विधान परिषदों में अनुसूचित जातियों के लिए सीटें आरक्षित कीं, जिससे दलित आंदोलन में तनाव कम हुआ।
- असहयोग-खिलाफत आंदोलन के पतन के बाद, कई मुसलमान नेता कांग्रेस से अलग हो गए। हिंदू राष्ट्रवादी समूहों के साथ कांग्रेस के गठबंधन ने धार्मिक तनाव को बढ़ा दिया, जिससे झड़पें और दंगे हुए, जिससे हिंदुओं और मुसलमानों के बीच तनाव और अधिक बढ़ गया।
- 1927 में, कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने गठबंधन के उद्देश्य से बातचीत की। विधानसभा में प्रतिनिधित्व को लेकर मतभेद पैदा हुए। जिन्ना ने केंद्रीय विधानसभा में आरक्षित सीटों और मुस्लिम बहुल प्रांतों में आनुपातिक प्रतिनिधित्व का प्रस्ताव रखा। दुर्भाग्य से, हिंदू महासभा के कड़े विरोध के कारण इन प्रयासों में बाधा उत्पन्न हुई।
- सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान, संदेह ने सामुदायिक संबंधों को अनेक प्रकार से प्रभावित किया। कांग्रेस से अलग होने के कारण, कई मुसलमानों ने भारत में अपनी अल्पसंख्यक स्थिति के डर से संघर्ष से परहेज किया। हिंदू बहुसंख्यक शासन के तहत सांस्कृतिक संरक्षण के बारे में चिंताएं पैदा हुईं।

सामूहिक अपनेपन का भाव

राष्ट्रवाद की भावना तब पनपती है जब लोग ये महसूस करने लगते हैं कि वे एक ही राष्ट्र के अंग हैं; जब वे एक-दूसरे को एकता के सूत्र में बाँधने वाली कोई साझा बात ढूँढ़ लेते हैं। सामूहिक संबद्धता की भावना केवल साझा संघर्षों से ही नहीं उभरी; यह विभिन्न सांस्कृतिक पहलुओं से भी गहराई से प्रभावित थी। ऐतिहासिक आख्यान, काल्पनिक विवरण, लोकगीत, संगीत और प्रतीकों ने राष्ट्र की पहचान को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

- स्वदेशी आंदोलन के दौरान कल्पना की गई भारत माता की अवधारणा भारत की भावना का एक बहुआयामी प्रतिनिधित्व बन गई। बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय द्वारा शुरू में कल्पना की गई, यह राष्ट्र के लोकाचार को प्रतिबिंबित करने वाली एक शांत, दिव्य आकृति में बदल गई। इस अवधारणा ने गति पकड़ी क्योंकि विभिन्न कलाकारों ने इसे अपने अनूठे तरीकों से व्याख्यायित किया, जिससे राष्ट्रीय पहचान की एक समृद्ध तस्वीर सामने आई। (चित्र 8.24 देखें)

- 19वीं सदी के अंत में राष्ट्रवादियों के बीच राष्ट्रवाद का विचार भारतीय लोक कथाओं को पुनर्जीवित करने के आंदोलन से भी मजबूत हुआ। उन्नीसवीं सदी के आखिर में राष्ट्रवादियों ने भाटों व चारणों द्वारा गाई-सुनाई जाने वाली लोक कथाओं को दर्ज करना शुरू कर दिया। वे लोक गीतों व जनश्रुतियों को इकट्ठा करने के लिए गाँव-गाँव घूमने लगे। उनका मानना था कि यही कहानियाँ हमारी उस परंपरागत संस्कृति की सही तसवीर पेश करती हैं जो बाहरी ताकतों के प्रभाव से भ्रष्ट और दूषित हो चुकी है। अपनी राष्ट्रीय पहचान को ढूँढ़ने और अपने अतीत में गौरव का भाव पैदा करने के लिए इस लोक परंपरा को बचाकर रखना जरूरी था। इन परंपराओं का संरक्षण राष्ट्रीय पहचान को पुनः प्राप्त करने और ऐतिहासिक गौरव की भावना पैदा करने के लिए महत्वपूर्ण माना गया। बंगाल में रवींद्रनाथ टैगोर और मद्रास में नेटसा शास्त्री जैसी उल्लेखनीय हस्तियों ने इस सांस्कृतिक पुनरुत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- जैसे-जैसे राष्ट्रीय आंदोलन ने गति पकड़ी, नेताओं को प्रतीकों को एकीकृत करने की शक्ति का एहसास हुआ। बंगाल के स्वदेशी आंदोलन में, कमल और अर्धचंद्र के साथ एक तिरंगा झंडा डिजाइन किया गया था। 1921 तक, गांधीजी ने स्वराज ध्वज बनाया, जो आत्म-सहायता का प्रतिनिधित्व करता था। साथ ही, इतिहास की पुनर्व्याख्या ने भारत की उपलब्धियों को उजागर किया लेकिन कुछ अन्य समुदायों को इसने अलग-थलग कर दिया।



चित्र 8.24: भारत माता, रवींद्रनाथ टैगोर (वर्ष 1905)

भारत छोड़ो आंदोलन

- ❑ क्रिप्स मिशन की विफलता और द्वितीय विश्व युद्ध के कारण भारत में व्यापक असंतोष के कारण गांधी ने एक आंदोलन शुरू किया, जिसमें भारत से अंग्रेजों की पूर्ण वापसी का आग्रह किया गया। 14 जुलाई, 1942 को वर्धा में अपनी बैठक के दौरान, कांग्रेस कार्य समिति ने ऐतिहासिक 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित किया, जिसमें स्पष्ट रूप से भारतीयों को सत्ता का तत्काल हस्तांतरण और भारत से अंग्रेजों के जाने की मांग की गई। 8 अगस्त, 1942 को बॉम्बे में, अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने सर्वसम्मति से पूरे देश में अहिंसक जन संघर्ष के प्रस्ताव का समर्थन किया।
- ❑ इस ऐतिहासिक घटना के दौरान ही गांधीजी ने अपना प्रसिद्ध 'करो या मरो' भाषण दिया था। 'भारत छोड़ो' के आह्वान ने पूरे देश में राज्य मशीनरी में महत्वपूर्ण व्यवधान पैदा कर दिया। लोग जोश से आंदोलन में शामिल हुए, हड़तालों, प्रदर्शनों और जुलूसों में भाग लिया, सभी राष्ट्रीय गीतों और नारों से गूंज रहे थे। इस सच्चे जन आंदोलन ने हजारों आम लोगों, छात्रों, श्रमिकों और किसानों को समान रूप से आकर्षित किया।
- ❑ जयप्रकाश नारायण, अरुणा आसफ अली और राम मनोहर लोहिया जैसे नेताओं ने सक्रिय रूप से भाग लिया। बंगाल में मातंगिनी हाजरा, असम में कनकलता बरुआ और ओडिशा में रमा देवी जैसी उल्लेखनीय महिलाओं ने अपना साहस दिखाया। अंग्रेजों की जोरदार प्रतिक्रिया के बावजूद, भी भारतीयों के इस उल्लेखनीय आंदोलन को दबाने में एक साल से अधिक समय लग गया। (चित्र 8.25 देखें)



चित्र 8.25: भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान बम्बई में महिलाओं का जुलूस

निष्कर्ष

यह अध्याय यूरोप में राष्ट्रवाद के उदय के लिए प्रेरित करने वाली ऐतिहासिक घटनाओं और प्रक्रियाओं की पड़ताल करता है, और यह बताता है कि इसने महाद्वीप के राजनीतिक परिदृश्य को कैसे आकार दिया। यह राष्ट्रवाद की उत्पत्ति, राष्ट्रीय पहचान के विकास और यूरोपीय राजनीति और समाज को आकार देने में राष्ट्रवाद की भूमिका पर चर्चा करता है। यह साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद और विश्व युद्धों पर राष्ट्रवाद के प्रभाव की भी जाँच करता है। यह यूरोप में राष्ट्रवाद की विविधता और स्थानीय इतिहास, संस्कृतियों और राजनीतिक संदर्भों द्वारा उन्हें कैसे आकार दिया गया, इस पर प्रकाश डालता है।

अध्याय में इस संदर्भ में भी प्रकाश डाला गया है कि 20वीं सदी के पहले भाग के दौरान, भारत ने औपनिवेशिक शासन के खिलाफ किस प्रकार एकीकृत व सामूहिक आक्रोश का अनुभव किया, जिसने विभिन्न समूहों और वर्गों को एकजुट किया। कांग्रेस के शीर्ष पर गांधी ने स्वतंत्रता के लिए सावधानीपूर्वक योजनाबद्ध आंदोलनों की एक श्रृंखला का आयोजन किया। इन प्रयासों का उद्देश्य न केवल औपनिवेशिक सरकार को चुनौती देना था, बल्कि राष्ट्रीय एकता की भावना को बढ़ावा देना भी था। कभी-कभी मतभेद के बावजूद, कांग्रेस ने लगातार विभिन्न आकांक्षाओं को समेटने के लिए काम किया, राष्ट्र की स्वतंत्रता की साझा खोज पर जोर दिया। कुल मिलाकर, यह अध्याय यूरोप और भारत में राष्ट्रवाद के उदय और इसके प्रभाव का एक व्यापक अवलोकन प्रदान करता है।

विचारणीय बिंदु

यूरोप और भारत में राष्ट्रवाद का उदय दो बिल्कुल अलग-अलग घटनाएँ हैं। उनके संदर्भ, परिस्थितियाँ और कारण अलग-अलग हैं। क्या आप इन दोनों क्षेत्रों में राष्ट्रवाद के विकास के संदर्भ में कुछ समानताओं पर विचार कर सकते हैं, जिनमें समय और परिस्थितियों में काफ़ी अंतर है?



महत्वपूर्ण शब्दावलियाँ

- ❖ **निरंकुश:** वस्तुतः, ऐसी सरकार या शासन प्रणाली जिसमें सत्ता पर कोई अंकुश नहीं होता इतिहास में, यह शब्द राजशाही सरकार के एक ऐसे रूप को संदर्भित करता है जो केंद्रीकृत, सैन्यीकृत और दमनकारी था।
- ❖ **बेगार:** वह श्रम जो ग्रामीणों को बिना किसी भुगतान के करने के लिए मजबूर किया जाता था।
- ❖ **बहिष्कार:** लोगों के साथ व्यवहार करने और जुड़ने, गतिविधियों में भाग लेने, या चीजें खरीदने और उपयोग करने से इनकार करना; आमतौर पर विरोध का एक रूप।

- ❖ **रूढ़िवाद:** एक राजनीतिक दर्शन जिसने परंपरा, स्थापित संस्थाओं और रीति-रिवाजों के महत्त्व पर जोर दिया, और त्वरित परिवर्तन की तुलना में क्रमिक विकास को प्राथमिकता दी।
- ❖ **जातीय:** एक सामान्य नस्लीय, जनजातीय या सांस्कृतिक मूल या पृष्ठभूमि से संबंधित, जिससे साथ एक समुदाय की पहचान होती है या जिसका दावा किया जाता है।
- ❖ **जबरन भर्ती:** एक प्रक्रिया जिसके तहत औपनिवेशिक राज्य लोगों को सेना में भर्ती होने के लिए मजबूर करता था।
- ❖ **विचारधारा:** विचारों की प्रणाली जो किसी विशेष सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करती है।
- ❖ **पिकेट:** प्रदर्शन या विरोध का एक रूप जिसके द्वारा लोग किसी दुकान, कारखाने या कार्यालय के प्रवेश द्वार को अवरुद्ध कर देते हैं।
- ❖ **जनमत संग्रह:** एक प्रत्यक्ष मतदान जिसके द्वारा किसी क्षेत्र के सभी लोगों से किसी प्रस्ताव को स्वीकार या अस्वीकार करने के लिए कहा जाता है।
- ❖ **मताधिकार:** किसी देश के नागरिकों का राजनैतिक अधिकार अर्थात् वोट देने का अधिकार।
- ❖ **यूटोपियन:** एक ऐसे समाज की कल्पना जो इतना आदर्श है कि उसका वास्तव में अस्तित्व में होना असंभव है।





भूमंडलीकृत विश्व का बनना

संदर्भ: इस अध्याय में NCERT पाठ्यपुस्तक की कक्षा-X (भारत और समकालीन विश्व-II) के अध्याय-3 का सारांश शामिल है।

परिचय

वैश्वीकरण एक अपेक्षाकृत नया शब्द है, लेकिन लोगों, वस्तुओं और विचारों की सीमाओं के पार परस्पर क्रिया की प्रक्रिया सदियों पुरानी है। इस प्रकार, पूरे इतिहास में, मानव समाज लगातार अधिक परस्पर जुड़े हुए हैं। भूमंडलीकृत विश्व के बनने की प्रक्रिया व्यापार का, काम की तलाश में एक जगह से दूसरी जगह जाते लोगों का, पूँजी व बहुत सारी चीजों की वैश्विक आवाजाही का - एक लंबा इतिहास रहा है। वैश्वीकरण वह आर्थिक प्रणाली है जो पिछले 50 वर्षों में उभरी है, जिसे व्यापार, विजय और विश्व युद्ध ने आकार दिया है। इसने वैश्विक अर्थव्यवस्था को बदल दिया है, जिससे दुनिया भर के लोग और समाज प्रभावित हुए हैं।

पूर्व-आधुनिक विश्व

भूमंडलीकृत विश्व में वैश्विक विश्व का एक लम्बा इतिहास रहा है - व्यापार का, प्रवास का, काम की तलाश में लोगों के आने-जाने का, पूँजी के आवागमन का।

- पूरे इतिहास में, लोगों ने ज्ञान, अवसर और आध्यात्मिक पूर्ति के लिए लंबी दूरी की यात्राएँ की हैं। ये यात्री अपने साथ सामान, पैसा, मूल्य, कौशल, विचार, आविष्कार और कभी-कभी बीमारियाँ भी ले गए हैं।
- 3000 ईसा पूर्व की शुरुआत में, सिंधु घाटी सभ्यताओं का पश्चिम एशिया के साथ सक्रिय तटीय व्यापार था। एक सहस्राब्दी से भी ज्यादा समय तक, मालदीव से कौड़ियाँ चीन और पूर्वी अफ्रीका के साथ व्यापार में इस्तेमाल की जाती थीं। रोग फैलाने वाले कीटाणुओं के लंबी दूरी तक फैलने का पता सातवीं शताब्दी तक ढूँढा जा सकता है।

रेशम मार्ग (सिल्क रूट): से जुड़ती दुनिया

- रेशम मार्ग एशिया को यूरोप और उत्तरी अफ्रीका से जोड़ने वाले व्यापार मार्गों की एक व्यापक प्रणाली थी। वे दुनिया के दूरदराज के क्षेत्रों के बीच गतिशील पूर्व-आधुनिक व्यापार और सांस्कृतिक संबंधों के एक महत्वपूर्ण उदाहरण के रूप में कार्य करते हैं।
 - 'रेशम मार्ग' शब्द विशेष रूप से इस नेटवर्क के साथ चीनी रेशम शिपमेंट के पश्चिम की ओर आंदोलन को संदर्भित करता है।
- **व्यापार:** इस मार्ग ने भारत और दक्षिण पूर्व एशिया से चीनी मिट्टी के बर्तनों, वस्त्रों और मसालों के निर्यात की सुविधा प्रदान की, जबकि इसने यूरोप से एशिया में सोने और चांदी जैसी कीमती धातुओं का प्रवाह देखा।
- **सांस्कृतिक आदान-प्रदान:** ईसाई मिशनरियों और मुस्लिम प्रचारकों ने अपने-अपने धर्मों का प्रचार करने के लिए रेशम मार्गों पर कदम रखा। इससे पहले, बौद्ध धर्म इन मार्गों के साथ पूर्वी भारत से एशिया के विभिन्न अन्य हिस्सों में फैल चुका था।
- रेशम मार्ग ईसाई युग से बहुत पहले से अस्तित्व में हैं और लगभग पंद्रहवीं शताब्दी तक जीवंत रहे।

भोजन की यात्रा: स्पेगेटी और आलू

- हमारे खाद्य पदार्थ दूर देशों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान के कई उदाहरण पेश करते हैं। जब भी व्यापारी और मुसाफिर किसी नए देश में जाते थे, जाने-अनजाने वहाँ नयी फ़सलों के बीज बो आते थे। संभव है कि दुनिया के विभिन्न भागों में मिलने वाले 'झटपट तैयार होने वाले' (Ready) खाद्य पदार्थों के भी साझा स्रोत रहे हों।
- नूडल्स की उत्पत्ति चीन में हुई और पश्चिम की ओर यात्रा करके स्पेगेटी बन गई। अरब व्यापारियों ने पास्ता को पाँचवीं शताब्दी के सिसिली में पेश किया, जो अब इटली में एक द्वीप है।

- आलू, सोया, मूंगफली, मक्का, टमाटर, मिर्च और शकरकंद, ये खाद्य पदार्थ यूरोप और एशिया में केवल क्रिस्टोफर कोलंबस द्वारा अमेरिका की खोज के बाद ही पेश किए गए थे।

विजय, बीमारी और व्यापार:

- सोलहवीं सदी में जब यूरोपीय जहाजियों ने एशिया तक का समुद्री रास्ता ढूँढ़ लिया और वे पश्चिमी सागर को पार करते हुए अमेरिका तक जा पहुँचे तो पूर्व-आधुनिक विश्व बहुत छोटा सा दिखाई देने लगा। इससे पहले कई सदियों से हिंद महासागर के पानी में फलता-फूलता व्यापार, तरह-तरह के सामान, लोग, ज्ञान और परंपराएँ एक जगह से दूसरी जगह आ-जा रही थीं।
- भारतीय उपमहाद्वीप इन प्रवाहों के रास्ते में एक अहम बिंदु था। पूरे नेटवर्क में इस इलाके का भारी महत्त्व था। यूरोपीयों के दाखिले से यह आवाजाही और बढ़ने लगी और इन प्रवाहों की दिशा यूरोप की तरफ भी मुड़ने लगी। विशेष रूप से अमेरिका की खोज ने वैश्विक अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव डाला। अमेरिकी खानों से चाँदी जैसी कीमती धातुएँ यूरोप में भर गईं, जिससे इसकी संपत्ति में वृद्धि हुई और एशिया के साथ इसके व्यापार को वित्तपोषित किया गया।
- यूरोपीय विजय केवल बेहतर गोलाबारी का परिणाम नहीं थी, बल्कि चेचक की बीमारी का भी परिणाम थी।
- चेचक अमेरिकियों के लिए जानलेवा साबित हुआ क्योंकि वे इससे प्रतिरक्षित नहीं थे। एक बार आने के बाद, यह महाद्वीप में गहराई तक फैल गया, जिससे अमेरिका की विजय का मार्ग प्रशस्त हुआ।
- 18वीं शताब्दी में गरीबी, भूख, बीमारी, धार्मिक संघर्ष और उत्पीड़न के कारण यूरोपीय लोग अमेरिका भाग गए। उन्होंने यूरोपीय बाजारों की सेवा के लिए कपास और चीनी के बागान लगाए।
- **चीन और भारत 18वीं शताब्दी तक दुनिया के सबसे अमीर देश थे**, और वे एशियाई व्यापार पर हावी थे। हालाँकि, 15वीं शताब्दी में चीन के अलग-थलग पड़ने और अमेरिका के उदय ने विश्व व्यापार का केंद्र यूरोप की ओर स्थानांतरित कर दिया। आज के पेरू और मैक्सिको में मौजूद खानों से निकलने वाली कीमती धातुओं, खासतौर से चाँदी, ने भी यूरोप की संपदा को बढ़ाया और पश्चिम एशिया के साथ उसके व्यापार को गति दी।

विचारणीय बिंदु

वैश्वीकरण व्यवहार में एक बहुत ही ऐतिहासिक घटना रही है, भले ही यह शब्द बाद में गढ़ा गया हो। हम इसे मुख्य रूप से आर्थिक संदर्भ में देखते हैं, लेकिन वैश्वीकरण में भोजन सहित विचारों और संस्कृति की यात्रा भी शामिल है। उस नोट पर हमने देखा कि नूडल्स/स्पेगेटी चीन से थे और पास्ता अरब से। इसी तरह क्या आप भारत से यूरोप या यूरोप से भारत में ऐसी वस्तुओं के विषय में जानते हैं जो समय के साथ स्थानीय क्षेत्र की वस्तु बन गई हो?



उन्नीसवीं शताब्दी (1815-1914)

- उन्नीसवीं सदी महान परिवर्तन की सदी थी, जिसमें आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और तकनीकी कारकों ने समाजों को बदल दिया और अंतरराष्ट्रीय संबंधों को नया आकार दिया।
- अर्थशास्त्री अंतरराष्ट्रीय आर्थिक आदान-प्रदान के भीतर तीन प्रकार की गतिविधियों या 'प्रवाहों' की पहचान करते हैं:
 - **व्यापार का प्रवाह:** मुख्यतः वस्तुओं के व्यापार के लिए;
 - **श्रम का प्रवाह:** रोजगार की तलाश में लोगों का प्रवास;
 - **पूंजी का प्रवाह:** लंबी दूरी पर अल्पकालिक या दीर्घकालिक निवेश के लिए।

विश्व अर्थव्यवस्था का उदय

- 19वीं सदी से पहले, देश खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर होने की कोशिश करते थे। लेकिन 19वीं सदी में, यूरोप में औद्योगिक क्रांति ने खाद्यान्न उत्पादन और उपभोग के तरीके को बदल दिया।
- अठारहवीं सदी के आखिरी दशकों में ब्रिटेन की आबादी तेजी से बढ़ने लगी थी। नतीजा, देश में भोजन की माँग भी बढ़ी। जैसे-जैसे शहर फैले और उद्योग बढ़ने लगे, कृषि उत्पादों की माँग भी बढ़ने लगी। कृषि उत्पाद मँहगे होने लगे।
- दूसरी तरफ बड़े भूस्वामियों के दबाव में सरकार ने मक्का के आयात पर भी पाबंदी लगा दी थी। जिन कानूनों के सहारे सरकार ने यह पाबंदी लागू की थी उन्हें 'कॉर्न लॉ' कहा जाता था। खाद्य पदार्थों की ऊँची कीमतों से परेशान उद्योगपतियों और शहरी बाशियों ने सरकार को मजबूर कर दिया कि वह कॉर्न लॉ को फ़ौरन समाप्त कर दे।
- **ब्रिटेन द्वारा खाद्यान्न का आयात:** ब्रिटेन ने खाद्यान्न का आयात किया क्योंकि यह घरेलू उत्पादन की तुलना में सस्ता था। इससे व्यापक बेरोजगारी और शहरों और विदेशों में पलायन हुआ।
 - ब्रिटेन की खाद्यान्न की बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए, भूमि को साफ किया गया और पूर्वी यूरोप, रूस, अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया सहित दुनिया भर में खाद्यान्न उत्पादन का विस्तार किया गया।

- ❑ **पूँजी प्रवाह:** कृषि क्षेत्रों को बंदरगाहों से जोड़ने वाली रेलवे के निर्माण के साथ-साथ नए बंदरगाह, घर और बस्तियाँ बनाने के लिए लंदन जैसे वित्तीय केंद्रों से पूँजी प्रवाहित हुई।
- ❑ **श्रम प्रवाह:** 19वीं सदी में, लगभग 50 मिलियन लोग यूरोप छोड़कर अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया चले गए। कुल मिलाकर, दुनिया भर में लगभग 150 मिलियन लोगों ने अपने घर छोड़े, महासागरों को पार किया, और बेहतर जीवन की तलाश में भूमि पर लंबी दूरी की यात्रा की।
- ❑ इस प्रकार 1890 तक, एक वैश्विक कृषि अर्थव्यवस्था ने निम्नलिखित विशेषताओं के साथ आकार ले लिया था:
 - श्रम आंदोलन पैटर्न, पूँजी प्रवाह, पारिस्थितिकी और प्रौद्योगिकी में परिवर्तन आने लगा था।
 - भोजन अब पास के गाँव या कस्बे से नहीं, बल्कि हजारों मील दूर से आता था।
 - भोजन किसी किसान द्वारा अपनी ज़मीन जोत कर नहीं बल्कि एक कृषि मजदूर द्वारा उगाया जाता था।
 - भोजन को रेलवे द्वारा ले जाया जाता था, जिसे उसी उद्देश्य के लिए बनाया गया था, और जहाजों द्वारा, जो उन दशकों में दक्षिणी यूरोप, एशिया, अफ्रीका और कैरिबियन के कम वेतन वाले श्रमिकों द्वारा संचालित किए जाने लगे थे।
- ❑ **नहर उपनिवेश:** ब्रिटिश भारतीय सरकार ने अर्ध-रेगिस्तानी बंजर भूमि को उपजाऊ कृषि भूमि में बदलने के लिए **सिंचाई नहरों का एक नेटवर्क बनाया**, जहाँ निर्यात के लिए गेहूँ और कपास उगाया जा सकता था।
- ❑ नई नहरों द्वारा सिंचित इन क्षेत्रों, जिन्हें नहर उपनिवेश कहा जाता है, में पंजाब के अन्य हिस्सों के किसान आकर बस गए थे।
- ❑ 1820 और 1914 के बीच, विश्व व्यापार में 25 से 40 गुना वृद्धि हुई, जिसका मुख्य कारण वस्तुओं के उत्पादन में क्षेत्रीय विशेषज्ञता का विकास था। इस व्यापार का लगभग 60% हिस्सा “प्राथमिक उत्पादों” में था, जैसे कि गेहूँ और कपास जैसे कृषि उत्पाद और कोयला जैसे खनिज।

प्रौद्योगिकी की भूमिका: 19वीं सदी के विश्व को आकार देना

- ❑ **रेलवे, स्टीमशिप और टेलीग्राफ** ने उन्नीसवीं सदी की दुनिया को बदल दिया।
- ❑ **उपनिवेशीकरण ने परिवहन में नए निवेश और सुधारों को प्रेरित किया:** तेज रेलवे, हल्के वैगन और बड़े जहाजों ने दूर के खेतों से अंतिम बाजारों तक भोजन को अधिक सस्ते और तेजी से ले जाने में मदद की। उदाहरण के लिए, 1870 के दशक तक अमेरिका से यूरोप को मांस का निर्यात नहीं किया जाता था। उस समय केवल ज़िंदा जानवर ही भेजे जाते थे जिन्हें यूरोप ले जाकर ही काटा जाता था। लेकिन ज़िंदा जानवर बहुत ज्यादा जगह घेरते थे।
- ❑ बहुत सारे तो लंबे सफ़र में मर जाते थे या बीमार पड़ जाते थे। बहुतों का वज़न गिर जाता था या वे खाने के लायक नहीं रह जाते थे। इसी वजह से मांस खाना एक महंगा सौदा था और यूरोप के गरीबों की पहुँच से बाहर था।
- ❑ दूसरी तरफ़, ऊँची कीमतों के कारण मांस उत्पादों की माँग और उत्पादन भी कम रहता था। बेहतर जीवन स्तर ने सामाजिक शांति और विदेशों में साम्राज्यवाद के लिए समर्थन को जन्म दिया।

उन्नीसवीं सदी के आखिर में उपनिवेशवाद:

- ❑ 19वीं सदी के अंत में, यूरोपीय शक्तियों ने अपने साम्राज्यों का विस्तार किया और अफ्रीका और एशिया के कई हिस्सों को उपनिवेश बनाया। इससे व्यापार और आर्थिक विकास में वृद्धि हुई, लेकिन इसका उपनिवेशित लोगों पर नकारात्मक प्रभाव भी पड़ा, जिन्होंने अपनी स्वतंत्रता और आजीविका खो दी।
- ❑ 1885 में, प्रमुख यूरोपीय शक्तियाँ बर्लिन में अफ्रीका को आपस में बाँटने के लिए मिलीं। 19वीं सदी के अंत में ब्रिटेन और फ्रांस ने अपने साम्राज्यों का काफी विस्तार किया, जबकि बेल्जियम और जर्मनी नई औपनिवेशिक शक्तियाँ बन गईं। 1890 के दशक के अंत में स्पेन से कुछ उपनिवेशों पर कब्ज़ा करके संयुक्त राज्य अमेरिका भी एक औपनिवेशिक शक्ति बन गया।
- ❑ उपनिवेशवाद के अर्थव्यवस्था और उपनिवेशित लोगों की आजीविका पर विनाशकारी प्रभाव के प्रमुख उदाहरण इस प्रकार हैं:
 - **मवेशी प्लेग:** उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में, यूरोपीय लोग बागान और खदानें स्थापित करने के लिए अफ्रीका आए, लेकिन वहाँ श्रमिकों की कमी थी।
 - **रिडरपेस्ट, एक विनाशकारी मवेशी रोग,** 1880 के दशक के उत्तरार्ध में अफ्रीका में आया, जिसने 90% मवेशियों को मार डाला और अफ्रीकी आजीविका को नष्ट कर दिया। पशुओं के खत्म हो जाने से तो अफ्रीकियों के रोजी-रोटी के साधन ही खत्म हो गए। अपनी सत्ता को और मजबूत करने तथा अफ्रीकियों को श्रम बाज़ार में ढकेलने के लिए वहाँ के बागान मालिकों, खान मालिकों और औपनिवेशिक सरकारों ने बचे-खुचे पशु भी अपने कब्ज़े में ले लिए। बचे-खुचे पशु संसाधनों पर कब्ज़े से यूरोपीय उपनिवेशकारों को पूरे अफ्रीका को जीतने व गुलाम बना लेने का बेहतरीन मौक़ा हाथ लग गया था। मवेशियों की कमी ने यूरोपीय उपनिवेशवादियों की शक्ति को मजबूत किया और अफ्रीकियों को श्रम बाज़ार में जाने के लिए मजबूर किया।
 - नियोक्ताओं ने श्रमिकों की भर्ती करने और उन्हें बनाए रखने के लिए कई तरीके अपनाए, जैसे कि भारी कर लगाना, जिसका भुगतान केवल मजदूरी पर काम करके ही किया जा सकता था।
 - इसका लोगों की आजीविका और स्थानीय अर्थव्यवस्था पर भयानक प्रभाव पड़ा।

□ भारत से अनुबंधित श्रम प्रवास (गुलामी की नई प्रणाली):

- 19वीं सदी में, दुनिया भर में बागानों, खदानों और सड़क और रेलवे निर्माण परियोजनाओं में काम करने के लिए सैकड़ों हजारों भारतीय और चीनी मजदूरों की भर्ती की गई थी। उन्हें अक्सर झूठे वादों का लालच दिया जाता था और कठोर परिस्थितियों में काम करने के लिए मजबूर किया जाता था।
- कैरिबियन में गिरमिटिया मजदूरों ने अपनी मातृभूमि और नए घरों से सांस्कृतिक रूपों को मिलाकर अभिव्यक्ति के नए रूप बनाए, जैसे होसे, रस्ताफेरियनवाद और चटनी संगीत। ये सांस्कृतिक संलयन वैश्विक दुनिया का हिस्सा हैं, जहाँ अलग-अलग जगहों की चीजें आपस में मिलती हैं और विकसित होती हैं।
- 1900 के दशक में, भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने गिरमिटिया मजदूर प्रवास प्रणाली का अपमानजनक और क्रूर होने के कारण विरोध किया। हालाँकि इस प्रणाली को वर्ष 1921 में समाप्त कर दिया गया।

□ विदेश में भारतीय उद्यमी: भारतीय बैंकों (शिकारीपुरी श्रॉफ और नडुकोट्टई चेडियार) और व्यापारियों ने मध्य और दक्षिण पूर्व एशिया, अफ्रीका और उससे आगे निर्यात कृषि और व्यापार के वित्तपोषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने किसानों और व्यापारियों को पूँजी प्रदान करने के लिए अपने स्वयं के धन का उपयोग किया या यूरोपीय बैंकों से उधार लिया। उन्होंने लंबी दूरी पर धन हस्तांतरित करने और कॉर्पोरेट संगठन बनाने के लिए परिष्कृत प्रणालियाँ भी विकसित कीं।

□ भारतीय व्यापारियों और साहूकारों ने भी अफ्रीका में यूरोपीय उपनिवेशवादियों का अनुसरण किया। हैदराबादी सिंधी व्यापारियों ने यूरोपीय उपनिवेशों से आगे बढ़कर कार्य किया।

विचारणीय बिंदु

भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन शोषणकारी था और व्यापार के नियम इस तरह से बनाए गए थे कि इससे ब्रिटिश हितों और व्यापारियों को लाभ हो। फिर भी भारतीय व्यवसायी प्रतिस्पर्धा करने और प्रयास करने में सक्षम थे। आपके अनुसार भारतीय उद्यमी, बैंकर और व्यापारी विभिन्न क्षेत्रों में निर्यात कृषि और व्यापार के वित्तपोषण में किस प्रकार की भूमिका निभाते थे/हैं, और उन्होंने यूरोपीय उपनिवेशवाद और उपनिवेशवादियों के साथ कैसे सामंजस्य स्थापित किया और संवाद को जारी रखा?



भारतीय व्यापार, उपनिवेशवाद और वैश्विक व्यवस्था:

- ब्रिटिश औद्योगिकरण और टैरिफ बाधाओं के कारण भारतीय सूती वस्त्र निर्यात में गिरावट आई और कच्चे माल के निर्यात में वृद्धि हुई। (कच्चा कपास, नील, अफीम)
- भारत में ब्रिटेन के व्यापार अधिशेष ने अन्य देशों के साथ अपने व्यापार घाटे को संतुलित करने और अपने घरेलू शुल्क का भुगतान करने में मदद की।
 - घरेलू शुल्क में ब्रिटिश अधिकारियों और व्यापारियों द्वारा घर भेजे जाने वाले निजी धन, भारत के बाहरी ऋण पर ब्याज भुगतान और भारत में ब्रिटिश अधिकारियों की पेंशन शामिल थी।

अंतर-युद्ध अर्थव्यवस्था

पहला विश्वयुद्ध (1914-18) दो खेमों के बीच लड़ा गया था। एक पाले में मित्र राष्ट्र यानी ब्रिटेन, फ्रांस और रूस थे तो दूसरे पाले में केंद्रीय शक्तियाँ यानी जर्मनी, ऑस्ट्रिया-हंगरी और ऑटोमन तुर्की थे। अगस्त 1914 में जब युद्ध शुरू हुआ उस समय बहुत सारी सरकारों को यही लगता था कि यह युद्ध ज्यादा से ज्यादा क्रिसमस तक खत्म हो जाएगा। पर यह युद्ध तो चार साल से भी ज्यादा समय तक चलता रहा। इस दौरान दुनिया ने व्यापक आर्थिक और राजनीतिक अस्थिरता और एक और विनाशकारी युद्ध का अनुभव किया।

युद्धकालीन रूपांतरण

- प्रथम विश्व युद्ध एक वैश्विक संघर्ष था जिसमें बड़े पैमाने पर आधुनिक औद्योगिक प्रौद्योगिकी का उपयोग किया गया था। दुनिया भर से लाखों सैनिकों की भर्ती की गई और उन्हें बड़े जहाजों और ट्रेनों पर लादकर अग्रिम मोर्चे पर भेजा गया।
- युद्ध के परिणामस्वरूप 9 मिलियन लोगों की मृत्यु हुई और 20 मिलियन से अधिक लोग घायल हुए, जिनमें से अधिकांश कामकाजी उम्र के पुरुष थे।
- इसका यूरोपीय अर्थव्यवस्था पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा, क्योंकि कार्यबल कम हो गया और घरेलू आय में गिरावट आई। युद्ध ने उद्योगों और समाजों के पुनर्गठन को भी बढ़ावा दिया, क्योंकि महिलाओं ने उन नौकरियों को करने के लिए कदम बढ़ाया जो पहले पुरुषों के पास थीं। युद्ध ने दुनिया की कुछ सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं के बीच आर्थिक संबंधों को भी तोड़ दिया, और अमेरिका पहली बार एक अंतरराष्ट्रीय ऋणदाता बन गया।

युद्धोत्तर सुधार

- युद्ध के बाद आर्थिक स्थिति को पटरी पर लाने का रास्ता काफी मुश्किल साबित हुआ। युद्ध से पहले ब्रिटेन दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था था। युद्ध के बाद सबसे लंबा संकट उसे ही झेलना पड़ा। जिस समय ब्रिटेन युद्ध से जूझ रहा था उसी समय भारत और जापान में उद्योग विकसित होने लगे थे।
- युद्ध के बाद भारतीय बाज़ार में पहले वाली वर्चस्वशाली स्थिति प्राप्त करना ब्रिटेन के लिए बहुत मुश्किल हो गया था। अब उसे जापान से भी मुकाबला करना था, सो अलगा। युद्ध के खर्चों की भरपाई करने के लिए ब्रिटेन ने अमेरिका से ज़म कर कर्ज़ लिए थे।

- ❑ इसका परिणाम यह हुआ कि युद्ध खत्म होने तक ब्रिटेन भारी विदेशी ऋर्जा में दब चुका था।
- ❑ युद्ध के कारण आर्थिक उछाह का माहौल पैदा हो गया था क्योंकि माँग, उत्पादन और रोजगारों में भारी इजाफ़ा हुआ था और गेहूँ की अधिकता के कारण कृषि अर्थव्यवस्था भी संकट में आ गई।

बड़े पैमाने पर उत्पादन और उपभोग

- ❑ अमेरिकी अर्थव्यवस्था की सुधार गति अन्य देशों की तुलना में युद्ध से अधिक तेज़ी से उभरकर आगे बढ़ी।
- ❑ 1920 के दशक में आवास एवं निर्माण क्षेत्र में आए उछाल से अमेरिकी संपन्नता का आधार पैदा हो चुका था। मकानों के निर्माण और घरेलू जरूरत की चीज़ों में निवेश से रोजगार और माँग बढ़ती थी तो दूसरी ओर उपभोग भी बढ़ता था। बढ़ते उपभोग के लिए और ज़्यादा निवेश की जरूरत थी जिससे और नए रोजगार व आमदनी में वृद्धि होने लगती थी।
- ❑ 1923 में अमेरिका शेष विश्व को पूँजी का निर्यात दोबारा करने लगा और वह दुनिया में सबसे बड़ा ऋर्जदाता देश बन गया। अमेरिका द्वारा आयात और पूँजी निर्यात ने यूरोपीय अर्थव्यवस्थाओं को भी संकट से उबरने में मदद दी। अगले छह साल में विश्व व्यापार व आय वृद्धि दर में काफ़ी सुधार आया।
- ❑ लेकिन यह स्थिति लंबे समय तक क़ायम नहीं रह पाई। 1929 तक आते-आते दुनिया एक ऐसे आर्थिक संकट में फँस गई जिसका दुनिया ने पहले कभी अनुभव नहीं किया था।

महामंदी (1929-1930)

- ❑ आर्थिक महामंदी की शुरुआत 1929 से हुई दशक के मध्य तक बना रहा। इस दौरान दुनिया के ज़्यादातर हिस्सों के उत्पादन, रोजगार, आय और व्यापार में भयानक गिरावट दर्ज की गई। इस मंदी का समय और असर सब देशों में एक जैसा नहीं था लेकिन आमतौर पर ऐसा माना जा सकता है कि कृषि क्षेत्रों और समुदायों पर इसका सबसे बुरा असर पड़ा। यह कई कारकों के संयोजन के कारण हुआ था, जिसमें शामिल हैं,
 - कृषि अतिउत्पादन,
 - कृषि कीमतों में गिरावट, और
 - अन्य देशों से अमेरिकी ऋण वापस लेना।
- ❑ महामंदी का दुनिया भर के लोगों पर विनाशकारी प्रभाव पड़ा, जिसमें व्यापक बेरोज़गारी, ग़रीबी और दिवालियापन शामिल थे।
- ❑ अमेरिकी अर्थव्यवस्था पर विशेष रूप से बुरा असर पड़ा, हज़ारों बैंक बंद हो गए और लाखों लोगों की नौकरियाँ चली गईं। महामंदी का समाज, राजनीति और अंतरराष्ट्रीय संबंधों पर स्थायी प्रभाव पड़ा।
- ❑ भारत और महामंदी: महामंदी का भारत पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा, जो उस समय वैश्विक अर्थव्यवस्था का एक एकीकृत हिस्सा था।
 - 1928 और 1934 के बीच भारतीय निर्यात और आयात लगभग आधे हो गए और कृषि की कीमतें गिर गईं। विश्व बाज़ार के लिए उत्पादन करने वाले किसान सबसे ज़्यादा प्रभावित हुए।
 - वे लगातार ऋर्ज में डूबते गए और ग्रामीण भारत में अशांति फैलती गई। शहरी भारत के लिए मंदी कम गंभीर थी, क्योंकि निश्चित आय वाले लोग बेहतर स्थिति में थे और औद्योगिक निवेश में वृद्धि हुई।

विश्व अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण: युद्धोत्तर काल

- ❑ पहला विश्व युद्ध खत्म होने के केवल दो दशक बाद दूसरा विश्व युद्ध शुरू हो गया। यह युद्ध भी दो बड़े खेमों के बीच था। एक गुट में धुरी शक्तियाँ (मुख्य रूप से नात्सी जर्मनी, जापान और इटली) थीं तो दूसरा खेमा मित्र राष्ट्रों (ब्रिटेन, सोवियत संघ, फ़्रांस और अमेरिका) के नाम से जाना जाता था। छह साल तक चला यह युद्ध ज़मीन, हवा और पानी में असंख्य मोर्चों पर लड़ा गया।
- ❑ इस युद्ध में मौत और तबाही की कोई हद बाकी नहीं बची थी। माना जाता है कि इस जंग के कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से करीब 6 करोड़ लोग मारे गए। यह 1939 की वैश्विक जनसंख्या का लगभग 3 प्रतिशत था। करोड़ों लोग घायल हुए। युद्ध ने व्यापक आर्थिक तबाही और सामाजिक व्यवधान पैदा किया, और पुनर्निर्माण लंबा और कठिन था। युद्ध के बाद के पुनर्निर्माण पर युद्ध के दो महत्वपूर्ण प्रभाव थे।
- ❑ अमेरिका पश्चिमी दुनिया में प्रमुख आर्थिक, राजनीतिक और सैन्य शक्ति के रूप में उभरा, जबकि सोवियत संघ ने खुद को एक पिछड़े कृषि देश से विश्व शक्ति में बदल दिया।

युद्धोत्तर बंदोबस्त और ब्रेटन वुड्स संस्थान

- दो महायुद्धों के बीच मिले आर्थिक अनुभवों से अर्थशास्त्रियों और राजनीतिज्ञों ने दो अहम सबक निकाले। युद्ध के बाद की आर्थिक नीति दो प्रमुख सबक पर आधारित थी:
 - **पहला**, बहुत उत्पादन पर आधारित किसी औद्योगिक समाज को व्यापक उपभोग के बिना कायम नहीं रखा जा सकता। लेकिन व्यापक उपभोग को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक था कि आमदनी काफ़ी ज्यादा और स्थिर हो। यदि रोज़गार अस्थिर होंगे तो आय स्थिर नहीं हो सकती थी। स्थिर आय के लिए पूर्ण रोज़गार भी ज़रूरी था।
 - **दूसरा**, सबक बाहरी दुनिया के साथ आर्थिक संबंधों के बारे में था। पूर्ण रोज़गार का लक्ष्य केवल तभी हासिल किया जा सकता है जब सरकार के पास वस्तुओं, पूँजी और श्रम की आवाजाही को नियंत्रित करने की ताकत उपलब्ध हो।
- इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए ब्रेटन वुड्स प्रणाली की स्थापना की गई थी, जिसमें आईएमएफ और विश्व बैंक केंद्रीय भूमिका निभाते थे। यह प्रणाली निश्चित विनिमय दरों पर आधारित थी, जिसमें राष्ट्रीय मुद्राएँ डॉलर से जुड़ी हुई थीं और डॉलर सोने से जुड़ा हुआ था।

प्रारंभिक युद्धोत्तर वर्ष:

- ब्रेटन वुड्स व्यवस्था ने पश्चिमी औद्योगिक राष्ट्रों और जापान के लिए व्यापार तथा आय में वृद्धि के एक अप्रतिम युग का सूत्रपात किया।
- 1950 से 1970 के बीच विश्व व्यापार की विकास दर सालाना 8 प्रतिशत से भी ज्यादा रही। इस दौरान वैश्विक आय में लगभग 5 प्रतिशत की दर से वृद्धि हो रही थी।
- विकास दर भी कमोबेश स्थिर ही थी। उसमें ज्यादा उतार-चढ़ाव नहीं आया। इस दौरान ज्यादातर समय अधिकांश औद्योगिक देशों में बेरोज़गारी औसतन 5 प्रतिशत से भी कम ही रही।
- इन दशकों में तकनीक और उद्यम का विश्वव्यापी प्रसार हुआ ताकि वे आगे बढ़ सकें।

औपनिवेशीकरण और स्वतंत्रता:

समूह 77 (जी-77)

- यह संयुक्त राष्ट्र में विकासशील देशों का सबसे बड़ा अंतर-सरकारी संगठन है।
- ग्रुप ऑफ 77 (G77) की स्थापना 1964 में हुई थी।
- पिछले कुछ वर्षों में इसने अपनी सदस्यता का विस्तार किया है और वर्तमान में इसमें 134 विकासशील देश शामिल हैं।
- यह देशों के सबसे बड़े गठबंधन का प्रतिनिधित्व करता है और इसकी अध्यक्षता बारी-बारी से होती है।
- भारत न्यूयॉर्क में G77 की अध्यक्षता करने वाला पहला देश था।
- चीन आधिकारिक तौर पर G77 का सदस्य नहीं है।

- ब्रेटन वुड्स संस्थानों को औद्योगिक देशों की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए डिज़ाइन किया गया था, लेकिन उन्होंने 1950 के दशक के उत्तरार्ध में अपना ध्यान विकासशील देशों की ओर स्थानांतरित कर दिया।
- पूर्व औपनिवेशिक शक्तियों ने अभी भी अपने कई पूर्व उपनिवेशों में महत्वपूर्ण संसाधनों को नियंत्रित किया था, और शक्तिशाली देशों के बड़े निगमों ने अक्सर इन संसाधनों का सस्ते में दोहन करने के अधिकार हासिल किए थे।
- दूसरी ओर ज्यादातर विकासशील देशों को पचास और साठ के दशक में पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं की तेज़ प्रगति से कोई लाभ नहीं हुआ। इस समस्या को देखते हुए उन्होंने एक नयी अंतरराष्ट्रीय आर्थिक प्रणाली (New International Economic Order-NIEO) के लिए आवाज़ उठाई और समूह 77 (जी-77) के रूप में संगठित हो गए। एन.आई.ई.ओ. से उनका आशय एक ऐसी व्यवस्था से था जिसमें उन्हें अपने संसाधनों पर सही मायनों में नियंत्रण मिल सके, जिसमें उन्हें विकास के लिए अधिक सहायता मिले, कच्चे माल के सही दाम मिलें, और अपने तैयार मालों को विकसित देशों के बाज़ारों में बेचने के लिए बेहतर पहुँच मिले।

ब्रेटन वुड्स का समापन और 'वैश्वीकरण' की शुरुआत:

- युद्ध के बाद तेज़ आर्थिक विकास के बावजूद, विश्व अर्थव्यवस्था को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा। अमेरिकी डॉलर कमज़ोर हो गया, जिससे निश्चित विनिमय दरों की प्रणाली ध्वस्त हो गई।
- विकासशील देशों को पश्चिमी वाणिज्यिक बैंकों से उधार लेने के लिए मजबूर होना पड़ा, जिससे ऋण संकट साथ ही आय के स्रोत भी अत्यधिक प्रभावित हुए।
- औद्योगिक दुनिया में बेरोज़गारी बढ़ी और बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने उत्पादन को चीन जैसे कम वेतन वाले एशियाई देशों में स्थानांतरित करना शुरू कर दिया। इसने विश्व व्यापार और पूँजी प्रवाह को बढ़ावा दिया और वैश्विक आर्थिक परिदृश्य को बदल दिया।

निष्कर्ष

पूर्व-आधुनिक से लेकर आधुनिक विश्व तक, समाज ने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और तकनीकी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण परिवर्तनों का सामना किया है। इन परिवर्तनों के कारण उपनिवेशवाद, प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध, महामंदी, गरीबी और बेरोज़गारी जैसी समस्याओं का विस्तार हुआ। ब्रेटन वुड्स संस्थाओं ने वैश्विक अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण और वैश्वीकरण की दिशा में विशेष योगदान दिया। इसके बाद, यूरोप के कई उपनिवेश स्वतंत्र हो गए। इन घटनाओं ने दुनिया भर में सत्ता संरचनाओं और वैश्विक संबंधों को नया आकार दिया।

महत्वपूर्ण शब्दावलियाँ

- ❖ **कौड़ी:** मुद्रा का एक रूप (हिंदी में कौड़ी या सीप)।
- ❖ **बंधुआ मज़दूरी:** एक प्रकार का बंधुआ मज़दूर जो किसी नियोक्ता के लिए एक निश्चित समय के लिए काम करने के लिए अनुबंध के तहत काम करता है, ताकि वह किसी नए देश या घर में जाने के लिए अपने किराए का भुगतान कर सके।
- ❖ **विनिमय दरें:** वे अंतरराष्ट्रीय व्यापार के उद्देश्यों के लिए राष्ट्रीय मुद्राओं को जोड़ती हैं। मोटे तौर पर दो प्रकार की विनिमय दरें होती हैं: निश्चित विनिमय दर और अनिश्चित विनिमय दर।
- ❖ **स्थिर विनिमय दरें:** जब विनिमय दरें तय होती हैं और सरकारें उनमें होने वाले उतार-चढ़ाव को रोकने के लिए हस्तक्षेप करती हैं।
- ❖ **लचीली या अस्थिर विनिमय दरें:** ऐसी विनिमय दरें, जो विदेशी मुद्रा बाजारों में मुद्राओं की माँग और आपूर्ति के आधार पर, सिद्धांत रूप में सरकारों द्वारा हस्तक्षेप किए बिना, उतार-चढ़ाव करती हैं।





औद्योगीकरण का युग

संदर्भ: इस अध्याय में NCERT पाठ्यपुस्तक की कक्षा-X (भारत और समकालीन विश्व-II) के अध्याय-4 व 5 का सारांश शामिल है।

परिचय

आधुनिक विश्व का सकारात्मक दृष्टिकोण तेजी से हो रही तकनीकी प्रगति, नई मशीनें और परिवहन तथा प्रगति के अन्य संकेत दिखाता है। इस प्रकार औद्योगीकरण के इतिहास को अक्सर विकास की कहानी के रूप में देखा जाता है। इतना ही नहीं आधुनिक युग तकनीकी प्रगति और प्रिंट के विकास का एक महान समय प्रतीत होता है, जो पूर्वी एशिया में इसकी शुरुआत से लेकर यूरोप और भारत में इसके विस्तार तक विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है तथा सामाजिक जीवन और संस्कृतियों पर इसके प्रभाव पर विचार करने को विवश करता है।

औद्योगिक क्रांति से पहले

- ❑ दरअसल, इंग्लैंड और यूरोप में फैक्ट्रियों की स्थापना से भी पहले ही अंतरराष्ट्रीय बाज़ार के लिए बड़े पैमाने पर औद्योगिक उत्पादन होने लगा था। यह उत्पादन फैक्ट्रियों में नहीं होता था। बहुत सारे इतिहासकार औद्योगीकरण के इस चरण को **आदि-औद्योगीकरण (proto-industrialisation)** का नाम देते हैं।
- ❑ प्रोटो-औद्योगीकरण उत्पादन और व्यापार की एक प्रणाली थी जिसमें व्यापारी ग्रामीण क्षेत्रों में वस्तुओं के उत्पादन को व्यवस्थित करते थे और फिर उन वस्तुओं को अंतरराष्ट्रीय बाजारों में बेचते थे। वस्तुओं का उत्पादन बड़ी संख्या में परिवारों द्वारा अपने घरों में काम करके किया जाता था।
- ❑ यूरोप के शहरों से व्यापारी ग्रामीण इलाकों में चले गए और किसानों और कारीगरों को पैसे की आपूर्ति की, उन्हें अंतरराष्ट्रीय बाजार के लिए उत्पादन करने के लिए राजी किया। ऐसा इसलिए था क्योंकि शहरी शिल्प और व्यापार संघों की शक्ति के कारण शहरों में उत्पादन का विस्तार करना मुश्किल था।
- ❑ ग्रामीण इलाकों में, गरीब किसान और कारीगर व्यापारियों के लिए काम करते थे। इस प्रणाली को व्यापारियों द्वारा नियंत्रित किया जाता था और माल का उत्पादन कारखानों में नहीं, बल्कि अपने पारिवारिक खेतों में काम करने वाले बड़ी संख्या में उत्पादकों द्वारा किया जाता था।
- ❑ प्रोटो-औद्योगीकरण ने शहर और ग्रामीण इलाकों के बीच घनिष्ठ निर्भरता पैदा की। व्यापारी शहरों में रहते थे और ग्रामीण इलाकों में उत्पादन का आयोजन करते थे।

कारखानों का उदय:

- ❑ इंग्लैंड में सबसे पहले 1730 के दशक में कारखाने खुले लेकिन उनकी संख्या में तेजी से इज़ाफ़ा अठारहवीं सदी के आखिर में ही हुआ।
- ❑ कपास (कॉटन) नए युग का पहला प्रतीक थी। उन्नीसवीं सदी के आखिर में कपास के उत्पादन में भारी बढ़ोतरी हुई। 1760 में ब्रिटेन अपने कपास उद्योग की जरूरतों को पूरा करने के लिए 25 लाख पौंड कुच्चे कपास का आयात करता था। 1787 में यह आयात बढ़कर 220 लाख पौंड तक पहुँच गया। यह इज़ाफ़ा उत्पादन की प्रक्रिया में बहुत सारे बदलावों का परिणाम था। आइए देखें कि ये बदलाव कौन से थे।
- ❑ रिचर्ड आर्कराइट की कपास मिल ने सभी उत्पादन प्रक्रियाओं को एक छत के नीचे ला दिया, जिससे नज़दीकी निगरानी और विनियमन की अनुमति मिली। 19वीं सदी की शुरुआत में, कारखाने अंग्रेज़ी परिदृश्य का एक अंतरंग हिस्सा बन गए।

औद्योगिक परिवर्तन की रफ़्तार:

- ❑ ब्रिटेन में औद्योगीकरण एक तीव्र गतिशील प्रक्रिया थी, लेकिन सभी उद्योगों और क्षेत्रों में औद्योगीकरण एक समान प्रक्रिया नहीं थी। इस दौरान कपास और धातु उद्योग सबसे गतिशील थे, जो तेजी से बढ़ रहे थे।
- ❑ हालाँकि, नए उद्योगों ने पारंपरिक उद्योगों की जगह आसानी से नहीं ली, और इन उद्योगों में बदलाव की गति धीमी थी। तकनीकी परिवर्तन भी धीरे-धीरे हुए, और यहाँ तक कि सबसे शक्तिशाली नई तकनीकें, जैसे कि भाप इंजन, भी उद्योगपतियों द्वारा अपनाने में धीमी थीं।
- ❑ नतीजतन, उन्नीसवीं सदी के मध्य में अधिकांश श्रमिक अभी भी मशीन ऑपरेटर के बजाय पारंपरिक शिल्पकार या मजदूर थे।

हाथ का श्रम और वाष्प शक्ति:

- विक्टोरिया कालीन ब्रिटेन में मानव श्रम की कोई कमी नहीं थी। गरीब किसान और बेकार लोग कामकाज की तलाश में बड़ी संख्या में शहरों को जाते थे। जैसा कि आप आगे जानेंगे, जब श्रमिकों की बहुतायत होती है तो वेतन गिर जाते हैं। इसीलिए, उद्योगपतियों को श्रमिकों की कमी या वेतन के मद में भारी लागत जैसी कोई परेशानी नहीं थी। उन्हें ऐसी मशीनों में कोई दिलचस्पी नहीं थी जिनके कारण मजदूरों से छुटकारा मिल जाए और जिन पर बहुत ज्यादा खर्चा आने वाला हो।
- बहुत सारे उद्योगों में श्रमिकों की माँग मौसमी आधार पर घटती-बढ़ती रहती थी। गैसघरों और शराबखानों में जाड़ों के दौरान खासा काम रहता था। इस दौरान उन्हें ज्यादा मजदूरों की जरूरत होती थी। क्रिसमस के समय बुक बाइंडरों और प्रिंटरों को भी दिसंबर से पहले अतिरिक्त मजदूरों की दरकार रहती थी। बंदरगाहों पर जहाजों की मरम्मत और साफ-सफाई व सजावट का घटता-बढ़ता रहता था। वहाँ उद्योगपति मशीनों की बजाय मजदूरों को ही काम पर रखना पसंद करते थे।

मजदूरों की जिंदगी:

- बाज़ार में श्रम की प्रचुरता ने श्रमिकों के जीवन को कई तरह से प्रभावित किया:
 - **नौकरी में उच्च प्रतिस्पर्धा:** कामगारों को नौकरी की तलाश में शहरों की यात्रा करनी पड़ती थी, और कई को नौकरी पाने के लिए हफ्तों या महीनों तक इंतज़ार करना पड़ता था।
 - **कम मजदूरी:** औसत आँकड़े व्यवसायों के बीच भिन्नता और साल-दर-साल होने वाले उतार-चढ़ाव को छिपाते हैं। आर्थिक कठिनाई के समय, मजदूरी का वास्तविक मूल्य काफी कम हो जाता है।
 - **मौसमी रोज़गार:** कई उद्योगों में पीक और ऑफ़ सीज़न होते हैं, इसलिए कामगारों को अक्सर बेरोज़गारी के दौर का सामना करना पड़ता है।
 - **नई तकनीक में बाधा:** कामगार नई तकनीक की शुरुआत के प्रति शत्रुतापूर्ण थे। उन्हें डर था कि मशीनें उनकी जगह ले लेंगी और उन्हें काम से निकाल देंगी।
- उन्नीसवीं सदी के मध्य में सबसे अच्छे हालात में भी लगभग 10 प्रतिशत शहरी आबादी निहायत गरीब थी। 1830 के दशक में आई आर्थिक मंदी जैसे दौरों में बेरोज़गारों की संख्या विभिन्न क्षेत्रों में 35 से 75 प्रतिशत तक पहुँच जाती थी। इन चुनौतियों के बावजूद, विक्टोरियन ब्रिटेन में श्रमिकों के लिए कुछ सकारात्मक प्रगति हुई।
 - 1840 के दशक के बाद शहरों में निर्माण गतिविधियाँ तेज़ हो गईं, जिससे रोज़गार के नए अवसर खुले।
 - 1840 के दशक में परिवहन उद्योग में कार्यरत श्रमिकों की संख्या दोगुनी हो गई और अगले 30 वर्षों में फिर से दोगुनी हो गई।

उपनिवेशों में औद्योगिकीकरण

भारतीय कपड़े का युग:

- मशीन उद्योगों के युग से पहले अंतरराष्ट्रीय कपड़ा बाज़ार में भारत के रेशमी और सूती उत्पादों का ही दबदबा रहता था। बहुत सारे देशों में मोटा कपास पैदा होता था लेकिन भारत में पैदा होने वाला कपास महीन किस्म का था। आर्मीनियन और फ़ारसी सौदागर पंजाब से अफ़ग़ानिस्तान, पूर्वी फ़ारस और मध्य एशिया के रास्ते यहाँ की चीज़ें लेकर जाते थे। हालाँकि, यूरोपीय कंपनियों ने धीरे-धीरे शक्ति प्राप्त की और व्यापार पर एकाधिकार स्थापित किया।
- इससे भारतीय बंदरगाहों (सूरत और हुगली) में गिरावट आई और यूरोपीय नियंत्रित बंदरगाहों (बॉम्बे और कलकत्ता) की ओर रुख हुआ। यूरोपीय कंपनियों ने माल के लिए कम कीमत चुकाई और यूरोप से तैयार माल आयात किया, जिससे भारतीय वस्त्रों की माँग कम हो गई।
- परिणामस्वरूप, कई बुनकर और अन्य कारीगर अपने व्यापार को छोड़ने के लिए मजबूर हो गए।
- **बुनकरों का क्या हुआ?**
 - 1760 के दशक के बाद, ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल और कर्नाटक में राजनीतिक सत्ता स्थापित की। इससे कंपनी को व्यापार पर एकाधिकार का अधिकार प्राप्त हुआ और बुनकरों पर प्रबंधन और नियंत्रण की एक ऐसी प्रणाली विकसित करने का मौका मिला, जिससे प्रतिस्पर्धा खत्म हो गई, लागत नियंत्रित हुई और कपास और रेशमी सामानों की नियमित आपूर्ति सुनिश्चित हुई।
 - **कंपनी की प्रणाली दो मुख्य सिद्धांतों पर आधारित थी:**
 - कपड़ा व्यापार से जुड़े मौजूदा व्यापारियों और दलालों को खत्म करना और बुनकरों पर अधिक प्रत्यक्ष नियंत्रण स्थापित करना। कंपनी ने बुनकरों की निगरानी करने, आपूर्ति एकत्र करने और कपड़े की गुणवत्ता की जाँच करने के लिए एक वेतनभोगी नौकर नियुक्त किया, जिसे गुमास्ता कहा जाता था।
 - कंपनी के बुनकरों को अन्य खरीदारों के साथ लेन-देन करने से रोकना। कंपनी ने यह काम अग्रिम की प्रणाली के माध्यम से किया, जिसके तहत बुनकरों को कच्चा माल खरीदने के लिए ऋण लेने के बाद अपने द्वारा उत्पादित कपड़ा गुमास्ता को सौंपना पड़ता था।

● इस प्रणाली के बुनकरों पर कई नकारात्मक परिणाम देखे गए:

- बुनकरों के पास मोल-भाव करने और अलग-अलग खरीदारों को बेचने का मौका नहीं था। कंपनी से उन्हें जो कीमत मिलती थी, वह बहुत कम होती थी और उन्होंने जो ऋण लिया था, उसने उन्हें कंपनी से बांध दिया था।
- बुनकरों के साथ अक्सर गुमाश्ता बुरा व्यवहार करते थे। गुमाश्ता बाहरी लोग थे, जिनका गांव से कोई दीर्घकालिक सामाजिक संबंध नहीं था। वे अहंकारी थे और आपूर्ति में देरी के लिए बुनकरों को दंडित करते थे।
- बुनकरों को कम मजदूरी पर लंबे समय तक काम करने के लिए मजबूर किया जाता था। बुनाई के लिए पूरे परिवार के श्रम की आवश्यकता होती थी, जिसमें बच्चे और महिलाएँ सभी प्रक्रिया के विभिन्न चरणों में लगे होते थे।
- कच्चे कपास की कमी। जब अमेरिकी गृहयुद्ध छिड़ा और अमेरिका से कपास की आपूर्ति बंद हो गई, तो ब्रिटेन ने कपास के लिए भारत का रुख किया। इससे भारत में कच्चे कपास की कमी हो गई और कपास की कीमत में वृद्धि हुई।
- भारतीय कपड़ा कारखानों का उदय। उन्नीसवीं सदी के अंत तक, भारत में कारखानों ने मशीन से बने वस्त्रों का उत्पादन शुरू कर दिया। इससे हाथ से बुने हुए कपड़ों की माँग और कम हो गई।
- इन परिस्थितियों के परिणामस्वरूप, कई बुनकर गाँव छोड़कर पलायन कर गए या कृषि मजदूरी करने लगे। कई बुनकरों को अपना व्यापार छोड़कर दूसरे क्षेत्रों में काम ढूँढ़ने के लिए मजबूर होना पड़ा। इससे भारतीय वस्त्रों की गुणवत्ता और विविधता में गिरावट आई।

भारत से वस्त्र निर्यात में गिरावट:

□ भारतीय वस्त्र निर्यात में कई कारणों से गिरावट आई:

- उस समय ब्रिटिश कपास उद्योग लगातार विकसित होता जा रहा था और उसने भारतीय वस्त्रों पर आयात शुल्क लगाने के लिए सरकार पर दबाव बनाना शुरू कर दिया। इससे भारतीय वस्त्रों के लिए ब्रिटिश बाजार में प्रतिस्पर्धा करना मुश्किल हो गया।
- ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीय बाजारों में ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं को बेचना शुरू कर दिया। इससे भारतीय वस्त्रों की माँग और कम हो गई।
- मशीन से बने ब्रिटिश वस्त्र भारतीय वस्त्रों की तुलना में सस्ते थे। इससे भारतीय बुनकरों के लिए घरेलू स्तर पर प्रतिस्पर्धा करना मुश्किल हो गया।

- भारतीय कपड़ा उद्योग के पतन के कारण कई बुनकरों ने अपना व्यापार छोड़ दिया और कृषि मजदूरी जैसे अन्य क्षेत्रों में पलायन कर गए। इससे भारतीय वस्त्रों की गुणवत्ता और विविधता में गिरावट आई।

विचारणीय बिंदु

क्या आपको लगता है कि भारतीय कपड़ा उद्योग का पतन और यूरोपीय नियंत्रित व्यापार बंदरगाहों की ओर स्थानांतरण औद्योगीकरण और औपनिवेशिक शासन का अपरिहार्य परिणाम था, या क्या ऐसे वैकल्पिक रास्ते थे जो वैश्विक कपड़ा बाजार में भारत के प्रभुत्व को बनाए रख सकते थे?



फैक्टोरियों का आना:

- बंबई में पहली कपड़ा मिल 1854 में लगी और दो साल बाद उसमें उत्पादन होने लगा। 1862 तक वहाँ ऐसी चार मिलें काम कर रही थीं। उनमें 94,000 तकलियाँ और 2,150 कर्घे थे। उसी समय बंगाल में जूट मिलें खुलने लगीं। वहाँ देश की पहली जूट मिल 1855 में और दूसरी 7 साल बाद 1862 में चालू हुई।
- उत्तरी भारत में एल्यिन मिल 1860 के दशक में कानपुर में खुली। इसके साल भर बाद अहमदाबाद की पहली कपड़ा मिल भी चालू हो गई। 1874 में मद्रास में भी पहली कताई और बुनाई मिल खुल गई।

प्रारंभिक भारतीय उद्यमी:

- भारत में उद्योग स्थापित करने वाले शुरुआती उद्यमी विभिन्न पृष्ठभूमियों से आये थे।
 - व्यापार से पैसा कमाने के बाद उनमें से कुछ व्यवसायी भारत में औद्योगिक उद्यम स्थापित करना चाहते थे। बंगाल में द्वारकानाथ टैगोर ने चीन के साथ व्यापार में खूब पैसा कमाया और वे उद्योगों में निवेश करने लगे। 1830-1840 के दशकों में उन्होंने 6 संयुक्त उद्यम कंपनियाँ लगा ली थीं।
 - 1840 के दशक में आए व्यापक व्यावसायिक संकटों में औरों के साथ-साथ टैगोर के उद्यम भी बैठ गए। लेकिन उन्नीसवीं सदी में चीन के साथ व्यापार करने वाले बहुत सारे व्यवसायी सफल उद्योगपति भी साबित हुए। बंबई में डिनशाँ पेटिट और आगे चलकर देश में विशाल औद्योगिक साम्राज्य स्थापित करने वाले जमशेदजी नुसरवानजी टाटा जैसे पारसियों ने आंशिक रूप से चीन को निर्यात करके और आंशिक रूप से इंग्लैंड को कच्ची कपास निर्यात करके पैसा कमा लिया था।
 - 1917 में कलकत्ता में देश की पहली जूट मिल लगाने वाले मारवाड़ी व्यवसायी सेठ हुकुमचंद ने भी चीन के साथ व्यापार किया था। यही काम प्रसिद्ध उद्योगपति जी.डी. बिड़ला के पिता और दादा ने किया। फिर भी अन्य ऐसे फाइनेंसर थे जिन्होंने अबसर खुलने पर उद्योगों में निवेश किया।

- ❑ **प्रतिबंधों के तहत संचालित:** जैसे-जैसे भारतीय व्यापार पर औपनिवेशिक नियंत्रण कड़ा होता गया, भारतीय व्यापारियों को बढ़ते प्रतिबंधों का सामना करना पड़ा। उन्हें यूरोप के साथ निर्मित वस्तुओं के व्यापार पर रोक लगा दी गई और उन्हें ज्यादातर कच्चे माल और खाद्यान्नों का निर्यात करना पड़ा। उन्हें धीरे-धीरे शिपिंग व्यवसाय से भी बाहर कर दिया गया।
- ❑ **यूरोपीय नियंत्रण में:** यूरोपीय प्रबंध एजेंसियों ने प्रथम विश्व युद्ध तक भारतीय उद्योगों के एक बड़े क्षेत्र को नियंत्रित किया। इन एजेंसियों ने पूँजी जुटाई, संयुक्त स्टॉक कंपनियाँ स्थापित कीं और उनका प्रबंधन किया। भारतीय वित्तपोषक पूँजी प्रदान करते थे, जबकि यूरोपीय एजेंसियाँ सभी निवेश और व्यावसायिक निर्णय लेती थीं।

मजदूर कहाँ से आए?

औद्योगिक कार्यबल:

- ❑ कारखानों को श्रमिकों की आवश्यकता थी, और कारखानों के विस्तार के साथ माँग में वृद्धि हुई। 1901 में, भारत में 584,000 कारखाने के श्रमिक थे, और 1946 तक, यह संख्या 2,436,000 से अधिक हो गई थी।
- ❑ कारखानों के आस-पास के जिलों से श्रमिक आते थे, किसान और कारीगर काम की तलाश में औद्योगिक केंद्रों में जाते थे। मिलों के श्रमिक अक्सर गाँव और शहर के बीच घूमते रहते थे, फसल और त्योहारों के दौरान अपने गाँव के घरों में लौट आते थे।
- ❑ उस समय नौकरी पाना मुश्किल था, हालाँकि जब मिलें बढ़ गईं तो श्रमिकों की माँग बढ़ गई। मिलों में प्रवेश भी प्रतिबंधित था, और उद्योगपति आमतौर पर नए लोगों को भर्ती करने के लिए एक जॉबर को नियुक्त करते थे। जॉबर अक्सर एक पुराना और भरोसेमंद कर्मचारी होता था, और उसके पास श्रमिकों के जीवन पर कुछ अधिकार और शक्ति होती थी।
- ❑ कारखानों के श्रमिकों की संख्या समय के साथ बढ़ी, लेकिन वे कुल औद्योगिक कार्यबल का एक छोटा हिस्सा थे।

औद्योगिक विकास का अनुशासन

- ❑ **यूरोपीय प्रबंध एजेंसियाँ:** यूरोपीय प्रबंध एजेंसियाँ भारत में औद्योगिक उत्पादन पर हानी थीं, चाय और कॉफी के बागानों, खनन, नील और जूट में निवेश हेतु ये किसानों को विवश करती थीं। ये उत्पाद मुख्य रूप से निर्यात के लिए थे, भारत में बिक्री के लिए नहीं।
- ❑ जब भारतीय व्यापारियों ने 19वीं सदी के अंत में उद्योग स्थापित करना शुरू किया, तो उन्होंने भारतीय बाजार में मैनचेस्टर के सामानों के साथ प्रतिस्पर्धा करने से परहेज किया। उन्होंने मोटे सूती धागे का उत्पादन किया, जो भारत में ब्रिटिश आयात का एक महत्वपूर्ण हिस्सा नहीं था। इस धागे का इस्तेमाल भारत में हथकरघा बुनकरों द्वारा किया जाता था या चीन को निर्यात किया जाता था।
- ❑ **स्वदेशी आंदोलन का प्रभाव:** बीसवीं सदी के पहले दशक तक भारत में औद्योगीकरण का दर्ज़ा कई बदलावों की चपेट में आ चुका था। स्वदेशी आंदोलन को गति मिलने से राष्ट्रवादियों ने लोगों को विदेशी कपड़े के बहिष्कार के लिए प्रेरित किया। औद्योगिक समूह अपने सामूहिक हितों की रक्षा के लिए संगठित हो गए और उन्होंने आयात शुल्क बढ़ाने तथा अन्य रियायतें देने के लिए सरकार पर दबाव डाला। 1906 के बाद चीन भेजे जाने वाले भारतीय धागे के निर्यात में भी कमी आने लगी थी। चीनी बाजारों में चीन और जापान की मिलों के उत्पाद छा गए थे। फलस्वरूप, भारत के उद्योगपति धागे की बजाय कपड़ा बनाने लगे। 1900 से 1912 के भारत में सूती कपड़े का उत्पादन दोगुना हो गया।
 - इसके अतिरिक्त, चीन को भारतीय धागे का निर्यात कम हो गया, क्योंकि चीनी और जापानी मिलों के उत्पाद चीनी बाजार में भर गए।
 - इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप, भारतीय उद्योगपतियों ने धागे से कपड़ा उत्पादन की ओर रुख करना शुरू कर दिया। भारत में सूती वस्त्र वस्तुओं का उत्पादन 1900 और 1912 के बीच दोगुना हो गया।
- ❑ **प्रथम विश्व युद्ध:** प्रथम विश्व युद्ध ने नाटकीय रूप से नई परिस्थितियाँ पैदा कीं। युद्ध उत्पादन में व्यस्त ब्रिटिश मिलों के कारण, भारत में मैनचेस्टर के आयात में गिरावट आई। भारतीय मिलों के पास आपूर्ति के लिए अचानक एक विशाल घरेलू बाजार उपलब्ध हो गया। जैसे-जैसे युद्ध लंबा होता गया, युद्ध की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए भारतीय कारखानों को बुलाया गया। नई फैक्ट्रियाँ स्थापित की गईं और पुरानी फैक्ट्रियाँ कई शिफ्टों में चलने लगीं। कई नए कर्मचारियों को काम पर रखा गया और सभी को लंबे समय तक काम करना पड़ा। युद्ध के वर्षों में औद्योगिक उत्पादन में तेज़ी आई।
- ❑ **युद्ध के बाद की अवस्थिति:** युद्ध के बाद भारतीय बाजार में मैनचेस्टर को पहले वाली हैसियत कभी हासिल नहीं हो पायी। आधुनिकीकरण न कर पाने और अमेरिका, जर्मनी व जापान के मुकाबले कमजोर पड़ जाने के कारण ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था चरमरा गई थी। कपास का उत्पादन बहुत कम रह गया था और ब्रिटेन से होने वाले सूती कपड़े के निर्यात में ज़बरदस्त गिरावट आई। उपनिवेशों में विदेशी उत्पादों को हटाकर स्थानीय उद्योगपतियों ने घरेलू बाजारों पर क़ब्ज़ा कर लिया और धीरे-धीरे अपनी स्थिति मज़बूत बना ली।

लघु उद्योगों की बहुतायत:

- ❑ हालाँकि युद्ध के बाद फैक्ट्री उद्योगों में लगातार इज़ाफ़ा हुआ लेकिन अर्थव्यवस्था में विशाल उद्योगों का हिस्सा बहुत छोटा था। उनमें से ज्यादातर - 1911 में 67 प्रतिशत बंगाल और बंबई में स्थित थे। बाकी पूरे देश में छोटे स्तर के उत्पादन का ही दबदबा रहा।

- पंजीकृत फैक्ट्रियों में कुल औद्योगिक श्रम शक्ति का बहुत छोटा हिस्सा ही काम करता था। यह संख्या 1911 में 5 प्रतिशत और 1931 में 10 प्रतिशत थी। बाकी मजदूर गली-मोहल्लों में स्थित छोटी-छोटी वर्कशॉप और घरेलू इकाइयों में काम करते थे।
- बीसवीं सदी में हस्तशिल्प उत्पादन वास्तव में बढ़ा, यहाँ तक कि हथकरघा क्षेत्र के मामले में भी। यह आंशिक रूप से तकनीकी परिवर्तनों के कारण था, जैसे कि फ्लाई शटल का उपयोग, जिसने उत्पादकता बढ़ाई और श्रम की माँग कम की।
- बुनकरों के कुछ समूह मिल उद्योगों के साथ प्रतिस्पर्धा में जीवित रहने की बेहतर स्थिति में थे, जैसे कि वे जो कपड़े की बेहतर किस्मों या विशेष बुनाई का उत्पादन करते थे।
- बुनकर और अन्य शिल्पकार जिन्होंने बीसवीं सदी में उत्पादन का विस्तार जारी रखा, वे कठिन जीवन जीते थे और लंबे समय तक काम करते थे, लेकिन उनका जीवन और श्रम औद्योगीकरण की प्रक्रिया का अभिन्न अंग था।

वस्तुओं के लिए बाजार

- ब्रिटिश निर्माताओं ने भारतीय बाजार पर कब्जा करने का प्रयास किया, लेकिन भारतीय बुनकरों और शिल्पकारों, व्यापारियों और उद्योगपतियों ने औपनिवेशिक नियंत्रणों का विरोध किया, टैरिफ़ संरक्षण की माँग की, अपने स्वयं के स्थान बनाए और अपने उत्पादों के लिए बाजार का विस्तार करने का प्रयास किया।
- विज्ञापनों ने उत्पादों के लिए बाजारों का विस्तार करने और एक नई उपभोक्ता संस्कृति को आकार देने में भूमिका निभाई। मैनचेस्टर के उद्योगपतियों ने अपने कपड़े के बंडलों पर लेबल लगाए, जिन पर शब्द, पाठ और चित्र थे। उन्होंने भारतीय लोगों को परिचित और आकर्षक दिखने के लिए भारतीय देवी-देवताओं की छवियों का उपयोग किया।
- उन्नीसवीं सदी के आखिर में निर्माता अपने उत्पादों को बेचने के लिए कैलेंडर छपवाने लगे थे। अखबारों और पत्रिकाओं को तो पढ़े-लिखे लोग ही समझ सकते थे लेकिन कैलेंडर उनको भी समझ में आ जाते थे जो पढ़ नहीं सकते थे। चाय की दुकानों, दफ्तरों व मध्यवर्गीय घरों में ये कैलेंडर लटके रहते थे। जो इन कैलेंडरों को लगाते थे वे विज्ञापन को भी हर रोज़, पूरे साल देखते थे। इन कैलेंडरों में भी नए उत्पादों को बेचने के लिए देवताओं की तसवीर होती थी।
- देवताओं की तसवीरों की तरह महत्वपूर्ण व्यक्तियों, सम्राटों व नवाबों की तस्वीरें भी विज्ञापनों व कैलेंडरों में खूब इस्तेमाल होती थीं। इनका संदेश अक्सर यह होता था अगर आप इस शाही व्यक्ति का सम्मान करते हैं तो इस उत्पाद का भी सम्मान कीजिए; अगर इस उत्पाद को राजा इस्तेमाल करते हैं या उसे शाही निर्देश से बनाया गया है तो उसकी गुणवत्ता पर सवाल खड़ा नहीं किया जा सकता।
- भारतीय निर्माताओं ने राष्ट्रवाद और स्वदेशी आंदोलन को बढ़ावा देने के लिए विज्ञापनों का इस्तेमाल किया, लोगों से भारतीयों द्वारा उत्पादित उत्पादों को खरीदने का आग्रह किया।

मुद्रण संस्कृति और आधुनिक दुनिया

शुरुआती छपी किताबें:

- मुद्रण की सबसे पहली तकनीक चीन, जापान और कोरिया में विकसित हुई। यह छपाई हाथ से होती थी। तकरीबन 594 ई. से चीन में स्याही लगे काठ के ब्लॉक या तख्ती पर कागज़ को रगड़कर किताबें छपी जाने लगी थीं। चूँकि पतले, छिद्रित कागज़ के दोनों तरफ़ छपाई संभव नहीं थी, इसलिए पारंपरिक चीनी किताब 'एकॉर्डियन' शैली में, किनारों को मोड़ने के बाद सिल कर बनाई जाती थी। किताबों का सुलेखन या खुशनवीसी करनेवाले लोग दक्ष सुलेखक या खुशखत होते थे, जो हाथ से बड़े सुंदर-सुडौल अक्षरों में सही-सही कलात्मक लिखाई करते थे।
- 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, पश्चिमी मुद्रण तकनीक और यांत्रिक प्रेस का आयात किया गया, जिससे हाथ से छपाई से यांत्रिक छपाई की ओर बदलाव हुआ।

यूरोप में मुद्रण का आना:

- प्रिंट तकनीक 13वीं शताब्दी के अंत में यूरोप में आई, जब मार्को पोलो चीन से वुडब्लॉक प्रिंटिंग का ज्ञान लेकर आए। वुडब्लॉक प्रिंटिंग का उपयोग अभिजात वर्ग और अमीर मठवासी पुस्तकालयों के लिए लकड़ी संस्करणों के उत्पादन के लिए किया जाता था, साथ ही व्यापारियों और छात्रों के लिए सस्ती मुद्रित प्रतियाँ भी बनाई जाती थीं। हालाँकि, वुडब्लॉक प्रिंटिंग किताबों की लगातार बढ़ती माँग को पूरा नहीं कर सकी।
- 15वीं शताब्दी की शुरुआत में, जोहान गुटेनबर्ग ने जर्मनी के स्ट्रासबर्ग में पहली ज्ञात प्रिंटिंग प्रेस का आविष्कार किया। इस आविष्कार ने पुस्तक उत्पादन में क्रांति ला दी, जिससे पुस्तकों का उत्पादन जल्दी और सस्ते में संभव हो गया।

गुटेनबर्ग और प्रिंटिंग प्रेस:

जापान में मुद्रण:

- हाथ से छपाई की तकनीक जापान में 768-770 ई. के आसपास शुरू की गई थी। सबसे पुरानी जापानी पुस्तक, **बौद्ध हीरा सूत्र, 868 ई. में छपी थी।**
- चित्र वस्त्रों, ताश के पत्तों और कागज के नोटों पर छपे थे। कविता और गद्य नियमित रूप से प्रकाशित होते थे, और किताबें सस्ती और प्रचुर मात्रा में थीं।
- दृश्य सामग्री की छपाई ने महत्वपूर्ण तरीके से प्रकाशन प्रथाओं को जन्म दिया, जैसे कि सुंदर शहरी संस्कृति को दर्शाने वाले चित्रों के सचित्र संग्रह।
- पुस्तकालय और किताबों की दुकानें विभिन्न विषयों पर हाथ से छपी सामग्री से भरी हुई थीं।

जर्मन लोहार और सुनार जोहान गुटेनबर्ग ने 1440 के दशक में प्रिंटिंग प्रेस का आविष्कार किया था। उन्होंने ऑलिव प्रेस और लेड मोल्ड जैसी मौजूदा तकनीक को अपनाया, ताकि एक ऐसी मशीन बनाई जा सके जो जल्दी और सस्ते में किताबें बना सके।

- गुटेनबर्ग ने जो पहली किताब छपी वह बाइबल थी, और उन्होंने तीन साल में लगभग 180 प्रतियाँ छपीं। यह उस समय के हिसाब से बहुत तेज था।
- पहले, छपी हुई किताबें दिखने और लेआउट में हस्तलिखित पांडुलिपियों से मिलती - जुलती थीं। हालाँकि, जैसे-जैसे प्रिंटिंग प्रेस की संख्या बढ़ी, किताबों का उत्पादन भी तेजी से बढ़ा। 16वीं सदी के अंत तक, यूरोप में छपी हुई किताबों की 200 मिलियन से ज्यादा प्रतियाँ छपी जा चुकी थीं।
- प्रिंटिंग प्रेस के आविष्कार ने किताबों के उत्पादन में क्रांति ला दी और यूरोपीय समाज और संस्कृति पर इसका गहरा असर हुआ। इसने किताबों को ज्यादा लोगों तक पहुँचाया, जिससे साक्षरता और ज्ञान का प्रसार हुआ।

मुद्रण क्रांति और उसका असर

नया पाठक वर्ग:

- छापेखाने के आने से एक नया पाठक वर्ग पैदा हुआ। छपाई से किताबों की कीमत गिरी। किताब की हर प्रति के उत्पादन में जो वक्रत और श्रम लगता था, वह कम हो गया, और बड़ी तादाद में प्रतियाँ छापना आसान हो गया। बाजार किताबों से पट गई, पाठक वर्ग भी बृहत्तर होता गया। प्रिंटिंग प्रेस ने किताबों को सस्ता और अधिक सुलभ बना दिया, जिससे एक नया पाठक वर्ग उभर कर सामने आया।
- यह परिवर्तन सरल नहीं था, क्योंकि बहुत से लोग निरक्षर थे। किताबों तक पहुँच आसान होने से पढ़ने की एक नयी संस्कृति विकसित हुई। अब तक आमलोग मौखिक संसार में जीते थे। वे धार्मिक किताबों का वाचन सुनते थे, गाथा-गीत उनको पढ़कर सुनाए जाते थे, और किस्से भी उनके लिए बोलकर पढ़े जाते थे। ज्ञान का मौखिक लेन-देन ही होता था। लोगबाग समूह में ही दास्तान सुनते, या कोई आयोजन देखते, आए थे। छपाई क्रांति के पहले किताबें न केवल महँगी थीं, बल्कि उन्हें पर्याप्त मात्रा में छापना भी असंभव था। अब किताबें समाज के व्यापक तबकों तक पहुँच सकती थीं। अगर पहले की जनता श्रोता थी, तो कह सकते हैं कि अब पाठक-जनता अस्तित्व में आ गई थी।

धार्मिक विवाद और प्रिंट का दर:

- छापेखाने से विचारों के व्यापक प्रचार-प्रसार और बहस-मुबाहिसे के द्वार खुले। स्थापित सत्ता के विचारों से असहमत होने वाले लोग भी अब अपने विचारों को छापकर उन्हें फैला सकते थे। छपे हुए संदेश के ज़रिए वे लोगों को अलग ढंग से सोचने के लिए मना सकते थे, या कोई कार्रवाई करने के लिए प्रेरित कर सकते थे। जाहिर है कि इस बात का जीवन के कई क्षेत्रों में गंभीर महत्व था।
- धर्म पर प्रिंट के प्रभाव का एक उदाहरण प्रोटेस्टेंट सुधार है।
- धर्म-सुधारक मार्टिन लूथर ने रोमन कैथलिक चर्च की कुरीतियों की आलोचना करते हुए अपनी पिच्छानवे स्थापनाएँ लिखीं। इसकी एक छपी प्रति विटेनबर्ग के गिरजाघर के दरवाजे पर टाँगी गई। इसमें लूथर ने चर्च को शास्त्रार्थ के लिए चुनौती दी थी। जल्द ही लूथर के लेख बड़ी तादाद में छापे और पढ़े जाने लगे। इसके नतीजे में चर्च में विभाजन हो गया और प्रोटेस्टेंट धर्मसुधार की शुरुआत हुई।

मुद्रित एवं लोकप्रिय धार्मिक साहित्य:

- प्रिंट और लोकप्रिय धार्मिक साहित्य ने आम लोगों के बीच भी आस्था की नई व्याख्याओं को प्रेरित किया। यही कारण था कि कुछ ही हफ्तों में न्यू टेस्टामेंट के लूथर के तर्जुमे या अनुवाद की 5000 प्रतियाँ बिक गईं, और तीन महीने के अंदर दूसरा संस्करण निकालना पड़ा।
- 16वीं शताब्दी में, एक इतालवी मिलर मेनोचियो ने किताबें पढ़ीं और ईश्वर और सृष्टि पर अपने विचार विकसित किए, जिससे कैथलिक चर्च नाराज़ हो गया। उसे दो बार गिरफ्तार किया गया और अंततः उसे मार दिया गया।
- चर्च ने प्रकाशकों और पुस्तक विक्रेताओं पर कठोर नियंत्रण लगाया और निषिद्ध (प्रतिबंधित) पुस्तकों की एक सूची बनाई।

साक्षरता और लोकप्रिय साहित्य ने यूरोप को बदल दिया:

- 17वीं और 18वीं शताब्दी में यूरोप में साक्षरता दर में काफी वृद्धि हुई, जिससे पढ़ने की संस्कृति में उछाल आया। नए पाठकों को लक्षित करते हुए लोकप्रिय साहित्य के नए रूप प्रिंट में दिखाई दिए। पुस्तक विक्रेताओं ने गाथागीत, लोककथाएँ, रोमांस, इतिहास और समाचार पत्र जैसी सस्ती किताबें बेचीं।
- सामयिक प्रेस का विकास हुआ, जिसमें मनोरंजन के साथ समसामयिक मामलों की जानकारी को शामिल किया गया।
- वैज्ञानिक और दार्शनिक विचार आम लोगों के लिए अधिक सुलभ हो गए, जिससे पाठकों का एक व्यापक वर्ग प्रभावित हुआ।

सामाजिक परिवर्तन के साधन के रूप में प्रिंटिंग प्रेस:

दुनिया के ज़ालिमों, अब हिलोगे तुम !

- अठारहवीं सदी के मध्य तक यह आम विश्वास बन चुका था कि किताबों के ज़रिए प्रगति और ज्ञानोदय होता है। कई सारे लोगों का मानना था कि किताबें दुनिया बदल सकती हैं, कि वे निरंकुशवाद और आतंकी राजसत्ता समाज को मुक्ति दिलाकर ऐसा दौर लाएंगी जब विवेक और बुद्धि का राज होगा।
- अठारहवीं सदी फ्रांस के एक उपन्यासकार लुई सेबेस्टिएन मर्सिए ने घोषणा की, “छापाखाना प्रगति का सबसे ताकतवर औज़ार है, इससे बन रही जनमत की आँधी में निरंकुशवाद उड़ जाएगा।”
 - मर्सिए के उपन्यासों में नायक अक्सर किताबें पढ़ने से बदल जाते हैं। वे किताबें घोंटते हैं, किताबों की दुनिया में जीते हैं, और इसी क्रम में ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। ज्ञानोदय को लाने और निरंकुशवाद के आधार को नष्ट करने में छापेखाने की भूमिका के बारे में आश्चर्य मर्सिए ने कहा, “हे निरंकुशवादी शासकों, अब तुम्हारे काँपने का वक्त आ गया है! आभासी लेखक की कलम के ज़ोर के आगे तुम हिल उठोगे !”

मुद्रण संस्कृति और फ्रांसीसी क्रांति:

- प्रिंट संस्कृति ने फ्रांसीसी क्रांति में निम्नलिखित भूमिका निभाई:
 - ज्ञानोदय के विचारों को फैलाना जिसने पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था को चुनौती दी।
 - एक सार्वजनिक संस्कृति बनाने का प्रयास किया, जहाँ लोग नए विचारों पर बहस और चर्चा करने के लिए सक्षम हो सके।
 - राजशाही की वैधता को कम करने का प्रयास किया गया।
- हालाँकि, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि प्रिंट संस्कृति ही एकमात्र कारक नहीं थी जिसने फ्रांसीसी क्रांति को जन्म दिया। आर्थिक असमानता और राजनीतिक अस्थिरता जैसे अन्य कारकों ने भी भूमिका निभाई।

उन्नीसवीं सदी

प्रिंट संस्कृति के विस्तार का समाज पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। इसने ज्ञान को अधिक व्यापक लोगों तक पहुँचाया और साक्षरता और शिक्षा को बढ़ावा देने में मदद की। इसने बच्चों, महिलाओं और मजदूर वर्ग जैसे नए समूहों के रूप में नया पाठकवर्ग तैयार हुआ।

बच्चे, महिलाएँ और मजदूर**नये पाठकों की संख्या में वृद्धि:**

- **बच्चे:** उन्नीसवीं सदी के आखिर से प्राथमिक शिक्षा के अनिवार्य होने के चलते बच्चे, पाठकों की एक अहम श्रेणी बन गए। प्रकाशन उद्योग के लिए पाठ्य-पुस्तकों का उत्पादन महत्वपूर्ण हो गया। फ्रांस में 1857 में सिर्फ बाल-पुस्तकें छापने के लिए एक प्रेस या मुद्रणालय स्थापित किया गया। इस प्रेस में पुरानी और नयी, दोनों तरह की पुरानी कथाओं और लोक-कथाओं का प्रकाशन किया गया। जर्मनी के ग्रिम बंधुओं ने बरसों लगाकर किसानों के बीच से लोक कथाएँ जमा कीं। उनके द्वारा एकत्रित सामग्री का संपादन हुआ, फिर कहानियों को अंततः 1812 के एक संकलन में छपा गया।
- **महिलाएँ:** महिलाएँ पाठिका और लेखिका की भूमिका में ज्यादा अहम हो गईं। पेनी मैगज़ींस या एकपैसे पत्रिकाएँ खास तौर पर उन्हीं के लिए होती थीं, वैसे ही जैसे कि सही चाल-चलन और गृहस्थी सिखाने वाली निर्देशिकाएँ। उन्नीसवीं सदी में जब उपन्यास छपने लगे तो महिलाएँ उनका अहम पाठक मानी गईं। मशहूर उपन्यासकारों में लेखिकाएँ अग्रणी थीं: जेन ऑस्टिन, ब्रॉन्ट बहनें, जॉर्ज इलियट, आदि। उनके लेखन से नयी नारी की परिभाषा उभरी: जिसका व्यक्तित्व सुदृढ़ था, जिसमें गहरी सूझ-बूझ थी, और जिसका अपना दिमाग था, अपनी इच्छाशक्ति थी।

विचारणीय बिंदु

कलम तलवार से अधिक शक्तिशाली है। यह सच है क्योंकि वे विचारों और सोच को प्रचारित करने में सक्षम हैं। और प्रेस के आविष्कार ने इसमें एक प्रमुख भूमिका निभाई। आपके अनुसार प्रिंट क्रांति ने सामाजिक परिवर्तन में विशेष रूप से नए विचारों को प्रसारित करने, स्थापित अधिकारियों को चुनौती देने और 17वीं और 18वीं शताब्दी के दौरान यूरोप में साक्षरता और ज्ञान को बढ़ावा देने के मामले में, कैसे योगदान दिया?



- ❑ **मजदूर वर्ग:** सत्रहवीं सदी से ही किराए पर किताब देने वाले पुस्तकालय अस्तित्व में गए थे। उन्नीसवीं सदी के इंग्लैंड में ऐसे पुस्तकालयों का उपयोग सफेद-कॉलर मजदूरों, दस्तकारों और निम्नवर्गीय लोगों को शिक्षित करने के लिए किया गया। काम के दिन के छोटे होने के बाद मजदूरों को अपने सुधा और आत्म-अभिव्यक्ति के लिए थोड़ा वक्त मिलने लगा। उन्होंने बड़ी संख्या में राजनीतिक पत्र, और आत्मकथाएँ लिखीं।

नए तकनीकी परिष्कार:

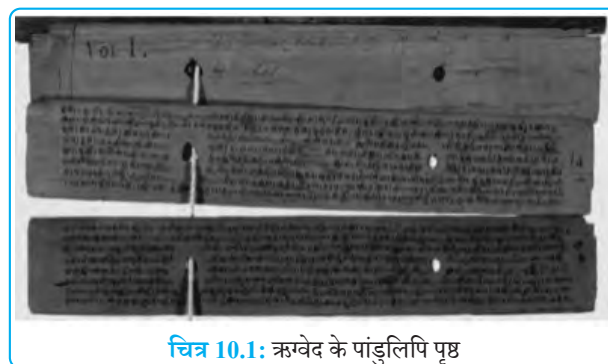
- ❑ 19वीं सदी में, मुद्रण में कई तकनीकी नवाचार हुए, जिनमें बिजली से चलने वाला बेलनाकार प्रेस और ऑफसेट प्रेस शामिल हैं। इन नवाचारों ने पुस्तकों और समाचार पत्रों को अधिक तेजी से और कुशलता से छापना संभव बनाया।
- ❑ प्रकाशकों ने अपने उत्पादों को बेचने के लिए नई रणनीतियाँ भी विकसित कीं, जैसे कि पत्रिकाओं में उपन्यासों को क्रमबद्ध करना और लोकप्रिय कार्यों को सस्ते सीरीज में बेचना।
- ❑ 20वीं सदी में, डस्ट कवर या बुक जैकेट की शुरुआत हुई और प्रकाशकों ने महामंदी के दौरान खरीदारी को बनाए रखने के लिए सस्ते पेपरबैक संस्करण निकालना शुरू कर दिया। इन नवाचारों का प्रकाशन उद्योग और लोगों द्वारा पुस्तकों और समाचार पत्रों के उपभोग के तरीके पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा।
- ❑ उन्होंने कम लागत पर अधिक पुस्तकें और समाचार पत्र बनाना संभव बनाया, जिससे वे अधिक लोगों के लिए सुलभ हो गए।

भारत में मुद्रण का संसार

मुद्रण युग से पहले की पाण्डुलिपियाँ:

हस्तलिखित ग्रंथों की समृद्ध परंपरा

- ❑ भारत में संस्कृत, अरबी, फ़ारसी और विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में हस्त-लिखित पाण्डुलिपियों की पुरानी और समृद्ध परंपरा थी। पाण्डुलिपियाँ ताड़ के पत्तों या हाथ से बने कागज़ पर नक़ल कर बनाई जाती थीं। कभी-कभी तो पत्तों पर बेहतरीन तस्वीरें भी बनाई जाती थीं। फिर उन्हें उम्र बढ़ाने के खयाल से तख्तियों की जिल्द में या सिलकर बाँध दिया जाता था। उन्नीसवीं सदी के अंत तक, छपाई के आने के बाद भी, पाण्डुलिपियाँ छपी जाती रहीं।
- ❑ यहाँ तक कि पढ़े-लिखे लोग भी अक्सर पाठ नहीं पढ़ते थे, क्योंकि शिक्षक छात्रों को याद से पाठ के कुछ अंश लिखवाते थे।



चित्र 10.1: ऋग्वेद के पाण्डुलिपि पृष्ठ

छपाई भारत आई

भारतीय प्रेस का विकास:

- ❑ भारत में प्रिंटिंग प्रेस की शुरुआत 16वीं शताब्दी में पुर्तगाली मिशनरियों द्वारा की गई थी।
- ❑ कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट मिशनरियों ने विभिन्न भारतीय भाषाओं में पुस्तकें छपीं।
- ❑ भारत में अंग्रेजी भाषा की प्रेस 18वीं शताब्दी के अंत तक विकसित नहीं हुई थी।
- ❑ भारत में पहला अंग्रेजी भाषा का समाचार पत्र बंगाल गजट था, जिसका संपादन जेम्स ऑगस्टस हिक्की ने किया था।
 - हिक्की का समाचार पत्र “बंगाल गजट” ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की आलोचना करता था, जिसके कारण गवर्नर-जनरल वॉरेन हेस्टिंग्स ने जेम्स ऑगस्टस हिक्की पर मुकदमा चलाया।
- ❑ 18वीं शताब्दी के अंत तक, भारत में कई समाचार पत्र और पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही थीं, जिनमें कुछ भारतीयों द्वारा प्रकाशित भी थीं (बंगाल गजट, गंगाधर भट्टाचार्य द्वारा निकाला जाने वाला साप्ताहिक समाचार पत्र)।

धार्मिक सुधार और सार्वजनिक बहस:

- ❑ उन्नीसवीं सदी की शुरुआत से ही धार्मिक मसलों को लेकर बहसों का बाजार गर्म था। अलग-अलग समूह औपनिवेशिक समाज में हो रहे बदलावों से जूझते हुए, धर्म की अपनी-अपनी व्याख्या पेश कर रहे थे।
- ❑ कुछ तो मौजूदा रीति-रिवाजों की आलोचना करते हुए उनमें सुधार चाहते थे, जबकि कुछ अन्य समाज-सुधारकों के तर्कों के खिलाफ़ खड़े थे।
- ❑ हिंदू और मुस्लिम दोनों सुधारकों ने अपने विचारों को फैलाने के लिए प्रिंट का इस्तेमाल किया।

- बहस के दोनों पक्षों के लोगों ने आम लोगों की रोजमर्रा की भाषा में ट्रेक्ट और समाचार पत्र प्रकाशित किए ताकि अधिक लोग उनके तर्कों को समझ सकें।
- इस दौरान प्रकाशित होने वाले कुछ समाचार पत्रों और ट्रेक्टों में संवाद कौमुदी, समाचार चंद्रिका (1821, राममोहन राय) और जाम-ए-जहाँ नामा, शम्सुल अखबार (1822, फ़ारसी समाचार पत्र) और बॉम्बे समाचार (गुजराती समाचार पत्र) शामिल थे।
- प्रिंट ने स्थानीय भाषाओं में धार्मिक ग्रंथों को पढ़ने को भी प्रोत्साहित किया, जिससे वे अधिक लोगों के लिए सुलभ हो गए और धार्मिक चर्चाओं और बहसों में वृद्धि हुई।
- परस्पर विरोधी विचारों के प्रकाशन को प्रोत्साहित करने के अलावा, मुद्रण ने भारत के विभिन्न भागों में समुदायों और लोगों को जोड़ा तथा अखिल भारतीय पहचान का निर्माण किया।

भारतीय साहित्य और कला पर मुद्रण का प्रभाव:

- प्रिंटिंग प्रेस ने उपन्यास, लघु कथाएँ, निबंध और गीत जैसे नए प्रकार के लेखन की माँग पैदा की। साहित्य के इन नए रूपों ने आम लोगों के जीवन, अनुभवों और भावनाओं को प्रतिबिंबित किया और आधुनिकता, परंपरा, धर्म, राजनीति और समाज के बारे में लोकप्रिय विचारों को आकार देने में मदद की।
- प्रिंटिंग प्रेस ने दृश्य छवियों को कई प्रतियों में पुनः प्रस्तुत करना भी संभव बना दिया, जिससे एक नई दृश्य संस्कृति का विकास हुआ।
- धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक विषयों को दर्शाने वाले सस्ते प्रिंट और कैलेंडर बाजारों में लोकप्रिय हो गए।
- पत्रिकाओं और अखबारों में सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों पर टिप्पणी करते हुए कैरिकेचर और कार्टून प्रकाशित किए गए।



चित्र 10.2: राजा रवि वर्मा द्वारा राजा ऋतुध्वज, राजा रवि वर्मा ने असंख्य पौराणिक चित्रों का निर्माण किया जो रवि वर्मा प्रेस में मुद्रित किए गए थे।

महिलाएँ और मुद्रण

भारत में महिलाओं के जीवन पर प्रिंट का प्रभाव:

- 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी की शुरुआत में, भारत में ज्यादा से ज्यादा महिलाएँ पढ़ना सीख रही थीं। यह आंशिक रूप से सामाजिक सुधारों और महिला शिक्षा के उदय के कारण था।
- जैसे-जैसे ज्यादा महिलाएँ साक्षर होती गईं, महिलाओं के लेखन की माँग बढ़ती गई। महिलाओं की पत्रिकाएँ और उपन्यास लोकप्रिय होते गए और महिलाओं ने अपने अनुभवों के बारे में लिखना शुरू कर दिया, जिसमें पितृसत्तात्मक समाज में उनके सामने आने वाली चुनौतियाँ भी शामिल थीं।
- कुछ महिला लेखिकाएँ, जैसे कि ताराबाई शिंदे और पंडिता रमाबाई ने उच्च जाति की हिंदू महिलाओं, खास तौर पर विधवाओं के दयनीय जीवन के बारे में जुनून और आक्रोश को लिखा।
- एक रूढ़िवादी घराने की एक युवा विवाहित महिला रशसुंदरी देवी ने अपनी रसोई की गोपनीयता में पढ़ना सीखा और बाद में अपनी आत्मकथा लिखी, जो बंगाली में प्रकाशित पहली सबसे अधिक पृष्ठों वाली आत्मकथा थी।
- राम चड्ढा जैसी अन्य महिला लेखिकाओं ने महिलाओं को अपने पतियों के प्रति आज्ञाकारी होने का तरीका सिखाने के लिए स्त्री धर्म विचार के बारे में लिखा।
- महिला लेखन ने भारतीय समाज में महिलाओं के सामने आने वाली चुनौतियों के बारे में जागरूकता बढ़ाने और सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा देने में मदद की।

प्रिंट और गरीब जनता

भारत में प्रिंट संस्कृति और नए सामाजिक आंदोलनों का उदय:

- 19वीं सदी में मद्रास के शहरों में चौराहों पर सस्ती किताबें बेची जाती थीं, जिससे वे गरीब लोगों के लिए सुलभ हो जाती थीं।
- बीसवीं सदी के आरंभ से सार्वजनिक पुस्तकालय खुलने लगे थे, जिससे किताबों की पहुँच निस्संदेह बढ़ी। ये पुस्तकालय अक्सर शहरों या कस्बों में होते थे, या यदा-कदा संपन्न गाँवों में भी। स्थानीय अमीरों के लिए पुस्तकालय खोलना प्रतिष्ठा की बात थी।
- 19वीं सदी के उत्तरार्ध में जातिगत भेदभाव पर छपे हुए ट्रेक्ट और निबंध सामने आने लगे।
 - उदाहरण के लिए, ज्योतिबा फुले ने अपनी पुस्तक गुलामगिरी (1871) में जाति व्यवस्था के अन्याय के बारे में लिखा।
 - 20वीं सदी में, बी.आर. अंबेडकर और ई.वी. रामास्वामी नायकर (पेरियार) ने जाति पर शक्तिशाली तरीके से लिखा और उनके लेखन को व्यापक रूप से पढ़ा गया।

- स्थानीय विरोध आंदोलनों ने भी प्राचीन धर्मग्रंथों की आलोचना करने वाले और एक नए और न्यायपूर्ण भविष्य की कल्पना करने वाले लोकप्रिय जर्नल और ट्रेक्ट तैयार किए।
- कारखानों में काम करने वाले मजदूर बहुत ज्यादा काम करते थे और उनके पास अपने अनुभवों के बारे में ज्यादा लिखने के लिए शिक्षा की कमी थी, लेकिन कुछ लोगों, जैसे काशीबाबा (1938 में छोटे और बड़े का सवाल) और सुदर्शन चक्र (सच्ची कवितायन) ने जाति और वर्ग शोषण के बीच संबंधों के बारे में लिखा।
- 1930 के दशक तक, बैंगलोर के कपास मिल मजदूरों ने बॉम्बे के मजदूरों के उदाहरण का अनुसरण करते हुए खुद को शिक्षित करने के लिए पुस्तकालयों की स्थापना की। इन पुस्तकालयों को समाज सुधारकों द्वारा प्रायोजित किया गया था, जिन्होंने उनके बीच अत्यधिक शराब पीने को प्रतिबंधित करने, साक्षरता लाने और कभी-कभी राष्ट्रवाद के संदेश का प्रचार करने का प्रयास किया।

प्रिंट और प्रतिबंध:

- ईस्ट इंडिया कंपनी के तहत 1798 से पहले का औपनिवेशिक शासन सेंसरशिप या पाबंदी लगाने के बारे में ज्यादा परेशान नहीं था। मजदूरों की बात तो यह है कि मुद्रित सामग्री को नियंत्रित करने के इसके शुरुआती क्रम कंपनी के कुप्रशासन की आलोचना करने वाले और कंपनी के हुक्मरानों के काम को कोसने वाले अंग्रेजों के खिलाफ उठे। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी शुरू में सेंसरशिप को लेकर चिंतित नहीं थी, लेकिन 1820 के दशक में आलोचना को दबाने के लिए उसने प्रेस को नियंत्रित करना शुरू कर दिया।
- 1857 के विद्रोह के बाद, औपनिवेशिक सरकार ने स्थानीय भाषा के समाचार पत्रों को सेंसर करने के लिए वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट पारित किया।

इसके बावजूद राष्ट्रवादी अखबारों की संख्या में वृद्धि हुई और राष्ट्रवादी गतिविधियों को बढ़ावा मिला। औपनिवेशिक सरकार ने भारत में प्रेस को नियंत्रित करने की कोशिश की, लेकिन राष्ट्रवादी अखबारों की संख्या बढ़ती रही।

- उन्होंने औपनिवेशिक कुशासन की रिपोर्टिंग की और राष्ट्रवादी गतिविधियों को बढ़ावा दिया। इससे उत्पीड़न और विरोध का एक चक्र शुरू हुआ। उदाहरण के लिए, जब बालगंगाधर तिलक ने अपने अखबार में पंजाब के क्रांतिकारियों के बारे में सहानुभूतिपूर्वक लिखा, तो उन्हें जेल में डाल दिया गया, जिससे पूरे भारत में व्यापक विरोध प्रदर्शन भड़क उठे।

निष्कर्ष

अतः विश्व इतिहास में, औद्योगिकीकरण और प्रिंट या मुद्रण दोनों ने मानव समाज पर गहरा प्रभाव डाला है। औद्योगिकीकरण के कारण शहरों का विकास हुआ, श्रमिक वर्ग का विकास हुआ और नई तकनीकों का विकास हुआ। प्रिंट के कारण साक्षरता का प्रसार हुआ, धार्मिक और सामाजिक सुधार, विचारों का प्रसार हुआ और समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं जैसे मीडिया के नए रूपों का उदय हुआ।

महत्वपूर्ण शब्दावलि

- ❖ **प्रोटो:** किसी चीज़ के पहले या शुरुआती रूप को इंगित करना।
- ❖ **गोमास्थ:** बुनकरों की देखरेख करने, आपूर्ति एकत्र करने और कपड़े की गुणवत्ता की जाँच करने के लिए अंग्रेजों द्वारा नियुक्त एक वेतनभोगी नौकर।
- ❖ **सुलेख:** सुंदर और शैलीबद्ध लेखन की कला।
- ❖ **गाथा:** पद्य में एक ऐतिहासिक विवरण या लोक कथा, जिसे आमतौर पर गाया या सुनाया जाता है।
- ❖ **प्रोटेस्टेंट सुधार:** रोम के प्रभुत्व वाले कैथोलिक चर्च में सुधार के लिए सोलहवीं शताब्दी का एक आंदोलन। मार्टिन लूथर मुख्य प्रोटेस्टेंट सुधारकों में से एक थे। आंदोलन से कैथोलिक विरोधी ईसाई धर्म की कई परंपराएँ विकसित हुईं।

विचारणीय बिंदु

क्या आप सोच सकते हैं कि भारत में प्रिंटिंग प्रेस की शुरुआत ने भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं, जैसे धर्म, साहित्य, कला, महिलाओं के जीवन और नए सामाजिक आंदोलनों के उद्भव को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया?

क्या आपको लगता है कि अगर मुद्रण क्रांति नहीं होती तो राष्ट्रवाद के विचार का प्रचार करना मुश्किल होता?



विचारणीय बिंदु

कार्यवाहक गवर्नर जनरल चार्ल्स मेटकॉफ (1835-36) ने 1823 के अध्यादेश को निरस्त कर दिया और "भारतीय प्रेस के मुक्तिदाता" की उपाधि प्राप्त की। इस उदार प्रेस नीति का परिणाम यह हुआ कि 1865 तक बिना किसी बदलाव के देश भर में समाचार-पत्रों का तेजी से विकास हुआ।



- ❖ **लघु उद्योग:** ऐसा उद्योग जो छोटे पैमाने पर माल या सेवाओं का उत्पादन करता है, जिसमें संयंत्र और मशीनरी में अपेक्षाकृत सीमित निवेश और एक छोटा कार्यबल होता है।
- ❖ **फ्लाई शटल:** यह एक यांत्रिक बुनाई उपकरण है जिसमें रस्सियों और पुली का उपयोग करके ताने के धागे में बाने के धागे डाले जाते हैं, जिससे बुनकर बड़े करघे चला सकते हैं और कपड़े के चौड़े टुकड़े बुन सकते हैं।
- ❖ **वुडब्लॉक प्रिंटिंग:** पाठ, चित्र या पैटर्न को प्रिंट करने की एक तकनीक जो पूरे पूर्वी एशिया में व्यापक रूप से इस्तेमाल की जाती है और प्राचीन काल में चीन में वस्त्रों और बाद में कागज़ पर छपाई की एक विधि के रूप में उत्पन्न हुई।
- ❖ **स्वदेशी:** इसका अर्थ है “अपने देश का।” यह आर्थिक आत्मनिर्भरता और आत्मनिर्भरता से संबंधित एक सिद्धांत या दर्शन है।
- ❖ **पाण्डुलिपि:** यह कागज़, छाल, कपड़े, धातु, ताड़ के पत्ते पर हस्तलिखित रचना है।
- ❖ **वर्नाकुलर प्रेस:** किसी देश की मूल भाषाओं में प्रकाशित समाचार पत्र और अन्य पत्रिकाएँ।
- ❖ **पितृसत्तात्मक समाज:** यह एक ऐसा समाज है जहाँ हमेशा पुरुष केंद्र में होते हैं और महिलाएँ परिधि पर होती हैं, हमेशा पुरुषों के अधीन होती हैं।
- ❖ **महामंदी:** 1929 से 1930 के दशक के अंत तक दुनिया भर में गंभीर आर्थिक मंदी, अर्थात् अकाल की स्थिति जिसमें बड़े पैमाने पर बेरोज़गारी और गरीबी थी।
- ❖ **वेल्लम:** यह जानवरों की खाल से बना चर्मपत्र है।
- ❖ **सराय:** वे स्थान जहाँ लोग शराब पीने, भोजन परोसने, तथा मित्रों से मिलने और समाचारों का आदान-प्रदान करने के लिए एकत्रित होते हैं।
- ❖ **जाँच:** विधर्मियों की पहचान करने और उन्हें दंडित करने के लिए एक पूर्व रोमन कैथोलिक न्यायालय।
- ❖ **विधर्मी मान्यताएँ:** विधर्मी मान्यताएँ वे मान्यताएँ हैं जो चर्च की स्वीकृत शिक्षाओं का पालन नहीं करती हैं। मध्यकालीन समय में, विधर्म को चर्च के अधिकार के लिए एक खतरे के रूप में देखा जाता था, और विधर्मी मान्यताओं को कठोर दंड दिया जाता था।
- ❖ **धार्मिक संप्रदाय:** साझा मान्यताओं और प्रथाओं वाले धर्म के भीतर समूह।
- ❖ **पंचांग:** खगोलीय डेटा, सूर्य और चंद्रमा की चाल, पूर्ण ज्वार और ग्रहणों के समय और बहुत कुछ जो लोगों के दैनिक जीवन के बारे में जानकारी देने वाला एक वार्षिक प्रकाशन था।
- ❖ **चैपबुक:** यह पॉकेट साइज़ की किताबें हैं जिन्हें चैपमेन नामक घुमंतू फेरीवालों द्वारा बेचा जाता है, जो सोलहवीं शताब्दी की मुद्रण क्रांति के समय से लोकप्रिय हो गई थी।



समकालीन वैश्विक विश्व व्यवस्था

संदर्भ: इस अध्याय में NCERT पाठ्यपुस्तक की कक्षा-XII (भारत और समकालीन विश्व-II) के अध्याय-1, 2 व 3 का सारांश शामिल है।

परिचय

शीतयुद्ध के सबसे सरगर्म दौर में बर्लिन-दीवार खड़ी की गई थी और यह दीवार शीतयुद्ध का सबसे बड़ा प्रतीक थी। 1989 में पूर्वी जर्मनी की आम जनता ने इस दीवार को गिरा दिया। इस नाटकीय घटना के बाद और भी नाटकीय तथा ऐतिहासिक घटनाक्रम सामने आया। इसकी परिणति दूसरी दुनिया के पतन और शीतयुद्ध की समाप्ति में हुई। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद विभाजित हो चुके जर्मनी का अब एकीकरण हो गया। शीतयुद्ध के अंत के समय सोवियत संघ को यह सब चुपचाप देखते रहना पड़ा। ऐसा किसी सैन्य मजबूरी से नहीं, बल्कि आम जनता की सामूहिक कार्रवाई के दबाव के कारण हुआ। अंत में स्वयं सोवियत संघ का विघटन हो गया। 1917 में रूस में समाजवादी क्रांति के बाद सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ (USSR) अस्तित्व में आया। क्रांति समाजवाद के आदर्शों और पूँजीवाद के विपरीत एक समतावादी समाज की आवश्यकता से प्रेरित थी।

सोवियत प्रणाली के बारे में:

- 1917 में रूस में समाजवादी क्रांति के बाद सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ (USSR) अस्तित्व में आया।
- क्रांति पूँजीवाद के विपरीत समाजवाद के आदर्शों के आदर्शों और समतामूलक समाज की जरूरत से प्रेरित थी।



व्लादिमीर लेनिन (1870-1924)

बोलशेविक कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापक; 1917 की रूसी क्रांति के नेता और क्रांति के बाद सबसे कठिन अवधि (1917-1924) के दौरान यूएसएसआर के संस्थापक-प्रमुख; मार्क्सवाद के एक उत्कृष्ट सिद्धांतकार और दुनिया भर के कम्युनिस्टों के लिए प्रेरणा के स्रोत।



जोसेफ स्टालिन (1879-1953)

लेनिन के उत्तराधिकारी और इसके समेकन (1924-53) के दौरान सोवियत संघ का नेतृत्व किया; तेजी से औद्योगीकरण और कृषि के जबरन सामूहिकीकरण की शुरुआत की; द्वितीय विश्व युद्ध में सोवियत जीत का श्रेय; 1930 के दशक के महान आतंक, सत्तावादी कार्यों और पार्टी के भीतर प्रतिद्वंद्वियों के उन्मूलन के लिए जिम्मेदार ठहराया गया।



निकिता ख्रुश्चेव (1894-1971)

सोवियत संघ के नेता (1953-64); स्टालिन की नेतृत्व शैली की निंदा की और 1956 में कुछ सुधार पेश किए; पश्चिम के साथ “शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व” का सुझाव दिया; हंगरी में लोकप्रिय विद्रोह को दबाने और क्यूबा मिसाइल संकट में शामिल।



लियोनिद ब्रेज़नेव (1906-82)

सोवियत संघ के नेता (1964-82); एशियाई सामूहिक सुरक्षा प्रणाली का प्रस्ताव रखा; अमेरिका के साथ संबंधों में तनाव-मुक्ति चरण से जुड़े; चेकोस्लोवाकिया में लोकप्रिय विद्रोह को दबाने और अफ़गानिस्तान पर आक्रमण करने में शामिल।

चित्र 11.1: सोवियत संघ के प्रमुख नेता

- यह मानव इतिहास में निजी संपत्ति की संस्था को समाप्त करने और समाज को समानता के सिद्धांत पर सचेत रूप से रचने की सबसे बड़ी कोशिश थी। ऐसा करने में सोवियत प्रणाली के निर्माताओं ने राज्य और ‘पार्टी की संस्था’ को प्राथमिक महत्व दिया।
- सोवियत राजनीतिक प्रणाली की धुरी कम्युनिस्ट पार्टी थी। इसमें किसी अन्य राजनीतिक दल या विपक्ष के लिए जगह नहीं थी। अर्थव्यवस्था योजनाबद्ध और राज्य के नियंत्रण में थी।

- दूसरे विश्वयुद्ध के बाद पूर्वी यूरोप के देश सोवियत संघ के अंकुश में आ गये। सोवियत सेना ने इन्हें फासीवादी ताकतों के चंगुल से मुक्त कराया था। इन सभी देशों की राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था को सोवियत संघ की समाजवादी प्रणाली की तर्ज पर ढाला गया। इन्हें ही समाजवादी खेमे के देश या 'दूसरी दुनिया' कहा जाता है। इस खेमे का नेता समाजवादी सोवियत गणराज्य था।
- दूसरे विश्वयुद्ध के बाद सोवियत संघ महाशक्ति के रूप में उभरा। अमरीका को छोड़ दें तो सोवियत संघ की अर्थव्यवस्था शेष विश्व की तुलना में कहीं ज्यादा विकसित थी। सोवियत संघ की संचार प्रणाली बहुत उन्नत थी। उसके पास विशाल ऊर्जा संसाधन था जिसमें खनिज तेल, लोहा और इस्पात तथा मशीनरी उत्पाद शामिल हैं। सोवियत संघ के दूर-दराज के इलाके भी आवागमन की सुव्यवस्थित और विशाल प्रणाली के कारण आपस में जुड़े हुए थे। सोवियत संघ का घरेलू उपभोक्ता-उद्योग भी बहुत उन्नत था और पिन से लेकर कार तक सभी चीजों का उत्पादन वहाँ होता था। हालाँकि सोवियत संघ के उपभोक्ता उद्योग में बनने वाली वस्तुएँ गुणवत्ता के लिहाज से पश्चिमी देशों के स्तर की नहीं थीं लेकिन सोवियत संघ की सरकार ने अपने सभी नागरिकों के लिए एक न्यूनतम जीवन स्तर सुनिश्चित कर दिया था।
- सरकार बुनियादी जरूरत की चीजें मसलन स्वास्थ्य-सुविधा, शिक्षा, बच्चों की देखभाल तथा लोक-कल्याण की अन्य चीजें रियायती दर पर मुहैया कराती थी। मिल्कियत का प्रमुख रूप राज्य का स्वामित्व था तथा भूमि और अन्य उत्पादक संपदाओं पर स्वामित्व होने के अलावा नियंत्रण भी राज्य का ही था। बहरहाल, सोवियत प्रणाली पर नौकरशाही का शिकंजा कसता चला गया। यह प्रणाली सत्तावादी होती गई और नागरिकों का जीवन कठिन होता चला गया।
- लोकतंत्र और अभिव्यक्ति की आजादी नहीं होने के कारण लोग अपनी असहमति अक्सर चुटकुलों और कार्टूनों में व्यक्त करते थे। सोवियत संघ की अधिकांश संस्थाओं में सुधार की जरूरत थी। सोवियत संघ में एक दल यानी कम्युनिस्ट पार्टी का शासन था और इस दल का सभी संस्थाओं पर गहरा अंकुश था।
- यह दल जनता के प्रति जवाबदेह नहीं था। जनता ने अपनी संस्कृति और बाकी मामलों की साज-संभाल अपने आप करने के लिए 15 गणराज्यों को आपस में मिलाकर सोवियत संघ बनाया था। लेकिन पार्टी ने जनता की इस इच्छा को पहचानने से इंकार कर दिया। हालाँकि सोवियत संघ के नक्शे में रूस, संघ के पन्द्रह गणराज्यों में से एक था लेकिन वास्तव में रूस का हर मामले में प्रभुत्व था। अन्य क्षेत्रों की जनता अक्सर उपेक्षित और दमित महसूस करती थी।
- हथियारों की होड़ में सोवियत संघ ने समय-समय पर अमरीका को बराबर की टक्कर दी लेकिन उसे इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ी। सोवियत संघ प्रौद्योगिकी और बुनियादी ढाँचे (मसलन परिवहन, ऊर्जा) के मामले में पश्चिमी देशों की तुलना में पीछे रह गया। लेकिन सबसे बड़ी बात तो यह थी कि सोवियत संघ अपने नागरिकों की राजनीतिक और आर्थिक आकांक्षाओं को पूरा नहीं कर सका।
- सोवियत संघ ने 1979 में अफगानिस्तान में हस्तक्षेप किया। इससे सोवियत संघ की व्यवस्था और भी कमजोर हुई। हालाँकि सोवियत संघ में लोगों का पारिश्रमिक लगातार बढ़ा लेकिन उत्पादकता और प्रौद्योगिकी के मामले में वह पश्चिम के देशों से बहुत पीछे छूट गया। इससे हर तरह की उपभोक्ता वस्तु की कमी हो गई। खाद्यान्न का आयात साल-दर-साल बढ़ता गया। 1970 के दशक के अंतिम वर्षों में यह व्यवस्था लड़खड़ा रही थी और अंततः ठहर सी गयी।

गोर्बाचेव और सोवियत संघ का विघटन:

- मिखाइल गोर्बाचेव ने इस व्यवस्था को सुधारना चाहा। वे 1980 के दशक के मध्य में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव बने। पश्चिम के देशों में सूचना और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में क्रांति हो रही थी और सोवियत संघ को इसकी बराबरी में लाने के लिए सुधार जरूरी हो गए थे।
- गोर्बाचेव ने पश्चिम के देशों के साथ संबंधों को सामान्य बनाने, सोवियत संघ को लोकतांत्रिक रूप देने और वहाँ सुधार करने का फैसला किया। इस फैसले की कुछ ऐसी भी परिणतियाँ रहीं जिनका किसी को कोई अंदाजा नहीं था। पूर्वी यूरोप के देश सोवियत खेमे के हिस्से थे। इन देशों की जनता ने अपनी सरकारों और सोवियत नियंत्रण का विरोध करना शुरू कर दिया।
- गोर्बाचेव के शासक रहते सोवियत संघ ने ऐसी गड़बड़ियों में उस तरह का हस्तक्षेप नहीं किया जैसा अतीत में होता था। पूर्वी यूरोप की साम्यवादी सरकारें एक के बाद एक गिर गईं। सोवियत संघ के बाहर हो रहे इन परिवर्तनों के साथ-साथ अंदर भी संकट गहराता जा रहा था और इससे सोवियत संघ के विघटन की गति और तेज हुई।
- गोर्बाचेव ने देश के अंदर आर्थिक-राजनीतिक सुधारों और लोकतंत्रीकरण की नीति चलायी। इन सुधार नीतियों का कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं द्वारा विरोध किया गया। 1991 में एक तख्तापलट भी हुआ। कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़े गरमपंथियों ने इसे बढ़ावा दिया था। तब तक जनता को स्वतंत्रता का स्वाद मिल चुका था और वे कम्युनिस्ट पार्टी के पुरानी रंगत वाले शासन में नहीं जाना चाहते थे।

सोवियत संघ के अंतिम नेता (1985-91); पेरैस्कोइका (पुनर्गठन) और ग्लासनोस्ट (खुलेपन) की आर्थिक और राजनीतिक सुधार नीतियों को पेश किया; अमेरिका के साथ हथियारों की दौड़ को रोक; अफगानिस्तान और पूर्वी यूरोप से सोवियत सैनिकों को वापस बुलाया; जर्मनी के एकीकरण में मदद की; शीत युद्ध को समाप्त किया; सोवियत संघ के विघटन के लिए दोषी ठहराया गया।



चित्र 11.2: मिखाइल गोर्बाचेव (जन्म 1931)

- ❑ येल्टसिन ने इस तख्तापलट के विरोध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और वे नायक की तरह उभरे। रूसी गणराज्य ने, जहाँ बोरीस येल्टसिन ने आम चुनाव जीता था, केंद्रीकृत नियंत्रण को मानने से इंकार कर दिया। सत्ता मास्को से गणराज्यों की तरफ खिसकने लगी। ऐसा खासकर सोवियत संघ के उन भागों में हुआ जो ज्यादा यूरोपीकृत थे और अपने को संप्रभु राज्य मानते थे।
- ❑ आश्चर्यजनक तौर पर मध्य एशियाई गणराज्यों ने अपने लिए स्वतंत्रता की माँग नहीं की। वे 'सोवियत संघ' के साथ ही रहना चाहते थे। सन् 1991 के दिसम्बर में येल्टसिन के नेतृत्व में सोवियत संघ के तीन बड़े गणराज्य रूस, यूक्रेन और बेलारूस ने सोवियत संघ की समाप्ति की घोषणा की। कम्युनिस्ट पार्टी प्रतिबंधित हो गई और परवर्ती सोवियत गणराज्यों ने पूँजीवाद तथा लोकतंत्र को अपना आधार बनाया।

सोवियत संघ के विघटन के कारण:

- ❑ सोवियत राजनीतिक और आर्थिक संस्थाओं की आंतरिक कमजोरियाँ, जो लोगों की आकांक्षाओं को पूरा करने में विफल रहीं, व्यवस्था के पतन के लिए उत्तरदायी थीं।
- ❑ कई वर्षों तक आर्थिक स्थिरता के कारण उपभोक्ताओं की भारी कमी हो गई और सोवियत समाज के एक बड़े हिस्से ने व्यवस्था पर संदेह करना और सवाल उठाना शुरू कर दिया तथा ऐसा खुले तौर पर किया गया।
- ❑ सोवियत अर्थव्यवस्था ने अपने अधिकांश संसाधनों का उपयोग परमाणु एवं सैन्य शस्त्रागार को बनाए रखने और पूर्वी यूरोप तथा सोवियत व्यवस्था (विशेष रूप से पाँच मध्य एशियाई गणराज्यों) में अपने उपग्रह राज्यों के विकास में किया। इस प्रकार, कई वर्षों तक आर्थिक स्थिरता के कारण उपभोक्ताओं की भारी कमी हो गई और सोवियत समाज के एक बड़े हिस्से ने व्यवस्था पर संदेह करना और सवाल उठाना शुरू कर दिया।
- ❑ सोवियत संघ पर 70 से अधिक वर्षों तक शासन करने वाली कम्युनिस्ट पार्टी लोगों के प्रति जवाबदेह नहीं थी।
 - धीमा और दमघोंटू प्रशासन, बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार, अपनी गलतियों को सुधारने में व्यवस्था की अक्षमता, सरकार में अधिक खुलेपन की अनुमति देने की अनिच्छा और एक विशाल भूमि में सत्ता के केंद्रीकरण से आम लोग अलग-थलग पड़ गए थे।
- ❑ जब गोर्बाचेव ने अपने सुधारों को लागू किया और व्यवस्था को ढीला किया, तो उन्होंने ऐसी ताकतों और उम्मीदों को गति दी, जिनकी बहुत कम लोगों ने कल्पना की थी और जिन्हें नियंत्रित करना लगभग असंभव हो गया था।
- ❑ सोवियत समाज के कुछ वर्ग ऐसे थे जो महसूस करते थे कि गोर्बाचेव को बहुत तेजी से आगे बढ़ना चाहिए था और वे उनके तरीकों से निराश और अधीर थे।
- ❑ रूस और बाल्टिक गणराज्यों (एस्टोनिया, लातविया और लिथुआनिया), यूक्रेन, जॉर्जिया और अन्य सहित विभिन्न गणराज्यों के भीतर राष्ट्रवाद का उदय और संप्रभुता की इच्छा यूएसएसआर के विघटन का अंतिम और सबसे तात्कालिक कारण साबित हुई।

विचारणीय बिंदु

समकालीन वैश्विक व्यवस्था को आकार देने में एक प्रमुख घटना यूएसएसआर का गठन और विघटन रही है। सोवियत व्यवस्था के पतन के कारण शीत युद्ध का अंत हुआ और एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था की स्थापना हुई। यूएसएसआर के पतन का कारण बनने वाली नीतियाँ 'पेरेस्त्रोइका और ग्लासनोस्ट' थीं। क्या आपने उनके बारे में सुना है? क्या आप इन शब्दों को खोज और समझ सकते हैं?



सोवियत संघ के विघटन के परिणाम:

- ❑ इसका तात्पर्य था शीत युद्ध के टकरावों का अंत। समाजवादी व्यवस्था के अस्तित्व पर वैचारिक विवाद समाप्त हो गया।
- ❑ विश्व राजनीति में सत्ता संबंध परिवर्तित हो गए और इसलिए, विचारों एवं संस्थाओं का सापेक्ष प्रभाव भी बदल गया।
- ❑ अमेरिका एकमात्र महाशक्ति बन गया। अमेरिका की शक्ति और प्रतिष्ठा के सहारे, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को अब अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रमुख आर्थिक प्रणाली के रूप में स्वीकार किया जाने लगा।
 - विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी संस्थाएँ सभी देशों के लिए शक्तिशाली सलाहकार बन गईं।
- ❑ राजनीतिक रूप से, उदार लोकतंत्र की धारणा राजनीतिक जीवन को व्यवस्थित करने के सर्वोत्तम तरीके के रूप में उभरी।
- ❑ सोवियत ब्लॉक के अंत का तात्पर्य कई नए देशों का उदय था। इन सभी देशों की अपनी स्वतंत्र आकांक्षाएँ और विकल्प थे। उनमें से कुछ, विशेष रूप से बाल्टिक और पूर्वी यूरोपीय राज्य, यूरोपीय संघ में शामिल होना चाहते थे और उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन (नाटो) का हिस्सा बनना चाहते थे। मध्य एशियाई देश अपनी भौगोलिक स्थिति का लाभ उठाना चाहते थे और रूस के साथ अपने घनिष्ठ संबंधों को जारी रखना चाहते थे और पश्चिम, अमेरिका, चीन और अन्य के साथ संबंध भी स्थापित करना चाहते थे।

रूस के प्रथम निर्वाचित राष्ट्रपति (1991-1999); कम्युनिस्ट पार्टी में सत्ता में आए और गोर्बाचेव द्वारा मास्को के मेयर बनाए गए; बाद में गोर्बाचेव के आलोचकों में शामिल हो गए और कम्युनिस्ट पार्टी छोड़ दी; 1991 में सोवियत शासन के खिलाफ विरोध प्रदर्शनों का नेतृत्व किया; सोवियत संघ को भंग करने में विशेष भूमिका निभाई; साम्यवाद से पूँजीवाद में संक्रमण के दौरान रूसियों द्वारा झेली गई कठिनाइयों के लिए उन्हें दोषी ठहराया गया।



चित्र 11.3: बोरीस येल्टसिन (1931-2007)

सोवियत संघ के विघटन का तिथिक्रम:

तिथिक्रम और घटनाएँ

- ❑ **1985 मार्च:** मिखाइल गोर्बाचेव सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव चुने गए; उन्होंने बोริस येल्तसिन को मास्को में कम्युनिस्ट पार्टी का प्रमुख नियुक्त किया और सोवियत संघ में सुधारों की एक शृंखला शुरू की।
- ❑ **1988:** स्वतंत्रता आंदोलन लिथुआनिया में शुरू हुआ और बाद में एस्टोनिया और लातविया तक फैल गया।
- ❑ **अक्टूबर 1989:** सोवियत संघ ने घोषणा की कि वारसा संधि के सदस्य अपने भविष्य का निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र हैं; नवम्बर में बर्लिन की दीवार गिर गई।
- ❑ **फरवरी 1990:** गोर्बाचेव ने सोवियत संसद (ड्यूमा) से बहुदलीय राजनीति की अनुमति देने का आह्वान करके सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी से सत्ता पर 72 वर्ष पुराना एकाधिकार छीन लिया।
- ❑ **मार्च 1990:** लिथुआनिया 15 सोवियत गणराज्यों में से अपनी स्वतंत्रता की घोषणा करने वाला पहला गणराज्य बना।
- ❑ **जून 1990:** रूसी संसद ने सोवियत संघ से अपनी स्वतंत्रता की घोषणा की।
- ❑ **जून 1991:** येल्तसिन, जो अब कम्युनिस्ट पार्टी में नहीं थे, रूस के राष्ट्रपति बने।
- ❑ **अगस्त 1991:** कम्युनिस्ट पार्टी के कट्टरपंथियों ने गोर्बाचेव के विरुद्ध असफल तख्तापलट किया।
- ❑ **सितम्बर 1991:** एस्टोनिया, लातविया और लिथुआनिया के तीन बाल्टिक गणराज्य संयुक्त राष्ट्र के सदस्य बने और बाद में मार्च 2004 में नाटो में शामिल हो गये।
- ❑ **1991 दिसंबर:** रूस, बेलारूस और यूक्रेन ने यूएसएसआर के निर्माण पर 1922 की संधि को रद्द करने और स्वतंत्र राज्यों के राष्ट्रमंडल (सीआईएस) की स्थापना करने का निर्णय लिया; आर्मेनिया, अज़रबैजान, मोल्दोवा, कजाकिस्तान, किर्गिस्तान, ताजिकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान और उजबेकिस्तान सीआईएस में शामिल हो गए (जॉर्जिया बाद में 1993 में शामिल हुआ); रूस ने संयुक्त राष्ट्र में यूएसएसआर की सीट पर कब्जा कर लिया।
- ❑ **25 दिसम्बर 1991:** गोर्बाचेव ने सोवियत संघ के राष्ट्रपति पद से इस्तीफा दे दिया; इसके साथ ही सोवियत संघ का अंत हो गया।

उत्तर-साम्यवादी शासन में शॉक थेरेपी

- ❑ रूस, मध्य एशिया और पूर्वी यूरोप में संक्रमण का मॉडल जो विश्व बैंक और आईएमएफ से प्रभावित था, उसे 'शॉक थेरेपी' के रूप में जाना जाने लगा।
- ❑ शॉक थेरेपी की तीव्रता और गति पूर्व द्वितीय विश्व देशों में भिन्न थी, लेकिन इसकी दिशा और विशेषताएँ काफी हद तक समान थीं।
- ❑ इनमें से प्रत्येक देश को पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में पूर्णता बदलाव करने की आवश्यकता थी, जिसका तात्पर्य था कि सोवियत काल के दौरान विकसित किसी भी संरचना को पूरी तरह से जड़ से उखाड़ फेंकना।
- ❑ इसका तात्पर्य निजी स्वामित्व संपत्ति के स्वामित्व का प्रमुख पैटर्न होना तथा राज्य की संपत्तियों का निजीकरण और कॉर्पोरेट स्वामित्व पैटर्न तुरंत लाया जाना था।
- ❑ सामूहिक खेतों को निजी खेती और कृषि में पूँजी द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना था।
- ❑ शॉक थेरेपी में इन अर्थव्यवस्थाओं के बाहरी अभिविन्यास में एक बड़ा बदलाव भी शामिल था। अब अधिक व्यापार के माध्यम से विकास की परिकल्पना की गई थी, और इस प्रकार मुक्त व्यापार में अचानक और पूर्ण बदलाव को आवश्यक माना गया।
- ❑ इस संक्रमण में सोवियत ब्लॉक के देशों के बीच मौजूदा व्यापार गठबंधनों का टूटना भी शामिल था।

शॉक थेरेपी के परिणाम:

- ❑ **सामाजिक-आर्थिक आपदा:** शॉक थेरेपी ने अर्थव्यवस्थाओं को बर्बाद कर दिया तथा पूरे क्षेत्र के लोगों को आपदा की स्थिति में धकेल दिया। रूस में, बड़े राज्य-नियंत्रित औद्योगिक परिसर लगभग ध्वस्त हो गए, क्योंकि इसके लगभग 90 प्रतिशत उद्योगों को निजी व्यक्तियों और कंपनियों को बेचने के लिए रखा गया था।
 - रूसी मुद्रा रूबल का मूल्य नाटकीय रूप से गिर गया और मुद्रास्फीति की दर इतनी अधिक थी कि लोगों ने अपनी सारी बचत खो दी।
 - सामूहिक कृषि प्रणाली बिखर गई और लोगों को खाद्य सुरक्षा से वंचित कर दिया, तथा रूस ने खाद्य आयात करना शुरू कर दिया। 1999 में रूस का वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद 1989 की तुलना में कम था। पुराना व्यापारिक ढाँचा टूट गया और उसके स्थान पर कोई विकल्प नहीं था।
 - सामाजिक कल्याण की पुरानी प्रणाली को व्यवस्थित रूप से नष्ट कर दिया गया। सरकारी सब्सिडी वापस लेने से लोगों का एक बड़ा हिस्सा गरीबी में चला गया। लोकतांत्रिक संस्थाओं के निर्माण को आर्थिक परिवर्तन की माँगों के समान ध्यान और प्राथमिकता नहीं दी गई।

- ❑ **जल्दबाजी में बनाए गए संविधान और कमजोर संसद:** इन सभी देशों के संविधान जल्दबाजी में बनाए गए थे और रूस समेत अधिकांश देशों में एक मजबूत कार्यकारी राष्ट्रपति था जिसके पास सबसे अधिक संभव शक्तियाँ थीं, जिससे निर्वाचित संसदें अपेक्षाकृत कमजोर हो गईं।
- ❑ **आर्थिक पुनरुद्धार:** इनमें से अधिकांश अर्थव्यवस्थाएँ, खास तौर पर रूस, आजादी के दस वर्ष बाद अर्थात् 2000 में पुनर्जीवित होने लगीं। उनकी अधिकांश अर्थव्यवस्थाओं के पुनरुद्धार का कारण तेल, प्राकृतिक गैस और खनिजों जैसे प्राकृतिक संसाधनों का निर्यात था।
 - अजरबैजान, कजाकिस्तान, रूस, तुर्कमेनिस्तान और उज्बेकिस्तान प्रमुख तेल और गैस उत्पादक देश हैं।

नए देशों का निर्माण: तनाव और संघर्ष

- ❑ अधिकांश देश भूतपूर्व सोवियत गणराज्य संघर्षों से ग्रस्त थे, तथा कई में गृह युद्ध और विद्रोह हुए।
- ❑ रूस में, दो गणराज्यों, चेचन्या और दागेस्तान में हिंसक अलगाववादी आंदोलन हुए हैं।
- ❑ ताजिकिस्तान में 2001 तक दस वर्षों तक गृह युद्ध चला। पूरे क्षेत्र में कई सांप्रदायिक संघर्ष हुए।
- ❑ अजरबैजान के नागोर्नो-करबाख प्रांत में, कुछ स्थानीय अर्मेनियाई लोग अलग होकर आर्मेनिया में शामिल होना चाहते हैं।
- ❑ जॉर्जिया में, दो प्रांतों से स्वतंत्रता की माँग आई है, जिसके परिणामस्वरूप गृह युद्ध हुआ है।
- ❑ मध्य एशिया भी बाहरी शक्तियों और तेल कंपनियों के बीच प्रतिस्पर्धा का क्षेत्र बन गया है।
- ❑ पूर्वी यूरोप में, चेकोस्लोवाकिया शांतिपूर्वक दो भागों में विभाजित हो गया, जिसमें चेक और स्लोवाक स्वतंत्र देश बन गए।
- ❑ यूगोस्लाविया अलग हो गया तथा क्रोएशिया, स्लोवेनिया, बोस्निया और हर्जोगोविना जैसे कई प्रांतों ने स्वतंत्रता की घोषणा की।

भारत और साम्यवादी देश

- ❑ भारत ने सभी साम्यवादी देशों के साथ अच्छे संबंध बनाए रखे हैं। रूस के साथ भारत के संबंध भारत की विदेश नीति का एक महत्वपूर्ण पहलू हैं।
- ❑ राज कपूर से लेकर अमिताभ बच्चन तक भारतीय सिनेमा के अभिनेता रूस और कई सोवियत-पश्चात देशों में जाने-माने नाम हैं। पूरे क्षेत्र में हिंदी फिल्मों गाने सुने जा सकते हैं और भारत लोकप्रिय स्मृति का हिस्सा है।

पल्लेशबैक: भारत और यूएसएसआर

- ❑ शीत युद्ध के दौर में भारत और यूएसएसआर के बीच एक विशेष संबंध था, जिसके कारण आलोचकों ने कहा कि भारत सोवियत खेमे का हिस्सा था। यह एक बहुआयामी संबंध था:
- ❑ **आर्थिक:** सोवियत संघ ने भारत की सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों की उस समय सहायता की, जब ऐसी सहायता मिलना मुश्किल था। इसने भिलाई, बोकारो, विशाखापत्तनम जैसे इस्पात संयंत्रों और भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड जैसे मशीनरी संयंत्रों के लिए सहायता एवं तकनीकी सहायता दी। सोवियत संघ ने व्यापार के लिए भारतीय मुद्रा को तब स्वीकार किया, जब भारत के पास विदेशी मुद्रा की कमी थी।
- ❑ **राजनीतिक:** सोवियत संघ ने संयुक्त राष्ट्र में कश्मीर मुद्दे पर भारत के रुख का समर्थन किया, इसने भारत के प्रमुख संघर्षों, मुख्य रूप से 1971 में पाकिस्तान के साथ युद्ध के दौरान भी भारत का समर्थन किया। भारत ने भी कुछ महत्वपूर्ण लेकिन अप्रत्यक्ष तरीकों से सोवियत विदेश नीति का समर्थन किया।
- ❑ **सैन्य:** भारत ने अपने अधिकांश सैन्य हार्डवेयर सोवियत संघ से उस समय प्राप्त किए, जब कुछ अन्य देश सैन्य प्रौद्योगिकियों को छोड़ने के लिए तैयार थे। सोवियत संघ ने भारत को सैन्य उपकरणों का संयुक्त रूप से उत्पादन करने की अनुमति देने वाले विभिन्न समझौते किए।
- ❑ **संस्कृति:** सोवियत संघ में हिंदी फिल्मों और भारतीय संस्कृति लोकप्रिय थी। बड़ी संख्या में भारतीय लेखकों और कलाकारों ने यूएसएसआर का दौरा किया।
- ❑ भारत और रूस के बीच 2001 के भारत-रूस रणनीतिक समझौते के तहत 80 से अधिक द्विपक्षीय समझौतों पर हस्ताक्षर किए गए हैं।
- ❑ पारस्परिक लाभ: रूस और भारत एक बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था की दृष्टि साझा करते हैं और उनका संबंध पारस्परिक लाभ का है।
 - रूस के साथ अपने संबंधों से भारत को कश्मीर, ऊर्जा आपूर्ति, अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद पर सूचना साझा करने, मध्य एशिया तक पहुँच और चीन के साथ अपने संबंधों को संतुलित करने जैसे मुद्दों पर लाभ होगा।
 - भारतीय सेना को अपना अधिकांश हार्डवेयर रूस से मिलता है। रूस को इस संबंध से लाभ होगा क्योंकि भारत रूस के लिए दूसरा सबसे बड़ा हथियार बाजार है।
 - तेल आयात: चूँकि भारत एक तेल आयातक देश है, इसलिए रूस भारत के लिए महत्वपूर्ण है और तेल संकट के दौरान बार-बार भारत की सहायता के लिए आगे आया है। भारत रूस, कजाकिस्तान और तुर्कमेनिस्तान गणराज्यों से अपने ऊर्जा आयात को बढ़ाने का प्रयास कर रहा है।
 - इन गणराज्यों के साथ सहयोग में तेल क्षेत्रों में साझेदारी और निवेश शामिल है।
- ❑ **वैज्ञानिक सहयोग:** रूस भारत की परमाणु ऊर्जा योजनाओं के लिए महत्वपूर्ण है और उसने भारत के अंतरिक्ष उद्योग को सहायता प्रदान की है, उदाहरण के लिए, जब भारत को इसकी आवश्यकता थी, तो क्रायोजेनिक रॉकेट दिया। रूस और भारत ने विभिन्न वैज्ञानिक परियोजनाओं पर सहयोग किया है।

1990 के दशक की शुरुआत में विश्व राजनीति की द्विध्रुवीय संरचना के अंत के बाद, यह स्पष्ट हो गया कि राजनीतिक और आर्थिक शक्ति के वैकल्पिक केंद्र अमेरिका के प्रभुत्व को सीमित कर सकते हैं। इस प्रकार, यूरोप में, यूरोपीय संघ (ईयू) और एशिया में, दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्रों का संगठन (आसियान), महत्वपूर्ण शक्तियों के रूप में उभरे। अपनी ऐतिहासिक शत्रुताओं और कमजोरियों के लिए क्षेत्रीय समाधान विकसित करते हुए, यूरोपीय संघ और आसियान दोनों ने वैकल्पिक संस्थाएँ और सम्मेलन विकसित किए हैं जो एक अधिक शांतिपूर्ण और सहकारी क्षेत्रीय व्यवस्था का निर्माण करते हैं और इस क्षेत्र के देशों को समृद्ध अर्थव्यवस्थाओं में बदल देते हैं।

यूरोपीय संघ

- 1945 के बाद यूरोपीय एकीकरण को शीत युद्ध से सहायता मिली। अमेरिका ने यूरोप की अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने के लिए 'मार्शल योजना' के तहत भारी वित्तीय मदद की।
- मार्शल योजना के तहत, पश्चिमी यूरोपीय राज्यों को सहायता प्रदान करने के लिए 1948 में यूरोपीय आर्थिक सहयोग संगठन (OEEC) की स्थापना की गई।
- 1949 में स्थापित यूरोप की परिषद् राजनीतिक सहयोग में एक और कदम आगे थी। यूरोपीय पूँजीवादी देशों के आर्थिक एकीकरण की प्रक्रिया चरणबद्ध तरीके से आगे बढ़ी (यूरोपीय एकीकरण की समयसीमा देखें) जिसके परिणामस्वरूप 1957 में यूरोपीय आर्थिक समुदाय का गठन हुआ।
- सोवियत ब्लॉक के पतन के बाद यूरोप तेजी से आगे बढ़ा और इसके परिणामस्वरूप 1992 में यूरोपीय संघ की स्थापना हुई। इसकी नींव एक आम विदेश और सुरक्षा नीति, न्याय और गृह मामलों पर सहयोग और एकल मुद्रा के निर्माण के लिए रखी गई थी।
- यूरोपीय संघ का अपना झंडा, गान, स्थापना तिथि और मुद्रा है, लेकिन अपना संविधान बनाने में विफल रहा। (चित्र 11.4 देखें)
- ईयू का आर्थिक, राजनीतिक और कूटनीतिक तथा सैन्य प्रभाव था।



चित्र 11.4: यूरोपीय संघ का झंडा



चित्र 11.5: यूरोपीय संघ का मानचित्र

- ईयू विश्व की दूसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है, जिसकी जीडीपी 2016 में 17 ट्रिलियन डॉलर से अधिक थी, जो संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद दूसरे स्थान पर है। इसकी मुद्रा यूरो, अमेरिकी डॉलर के प्रभुत्व के लिए खतरा बन सकती है। (मानचित्र के लिए चित्र 11.5 देखें)
- विश्व व्यापार में इसका हिस्सा संयुक्त राज्य अमेरिका की तुलना में बहुत बड़ा है, जिससे यह अमेरिका और चीन के साथ व्यापार विवादों में अधिक मुखर हो सकता है।
- सैन्य रूप से, ईयू की संयुक्त सशस्त्र सेना विश्व में दूसरी सबसे बड़ी है। रक्षा पर इसका कुल खर्च अमेरिका के बाद दूसरे स्थान पर है। ईयू के एक सदस्य देश, फ्रांस के पास भी लगभग 335 परमाणु हथियारों का परमाणु शस्त्रागार है। यह अंतरिक्ष एवं संचार प्रौद्योगिकी का विश्व का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण स्रोत भी है।
- राजनीतिक और कूटनीतिक आधार पर, फ्रांस यूएनएससी का स्थायी सदस्य है।

यूरोपीय संघ एकीकरण की समयरेखा

- **अप्रैल 1951:** छह पश्चिमी यूरोपीय देशों, फ्रांस, पश्चिम जर्मनी, इटली, बेल्जियम, नीदरलैंड और लक्जमबर्ग ने यूरोपीय कोयला और इस्पात समुदाय (ईसीएससी) की स्थापना के लिए पेरिस संधि पर हस्ताक्षर किए।
- **25 मार्च 1957:** इन छह देशों ने यूरोपीय आर्थिक समुदाय (ईईसी) और यूरोपीय परमाणु ऊर्जा समुदाय (यूरेटोम) की स्थापना के लिए रोम की संधियों पर हस्ताक्षर किए।
- **जनवरी 1973:** डेनमार्क, आयरलैंड और यूनाइटेड किंगडम यूरोपीय समुदाय (ईसी) में शामिल हुए।
- **जून 1979:** यूरोपीय संसद के लिए पहला प्रत्यक्ष चुनाव
- **जनवरी 1981:** ग्रीस यूरोपीय संघ में शामिल हुआ।
- **जून 1985:** शेंगेन समझौते ने ई.सी. सदस्यों के बीच सीमा नियंत्रण को समाप्त कर दिया।
- **जनवरी 1986:** स्पेन और पुर्तगाल यूरोपीय आयोग में शामिल हुए।
- **अक्टूबर 1990:** जर्मनी का एकीकरण।
- **7 फ़रवरी 1992:** मास्ट्रिच संधि पर हस्ताक्षर कर यूरोपीय संघ (ई.यू.) की स्थापना की गयी।
- **जनवरी 1993:** एकल बाजार बनाया गया।
- **जनवरी 1995:** ऑस्ट्रिया, फिनलैंड और स्वीडन यूरोपीय संघ में शामिल हुए।
- **जनवरी 2002:** 12 यूरोपीय संघ सदस्यों में नई मुद्रा यूरो को प्रचलन में लाया गया।
- **मई 2004:** दस नए सदस्य साइप्रस, चेक गणराज्य, एस्टोनिया, हंगरी, लातविया, लिथुआनिया, माल्टा, पोलैंड, स्लोवाकिया और स्लोवेनिया यूरोपीय संघ में शामिल हुए।
- **जनवरी 2007:** बुल्गारिया और रोमानिया यूरोपीय संघ में शामिल हुए। स्लोवेनिया ने यूरो को अपनाया।
- **2009 दिसम्बर:** लिस्बन संधि लागू हुई।
- **2012:** यूरोपीय संघ को नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित किया गया।
- **2013:** क्रोएशिया यूरोपीय संघ का 28वाँ सदस्य बना।
- **2016:** ब्रिटेन में जनमत संग्रह, 51.9 प्रतिशत मतदाताओं ने निर्णय लिया कि ब्रिटेन यूरोपीय संघ से बाहर निकल जाएगा (ब्रेक्सिट)।

दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्र संघ (आसियान)

- **संस्थापक सदस्य:** आसियान की स्थापना 1967 में इस क्षेत्र के पाँच देशों - इंडोनेशिया, मलेशिया, फिलीपींस, सिंगापुर और थाईलैंड - द्वारा बैंकॉक घोषणापत्र पर हस्ताक्षर करके की गई थी। (चित्र 11.6 देखें)
- उद्देश्य: आसियान का उद्देश्य मुख्य रूप से आर्थिक विकास में तेजी लाना और उसके माध्यम से 'सामाजिक प्रगति और सांस्कृतिक विकास' करना था।
 - एक दूसरा उद्देश्य विधि के शासन और संयुक्त राष्ट्र चार्टर के सिद्धांतों के आधार पर क्षेत्रीय शांति और स्थिरता को बढ़ावा देना था।
- यूरोपीय संघ के विपरीत आसियान में सुपरनैशनल संरचनाओं और संस्थानों के लिए बहुत कम इच्छा है।
- 2003 में, आसियान ने तीन स्तंभों वाले एक आसियान समुदाय की स्थापना करने पर सहमति जताते हुए यूरोपीय संघ के मार्ग पर कदम बढ़ाया, अर्थात्,
 - आसियान सुरक्षा समुदाय,
 - आसियान आर्थिक समुदाय और
 - आसियान सामाजिक सांस्कृतिक समुदाय।



चित्र 11.6: पूर्व एशिया और प्रशांत का मानचित्र

- ❑ 1994 में स्थापित आसियान क्षेत्रीय मंच (ARF) वह संगठन है जो सुरक्षा और विदेश नीति का समन्वय करता है।
- ❑ आसियान देशों ने अनौपचारिक, गैर-टकराववादी और सहयोगात्मक बातचीत के रूप में 'आसियान तरीके' को अपनाया है।
- ❑ आसियान ने निवेश, श्रम और सेवाओं के लिए एक मुक्त व्यापार क्षेत्र (FTA) बनाने पर ध्यान केंद्रित किया है। अमेरिका और चीन पहले ही आसियान के साथ FTA पर बातचीत करने के लिए तेजी से आगे बढ़ चुके हैं।
- ❑ इसके विजन 2020 ने अंतरराष्ट्रीय समुदाय में आसियान के लिए एक बाहरी भूमिका को परिभाषित किया है। यह क्षेत्र में संघर्षों पर बातचीत को प्रोत्साहित करने के लिए मौजूदा आसियान नीति पर आधारित है।
- ❑ भारत ने तीन आसियान सदस्यों, मलेशिया, सिंगापुर और थाईलैंड के साथ व्यापार समझौतों पर हस्ताक्षर किए। आसियान-भारत FTA 2010 में प्रभावी हुआ।

चीनी अर्थव्यवस्था का उदय

- ❑ 1978 से चीन की आर्थिक सफलता को एक महान शक्ति के रूप में इसके उदय से जोड़ा गया है। चीन में सुधारों की शुरुआत के बाद से यह सबसे तेजी से बढ़ने वाली अर्थव्यवस्था रही है। अनुमान है कि 2040 तक यह अमेरिका को पीछे छोड़कर दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन जाएगी।
- ❑ इस क्षेत्र में इसका आर्थिक एकीकरण इसे पूर्वी एशियाई विकास का चालक बनाता है, जिससे इसे क्षेत्रीय मामलों में बहुत अधिक प्रभाव मिलता है।
- ❑ 1949 में माओ के नेतृत्व में साम्यवादी क्रांति के बाद पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना की स्थापना के बाद, इसकी अर्थव्यवस्था सोवियत मॉडल पर आधारित थी।
- ❑ चीन ने 1972 में संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ संबंधों की स्थापना के साथ अपने राजनीतिक और आर्थिक अलगाव को समाप्त कर दिया।
- ❑ प्रीमियर झोउ एनलाई ने 1973 में 'चार आधुनिकीकरण' (कृषि, उद्योग, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी और सैन्य) का प्रस्ताव रखा।
- ❑ 1978 तक, तत्कालीन नेता डेंग शियाओपिंग ने चीन में 'खुले दरवाजे' की नीति और आर्थिक सुधारों की घोषणा की।
- ❑ 1982 में कृषि के निजीकरण के बाद 1998 में उद्योग का निजीकरण किया गया। व्यापार बाधाओं को केवल विशेष आर्थिक क्षेत्रों (SEZ) में समाप्त किया गया, जहाँ विदेशी निवेशक उद्यम स्थापित कर सकते थे। चीन में, राज्य ने बाजार अर्थव्यवस्था स्थापित करने में केंद्रीय भूमिका निभाई और निभा रहा है।

- ❑ नए व्यापार कानूनों और विशेष आर्थिक क्षेत्रों के निर्माण से विदेशी व्यापार में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। चीन विश्व में कहीं भी प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) के लिए सबसे महत्वपूर्ण गंतव्य बन गया है।
- ❑ जबकि चीनी अर्थव्यवस्था में नाटकीय रूप से सुधार हुआ है, चीन में सभी को सुधारों का लाभ नहीं मिला है।
- ❑ चीन में बेरोजगारी बढ़ी है और लगभग 100 मिलियन लोग रोजगार की तलाश में हैं। महिला रोजगार और काम की स्थितियाँ अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के यूरोप जितनी ही खराब हैं।
- ❑ इन असमानताओं के बावजूद, चीन क्षेत्रीय और वैश्विक स्तर पर एक आर्थिक शक्ति बन गया है।

भारत-चीन संबंध:

- ❑ पश्चिमी साम्राज्यवाद के आगमन से पहले भारत और चीन एशिया में महान शक्तियाँ थीं।
- ❑ चीन का अपनी अनूठी सहायक नदी प्रणाली के आधार पर अपनी सीमाओं के परिधि पर काफी प्रभाव और नियंत्रण था।
- ❑ दोनों के बीच सीमित राजनीतिक और सांस्कृतिक संपर्क था।
- ❑ भारत द्वारा ब्रिटेन से अपनी स्वतंत्रता पुनः प्राप्त करने और चीन द्वारा विदेशी शक्तियों को निष्कासित करने के बाद, उम्मीद थी कि दोनों विकासशील दुनिया और विशेष रूप से एशिया के भविष्य को आकार देने के लिए एक साथ आएँगे।
- ❑ 1962 के युद्ध में भारत को सैन्य पराजय का सामना करना पड़ा था, जिसका भारत-चीन संबंधों पर दीर्घकालिक प्रभाव पड़ा। दोनों देशों के बीच राजनयिक संबंधों को 1976 तक कम कर दिया गया था।
- ❑ 1970 के दशक के मध्य से लेकर अंत तक चीन के राजनीतिक नेतृत्व में बदलाव के बाद, चीन की नीति अधिक व्यावहारिक और कम वैचारिक हो गई।
- ❑ सीमा मुद्दे को हल करने के लिए 1981 में वार्ता की एक शृंखला भी शुरू की गई थी।
- ❑ दिसंबर 1988 में राजीव गांधी की चीन यात्रा ने भारत-चीन संबंधों में सुधार के लिए प्रेरणा प्रदान की।
- ❑ भारत और चीन के बीच द्विपक्षीय व्यापार 1992 में 338 मिलियन डॉलर से बढ़कर 2017 में 84 बिलियन डॉलर से अधिक हो गया है।
- ❑ हाल ही में दोनों देशों के बीच संबंधों में गिरावट आई है। सीमा विवाद, चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा (CPEC) और आतंकवाद का मुकाबला करने के भारत के कदम के खिलाफ संयुक्त राष्ट्र में पाकिस्तान को चीन का समर्थन इसके कुछ कारक हैं।

विचारणीय बिंदु

चीनी अर्थव्यवस्था ने बहुत तेजी से तरक्की की है। अब यह दूसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था और उभरती हुई महाशक्ति है। हालाँकि यह अभी भी स्वयं को साम्यवादी देश कहता है। हालाँकि, क्या आपको लगता है कि इसमें साम्यवादी आर्थिक नीति की कोई विशेषता है? क्या 1978 में चीनी अर्थव्यवस्था के 'खुले दरवाजे' ने इसे पूँजीवादी देश बना दिया है? चीन की इस विरोधाभासी संरचना पर आपके क्या विचार हैं?



ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत

जापान:

- ❑ जापान के पास बहुत कम प्राकृतिक संसाधन हैं और वह अपने अधिकांश कच्चे माल का आयात करता है।
- ❑ जापान 1964 में आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (OECD) का सदस्य बन गया।
- ❑ 2017 में, जापान विश्व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था थी।
- ❑ यह G-7 का एकमात्र एशियाई सदस्य है। यह विश्व का ग्यारहवाँ सबसे अधिक आबादी वाला देश है।
- ❑ जापान एकमात्र ऐसा देश है जिसने परमाणु बमों के कारण विनाश झेला है।
- ❑ यह संयुक्त राष्ट्र के नियमित बजट में दूसरा सबसे बड़ा योगदानकर्ता है, जो कुल बजट का लगभग 10 प्रतिशत योगदान देता है।
- ❑ जापान का सैन्य व्यय उसके सकल घरेलू उत्पाद का केवल एक प्रतिशत है, यह दुनिया में सातवाँ सबसे बड़ा है।

दक्षिण कोरिया:

- ❑ **कोरियाई प्रायद्वीप का विभाजन:** द्वितीय विश्व युद्ध के अंत में कोरियाई प्रायद्वीप को 38वें समानांतर के साथ दक्षिण कोरिया (कोरिया गणराज्य) और उत्तर कोरिया (कोरिया लोकतांत्रिक जनवादी गणराज्य) में विभाजित किया गया था।
 - 1950-53 के दौरान कोरियाई युद्ध और शीत युद्ध के दौर की गतिशीलता ने दोनों पक्षों के बीच प्रतिद्वंद्विता को और बढ़ा दिया।
 - दोनों कोरिया अंततः 17 सितंबर 1991 को संयुक्त राष्ट्र के सदस्य बन गए।
- ❑ **दक्षिण कोरिया एशिया में शक्ति के केंद्र के रूप में उभरा:** 1960 और 1980 के दशक के बीच, यह तेजी से एक आर्थिक शक्ति के रूप में विकसित हुआ, जिसे "हान नदी पर चमत्कार" कहा जाता है।

- अपने सर्वांगीण विकास का संकेत देते हुए, दक्षिण कोरिया 1996 में OECD का सदस्य बन गया।
- वर्ष 2017 में, इसकी अर्थव्यवस्था विश्व में ग्यारहवीं सबसे बड़ी तथा सैन्य व्यय दसवाँ सबसे अधिक था।
- इसके उच्च मानव विकास के लिए जिम्मेदार प्रमुख कारकों में “सफल भूमि सुधार, ग्रामीण विकास, व्यापक मानव संसाधन विकास और तेजी से न्यायसंगत आर्थिक विकास” शामिल हैं। अन्य कारक निर्यात अभिविन्यास, मजबूत पुनर्वितरण नीतियाँ, सार्वजनिक बुनियादी ढाँचे का विकास, प्रभावी संस्थान और शासन हैं।

दक्षिण एशिया

- ‘दक्षिण एशिया’ में आमतौर पर निम्नलिखित देश शामिल होते हैं: बांग्लादेश, भूटान, भारत, मालदीव, नेपाल, पाकिस्तान और श्रीलंका।
- इस क्षेत्र की सीमाएँ पूर्व और पश्चिम में उतनी स्पष्ट नहीं हैं, जितनी उत्तर और दक्षिण में हैं। पूरे क्षेत्र की चर्चाओं में अक्सर अफगानिस्तान और म्यांमार को शामिल किया जाता है।
- पाकिस्तान और बांग्लादेश में नागरिक और सैन्य दोनों तरह के शासक रहे हैं। नेपाल एक संवैधानिक राजतंत्र था, जिसमें राजा द्वारा कार्यकारी शक्तियों को अपने हाथ में लेने का खतरा था।
- 2008 में, राजतंत्र को समाप्त कर दिया गया और नेपाल एक लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में उभरा।

जब भारत और पाकिस्तान परमाणु शक्तियों के क्लब में शामिल हुए, तो यह क्षेत्र अचानक वैश्विक ध्यान का केंद्र बन गया। बेशक, इस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के संघर्षों पर ध्यान केंद्रित किया गया: क्षेत्र के राज्यों के बीच सीमा और जल बँटवारे के विवाद लंबित हैं। इसके अलावा, उग्रवाद, जातीय संघर्ष और संसाधन बँटवारे से उत्पन्न संघर्ष भी हैं।

पाकिस्तान में सेना और लोकतंत्र:

- पाकिस्तान द्वारा अपना पहला संविधान बनाए जाने के बाद जनरल अयूब खान ने देश का प्रशासन संभाला और शीघ्र ही स्वयं को निर्वाचित घोषित कर लिया। जब उनके शासन के खिलाफ लोगों में असंतोष व्याप्त हो गया तो उन्हें पद छोड़ना पड़ा। (चित्र 11.7 देखें)
- सैन्य शासन और बांग्लादेश का निर्माण: इसके बाद जनरल याह्या खान के नेतृत्व में एक बार फिर सैन्य अधिग्रहण का रास्ता खुला। याह्या के सैन्य शासन के दौरान पाकिस्तान को बांग्लादेश संकट का सामना करना पड़ा और 1971 में भारत के साथ युद्ध के बाद पूर्वी पाकिस्तान अलग होकर बांग्लादेश नामक एक स्वतंत्र देश के रूप में उभरा।
- इसके बाद 1971 से 1977 तक जुल्फिकार अली भुट्टो के नेतृत्व में एक निर्वाचित सरकार पाकिस्तान में सत्ता में आई।
- 1977 में जनरल जियाउल-हक ने भुट्टो की सरकार को हटा दिया।
- जनरल जिया को 1982 से लोकतंत्र समर्थक आंदोलन का सामना करना पड़ा और 1988 में बेनजीर भुट्टो के नेतृत्व में एक बार फिर एक निर्वाचित लोकतांत्रिक सरकार की स्थापना हुई। इसके बाद के दौर में, पाकिस्तानी राजनीति उनकी पार्टी, पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी और मुस्लिम लीग के बीच प्रतिस्पर्धा के इर्द-गिर्द केंद्रित रही।
- 1999 में, सेना ने पुनः हस्तक्षेप किया और जनरल परवेज मुशर्रफ ने प्रधानमंत्री नवाज शरीफ को हटा दिया।
- 2001 में, जनरल मुशर्रफ ने स्वयं को राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचित करवाया।
- 2008 से, लोकतांत्रिक रूप से चुने गए नेता पाकिस्तान पर शासन कर रहे हैं।
- पाकिस्तान एक स्थिर लोकतंत्र बनाने और उसे बनाए रखने में विफल रहा है:
 - सेना, पादरी और भूस्वामी अभिजात वर्ग के सामाजिक प्रभुत्व के कारण निर्वाचित सरकारों को बार-बार उखाड़ फेंका गया है और सैन्य सरकारों की स्थापना की गई है।
 - भारत के साथ पाकिस्तान के संघर्ष ने अर्धसैनिक समूहों को और अधिक शक्तिशाली बना दिया है।
 - पाकिस्तान में लोकतांत्रिक शासन के लिए वास्तविक अंतरराष्ट्रीय समर्थन की कमी ने सेना को अपना प्रभुत्व जारी रखने के लिए और प्रोत्साहित किया है।

लोकतंत्र को तानाशाही के ऊपर वरीयता

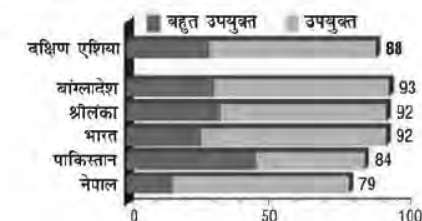
इनमें से किसी एक कथन से सहमत



	बांग्लादेश	भारत	नेपाल	पाकिस्तान	श्रीलंका
लोकतंत्र बेहतर	69	70	62	37	71
कभी-कभी तानाशाही बेहतर	6	9	10	14	11
कोई फर्क नहीं पड़ता	25	21	28	49	18

अपने देश के लिए लोकतंत्र की उपयुक्तता पर बहुत कम लोगों को संदेह

आपके देश के लिए लोकतंत्र कितना उपयुक्त है?



चित्र 11.7: लोकतंत्र को तानाशाही के ऊपर वरीयता

1947 से दक्षिण एशिया का तिथिक्रम

- ❑ **1947:** ब्रिटिश शासन की समाप्ति के बाद भारत और पाकिस्तान स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में उभरे।
- ❑ **1948:** श्रीलंका (तब सीलोन) को स्वतंत्रता मिली; कश्मीर को लेकर भारत-पाक संघर्ष
- ❑ **1954-55:** पाकिस्तान शीत युद्ध के सैन्य गुटों, सीटो और सेन्टो में शामिल हो गया
- ❑ **1960:** भारत और पाकिस्तान ने सिंधु जल संधि पर हस्ताक्षर किए
- ❑ **1962:** भारत और चीन के बीच सीमा संघर्ष 1965: भारत-पाक युद्ध; संयुक्त राष्ट्र भारत-पाकिस्तान निगरानी मिशन
- ❑ **1966:** भारत और पाकिस्तान ने ताशकंद समझौते पर हस्ताक्षर किए; पूर्वी पाकिस्तान को अधिक स्वायत्तता देने के लिए शेख मुजीब-उर-रहमान का छह सूत्री प्रस्ताव
- ❑ **1971 मार्च:** बांग्लादेश के नेताओं द्वारा स्वतंत्रता की घोषणा अगस्त: 20 वर्षों के लिए भारत-सोवियत मैत्री संधि पर हस्ताक्षर दिसंबर: भारत-पाक युद्ध, बांग्लादेश की मुक्ति
- ❑ **1972 जुलाई:** भारत और पाकिस्तान ने शिमला समझौते पर हस्ताक्षर किए
- ❑ **1974 मई:** भारत ने परमाणु परीक्षण किया
- ❑ **1976:** पाकिस्तान और बांग्लादेश ने राजनयिक संबंध स्थापित किए
- ❑ **1985 दिसंबर:** दक्षिण एशियाई नेताओं ने ढाका में पहले शिखर सम्मेलन में सार्क चार्टर पर हस्ताक्षर किए
- ❑ **1987:** भारत-श्रीलंका समझौता; श्रीलंका में भारतीय शांति सेना (आईपीकेएफ) का अभियान (1987-90)
- ❑ **1988:** भारत ने भाड़े के सैनिकों द्वारा तख्तापलट के प्रयास को विफल करने के लिए मालदीव में सेना भेजी। भारत और पाकिस्तान ने एक दूसरे के परमाणु प्रतिष्ठानों और सुविधाओं पर हमला न करने के समझौते पर हस्ताक्षर किए।
- ❑ **1988-91:** पाकिस्तान, बांग्लादेश और नेपाल में लोकतंत्र की बहाली
- ❑ **1996 दिसंबर:** भारत और बांग्लादेश ने गंगा जल बँटवारे के लिए फरक्का संधि पर हस्ताक्षर किए
- ❑ **1998 मई:** भारत और पाकिस्तान ने परमाणु परीक्षण किया दिसंबर: भारत और श्रीलंका ने मुक्त व्यापार समझौते (FTA) पर हस्ताक्षर किए
- ❑ **फरवरी 1999:** भारतीय प्रधानमंत्री वाजपेयी शांति घोषणापत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए लाहौर की बस यात्रा पर गए।
- ❑ **जून-जुलाई 1999:** भारत और पाकिस्तान के बीच कारगिल संघर्ष
- ❑ **2001 जुलाई:** वाजपेयी-मुशरफ आगरा शिखर सम्मेलन असफल
- ❑ **जनवरी 2004:** इस्लामाबाद में 12वें सार्क शिखर सम्मेलन में SAFTA पर हस्ताक्षर किए गए।
- ❑ **2007:** अफगानिस्तान सार्क में शामिल हुआ
- ❑ **2014 नवंबर:** काठमांडू, नेपाल में 18वाँ सार्क शिखर सम्मेलन

बांग्लादेश में लोकतंत्र

- ❑ बांग्लादेश 1947 से 1971 तक पाकिस्तान का हिस्सा था। इसमें ब्रिटिश भारत से अलग हुए बंगाल और असम के इलाके शामिल थे। इस क्षेत्र के लोग पश्चिमी पाकिस्तान के वर्चस्व और उर्दू भाषा के थोपे जाने से नाराज थे।
- ❑ विभाजन के तुरंत बाद, उन्होंने बंगाली संस्कृति और भाषा के साथ किए जा रहे अनुचित व्यवहार के विरुद्ध विरोध प्रदर्शन शुरू कर दिया।
- ❑ शेख मुजीब-उर रहमान ने पश्चिमी पाकिस्तान के वर्चस्व के विरुद्ध लोकप्रिय संघर्ष का नेतृत्व किया। उन्होंने पूर्वी क्षेत्र के लिए स्वायत्तता की माँग की।
- ❑ तत्कालीन पाकिस्तान में 1970 के चुनावों में, शेख मुजीब के नेतृत्व वाली अवामी लीग ने पूर्वी पाकिस्तान की सभी सीटों जीतीं और पूरे पाकिस्तान के लिए प्रस्तावित संविधान सभा में बहुमत हासिल किया।
- ❑ जनरल याह्या खान के सैन्य शासन के तहत, पाकिस्तानी सेना ने बंगाली लोगों के जन आंदोलन को दबाने की कोशिश की।
- ❑ भारत सरकार ने पूर्वी पाकिस्तान के लोगों की आजादी की माँग का समर्थन किया और उन्हें आर्थिक और सैन्य रूप से मदद प्रदान की।
- ❑ इसके परिणामस्वरूप दिसंबर 1971 में भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध हुआ, जो पूर्वी पाकिस्तान में पाकिस्तानी सेना के आत्मसमर्पण और एक स्वतंत्र देश के रूप में बांग्लादेश के गठन के साथ समाप्त हुआ।
- ❑ बांग्लादेश ने धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र और समाजवाद में विश्वास की घोषणा करते हुए अपना संविधान तैयार किया।
- ❑ 1975 में शेख मुजीब ने संसदीय शासन प्रणाली से राष्ट्रपति शासन प्रणाली में बदलाव के लिए संविधान में संशोधन करवाया। उन्होंने अपनी पार्टी अवामी लीग को छोड़कर सभी पार्टियों को समाप्त कर दिया।

- शेख की हत्या कर दी गई और लेफ्टिनेंट जनरल एच.एम. इरशाद के नेतृत्व में एक और सैन्य अधिग्रहण हुआ।
- बड़े पैमाने पर सार्वजनिक विरोध के कारण इरशाद को 1990 में पद छोड़ना पड़ा। 1991 में चुनाव हुए। तब से, बहुदलीय चुनावों पर आधारित प्रतिनिधि लोकतंत्र बांग्लादेश में कार्य कर रहा है।

नेपाल में राजतंत्र और लोकतंत्र

- नेपाल अतीत में एक हिंदू राज्य था और फिर आधुनिक काल में कई वर्षों तक एक संवैधानिक राजतंत्र रहा।
- राजा ने 1990 में एक मजबूत लोकतंत्र समर्थक आंदोलन के मद्देनजर एक नए लोकतांत्रिक संविधान की माँग को स्वीकार कर लिया।
- नब्बे के दशक के दौरान, नेपाल के माओवादी नेपाल के कई हिस्सों में अपना प्रभाव फैलाने में सफल रहे।
- 2002 में, राजा ने संसद को समाप्त कर दिया और सरकार को बर्खास्त कर दिया, इस प्रकार नेपाल में मौजूद सीमित लोकतंत्र भी समाप्त हो गया।
- अप्रैल 2006 में, बड़े पैमाने पर देशव्यापी, लोकतंत्र समर्थक विरोध प्रदर्शन हुए। संघर्षरत लोकतंत्र समर्थक ताकतों ने अपनी पहली बड़ी जीत तब हासिल की जब राजा को अप्रैल 2002 में भंग किए गए प्रतिनिधि सभा को बहाल करने के लिए मजबूर होना पड़ा।
- 2008 में, राजशाही को समाप्त करने के बाद नेपाल एक लोकतांत्रिक गणराज्य बन गया। 2015 में, इसने एक नया संविधान अपनाया।

श्रीलंका में जातीय संघर्ष और लोकतंत्र

- श्रीलंका ने 1948 में अपनी स्वतंत्रता के बाद से लोकतंत्र को बनाए रखा है। लेकिन इसे सेना या राजशाही से नहीं बल्कि जातीय संघर्ष से गंभीर चुनौती का सामना करना पड़ा, जिसके कारण एक क्षेत्र द्वारा अलगाव की माँग की गई।
- अपनी स्वतंत्रता के पश्चात् श्रीलंका (तब इसे सीलोन के नाम से जाना जाता था) की राजनीति में बहुसंख्यक सिंहली समुदाय के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाली ताकतों का वर्चस्व था।
- सिंहली राष्ट्रवादियों का मानना था कि श्रीलंका को तमिलों को 'रियायत' नहीं देनी चाहिए क्योंकि श्रीलंका केवल सिंहली लोगों का है।
- 1983 के बाद से, उग्रवादी संगठन, लिबरेशन टाइगर्स ऑफ तमिल ईलम (LTTE) श्रीलंका की सेना के साथ सशस्त्र संघर्ष कर रहा है और श्रीलंका के तमिलों के लिए 'तमिल ईलम' या एक अलग देश की माँग कर रहा है। LTTE श्रीलंका के उत्तरपूर्वी हिस्सों को नियंत्रित करता है।
- 1987 में, भारत सरकार पहली बार श्रीलंकाई तमिल प्रश्न में सीधे तौर पर शामिल हुई। भारत ने श्रीलंका के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर किए और श्रीलंकाई सरकार और तमिलों के बीच संबंधों को स्थिर करने के लिए सेना भेजी।
 - 1989 में भारतीय शांति सेना (आईपीकेएफ) अपना उद्देश्य प्राप्त किए बिना ही श्रीलंका से बाहर निकल गई।
- नॉर्वे और आइसलैंड जैसे स्कैंडिनेवियाई देशों ने युद्धरत समूहों को बातचीत के लिए वापस लाने का प्रयास किया। आखिरकार, 2009 में LTTE के परास्त होने के साथ ही सशस्त्र संघर्ष समाप्त हो गया।
- संघर्ष के बावजूद, श्रीलंका ने उल्लेखनीय आर्थिक वृद्धि दर्ज की है और मानव विकास के उच्च स्तर को दर्ज किया है।

भारत-पाकिस्तान संघर्ष

- आजादी के बाद, पाकिस्तान सरकार ने दावा किया कि कश्मीर उसका है। 1947-48 और 1965 में भारत और पाकिस्तान के बीच हुए युद्ध इस मामले को सुलझाने में विफल रहे।
- 1947-48 के युद्ध के परिणामस्वरूप प्रांत का विभाजन पाकिस्तान के कब्जे वाले कश्मीर और भारतीय प्रांत जम्मू और कश्मीर में हुआ, जो नियंत्रण रेखा से विभाजित था।
- 1971 में, भारत ने पाकिस्तान के खिलाफ निर्णायक युद्ध जीता, लेकिन कश्मीर मुद्दा सुलझा नहीं।
- भारत का पाकिस्तान के साथ संघर्ष सियाचिन ग्लेशियर पर नियंत्रण और हथियारों के अधिग्रहण जैसे रणनीतिक मुद्दों पर भी है।
 - 1998 में, भारत ने पोकरण में परमाणु विस्फोट किया। पाकिस्तान ने कुछ ही दिनों में चगाई पहाड़ियों में परमाणु परीक्षण करके जवाब दिया।
- जल विवाद: भारत और पाकिस्तान के बीच नदी जल के बंटवारे को लेकर भी समस्याएँ थीं। 1960 तक, वे सिंधु बेसिन की नदियों के उपयोग को लेकर एक भयंकर बहस में उलझे रहे।
- अंततः 1960 में विश्व बैंक की मदद से भारत और पाकिस्तान ने सिंधु जल संधि पर हस्ताक्षर किए, जो आज तक कायम है, भले ही दोनों देश विभिन्न सैन्य संघर्षों में शामिल रहे हों। कच्छ के रण में सर क्रीक में सीमांकन रेखा को लेकर दोनों देश सहमत नहीं हैं।

भारत और उसके अन्य पड़ोसी देश

- **बांग्लादेश:** भारत और बांग्लादेश की सरकारों के बीच गंगा और ब्रह्मपुत्र नदी के जल बंटवारे सहित कई मुद्दों पर मतभेद रहे हैं।
 - भारत सरकार बांग्लादेश द्वारा भारत में अवैध आतंकवाद को अस्वीकार करने, भारत विरोधी इस्लामी कट्टरपंथी समूहों को समर्थन देने, बांग्लादेश द्वारा भारतीय सैनिकों को अपने क्षेत्र से होकर पूर्वोत्तर भारत में जाने की अनुमति न देने तथा भारत को प्राकृतिक गैस का निर्यात न करने के निर्णय से संतुष्ट नहीं है।

- ❑ **नेपाल:** नेपाल और भारत के बीच बहुत ही खास संबंध हैं। दोनों देशों के बीच एक संधि के तहत दोनों देशों के नागरिकों को बिना वीजा और पासपोर्ट के एक दूसरे के देश में यात्रा करने और कार्य करने की अनुमति है।
 - भारत सरकार ने नेपाल और चीन के बीच मधुर संबंधों और भारत विरोधी तत्त्वों के खिलाफ नेपाल सरकार की निष्क्रियता पर अक्सर नाराजगी व्यक्त की है।
 - नेपाल के कई नेताओं और नागरिकों का मानना है कि भारत सरकार उसके आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करती है, उसकी नदियों के जल और जलविद्युत पर नियंत्रण रखती है और नेपाल, जो चारों ओर से भूमि से घिरा हुआ देश है, को भारतीय क्षेत्र के माध्यम से समुद्र तक आसान पहुँच से रोकती है।
- ❑ **श्रीलंका:** भारत और श्रीलंका की सरकारों के बीच संबंधों में कठिनाइयाँ मुख्यतः द्वीपीय राष्ट्र में जातीय संघर्ष के कारण हैं।
 - 1987 में सैन्य हस्तक्षेप के बाद, भारत सरकार अब श्रीलंका की आंतरिक समस्याओं के मामले में अलगाव की नीति को प्राथमिकता दे रही है।
 - एफ.टी.ए.: भारत ने श्रीलंका के साथ एक मुक्त व्यापार समझौते पर हस्ताक्षर किए, जिससे दोनों देशों के बीच संबंध मजबूत हुए। श्रीलंका में सुनामी के बाद पुनर्निर्माण में भारत की मदद ने भी दोनों देशों को करीब ला दिया है।
- ❑ **भूटान:** भारत के भूटान के साथ भी बहुत खास संबंध हैं और भूटानी सरकार के साथ उसका कोई बड़ा विवाद नहीं है। भूटानी सम्राट द्वारा अपने देश में सक्रिय पूर्वोत्तर भारत के गुरिल्लाओं और उग्रवादियों को बाहर निकालने के लिए किए गए प्रयास भारत के लिए मददगार रहे हैं।
- ❑ **मालदीव:** भारत और मालदीव के बीच भी अच्छे संबंध हैं। भारत ने 1969 में मालदीव को सैन्य सहायता प्रदान की थी, जब श्रीलंका के एक भाड़े के तमिल सैनिक ने मालदीव पर हमला किया था।
- ❑ नेपाल और भूटान, साथ ही बांग्लादेश और म्याँमार के बीच अतीत में क्रमशः भूटान में जातीय नेपालियों और म्याँमार में रोहिंग्याओं के प्रवास को लेकर मतभेद रहे हैं।
- ❑ बांग्लादेश और नेपाल के बीच हिमालयी नदी के जल के भविष्य को लेकर कुछ मतभेद रहे हैं।

शांति और सहयोग:

- ❑ **सार्क:** दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) दक्षिण एशियाई देशों द्वारा बहुपक्षीय माध्यमों से सहयोग विकसित करने की एक प्रमुख क्षेत्रीय पहल है। इसकी शुरुआत 1985 में हुई थी।
- ❑ **SAFTA:** सार्क सदस्यों ने दक्षिण एशियाई मुक्त व्यापार (SAFTA) समझौते पर हस्ताक्षर किए, जिसमें संपूर्ण दक्षिण एशिया के लिए एक मुक्त व्यापार क्षेत्र के गठन का वादा किया गया।
 - SAFTA पर 2004 में हस्ताक्षर किए गए थे और यह 1 जनवरी 2006 को लागू हुआ।
 - उद्देश्य: SAFTA का उद्देश्य व्यापार शुल्कों को कम करना है। लेकिन हमारे कुछ पड़ोसी देशों को डर है कि SAFTA भारत के लिए उनके बाजारों पर 'आक्रमण' करने और उनके देशों में वाणिज्यिक उपक्रमों और वाणिज्यिक उपस्थिति के माध्यम से उनके समाजों और राजनीति को प्रभावित करने का एक तरीका है।
- ❑ हालाँकि भारत-पाकिस्तान संबंध स्थानिक संघर्ष और हिंसा की कहानी प्रतीत होते हैं, लेकिन तनाव को प्रबंधित करने और शांति स्थापित करने के लिए कई प्रयास किए गए हैं।
- ❑ चीन और संयुक्त राज्य अमेरिका दक्षिण एशियाई राजनीति में प्रमुख खिलाड़ी बने हुए हैं। पिछले दस वर्षों में चीन-भारत संबंधों में काफी सुधार हुआ है, लेकिन पाकिस्तान के साथ चीन की रणनीतिक साझेदारी एक बड़ी परेशानी बनी हुई है।
- ❑ शीत युद्ध की समाप्ति के बाद से अमेरिका के भारत और पाकिस्तान दोनों के साथ अच्छे संबंध रहे हैं और वह भारत-पाकिस्तान संबंधों में मध्यस्थ के रूप में कार्य करता है।

विचारणीय बिंदु

दक्षिण एशियाई उपमहाद्वीप उन देशों से बना है जो पहले, किसी न किसी शासक शासन के तहत एक संयुक्त इकाई का हिस्सा थे। उनका इतिहास एक जैसा है और वे सांस्कृतिक रूप से भी लगभग समान हैं। हालाँकि, यूरोपीय संघ के विपरीत, जिसमें बहुत से देश और संस्कृतियाँ शामिल हैं, SAARC के तहत एक एकीकृत आर्थिक क्षेत्र के रूप में दक्षिण एशियाई एकता EU जितनी सफल नहीं रही है। क्या आप इस विफलता के विभिन्न कारणों के बारे में सोच सकते हैं?



निष्कर्ष

21वीं सदी में वैश्विक व्यवस्था की विशेषताएँ और चुनौतियाँ जटिल और विविधतापूर्ण हैं। यह विशेष रूप से अमेरिका जैसे शक्तिशाली देशों के प्रभुत्व वाले एकध्रुवीय विश्व से बदलकर चीन, भारत जैसे उभरते देशों और क्षेत्रीय शक्तियों के प्रभावी होने के कारण बहुध्रुवीय परिदृश्य में बदल रही है। जलवायु परिवर्तन, महामारियाँ और आर्थिक परस्पर निर्भरता जैसी वैश्विक चुनौतियाँ अंतरराष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता को बढ़ाती हैं। भू-राजनीतिक तनाव, व्यापार संघर्ष और वैश्विक संस्थानों में सुधार की माँग के कारण वैश्विक व्यवस्था महत्वपूर्ण संकटों का सामना कर रही है। विभिन्न विचारधाराएँ तथा राष्ट्रवाद वैश्विक सहयोग को चुनौती दे रहे हैं, जबकि सुरक्षा और युद्ध की स्थिति ने वैश्विक संबंधों को बदल दिया है। इन चुनौतियों के बावजूद संयुक्त राष्ट्र, विश्व व्यापार संगठन और अंतरराष्ट्रीय संघ जैसे संस्थान अंतरराष्ट्रीय समस्याओं के समाधान हेतु आवश्यक बने हुए हैं। वैश्विक व्यवस्था का भविष्य देशों के बीच सहयोग बढ़ाने, बदलती परिस्थितियों के अनुसार ढलने और अधिक समावेशी तथा स्थायी अंतरराष्ट्रीय प्रणाली को बढ़ावा देने पर निर्भर करेगा।

महत्त्वपूर्ण शब्दावलि

- ❖ **सोवियत प्रणाली:** 1917 में रूसी क्रांति के बाद समतावादी समाज और राज्य द्वारा नियंत्रित नियोजित अर्थव्यवस्था के सिद्धांतों के आधार पर सोवियत प्रणाली की शुरुआत की गई थी।
- ❖ **समाजवादी ब्लॉक:** पूर्वी यूरोपीय देशों को समाजवादी ब्लॉक के रूप में जाना जाता था क्योंकि ये देश फासीवादी ताकतों से मुक्त हो गए थे और उनकी राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्थाएँ इस ब्लॉक पर ही आधारित थीं।
- ❖ **पूँजीवादी अर्थव्यवस्था:** इस अर्थव्यवस्था में, भूमि और उत्पादक संपत्ति का स्वामित्व और नियंत्रण पूँजीपतियों के पास होता है।
- ❖ **एकध्रुवीय प्रणाली:** अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मामलों पर केवल एक महाशक्ति का प्रभुत्व होता है।
- ❖ **बहुध्रुवीय प्रणाली:** अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मामलों पर केवल एक महाशक्ति का प्रभुत्व नहीं हो सकता, इसके बजाय देशों का एक समूह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- ❖ **समतावादी समाज:** यह मानता है कि सभी लोग समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं और उन्हें जीवन में समान अधिकार और अवसर मिलने चाहिए।
- ❖ **सबसे बड़ी गैराज बिक्री:** यह यूएसएसआर के मूल्यवान उद्योगों को कम करके उन्हें औने-पौने दामों पर बेचने के लिए शॉक थेरेपी के कारण हुआ था।
- ❖ **शॉक थेरेपी:** विश्व बैंक और आईएमएफ के प्रभाव में रूस, मध्य एशिया और पूर्वी यूरोप में सत्तावादी समाजवादी प्रणाली से लोकतांत्रिक पूँजीवादी प्रणाली में संक्रमण का मॉडल।
- ❖ **यूरोपीय संघ:** 1992 में स्थापित यूरोपीय पूँजीवादी देशों का एक समूह जो विदेश और सुरक्षा नीति, सहयोग और गृह मामलों के सामान्य लक्ष्यों के लिए स्थापित किया गया था।
- ❖ **OEEC:** 1948 में स्थापित यूरोपीय आर्थिक सहयोग संगठन, व्यापार और आर्थिक मुद्दों पर सहयोग करने के लिए पश्चिमी यूरोपीय राज्यों को सहायता प्रदान करता है।
- ❖ **मार्शल योजना:** इसे अमेरिका द्वारा यूरोपीय अर्थव्यवस्था के पुनरुद्धार के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए पेश किया गया था।
- ❖ **आसियान:** सामाजिक प्रगति और सांस्कृतिक विकास के माध्यम से आर्थिक विकास को गति देने के लिए दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों का संघ।
- ❖ **आसियान तरीका:** एक अनौपचारिक, गैर-टकरावपूर्ण और सहकारी बातचीत जो सुपरनैशनल संरचनाओं को बढ़ावा देती है।
- ❖ **आसियान क्षेत्रीय मंच (ARF):** सुरक्षा और विदेश नीति के समन्वय को बढ़ावा देने के लिए 1994 में स्थापित एक संगठन।
- ❖ **विशेष आर्थिक क्षेत्र (SEZ):** विदेशी निवेशक इन क्षेत्रों में अपने उद्यम स्थापित कर सकते हैं।
- ❖ **खुले द्वार की नीति:** विदेशों से पूँजी और प्रौद्योगिकी के निवेश को आमंत्रित करना।
- ❖ **आसियान समुदाय के तीन स्तंभ:** आसियान सुरक्षा समुदाय, आसियान आर्थिक समुदाय, आसियान सामाजिक-सांस्कृतिक समुदाय।
- ❖ **भू-राजनीति:** भू-राजनीति उन देशों के संघ को संदर्भित करती है जो भौगोलिक रूप से एक-दूसरे से बंधे हुए हैं और उनके हित राजनीतिक और आर्थिक रूप से भी एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।
- ❖ **द्विपक्षीय वार्ता:** बिना किसी अन्य मध्यस्थता के दोनों देशों के बीच वार्ता।
- ❖ **भारतीय शांति सेना (आईपीकेएफ):** इसे भारत ने श्रीलंका में तमिलों को मान्यता दिए जाने की माँग का समर्थन करने के लिए भेजा था।
- ❖ **सात दलीय गठबंधन (एसपीए):** नेपाल में सात दलों का गठबंधन जिसने राजतंत्र को समाप्त करने की भी माँग की।
- ❖ **सार्क:** इसका तात्पर्य है दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ जिसमें सात सदस्य हैं और इसका उद्देश्य आपसी विश्वास और समझ है।
- ❖ **साफ्टा:** यह अपने सदस्य देशों द्वारा सीमा शुल्क प्रतिबंधों और कर्तव्यों से मुक्त व्यापार करने के लिए दक्षिण एशिया मुक्त व्यापार क्षेत्र समझौता है।
- ❖ **एलटीटीई:** श्रीलंका में लिबरेशन टाइगर्स ऑफ तमिल ईलम ने तमिलों के लिए एक अलग राज्य की माँग की।



अंतरराष्ट्रीय संगठन

संदर्भ: इस अध्याय में NCERT पाठ्यपुस्तक की कक्षा-XII (भारत और समकालीन विश्व-II) के अध्याय-4 का सारांश शामिल है।

परिचय

इस अध्याय में, हम सोवियत संघ के पतन के बाद अंतरराष्ट्रीय संगठनों की भूमिका पर चर्चा करेंगे। हम यह विश्लेषण करेंगे, कि कैसे इस उभरते हुए वैश्विक परिप्रेक्ष्य में, अमेरिकी शक्ति के उदय के साथ-साथ नए वैश्विक चुनौतियों का सामना करने के लिए अंतरराष्ट्रीय संगठनों की पुनर्निर्माण की आवश्यकता पड़ी। संयुक्त राष्ट्र की संरचना, इसके कार्य और इससे संबंधित कठिनाइयों का गहन विश्लेषण किया जाएगा। साथ ही, हम भारत की संयुक्त राष्ट्र में भूमिका और इसके दृष्टिकोण पर भी चर्चा करेंगे। इस अध्याय का अंत इस प्रश्न के साथ होगा कि क्या संयुक्त राष्ट्र वैश्विक शांति और सुरक्षा की चुनौतियों का सामना करने में कोई विशेष भूमिका निभा सकता है? इसके अतिरिक्त, हम कुछ अन्य प्रमुख अंतरराष्ट्रीय संगठनों पर भी नजर डालेंगे, जो वैश्विक व्यवस्था में एक विशेष भूमिका का वहन कर रहे हैं या भविष्य में कर सकते हैं।

अंतरराष्ट्रीय संगठन

अंतरराष्ट्रीय संगठन, एक ऐसा संगठन है जो एक से अधिक देशों में काम करता है। इन्हें अंतर-सरकारी संगठन या अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ भी कहा जाता है।

क्या आप जानते हैं?

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) एक अंतरराष्ट्रीय संगठन है जो उन वित्तीय संस्थानों और विनियमों की देखरेख करता है जो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर काम करते हैं।

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) में 191 सदस्य देश शामिल हैं लेकिन उन्हें समान अधिकार प्राप्त नहीं हैं।

G-7 के सदस्य देश अमेरिका (16.52%), जापान (6.15%), जर्मनी (5.32%), फ्रांस (4.03%), यूके (4.03%), इटली (3.02%) और कनाडा (2.22%) के पास 41.29% वोटिंग अधिकार हैं।

चीन (6.09%), भारत (2.64%), रूस (2.59%) ब्राजील (2.22%) और सऊदी अरब (2.02%) अन्य प्रमुख सदस्य हैं।

अंतरराष्ट्रीय संगठनों की भूमिका और आवश्यकता

- चूँकि देशों के बीच संघर्ष और मतभेद होते रहते हैं, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्हें युद्ध का सहारा लेना चाहिए।
- शांतिपूर्ण विचार-विमर्श से अक्सर विवादास्पद मुद्दों का समाधान हो सकता है, लेकिन इस वास्तविकता को अक्सर नजरअंदाज कर दिया जाता है, क्योंकि अधिकांश संघर्षों का समाधान युद्ध के बिना ही किया जाता है।
- अंतरराष्ट्रीय संगठन राष्ट्रों के बीच आपसी समझौतों से गठित होते हैं। वे शांतिपूर्ण संवाद और समाधान खोजने के लिए काम करते हैं।

वैश्विक चुनौतियों का सामूहिक रूप से सामना करना

- कुछ वैश्विक मुद्दे, जैसे बीमारियों और जलवायु परिवर्तन, के लिए एकजुट मोर्चे की आवश्यकता है।
 - उदाहरण के लिए, विशिष्ट बीमारियों के उन्मूलन के लिए वैश्विक टीकाकरण अभियान की आवश्यकता होती है।
 - बढ़ते समुद्री स्तर जैसे वैश्विक तापमान के प्रभावों से निपटने के लिए विशेष रूप से प्रमुख औद्योगिक देशों की ओर से सहयोगात्मक कार्रवाई की आवश्यकता है।
- हालाँकि, राष्ट्र सहयोग की आवश्यकता पर सहमत हो सकते हैं, लेकिन वे कार्यान्वयन के तरीकों, लागत-साझाकरण या लाभ वितरण पर असहमत हो सकते हैं।

- अंतरराष्ट्रीय संगठन प्रभावी सहयोग के लिए अंतर्दृष्टि और डेटा प्रदान करके इस अंतर को पाटने में भूमिका निभाते हैं। जैसे रूपरेखा को लागू करना, लागत और लाभों का उचित वितरण सुनिश्चित करना और सदस्य देशों के बीच विश्वास को बढ़ावा देना।

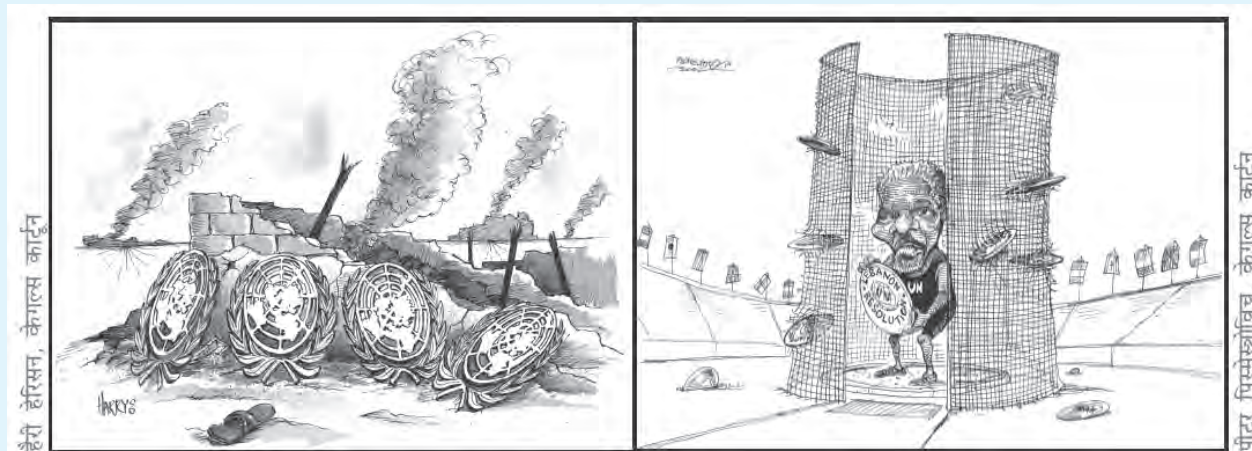
शीत युद्ध के बाद: संयुक्त राष्ट्र की संभावित नई भूमिका (Post-Cold War: UN's Potential New Role)

- शीत युद्ध के बाद, पश्चिमी दशों, विशेषकर अमेरिका की अनियंत्रित शक्ति के बारे में चिंता स्पष्ट थी।
- संयुक्त राष्ट्र की उभरती भूमिका संवाद को बढ़ावा देने तथा अमेरिका जैसे देशों के प्रभुत्वशाली प्रभाव का मुकाबला करने या उसे संतुलित करने में महत्वपूर्ण हो सकती है।

संयुक्त राष्ट्र (यूएन) का विकास

- संयुक्त राष्ट्र (यूएन) को अक्सर इसकी प्रभावकारिता के संबंध में मिली-जुली समीक्षाएँ प्राप्त होती हैं, जैसा कि चित्र 12.1 में दर्शाया गया है।

जून 2006 में इजरायल ने लेबनान पर हमला किया और कहा कि हिजबुल्लाह नामक उग्रवादी समूह को नियंत्रित करना जरूरी है। बड़ी संख्या में नागरिक मारे गए और कई सार्वजनिक इमारतें और यहाँ तक कि रिहायशी इलाके भी इजरायली बमबारी की चपेट में आ गए। संयुक्त राष्ट्र ने इस पर अगस्त में ही प्रस्ताव पारित किया और इजरायली सेना अक्टूबर में ही इस क्षेत्र से वापस लौटी। ये दोनों कार्टून इस प्रकरण में संयुक्त राष्ट्र और उसके महासचिव की भूमिका पर टिप्पणी करते हैं।



चित्र 12.1: संयुक्त राष्ट्र की भूमिका

- इसके विपरीत, कई लोग संयुक्त राष्ट्र को एक अपरिहार्य संस्था और शांति बनाए रखने तथा प्रगति को बढ़ावा देने के लिए विश्व की प्राथमिक आशा मानते हैं।

राष्ट्र संघ से संयुक्त राष्ट्र तक (From League of Nations to United Nation)

- प्रथम विश्व युद्ध के दौरान हुए विनाश ने संघर्षों को कम करने के लिए एक अंतरराष्ट्रीय निकाय की आवश्यकता को रेखांकित किया। इसी के परिणामस्वरूप राष्ट्र संघ का निर्माण हुआ।
- अपनी आकांक्षाओं के बावजूद, द्वितीय विश्व युद्ध को रोकने में संघ की असमर्थता, जिसमें अभूतपूर्व मानवीय क्षति हुई, ने इसकी सीमाओं को उजागर कर दिया, जिसके लिए व्यापक अंतरराष्ट्रीय संगठन की आवश्यकता थी और परिणामस्वरूप संयुक्त राष्ट्र का गठन हुआ।

संयुक्त राष्ट्र की स्थापना और मिशन

- वर्ष 1945 में, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, राष्ट्र संघ की कमियों के समाधान के लिए संयुक्त राष्ट्र की स्थापना की गई।
- संयुक्त राष्ट्र की स्थापना 51 अग्रणी राष्ट्रों द्वारा संयुक्त राष्ट्र चार्टर के समर्थन से हुई।
- इसका उद्देश्य न केवल संघर्षों को युद्ध में बदलने से रोकना था, बल्कि शत्रुता शुरू होने पर उसके प्रसार और तीव्रता पर भी अंकुश लगाना था।
- इसका एक अन्य अंतर्निहित उद्देश्य वैश्विक सामाजिक और आर्थिक विकास को सुविधाजनक बनाना था, यह स्वीकार करते हुए कि इन क्षेत्रों में असमानताओं के कारण कई विवाद उत्पन्न हुए हैं।

क्या आप जानते हैं?**संयुक्त राष्ट्र की स्थापना:**

अगस्त, 1941: अमेरिकी राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी. रूजवेल्ट और ब्रिटिश प्रधानमंत्री विंस्टन एस. चर्चिल द्वारा अटलांटिक चार्टर पर हस्ताक्षर।

जनवरी, 1942: धुरी शक्तियों के खिलाफ लड़ने वाले 26 सहयोगी राष्ट्र अटलांटिक चार्टर का समर्थन करने और 'संयुक्त राष्ट्र द्वारा घोषणा' पर हस्ताक्षर करने के लिए वाशिंगटन, डी.सी. में मिले।

दिसंबर, 1943: तेहरान सम्मेलन में तीन शक्तियों (अमेरिका, ब्रिटेन और सोवियत संघ) की घोषणा।

फरवरी, 1945: 'बिग थ्री' (रूजवेल्ट, चर्चिल और स्टालिन) के याल्टा सम्मेलन ने प्रस्तावित विश्व संगठन पर एक संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन आयोजित करने का निर्णय लिया।

अप्रैल-मई 1945: सैन फ्रांसिस्को में अंतरराष्ट्रीय संगठन पर 2 महीने तक चलने वाला संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन।

26 जून 1945: 50 देशों द्वारा संयुक्त राष्ट्र चार्टर पर हस्ताक्षर (पोलैंड ने 15 अक्टूबर को हस्ताक्षर किए; इसलिए संयुक्त राष्ट्र के 51 मूल संस्थापक सदस्य हैं)।

24, अक्टूबर 1945: संयुक्त राष्ट्र की स्थापना हुई (इसलिए 24 अक्टूबर को संयुक्त राष्ट्र दिवस के रूप में मनाया जाता है)।

30, अक्टूबर 1945: भारत संयुक्त राष्ट्र में शामिल हुआ।

संयुक्त राष्ट्र के बारे में दृष्टिकोण:

- संयुक्त राष्ट्र के द्वितीय महासचिव **डेग हैमरशॉल्ड** ने कहा: "संयुक्त राष्ट्र की स्थापना मानवता को आदर्शवादी क्षेत्र की ओर ले जाने के लिए नहीं, बल्कि वैश्विक विनाश को रोकने के लिए की गई थी।"
- **संयुक्त राष्ट्र के पूर्व अवर महासचिव शशि थरूर:** यद्यपि संयुक्त राष्ट्र को प्रायः एक "वार्ता मंच" के रूप में देखा जाता है, लेकिन एक ऐसा स्थान होना महत्वपूर्ण है जहाँ राष्ट्र संघर्ष के बजाय संवाद के माध्यम से मुद्दों का समाधान कर सकें।

विचारणीय बिंदु

लीग ऑफ नेशंस प्रथम विश्व युद्ध की तबाही के बाद गठित पहला अंतरराष्ट्रीय संगठन था। यह भविष्य में ऐसे किसी भी युद्ध को रोकने के लिए 'सामूहिक सुरक्षा' के विचार का परिणाम था। हालाँकि यह द्वितीय विश्व युद्ध को रोकने में विफल रहा और यूरोप फिर से संकट में आ गया। क्या आप लीग ऑफ नेशंस की विफलता के विभिन्न कारणों के बारे में सोच सकते हैं?

**संरचना और सदस्यता (Structure and Membership)**

- वर्ष 2011 तक, संयुक्त राष्ट्र में 193 सदस्य देश शामिल हो चुके थे, जिसमें लगभग सभी संप्रभु राष्ट्र शामिल थे।
- अपने लोकतांत्रिक ढाँचे के अंतर्गत, संयुक्त राष्ट्र महासभा यह सुनिश्चित करती है कि प्रत्येक सदस्य देश को, चाहे उसका आकार या प्रभाव कुछ भी हो, एक वोट द्वारा प्रतिनिधित्व की जाने वाली समान आवाज मिले।
- संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद, संयुक्त राष्ट्र की एक महत्वपूर्ण शाखा है, जिसमें **पाँच स्थायी सदस्य: संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, यूनाइटेड किंगडम, फ्रांस, चीन** शामिल हैं।
- स्थायी सदस्य के रूप में उनकी नियुक्ति द्वितीय विश्व युद्ध में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका और जीत से उपजी है।

नेतृत्व और प्रतिनिधित्व (Leadership and Representation)

- **महासचिव** संयुक्त राष्ट्र का प्रमुख होता है, जो इसका सबसे पहचाना जाने वाला व्यक्ति है। वर्तमान में **एंTONियो गुटेरेस** संयुक्त राष्ट्र के महासचिव, जिन्होंने 1 जनवरी 2017 को पदभार संभाला था।
- उनके समृद्ध अनुभव में पुर्तगाल के प्रधानमंत्री और शरणार्थियों के लिए संयुक्त राष्ट्र के उच्चायुक्त के रूप में कार्य करना शामिल है।

बहुमुखी संयुक्त राष्ट्र पारिस्थितिकी तंत्र (The Multifaceted UN Ecosystem)

- अपने मूल स्वरूप से परे, संयुक्त राष्ट्र विविध संरचनाओं और एजेंसियों का एक समूह है, जिनमें से प्रत्येक को विशिष्ट वैश्विक चुनौतियों से निपटने के लिए तैयार किया गया है।
- **महासभा और सुरक्षा परिषद** सदस्य देशों के लिए अपनी चिंताओं को व्यक्त करने तथा शांति और समझ के मार्ग बनाने के प्राथमिक मंच के रूप में कार्य करते हैं।

- अनेक विशेष एजेंसियाँ सामाजिक और आर्थिक चुनौतियों के समाधान में संयुक्त राष्ट्र के प्रयासों को बढ़ावा देती हैं, जिनमें निम्नलिखित शामिल हैं, परंतु इन्हीं तक सीमित नहीं हैं:
 - विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO)
 - संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP)
 - संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग (UNHRC)
 - संयुक्त राष्ट्र शरणार्थी उच्चायोग (UNHCR)
 - संयुक्त राष्ट्र बाल कोष (UNICEF)
 - संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (UNESCO)



शीत युद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र में सुधार

संयुक्त राष्ट्र सुधार

- महत्वपूर्ण वैश्विक परिवर्तनों की पृष्ठभूमि में, संयुक्त राष्ट्र को बदलाव और अनुकूलन की महती आवश्यकता का सामना करना पड़ रहा है।
- यद्यपि सुधारों की माँग सर्वत्र स्वीकार की जा रही है, फिर भी इन परिवर्तनों की विशिष्ट प्रकृति पर स्पष्टता और सहमति प्राप्त करना चुनौतीपूर्ण बना हुआ है।

सुधार के लिए मुख्य क्षेत्र

- **संरचनात्मक एवं प्रक्रियात्मक बदलाव:** संयुक्त राष्ट्र की पारंपरिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं के आधुनिकीकरण की माँग बढ़ती जा रही है।
- **सुरक्षा परिषद में सुधार:** चर्चा का मुख्य विषय सुरक्षा परिषद की कार्यप्रणाली में संशोधन करना है।
 - प्रस्तावों में इसकी सदस्यता को स्थायी और अस्थायी दोनों स्तरों पर बढ़ाने का महत्वपूर्ण सुझाव दिया गया है, ताकि इसे अधिक समावेशी बनाया जा सके तथा यह आज की वैश्विक राजनीतिक गतिशीलता का प्रतिनिधित्व कर सके।
 - एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका जैसे महाद्वीपों से प्रतिनिधित्व बढ़ाने पर बल दिया गया है।
 - इसके अलावा, अमेरिका अन्य पश्चिमी सहयोगियों के साथ मिलकर संयुक्त राष्ट्र के वित्तीय और प्रशासनिक तंत्र को सुव्यवस्थित करना चाहता है।
- **संयुक्त राष्ट्र का बढ़ता फोकस:** जैसे-जैसे दुनिया बदलती है, वैसे-वैसे इसकी चुनौतियाँ और आवश्यकताएँ भी बदलती हैं।
- एक ओर जहाँ सदस्य देश चाहते हैं कि संयुक्त राष्ट्र शांति स्थापना और सुरक्षा प्रयासों में और अधिक गहराई से शामिल हो, वहीं दूसरी ओर कुछ देश विकास और स्वास्थ्य, शिक्षा और पर्यावरण जैसे मानवीय मिशनों में इसकी व्यापक भागीदारी की सिफारिश करते हैं, तो दूसरी ओर दोनों के बीच मतभेद हैं।

ऐतिहासिक संदर्भ पर एक चिंतन

- वर्ष 1945 में स्थापित संयुक्त राष्ट्र के आधारभूत सिद्धांत और कार्यप्रणाली द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की वैश्विक राजनीतिक स्थिति का दर्पण थे।
- हालाँकि, शीत युद्ध की समाप्ति के साथ महत्वपूर्ण भू-राजनीतिक बदलाव आए, जैसे:
 - सोवियत संघ के विघटन से एक युग का अंत हो गया।
 - अमेरिका एक अद्वितीय प्रभावशाली वैश्विक शक्ति के रूप में उभरा।
 - सोवियत संघ के बाद रूस ने अमेरिका के साथ अधिक सहयोगात्मक रुख अपनाना शुरू कर दिया।
 - वैश्विक शक्ति के रूप में चीन के उत्थान तथा भारत की विकास में महत्वपूर्ण प्रगति ने विश्व व्यवस्था को नया आकार दिया है।
 - एशियाई अर्थव्यवस्थाएँ आगे बढ़ीं, जिससे वैश्विक अर्थव्यवस्था में एक नया अध्याय जुड़ गया।
 - सोवियत संघ और पूर्वी यूरोपीय गुट से स्वतंत्रता प्राप्त करने वाले देशों के शामिल होने से संयुक्त राष्ट्र का विस्तार हुआ।
 - आधुनिक विश्व आंतरिक संघर्षों, वैश्विक आतंकवाद, परमाणु खतरों और जलवायु आपात स्थितियों से लेकर स्वास्थ्य महामारी तक बहुआयामी मुद्दों का सामना कर रहा है।
- संयुक्त राष्ट्र की भूमिका और प्रभावकारिता का पुनर्मूल्यांकन।
- जैसे-जैसे विश्व शीत युद्ध के बाद के युग में प्रवेश कर रहा है, संयुक्त राष्ट्र की भूमिका और प्रभावशीलता के बारे में आलोचनात्मक आत्मनिरीक्षण अनिवार्य हो गया है।
- वैश्विक समुदाय के सामने कई महत्वपूर्ण प्रश्न हैं जैसे, क्या संयुक्त राष्ट्र इस नए वैश्विक परिदृश्य के लिए पर्याप्त रूप से तैयार है? क्या यह पर्याप्त काम कर रहा है, और यदि नहीं, तो क्या बदलाव की आवश्यकता है?
- पंद्रह वर्षों की अवधि में, सदस्य राष्ट्रों ने उत्तर खोजने तथा संयुक्त राष्ट्र के भविष्य के लिए रोडमैप तैयार करने के मिशन पर काम शुरू किया है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि यह प्रासंगिक और प्रभावशाली बना रहे।

संयुक्त राष्ट्र महासचिवों का संक्षिप्त अवलोकन

ट्रिग्वे ली (1946-1952) - नॉर्वे

- **उपलब्धियाँ:** कश्मीर में भारत-पाकिस्तान युद्ध विराम में मध्यस्थता की।
- **चुनौतियाँ:** लम्बे समय तक चले कोरियाई युद्ध के कारण आलोचना का सामना करना पड़ा तथा दूसरे कार्यकाल के लिए सोवियत संघ से विरोध का सामना करना पड़ा।



डैग हैमरस्कजॉल्ड (1953-1961) - स्वीडन

- **उपलब्धियाँ:** स्वेज नहर विवाद का समाधान किया, अफ्रीका के उपनिवेशवाद को समाप्त करने में मदद की, तथा कांगो संकट के समाधान के लिए मरणोपरांत नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित किया गया।
- **चुनौतियाँ:** अफ्रीका में उनकी भूमिका को लेकर सोवियत संघ और फ्रांस की आलोचना का सामना करना पड़ा।



यू थान्ट (1961-1971) - बर्मा (म्यांमार)

- **उपलब्धियाँ:** क्यूबा मिसाइल संकट पर ध्यान दिया, कांगो संकट को समाप्त किया, तथा साइप्रस में संयुक्त राष्ट्र शांति सेना की स्थापना की।
- **उल्लेखनीय दृष्टिकोण:** वियतनाम युद्ध के दौरान अमेरिका की आलोचना की।



कर्ट वाल्डहेम (1972-1981) - ऑस्ट्रिया

- **उपलब्धियाँ:** नामीबिया और लेबनान मुद्दों पर काम किया और बांग्लादेश राहत अभियान का प्रबंधन किया।
- **चुनौतियाँ:** चीन ने उनके तीसरे कार्यकाल का विरोध किया।



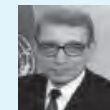
जेवियर पेरेज डी कुएलर (1982-1991) - पेरू

- **उपलब्धियाँ:** साइप्रस, अफ़गानिस्तान, अल साल्वाडोर और फ़ॉकलैंड युद्ध के बाद ब्रिटेन-अर्जेंटीना संबंधों में मध्यस्थता की। नामीबिया की स्वतंत्रता का समर्थन किया।



बुट्रोस बुट्रोस-घाली (1992-1996) - मिस्र

- **उपलब्धियाँ:** "शांति के लिए एजेंडा" जारी किया और मोजाम्बिक में सफल संयुक्त राष्ट्र अभियान का नेतृत्व किया।
- **चुनौतियाँ:** बोस्निया, सोमालिया और रवांडा में संयुक्त राष्ट्र की असफलताओं के लिए आलोचना का सामना करना पड़ा। अमेरिका ने उनके दूसरे कार्यकाल पर वीटो लगा दिया।



कोफ़ी अन्नान (1997-2006) - घाना

- **उपलब्धियाँ:** प्रमुख रोगों के लिए वैश्विक कोष की स्थापना की, शांति स्थापना आयोग और मानवाधिकार परिषद की स्थापना की, तथा वर्ष 2001 में नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित किया गया।
- **उल्लेखनीय दृष्टिकोण:** अमेरिका के नेतृत्व में इराक पर आक्रमण को अवैध बताया।



बान की-मून (2007-2016) - कोरिया गणराज्य

- **उपलब्धियाँ:** जलवायु परिवर्तन पर बल दिया, सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों और सतत विकास लक्ष्यों पर बल दिया गया तथा संघर्ष समाधान और परमाणु निरस्त्रीकरण की सिफारिश की।



एंटोनियो मैनुअल डी ओलिवेरा गुटेरेस (2017-) - पुर्तगाल

- **पृष्ठभूमि:** इससे पहले, वे पुर्तगाल के प्रधानमंत्री रह चुके हैं, शरणार्थियों के लिए संयुक्त राष्ट्र के उच्चायुक्त थे और सोशललिस्ट इंटरनेशनल के प्रमुख थे। वर्तमान में, वे संयुक्त राष्ट्र के नौवें महासचिव हैं।



संयुक्त राष्ट्र की संरचनाओं और प्रक्रियाओं में सुधार

- **परिवर्तन के लिए प्रयास:** संयुक्त राष्ट्र में सुधारों के लिए व्यापक सिफारिश की गई, लेकिन इन परिवर्तनों की प्रकृति के बारे में सर्वसम्मति से निर्णय पर पहुँचना चुनौतीपूर्ण रहा है।

संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के इर्द-गिर्द बहस

- वर्ष 1992 में, संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा एक ऐतिहासिक प्रस्ताव में सुरक्षा परिषद के साथ महत्वपूर्ण मुद्दों की ओर ध्यान आकर्षित किया गया था:
 - परिषद की संरचना और निर्णय-प्रक्रिया अब विश्व की विकासशील राजनीतिक गतिशीलता को प्रतिबिंबित नहीं करती।
 - कई लोगों का मानना था कि परिषद के निर्णय पश्चिमी विचारधाराओं से प्रभावित थे तथा उन पर सीमित संख्या में शक्तिशाली देशों का एकाधिकार था।
 - एक बार-बार आने वाली शिकायत न्यायसंगत प्रतिनिधित्व का अभाव थी।
- इन गंभीर चिंताओं को देखते हुए, संयुक्त राष्ट्र महासचिव कोफी अन्नान ने वर्ष 1997 में संयुक्त राष्ट्र सुधार के संभावित रास्तों की जाँच करने के लिए एक मिशन शुरू किया।

विचारणीय बिंदु

संयुक्त राष्ट्र के अध्यक्ष एंटोनियो गुटेरेस के अनुसार संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में सुधार करना होगा या उसे भंग करना होगा। यह कथन इस बात पर प्रकाश डालता है कि संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में सुधार की कितनी आवश्यकता है क्योंकि यह वर्तमान वैश्विक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व नहीं करती है। इस संदर्भ में क्या आप उन कारणों को सूचीबद्ध कर सकते हैं जिनके लिए भारत को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्य होना चाहिए? क्या आपको लगता है कि भारत का स्थायी सदस्य बनना संभव है? यदि हाँ, तो कब तक?



सुरक्षा परिषद में सदस्यता के लिए प्रस्तावित मानदंड

- पिछले कुछ वर्षों में, नए सदस्यों की पात्रता निर्धारित करने के लिए कई तरह के मानदंड प्रस्तावित किए गए हैं। सुझावों में शामिल हैं:
 - देश को वैश्विक आर्थिक महाशक्ति होना चाहिए। (तालिका 12.1 देखें)
 - दुर्जेय सैन्य क्षमताओं का आधिपत्य।
 - महत्वपूर्ण वित्तीय योगदान के माध्यम से संयुक्त राष्ट्र के प्रति प्रतिबद्धता प्रदर्शित करनी चाहिए।
 - विशाल जनसंख्या पर नियंत्रण, संभवतः वैश्विक मंच पर प्रभाव और जिम्मेदारियों का संकेत है।
 - लोकतांत्रिक मूल्यों और मानवाधिकारों की सिफारिश करने का एक अच्छा ट्रैक रिकॉर्ड रखना हो।
 - सदस्यता हेतु परिषद के प्रतिनिधित्व को बढ़ाना चाहिए, जिसमें विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों, आर्थिक प्रणालियों और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को शामिल किया जाना चाहिए।
- यद्यपि ये मानदंड वैध हैं, तथापि ये बहस का विषय रहे हैं, क्योंकि राष्ट्र अपने विशिष्ट भू-राजनीतिक और रणनीतिक हितों के आधार पर लाभ और चुनौतियों के बारे में निर्णय लेते हैं।

तालिका 12.1: संयुक्त राष्ट्रसंघ के वार्षिक बजट में सर्वाधिक योगदान करने वाले देश (2019)

क्र.सं	सदस्य	प्रतिशत
1.	संयुक्त राज्य अमेरिका	22.0
2.	चीन	12.0
3.	जापान	8.0
4.	जर्मनी	6.0
5.	यू.के.	4.5
6.	फ्रांस	4.4
7.	इटली	3.3
8.	ब्राजील	2.9
9.	कनाडा	2.7
10.	रूस	2.4
11.	दक्षिण कोरिया	2.2

क्र.सं	सदस्य	प्रतिशत
12.	ऑस्ट्रेलिया	2.2
13.	स्पेन	2.1
14.	तुर्की	1.3
15.	नीदरलैंड	1.3
16.	मैक्सिको	1.2
17.	सऊदी अरब	1.1
18.	स्विटजरलैंड	1.1
19.	अर्जेंटीना	0.9
20.	स्वीडन	0.9
21.	भारत	0.8

न्यायसंगत प्रतिनिधित्व का प्रश्न

- इस बहस में सबसे विवादास्पद मुद्दा यह है कि परिषद के भीतर निष्पक्ष और विविध प्रतिनिधित्व कैसे सुनिश्चित किया जाए:
 - क्या सर्वोत्तम दृष्टिकोण महाद्वीपीय प्रतिनिधित्व होगा, या इसे क्षेत्रीय या उप-क्षेत्रीय आवंटनों में विभाजित किया जाना चाहिए?
 - यद्यपि भूगोल एक प्रचलित मानदंड है, फिर भी कुछ लोग आर्थिक विकास के स्तर के आधार पर प्रतिनिधित्व का सुझाव दे रहे हैं, जिसका तात्पर्य विकासशील देशों के लिए अधिक सीटों से है।
 - सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व जटिलता की एक और परत जोड़ता है। सांस्कृतिक या सभ्यतागत भेदों के आधार पर सीटें आवंटित करना एक चुनौतीपूर्ण प्रयास है, खासकर तब जब अधिकांश राष्ट्र विविध सांस्कृतिक पहचानों का एक समृद्ध ताना-बाना प्रदर्शित करते हैं।

विश्व बैंक

- दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान वर्ष 1944 में विश्व बैंक की औपचारिक स्थापना हुई।
- इस बैंक की गतिविधियाँ प्रमुख रूप से विकासशील देशों से संबंधित हैं।
- यह बैंक मानवीय विकास (शिक्षा, स्वास्थ्य), कृषि और ग्रामीण विकास (सिंचाई, ग्रामीण सेवाएँ), पर्यावरण सुरक्षा (प्रदूषण में कमी, नियमों का निर्माण और उन्हें लागू करना), आधारभूत ढाँचा (सड़क, शहरी विकास, विद्युत) तथा सुशासन (कदाचार का विरोध, विधिक संस्थाओं का विकास) के लिए काम करता है।
- यह अपने सदस्य देशों को आसान ऋण और अनुदान देता है। अल्प विकसित देशों को ये अनुदान वापिस नहीं चुकाने पड़ते। इस अर्थ में यह संस्था समकालीन वैश्विक अर्थ-व्यवस्था को भी प्रभावित करती है।

विवादास्पद वीटो शक्ति और इसके निहितार्थ

- सुधार वार्ता में विवाद का एक महत्वपूर्ण मुद्दा पाँच स्थायी सदस्यों में निहित अद्वितीय वीटो शक्ति है:
 - यह धारणा बढ़ती जा रही है कि वीटो प्रणाली लोकतंत्र और संप्रभु समानता के सिद्धांतों के विपरीत है।
 - संयुक्त राष्ट्र चार्टर ने मूलतः स्थायी सदस्यों को यह विशेषाधिकार द्वितीय विश्व युद्ध के बाद वैश्विक स्थिरता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्रदान किया था।
 - जबकि गैर-स्थायी सदस्यों का कार्यकाल प्रत्येक दो वर्ष में बदल जाता है, तथा उन्हें वीटो का अधिकार नहीं होता, वहीं स्थायी सदस्यों के पास बहुमत के रख से इतर निर्णयों को रद्द करने की अद्वितीय क्षमता होती है।
- वीटो प्रणाली को समाप्त करने या इसमें संशोधन करने की संभावना चुनौतियों से भरी है।
- यद्यपि शीत युद्ध का युग समाप्त हो चुका है, फिर भी वैश्विक परिदृश्य इतने बड़े परिवर्तन के लिए तैयार नहीं है।
- प्रमुख शक्तियों की भागीदारी और प्रतिबद्धता के बिना संयुक्त राष्ट्र संगठन के शक्तिहीन और महत्वहीन हो जाने का जोखिम हो सकता है।

स्थायी सदस्यों द्वारा 'वीटो-पावर' का इस्तेमाल (1 जून 2018 तक)



चित्र 12.2: स्थायी सदस्यों द्वारा वीटो शक्ति का प्रयोग (1 जून, 2018 तक)

संयुक्त राष्ट्र का अधिकार क्षेत्र: एक विश्लेषण

- **सदस्यता और ऐतिहासिक महत्व पर चिंतन:** सितंबर, 2005 में संयुक्त राष्ट्र की 60वीं वर्षगांठ एक महत्वपूर्ण अवसर था, जब वैश्विक नेता एकत्रित हुए। यह बैठक न केवल संगठन के समृद्ध इतिहास को याद करने के लिए आवश्यक थी, बल्कि एक ऐसे विश्व में अपने रुख का पुनर्मूल्यांकन करने के लिए भी आवश्यक थी, जो इसकी स्थापना के बाद से काफी बदल गई है।

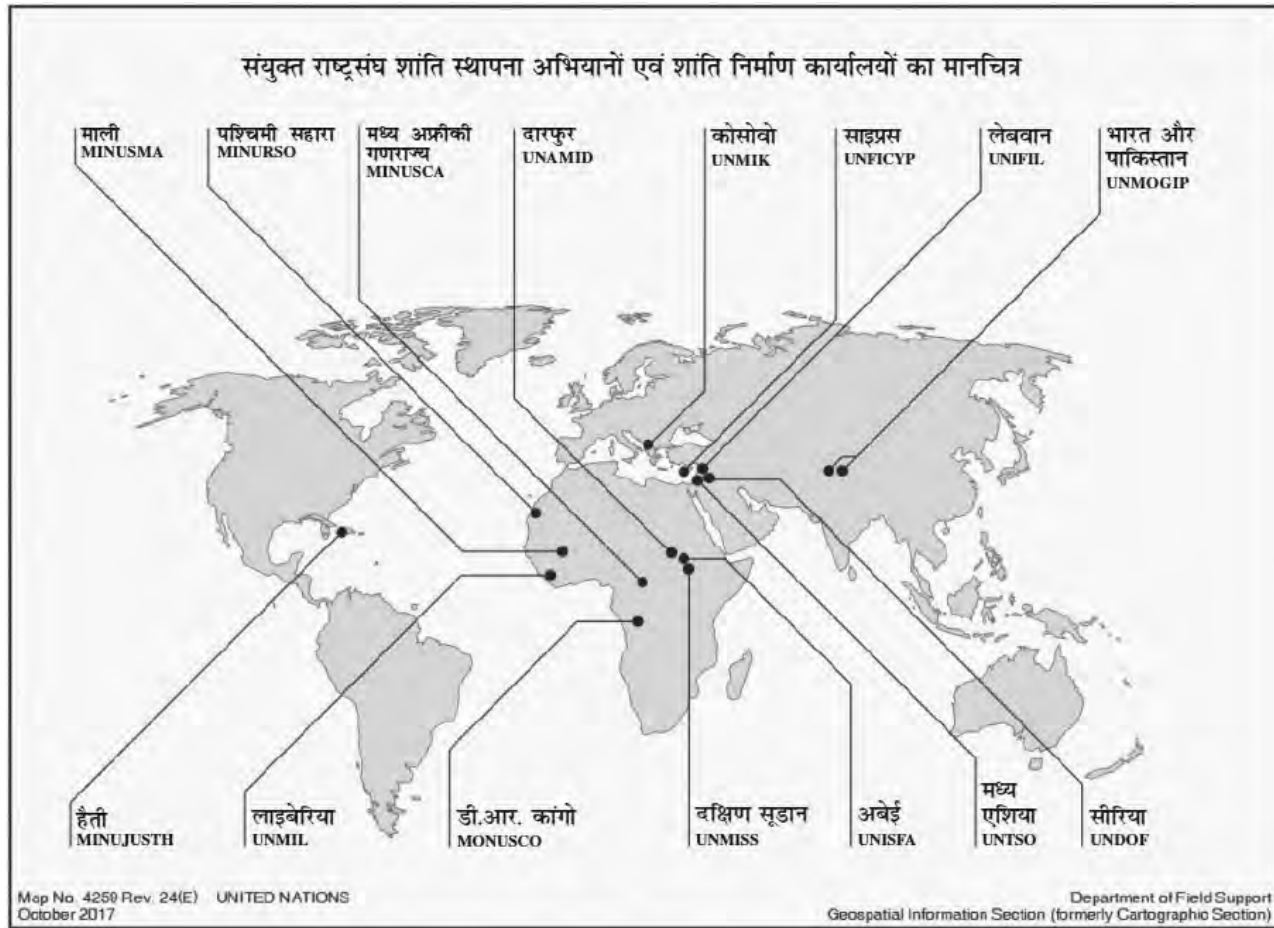
प्रासंगिक संयुक्त राष्ट्र के लिए प्रमुख प्रस्ताव

- **शांति स्थापना आयोग:** इस आयोग की शुरुआत ने वैश्विक शांति के लिए संयुक्त राष्ट्र की नई प्रतिबद्धता का संकेत दिया। हालाँकि, इसकी प्रभावशीलता जाँच के दायरे में है। दुनिया संघर्षों से भरी हुई है, और उन्हें प्राथमिकता देना एक जटिल कार्य बन गया है। इसके हस्तक्षेप की विस्तार और गहराई का निर्धारण करना एक महत्वपूर्ण चुनौती बनी हुई है।

विचारणीय बिंदु

संयुक्त राष्ट्र चार्टर में कहा गया है कि संयुक्त राष्ट्र की भूमिका भावी पीढ़ी को युद्ध के संकट से बचाना है। क्या आपको लगता है कि संयुक्त राष्ट्र अपने अधिदेश को सुनिश्चित करने में सफल रहा है? संयुक्त राष्ट्र के पास एक निकाय के रूप में ऐसी कौन सी शक्तियाँ हैं जो अमेरिका जैसे पी-5 (P5) सदस्य को वर्ष 2003 के इराक युद्ध के मामले में एकतरफा निर्णय लेने से रोक सकती हैं?





चित्र 12.3: संयुक्त राष्ट्र शांति अभियान

- ❑ **उत्पीड़न से सुरक्षा (Protection Against Atrocities):** अंतरराष्ट्रीय समुदाय ने इस बात को स्वीकार किया है कि जब राष्ट्रीय संस्थाएँ अपने नागरिकों की सुरक्षा करने में विफल रहती हैं, तो उन्हें आगे आना चाहिए। हालाँकि, इस मान्यता से ऐसे हस्तक्षेपों की सीमा और प्रकृति के बारे में कई सवाल उठते हैं।
- ❑ **मानवाधिकार परिषद:** 19 जून 2006 से कार्यरत यह परिषद वैश्विक अधिकारों के प्रति संयुक्त राष्ट्र की प्रतिबद्धता का प्रमाण है। लेकिन, मानवाधिकारों को सार्वभौमिक रूप से परिभाषित करना और उल्लंघन के लिए स्पष्ट मानदंड निर्धारित करना अभी भी अस्पष्ट बना हुआ है।
- ❑ **महत्वाकांक्षी लक्ष्य-सहस्राब्दी विकास लक्ष्य (MDG):** यद्यपि सहस्राब्दी विकास लक्ष्य पर समझौता एक एकीकृत दृष्टिकोण को प्रतिबिम्बित करता है, तथापि सदस्य देशों के विविध विकासात्मक चरणों को देखते हुए, इसका क्रियान्वयन जटिल हो सकता है।
- ❑ **आतंकवाद के प्रति शून्य सहनशीलता (Zero Tolerance for Terrorism):** आतंकवाद के प्रत्येक रूप के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र का रुख स्पष्ट एवं दृढ़ है।
- ❑ **लोकतंत्र कोष:** ऐसे विश्व में जहाँ लोकतंत्र लगातार खतरे में रहता है, इस कोष की स्थापना वैश्विक स्तर पर लोकतांत्रिक मूल्यों को बढ़ावा देने और पोषित करने के संयुक्त राष्ट्र के प्रयास को दर्शाता है।
- ❑ **ट्रस्टीशिप परिषद का निष्कर्ष:** इस परिषद को भंग करने का निर्णय संयुक्त राष्ट्र की अनुकूलनशीलता तथा अनावश्यक संरचनाओं को चरणबद्ध तरीके से समाप्त करने की उसकी मंशा को दर्शाता है।

चुनौतियाँ और महत्वपूर्ण बिंदु:

- ❑ इन प्रस्तावों के साथ, संयुक्त राष्ट्र निस्संदेह सुधार के मार्ग पर अग्रसर है।
- ❑ हालाँकि, प्रत्येक पहल अपने साथ चुनौतियाँ लेकर आती है, चाहे वह मानवाधिकारों के मापदंडों को परिभाषित करना हो, हस्तक्षेपों की प्रभावशीलता का आकलन करना हो, या यह सुनिश्चित करना हो कि सतत विकास लक्ष्य न केवल आकांक्षापूर्ण हों बल्कि प्राप्त करने योग्य भी हों।
- ❑ आगे की राह उम्मीद के साथ ही जटिलताओं से भरी हुई है।

एमनेस्टी इंटरनेशनल

- एमनेस्टी इंटरनेशनल एक वैश्विक गैर-सरकारी संगठन है जो मानवाधिकार संरक्षण के लिए समर्पित है।
- यह मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में सूचीबद्ध अधिकारों का समर्थन करता है, तथा उनकी परस्पर निर्भरता और अविभाज्यता पर बल देता है।

सत्ता परिवर्तन के बीच संयुक्त राष्ट्र की भूमिका

- संयुक्त राष्ट्र के संरचनात्मक और परिचालन सुधारों के बारे में चल रही बहस एक वैश्विक आकांक्षा में गहराई से निहित है: संगठन को ऐसे परिदृश्य में ढालना जहाँ अमेरिका बिना किसी समान प्रतिस्पर्धी के सर्वोच्च स्थान पर हो।
- एक व्यापक प्रश्न उठता है: क्या संयुक्त राष्ट्र एक संतुलन के रूप में कार्य कर सकता है, तथा यह सुनिश्चित कर सकता है कि किसी भी राष्ट्र की शक्ति अनियंत्रित न रहे?

अमेरिका: वैश्विक परिदृश्य में एक शक्तिशाली देश

- **शीत युद्ध के बाद का उद्भव:** सोवियत संघ के विघटन के बाद, अमेरिका ने आर्थिक और सैन्य दोनों तरह से प्रभुत्व कायम करते हुए एक बड़ी महाशक्ति के रूप में अपनी पहचान बनाई।
- **संयुक्त राष्ट्र के साथ गहन होते संबंध:** संयुक्त राष्ट्र को अमेरिका द्वारा दिया जाने वाला अत्यधिक वित्तीय योगदान सिर्फ धर्मार्थ भाव नहीं है। इससे अमेरिका को रणनीतिक रूप से स्थिति मजबूत होती है, जिससे उसे संगठन में महत्वपूर्ण लाभ मिलता है। इसके अलावा, संयुक्त राष्ट्र का मुख्यालय अपने क्षेत्र में होने और अपने नागरिकों को संयुक्त राष्ट्र के ढाँचे में शामिल करने से अमेरिका का प्रभाव क्षेत्र बढ़ता है।
- **रणनीतिक वीटो उपयोग (Strategic Veto Utilization):** अमेरिका अपने वीटो विशेषाधिकार के साथ उन कार्यों और निर्णयों को रोक सकता है जो उसके या उसके सहयोगियों के हितों से अलग हों। यह शक्ति, स प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से, प्रमुख निर्णयों तक विस्तृत है, जिसमें महासचिव जैसी प्रभावशाली नियुक्तियाँ भी शामिल हैं।
- **सामरिक कूटनीति (Tactical Diplomacy):** संयुक्त राष्ट्र के गलियारों में, अमेरिका अपनी रणनीतियों या नीतियों के विरुद्ध वैश्विक असंतोष को कम करने या उसका मुकाबला करने में कुशलतापूर्वक कार्य करता है।

एमनेस्टी इंटरनेशनल

- एमनेस्टी इंटरनेशनल एक वैश्विक गैर-सरकारी संगठन है, जो मानवाधिकारों की सुरक्षा के लिए समर्पित है।
- यह मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में सूचीबद्ध अधिकारों की वकालत करता है, उनकी परस्पर निर्भरता और अविभाज्यता पर बल देता है।
- यह संगठन मानवाधिकार रिपोर्ट तैयार करता है और उनका प्रसार करता है, जिसमें अक्सर सरकारी कदाचार को उजागर किया जाता है।
- हालाँकि सरकारें इन रिपोर्ट्स को अस्वीकार कर सकती हैं, लेकिन वे मानवाधिकारों की रक्षा और सुव्यवस्थित लोकतान्त्रिक प्रक्रिया बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं।

ह्यूमन राइट्स वॉच

- ह्यूमन राइट्स वॉच एक अंतरराष्ट्रीय गैर सरकारी संगठन है।
- यह मानवाधिकार अनुसंधान के लिए समर्पित संगठन है।
- यह अमेरिका में स्थित सबसे बड़ा अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संगठन है।
- यह संगठन वैश्विक मीडिया के सामने मानवाधिकारों के हनन को उजागर करता है।
- यह अंतरराष्ट्रीय गठबंधन बनाने में सहायक रहा है-
 - **उदाहरण:** बारूदी सुरंगों पर प्रतिबंध लगाने, बाल सैनिकों के इस्तेमाल को रोकने और अंतरराष्ट्रीय आपराधिक न्यायालय की स्थापना के लिए अभियान चलाना इत्यादि।

शक्ति संतुलन से परे संयुक्त राष्ट्र की व्यापक भूमिका

- संयुक्त राष्ट्र केवल अमेरिका की शक्ति का प्रतिकार नहीं है। इसके बजाय, यह एक तटस्थ आधार तैयार करता है, जो अमेरिका और वैश्विक समुदायों के बीच रचनात्मक जुड़ाव को सक्षम बनाता है।

- संयुक्त राष्ट्र के बारे में कभी-कभी अपनी शंकाओं के बावजूद, अमेरिकी नीति-निर्माता इस संस्था की महत्वपूर्ण भूमिका को नजरअंदाज नहीं कर सकते।
- संयुक्त राष्ट्र विभिन्न देशों के बीच संवाद का आयोजन करता है, संघर्षों के समाधान को बढ़ावा देता है तथा सामाजिक-आर्थिक प्रगति के लिए मार्ग प्रशस्त करता है।
- विश्व के देशों के लिए, संयुक्त राष्ट्र के कक्ष एक ऐसी आशा की किरण हैं, जहाँ वे अमेरिका के रुख और निर्णयों को प्रभावित कर सकते हैं, बातचीत कर सकते हैं और कभी-कभी उन्हें नया आकार भी दे सकते हैं।

समकालिक अन्तर्सम्बद्ध वैश्विक परिदृश्य में संयुक्त राष्ट्र की प्रासंगिकता (UN's Relevance in contemporary interconnected global scenario)

- संयुक्त राष्ट्र, अपनी समस्त जटिलताओं के साथ, हमारे वैश्विक समुदाय में एक अपूरणीय स्तंभ के रूप में विद्यमान है।
- एक ऐसे विश्व में जो उत्तरोत्तर रूप से परस्पर जुड़ा हुआ है - एक ऐसी घटना जिसे हम प्रायः 'अंतरनिर्भरता' के रूप में वर्णित करते हैं, संयुक्त राष्ट्र जैसी इकाई के बिना एक सुसंगत अस्तित्व लगभग अकल्पनीय लगता है।
- जैसे-जैसे तकनीकी प्रगति हमारी नियति को और अधिक एक दूसरे से जोड़ती जा रही है, संयुक्त राष्ट्र की प्रासंगिकता बढ़ती जा रही है। वैश्विक समुदायों और उनके संबंधित नेताओं के लिए यह अनिवार्य है कि वे संयुक्त राष्ट्र के साथ सहयोगात्मक रूप से जुड़ें और उसे मजबूत करें, यह सुनिश्चित करते हुए कि यह व्यक्तिगत राष्ट्रीय आकांक्षाओं और वैश्विक सद्भाव के व्यापक लक्ष्यों दोनों के साथ जुड़ाव रखता हो।

भारत और संयुक्त राष्ट्र सुधार

संयुक्त राष्ट्र के पुनर्गठन के लिए भारत का समर्थन

- भारत का दृढ़ विश्वास है कि वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में एक पुनर्जीवित एवं अधिक मजबूत संयुक्त राष्ट्र की आवश्यकता है।
- राष्ट्र इस विकास को हमारी निरंतर बदलती वैश्विक जटिलताओं से निपटने के लिए आवश्यक मानता है।
- भारत केवल परिवर्तन पर ही बल नहीं दे रहा है; वह विकास के महत्त्व को केंद्रीय विषय के रूप में उजागर कर रहा है।
- भारत के विचार में, वास्तविक अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा तभी संभव है जब विकास संयुक्त राष्ट्र के एजेंडे के केन्द्र में हो।

विश्व व्यापार संगठन (WTO)

- विश्व व्यापार संगठन वैश्विक व्यापार के नियमों को तय करता है।
- WTO की स्थापना वर्ष 1995 में हुई।
- यह संगठन 'जनरल एग्रीमेंट ऑन ट्रेड एंड टैरिफ' के उत्तराधिकारी के रूप काम करता है जो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अस्तित्व में आया था।
- इसके सदस्यों की संख्या 164 (29 जुलाई 2016 की स्थिति) है।
- प्रत्येक फैसला सभी सदस्यों की सहमति से किया जाता है लेकिन अमरीका, यूरोपीय संघ तथा जापान जैसी बड़ी आर्थिक शक्तियाँ विश्व-व्यापार संगठन में व्यापार के नियमों को इस तरह बनाने में कामयाब हो गई हैं जिससे उनके हित सधते हों।
- विकासशील देशों को बहुधा शिकायत रहती है कि इस संगठन की कार्यविधि पारदर्शी नहीं है और बड़ी आर्थिक ताकतें उन्हें प्रभावित करती है।

सुरक्षा परिषद की संरचना को लेकर भारत की चिंता

- विस्तारित होती महासभा के परिप्रेक्ष्य में सुरक्षा परिषद की अपरिवर्तित संरचना भारत के लिए एक महत्वपूर्ण चिंता का विषय है।
- भारत इस स्थिर प्रकृति को परिषद के प्रतिनिधि चरित्र के लिए संभावित हानि के रूप में देखता है।
- भारत का तर्क स्पष्ट है: अधिक समावेशी और प्रतिनिधित्वपूर्ण सुरक्षा परिषद न केवल वैश्विक जनसांख्यिकी को अधिक सटीक रूप से प्रतिबिंबित करेगी, बल्कि अधिक व्यापक समर्थन भी प्राप्त करेगी।
- ऐतिहासिक संदर्भ आवश्यक है: यद्यपि वर्ष 1965 में परिषद की सदस्य संख्या 11 से बढ़कर 15 हो गई, तथापि स्थायी सदस्यों की संख्या में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।
- महासभा में विकासशील देशों की प्रमुख उपस्थिति को देखते हुए, भारत का मानना है कि सुरक्षा परिषद के निर्णयों में उनकी आवाज प्रभावशाली होनी चाहिए।
- परिषद को वर्तमान अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य के अनुरूप बनाने के लिए भारत स्थायी और अस्थायी दोनों सदस्यों को इसमें शामिल करने को बढ़ावा देता है।
- हाल के वर्षों में परिषद की गतिविधियाँ बढ़ी हैं, भारत का मानना है कि यह आवश्यक है कि इसकी गतिविधियाँ व्यापक वैश्विक आम सहमति को प्रतिबिंबित करें।

अंतरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी (IAEA)

- अंतरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी (The International Atomic Energy Agency: IAEA)
- इसकी स्थापना वर्ष 1957 में हुई।
- यह संगठन परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग को बढ़ावा देने और सैन्य उद्देश्यों में इसके इस्तेमाल को रोकने का प्रयास करता है।
- इस संगठन के अधिकारी नियमित रूप से विश्व की परमाण्विक सुविधाओं की जाँच करते हैं ताकि सिविल परमाणु संयंत्रों का इस्तेमाल सैन्य उद्देश्यों के लिए न हो।

स्थायी सीट के लिए भारत की दावेदारी

- विश्व की सबसे बड़ी जनसंख्या तथा सबसे बड़े लोकतंत्र के प्रतीक के रूप में विद्यमान भारत सुरक्षा परिषद में स्थायी सीट के साथ अपनी स्थिति को मजबूत करने की आकांक्षा रखता है।
- भारत के दावे की वैधता कई कारकों से पुष्ट होती है:
 - संयुक्त राष्ट्र की विविध पहलों में भारत की सक्रिय और पर्याप्त भागीदारी इसकी प्रतिबद्धता का प्रमाण है।
 - संयुक्त राष्ट्र शांति प्रयासों में देश की अटूट और प्रभावशाली भूमिका वैश्विक शांति के प्रति उसके समर्पण को दर्शाती है।
 - वैश्विक मंच पर भारत की बढ़ती आर्थिक उपस्थिति इसके महत्त्व को और बढ़ा देती है।
 - कूटनीतिक और रणनीतिक प्रतिबद्धताओं से परे, भारत ने संयुक्त राष्ट्र के प्रति अपनी वित्तीय प्रतिबद्धताओं को निरंतर कायम रखा है, जिससे उसकी विश्वसनीयता प्रदर्शित होती है।
 - प्रतीकात्मक दृष्टिकोण से, स्थायी सीट महज एक पद नहीं है, बल्कि वैश्विक भू-राजनीति में किसी देश की प्रतिष्ठा का प्रतिबिंब है, एक ऐसा दर्जा जिसे भारत मानता है कि उसने अर्जित किया है।

भारत की आकांक्षाओं में बाधाएं

- भारत की मजबूत साख के बावजूद, स्थायी सदस्यता का उसका मार्ग कई देशों की आपत्तियों से भरा हुआ है:
 - पाकिस्तान के साथ भारत के ऐतिहासिक और वर्तमान संघर्ष विवाद का एक महत्वपूर्ण बिन्दु हैं।
 - भारत की रक्षा रणनीति का परमाणु आयाम कुछ सदस्य देशों के बीच चिंता का विषय है।
 - अंतरराष्ट्रीय समुदाय का एक वर्ग मानता है कि पाकिस्तान के साथ भारत के तनाव से स्थायी सदस्य के रूप में उसकी प्रभावशीलता पर असर पड़ सकता है।
 - **डोमिनो प्रभाव:** यदि भारत को इसमें शामिल किया जाता है, तो यह अन्य उभरती शक्तियों (ब्राजील, जर्मनी, जापान और दक्षिण अफ्रीका जैसे देश) के लिए एक मिसाल कायम कर सकता है।
 - व्यापक प्रतिनिधित्व की माँग भी प्रबल है, तथा इसके पक्षधर किसी भी विस्तार में अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका जैसे वर्तमान में प्रतिनिधित्व न पाने वाले महाद्वीपों से भी आवाज उठाने की आवश्यकता पर बल दे रहे हैं।
- इन चिंताओं को एक साथ जोड़कर देखें तो आम सहमति स्पष्ट है: स्थायी सदस्यता के लिए भारत की यात्रा चुनौतियों से भरी है, जिसके लिए जटिल कूटनीतिक मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

इस अध्याय में कई अंतरराष्ट्रीय संगठनों की भूमिका और महत्त्व के बारे में बात की गयी है, जैसे- संयुक्त राष्ट्र, एमनेस्टी इंटरनेशनल, ह्यूमन राइट्स वॉच, विश्व व्यापार संगठन और अंतरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी। संयुक्त राष्ट्र के अधिकार क्षेत्र से लेकर एकध्रुवीय दुनिया में उनके द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले संतुलन तक, ये संस्थाएँ शांति, विकास और सहयोग की दिशा में वैश्विक प्रयासों का प्रतिनिधित्व करती हैं। यह अध्याय इन संगठनों द्वारा अधिक न्यायसंगत और लोकतान्त्रिक वैश्विक व्यवस्था के लिए प्रयास करने में निभाई जाने वाली महत्वपूर्ण भूमिका पर बल देता है, जो संयुक्त राष्ट्र के सामने आने वाली चुनौतियों पर प्रारंभिक ध्यान केंद्रित करता है।

महत्त्वपूर्ण शब्दावलि

- ❖ **संयुक्त राष्ट्र (UN):** वर्ष 1945 में स्थापित एक अंतरराष्ट्रीय संगठन, जो अपने सदस्य देशों के बीच शांति, सुरक्षा, सामाजिक प्रगति और सहयोग को बढ़ावा देता है।
- ❖ **एमनेस्टी इंटरनेशनल:** एक गैर-सरकारी संगठन जो वैश्विक स्तर पर मानवाधिकारों को बढ़ावा देने और सुनिश्चित करने पर केंद्रित है, अक्सर मानवाधिकार उल्लंघनों पर रिपोर्ट प्रकाशित करता है।
- ❖ **ह्यूमन राइट्स वॉच:** एक अंतरराष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठन है जो मानवाधिकारों पर शोध और सिफारिश करता है, वैश्विक स्तर पर मानवाधिकारों के हनन की ओर ध्यान आकर्षित करता है।
- ❖ **विश्व व्यापार संगठन (WTO):** वर्ष 1995 में स्थापित एक अंतरराष्ट्रीय संगठन जो राष्ट्रों के बीच व्यापार के नियमों से निपटता है। यह व्यापार और शुल्कों पर सामान्य समझौते (GATT) का उत्तराधिकारी है।
- ❖ **अंतरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी (IAEA):** वर्ष 1957 में स्थापित एक संगठन, जिसका उद्देश्य परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग को बढ़ावा देना और यह सुनिश्चित करना है कि इसका उपयोग सैन्य उद्देश्यों के लिए न किया जाए।
- ❖ **शांति स्थापना आयोग:** संघर्ष के बाद की पुनर्प्राप्ति और विकास के लिए रणनीतियों पर सलाह और प्रस्ताव देने के उद्देश्य से एक निकाय।
- ❖ **मानवाधिकार परिषद:** वर्ष 2006 में स्थापित एक संयुक्त राष्ट्र निकाय, जो विश्व में मानवाधिकारों को बढ़ावा देने और उनकी रक्षा करने के लिए जिम्मेदार है।
- ❖ **सहस्राब्दी विकास लक्ष्य (MDG):** वर्ष 2000 में स्थापित आठ अंतरराष्ट्रीय विकास लक्ष्य, गरीबी, भूख और स्वास्थ्य जैसे विभिन्न वैश्विक मुद्दों को लक्षित करता है।
- ❖ **सुरक्षा परिषद:** अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए जिम्मेदार संयुक्त राष्ट्र के मुख्य अंगों में से एक। इसके स्थायी और अस्थायी सदस्य होते हैं।
- ❖ **शांति के लिए परमाणु हथियार:** अमेरिकी राष्ट्रपति ड्वाइट आइज़नहावर द्वारा एक प्रस्ताव, जो परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग को बढ़ावा देता है और IAEA की स्थापना की पृष्ठभूमि निर्मित करता है।





वैश्वीकरण

संदर्भ: इस अध्याय में NCERT पाठ्यपुस्तक की कक्षा-XII (भारत और समकालीन विश्व-II) के अध्याय-7 का सारांश शामिल है।

परिचय

वैश्वीकरण एक ऐसा प्रक्रिया है, जिसमें विभिन्न देशों, संस्कृतियों और अर्थव्यवस्थाओं के बीच आपसी संबंध और परस्पर निर्भरता बढ़ती है। यह एक समग्र और अनवरत प्रक्रिया है, जो तकनीकी, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से दुनिया भर को आपस में जोड़ती है। वैश्वीकरण का प्रभाव व्यापार, संचार, परिवहन, विज्ञान और प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से देखा जाता है। यह एक ओर जहाँ देशों के बीच व्यापार और निवेश को बढ़ावा देता है, वहीं दूसरी ओर सांस्कृतिक आदान-प्रदान और विचारों के विनिमय को भी प्रोत्साहित करता है। हालाँकि, वैश्वीकरण के कुछ नकारात्मक पहलु भी हैं, जैसे कि आर्थिक असमानता, सांस्कृतिक धारा का प्रभाव और पर्यावरणीय समस्याएँ आदि। इसके बावजूद वैश्वीकरण ने देशों को एक साझा मंच पर लाकर वैश्विक समस्याओं के समाधान के लिए सहयोग की आवश्यकता को बढ़ाया है।

वैश्वीकरण

वैश्विक स्तर पर वैश्वीकरण को विचारों, पूँजी, वस्तुओं और लोगों की आवाजाही या प्रवाह से संबंधित गतिशील प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इसके मूल में 'विश्वव्यापी पारस्परिक जुड़ाव' की अवधारणा व्याप्त है, जो इसे विभिन्न प्रवाहों द्वारा सुगम बनाती है। इस बहुआयामी घटना की राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आयामों तक पहुँच में वृद्धि हुई है, जो राष्ट्रों और समाज को विविध प्रकार से संचालित करती है। इसका प्रभाव एक समान नहीं है, क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों और समुदायों पर इसका अलग-अलग प्रभाव देखा जाता है इसलिए, वैश्वीकरण की जटिल तथा निरंतर विकसित होने वाली अवधारणा के बारे में व्यापक निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व विशिष्ट संदर्भों एवं सूक्ष्म अंतरों का विश्लेषण करना आवश्यक है।

वैश्वीकरण की प्रकृति

- यह पूर्णतया सकारात्मक नहीं है, बल्कि लोगों और समुदायों पर इसका नकारात्मक प्रभाव भी देखा जा सकता है।
- यह केवल आर्थिक पहलुओं पर ही केंद्रित नहीं है तथा इसका प्रभाव केवल अमीर देशों से निर्धन देशों में होने वाले परिवर्तनों तक ही सीमित नहीं है।

सेवा क्षेत्र में वैश्वीकरण

- सेवा क्षेत्र में संलग्न कर्मचारी प्रायः विदेशी ग्राहकों को सेवा प्रदान करने के लिए पश्चिमी भाषा एवं शैली को अपनाते हैं।
- विभिन्न समय क्षेत्रों और यहाँ तक कि अंतरराष्ट्रीय ग्राहकों के अतिरिक्त समय को ध्यान में रखते हुए इसका समायोजन किया जाता है।

व्यापार और वस्तुओं में वैश्वीकरण

- आयातित उत्पाद, जैसे कि अन्य देशों में निर्मित साइकिलों को प्रायः उनकी सामर्थ्य और गुणवत्ता के आधार पर खरीदा जाता है।
- अमेरिका जैसे देशों से आयातित प्रचलित खिलौने अन्य देशों के बाजारों में भी उपलब्ध होते हैं।
- वैश्वीकरण के कारण परंपरा से विमुखता।
- जैसे-जैसे वैश्विक अवसर बढ़ रहे हैं, व्यक्तियों, विशेषकर महिलाओं में, ऐसे करियर और जीवनशैली अपनाने की प्रवृत्ति देखी जा रही है, जो उनके पारंपरिक संदर्भों में पारंपरिक नहीं है।
- इससे प्रायः पुराने मूल्यों और नए वैश्विक दृष्टिकोणों के मध्य टकराव की स्थिति उत्पन्न होती है।

वैश्वीकरण के अन्य उदाहरण

- ❑ बहुराष्ट्रीय कंपनियों के उत्पादों पर निर्भरता के कारण किसानों को क्षति उठानी पड़ रही है।
- ❑ विरोध के बीच घरेलू उद्यमों द्वारा विदेशी कंपनियों का अधिग्रहण।
- ❑ स्थानीय व्यवसायों को प्रमुख अंतरराष्ट्रीय खुदरा शृंखलाओं से प्रतिस्पर्धा का भय होता है।
- ❑ सांस्कृतिक प्रभावों के कारण मीडिया उद्योगों में नकल करने या अनुलेखन के आरोप लगते हैं।
- ❑ पश्चिमी परिधान या जीवन शैली अपनाने से सामाजिक तनाव उत्पन्न होता है।

वैश्वीकरण के कारण

- ❑ विचारों, पूँजी, वस्तुओं और लोगों के प्रवाह के संदर्भ में वैश्वीकरण कोई नवीन अवधारणा नहीं है। ऐतिहासिक रूप से, इस प्रकार के प्रवाह हमेशा ही विद्यमान रहे हैं।
- ❑ समकालीन वैश्वीकरण की विशिष्ट प्रकृति इन प्रवाहों के स्तर और गति में निहित है अतः वर्तमान में वैश्वीकरण को समझने के लिए इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का ज्ञान होना आवश्यक है।

प्रौद्योगिकी प्रगति

- ❑ टेलीग्राफ, टेलीफोन और आधुनिक माइक्रोचिप के आविष्कार ने वैश्विक संचार को परिवर्तित कर दिया है।
- ❑ जिस प्रकार मुद्रण/प्रिंटिंग/के आविष्कार से राष्ट्रवाद का मार्ग प्रशस्त हुआ, उसी प्रकार आधुनिक प्रौद्योगिकी व्यक्तिगत और सामूहिक पहचान को नया आकार प्रदान कर रही है।
- ❑ वैश्विक स्तर पर विचारों, पूँजी, वस्तुओं और लोगों की बढ़ी हुई आवाजाही काफी हद तक तकनीकी प्रगति के कारण है।
- ❑ हालाँकि, इन प्रवाहों की गति भिन्न है; उदाहरण के लिए, पूँजी और वस्तुएँ प्रायः लोगों की तुलना में अधिक तीव्रता से गतिशील या चलायमान होती हैं।

विचारणीय बिंदु

वैश्वीकरण के कई सकारात्मक लाभ देखने को मिलते हैं, जिससे कई देशों को आर्थिक रूप से विकसित होने और अपने जीवन स्तर को बेहतर करने में मदद मिली है। दूसरी ओर, इसके नकारात्मक प्रभाव भी देखे गए हैं, जैसा कि कई मार्क्सवादी विद्वानों के अनुसार, वैश्वीकरण वैश्विक स्तर पर साम्राज्यवाद है। इससे कारण कई अफ्रीकी देशों का शोषण हुआ है, जो पश्चिमी पूँजी पतियों के लिए कच्चे माल और बाजार का स्रोत बन गए हैं। क्या आप इस तर्क से सहमत हैं? क्या भारत को भी वैश्विक एकीकरण के कारण ऐसे किसी प्रभाव का सामना करना पड़ा है?



वैश्विक अंतर्संबंध

- ❑ मात्र बेहतर संचार व्यवस्था ही वैश्वीकरण का एकमात्र कारक नहीं है।
- ❑ वैश्विक अंतर्संबंध का आभास तब देखा जा सकता है जब दुनिया भर के लोग अपने साझा अनुभवों और प्रभावों को पहचानते हैं।
- ❑ विश्व के किसी एक भाग में घटित होने वाली घटना, जैसे बर्ड फ्लू या सुनामी, केवल उसी क्षेत्र तक सीमित नहीं होती हैं, बल्कि उनका वैश्विक प्रभाव देखा जा सकता है।
- ❑ प्रमुख आर्थिक घटनाओं का प्रभाव अपने तात्कालिक परिवेश से परे भी देखा जा सकता है, जिससे विश्वव्यापी परिणाम उत्पन्न हो सकते हैं।

वैश्वीकरण के परिणाम

वैश्वीकरण के राजनीतिक परिणाम

राज्य की क्षमता में गिरावट

- ❑ वैश्वीकरण का एक प्रत्यक्ष प्रभाव यह है कि राज्यों की पारंपरिक रूप से कार्य करने की क्षमता के स्तर में गिरावट या कमी आती है।
- ❑ अपने नागरिकों के आर्थिक और सामाजिक कल्याण के लिए उत्तरदायी महत्वपूर्ण 'कल्याणकारी राज्य' पीछे हट रहा है।
- ❑ यह एक अधिक सुव्यवस्थित राज्य का मार्ग प्रशस्त कर रहा है जो कानून और व्यवस्था को बनाए रखने तथा राष्ट्रीय सुरक्षा को सुनिश्चित करने जैसी प्रमुख जिम्मेदारियों पर ध्यान केंद्रित करता है।

क्या आप जानते हैं?

राज्य की प्रमुखता

वैश्वीकरण के प्रभावों के बावजूद, राज्य की संप्रभुता काफी हद तक अक्षुण्ण है और राजनीतिक समुदाय के लिए महत्वपूर्ण बनी हुई है।

राष्ट्रों के मध्य पारंपरिक प्रतिद्वंद्विता और तनाव निरंतर बना हुआ है।

राज्य की महत्वपूर्ण भूमिकाओं का निर्वाह निरंतर बना हुआ है, प्रायः चुनिंदा क्षेत्रों को पुनः प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, जिससे वैश्विक स्तर पर उनके महत्व को बनाए रखने का प्रभाव पड़ता है।

- ❑ वर्तमान में राज्य के स्थान बाजार आर्थिक और सामाजिक निर्णयों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है।
- ❑ वैश्विक स्तर पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों का बढ़ता प्रभाव और उपस्थिति निर्णय लेने में सरकारों की स्वायत्तता को कम कर रही है।

राज्य की क्षमता में वृद्धि

- ❑ कुछ मामलों में, वैश्वीकरण ने राज्य की क्षमताओं में वृद्धि की है।
- ❑ उन्नत प्रौद्योगिकियाँ राज्यों को अपने नागरिकों के बारे में व्यापक डेटा उपलब्ध कराती हैं, जिससे वे और अधिक सशक्त बनते हैं।
- ❑ व्यापक तकनीकी क्षमता राज्यों को शासन और नियंत्रण में पूर्व की तुलना में अधिक सक्षम बनाती है।

वैश्वीकरण के आर्थिक परिणाम

सकारात्मक प्रभाव

- ❑ इससे देशों के बीच वस्तुओं, पूँजी, लोगों और विचारों सहित आर्थिक प्रवाह में वृद्धि हुई।
- ❑ कई देशों द्वारा आयात प्रतिबंधों को कम करने से वैश्विक व्यापार में वृद्धि देखी गई है।
- ❑ पूँजी का प्रवाह अधिक हो गया है, जिससे विकसित देशों के निवेशकों को विकासशील देशों में बेहतर रिटर्न के पर्याप्त अवसर उपलब्ध हो रहे हैं।
- ❑ इससे इंटरनेट और कंप्यूटर से संबंधित सेवाओं का प्रसार हुआ, जो वैचारिक प्रवाह का उदाहरण है।
- ❑ हालाँकि, जन-आंदोलन में उतनी प्रगति नहीं देखी गई है, विशेष रूप से उन विकसित देशों में जहाँ वीजा से संबंधित नीतियाँ कठोर या जटिल हैं।
- ❑ इसके परिणामस्वरूप ऐसी ही आर्थिक नीतियों को अपनाया गया जिन्हें वैश्विक स्तर पर अपनाया गया है, तथा उनके परिणाम क्षेत्रीय संदर्भों के आधार पर अत्यधिक भिन्न होते हैं।

आर्थिक वैश्वीकरण के समर्थक

सकारात्मक समर्थक (Positive Proponents): उनका मानना है कि इससे आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलता है, जिससे समाज के बड़े तबके को लाभ प्राप्त होती है। वे तुलनात्मक लाभ के सिद्धांत के पक्ष में तर्क देते हैं, जहाँ प्रत्येक अर्थव्यवस्था अपने मजबूत पक्ष या स्ट्रेंथ पर विशेष ध्यान देती है, जिससे सभी को लाभ होता है।

नकारात्मक समर्थक (Negative Proponents): कुछ लोगों का मानना है कि वैश्वीकरण के मार्ग पर चलें का कोई लाभ नहीं है। फिर भी, अन्य लोग आलोचनात्मक मूल्यांकन और प्रतिक्रिया की आवश्यकता पर बल देते हैं।

विचारों से इतर, वैश्वीकरण ने निस्संदेह वैश्विक स्तर पर सरकारों, व्यवसायों और लोगों के मध्य परस्पर निर्भरता को बढ़ा दिया है।

नकारात्मक प्रभाव

- ❑ आर्थिक वैश्वीकरण ने दृष्टिकोणों या विचारों को धुवीकृत कर दिया है।
- ❑ आलोचकों का तर्क है कि इससे आबादी के एक छोटे से हिस्से को ही लाभ मिलता है, जबकि सरकारी नौकरियों और जन कल्याण पर निर्भर लोगों की उपेक्षा की जा सकती है। वे प्रतिकूल प्रभावों को कम करने के लिए 'सामाजिक सुरक्षा जाल' (Social Safety Nets) के समर्थक हैं।
- ❑ दुनिया भर में हुए कुछ आंदोलनों ने आर्थिक वैश्वीकरण को पुनः उपनिवेशीकरण का ही एक रूप माना है, उनका मानना है कि यह विशेष रूप से निर्धन देशों के लिए हानिकारक है।

वैश्वीकरण के सांस्कृतिक परिणाम

वैश्वीकरण का हमारे दैनिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है, यह हमारे भोजन, वस्त्रों और यहाँ तक कि हमारी प्राथमिकताओं को भी प्रभावित करता है।

नकारात्मक प्रभाव

- ❑ वैश्वीकरण से एक एकल वैश्विक संस्कृति के निर्माण का संशय उत्पन्न होता है, जिसे सांस्कृतिक समरूपीकरण (Cultural Homogenisation) कहा जाता है।
- ❑ वास्तविक वैश्विक संस्कृति के विपरीत, अन्य समाज पर पश्चिमी संस्कृति को जबरन आरोपित करने से संबंधित धारणा है, जिसे विशेष रूप से अमेरिकी आधिपत्य के सॉफ्ट पावर के रूप में देखा जाता है। उदाहरण के लिए, बर्गर या ब्लू जींस की वैश्विक लोकप्रियता अमेरिकी जीवनशैली के प्रभाव से जुड़ी हुई है।
- ❑ आलोचकों का तर्क है कि यह प्रमुख सांस्कृतिक प्रभाव नकारात्मक है, क्योंकि यह विविध सांस्कृतिक विरासतों को नष्ट करता है, तथा इस घटना को आलोचकों ने विश्व का 'मैकडोनाल्डीकरण' कहा है।

सकारात्मक प्रभाव

- संस्कृतियाँ हमेशा बाह्य प्रभावों को आत्मसात करते हुए विकसित होती रही हैं। कुछ बाहरी प्रभाव किसी संस्कृति को प्रभावित किए बिना उसमें वृद्धि कर सकते हैं और विविधता प्रदान कर सकते हैं।
- उदाहरण के लिए, जहाँ बर्गर मसाला डोसा जैसे पारंपरिक भारतीय खाद्य पदार्थों के साथ मिल सकता है, वहीं नीली जींस को घर पर बने खादी के कुर्ते के साथ पहनने से एक अनूठा सांस्कृतिक मिश्रण को विकसित किया जा सकता है। यह मिश्रण पश्चिमी देशों में भी देखा जा रहा है, जहाँ अमेरिकी लोग कुर्ते और जींस पहनने लगे हैं।

भारत और वैश्वीकरण

भारतीय वैश्वीकरण का कालक्रम

स्वतंत्रता से पहले

- ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के समय, भारत प्राथमिक वस्तुओं और कच्चे माल का आपूर्तिकर्ता तथा तैयार माल का आयातक बन गया था, जिसने वैश्विक बाजार में भारत की आर्थिक भूमिका को आकार प्रदान किया।

स्वतंत्रता के बाद

- स्वतंत्रता के बाद, भारत ने अपने औपनिवेशिक अनुभवों के कारण संरक्षणवादी रुख को अपनाया।
- देश का लक्ष्य आयात पर निर्भर रहने के बजाय घरेलू स्तर पर माल का उत्पादन करना था।
- इस संरक्षणवाद के कारण विशिष्ट क्षेत्रों में प्रगति हुई परंतु स्वास्थ्य, आवास और प्राथमिक शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों की उपेक्षा हुई, परिणामस्वरूप आर्थिक विकास दर अपेक्षाकृत धीमी रही।

वर्ष 1991 के आर्थिक सुधारों के बाद

- वित्तीय संकट का सामना करने और बेहतर आर्थिक विकास की आकांक्षा के कारण, भारत ने वर्ष 1991 में आर्थिक सुधारों की एक श्रृंखला शुरू की।
- ये सुधार व्यापार और विदेशी निवेश सहित विभिन्न क्षेत्रों के विनियमन पर केंद्रित थे।
- इन सुधारों की सफलता का अंतिम मापदंड केवल उच्च विकास दर नहीं है, बल्कि यह सुनिश्चित करना है कि विकास का लाभ संपूर्ण समाज में समान रूप से वितरित हो।

वैश्वीकरण का प्रतिरोध

वैश्वीकरण को इसके विभाजनकारी प्रभावों के कारण विश्व स्तर पर आलोचना का सामना करना पड़ा है।

वामपंथी चिंताएँ

- वामपंथी आलोचकों के अनुसार, इससे एक ऐसी प्रणाली स्थापित होती है जो धन के अंतर को बढ़ाती है, जहाँ अमीर और अधिक अमीर होते जाते हैं, तथा निर्धन और अधिक निर्धन होते जाते हैं।
- उनका तर्क है कि यह प्रक्रिया राज्य की सवेदनशील आबादी के हितों की रक्षा करने की क्षमता को क्षीण करती है।

दक्षिणपंथी चिंताएँ

राजनीतिक दक्षिणपंथी आलोचकों की तीन प्राथमिक चिंताएँ हैं:

- **राजनीतिक:** राज्य की शक्ति क्षीण होने पर चिंता।
- **आर्थिक:** कुछ क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता और आर्थिक संरक्षणवाद की ओर पुनः लौटने की इच्छा।
- **सांस्कृतिक:** पारंपरिक मूल्यों और रीति-रिवाजों के संभावित क्षरण से संबंधित आशंका।

वैश्वीकरण विरोधी आंदोलन

- ये आंदोलन वैश्विक तंत्र में विद्यमान हैं तथा वैश्विक स्तर पर समान विचारधारा वाले समूहों के साथ मिलकर कार्य करते हैं।
- उनका विरोध हमेशा एक अवधारणा के रूप में वैश्वीकरण के विरुद्ध नहीं है, बल्कि एक विशिष्ट प्रकार के वैश्वीकरण के विरुद्ध है जिसे साम्राज्यवादी माना जाता है।

प्रमुख विरोध प्रदर्शन और मंच

- वर्ष 1999 में सिएटल में विश्व व्यापार संगठन (WTO) की मंत्रिस्तरीय बैठक के दौरान बड़े स्तर पर विरोध प्रदर्शन हुए थे, जिसमें प्रदर्शनकारियों ने दावा किया था कि वैश्विक आर्थिक प्रणाली शक्तिशाली राज्यों के पक्ष में है तथा यह विकासशील देशों के हितों की उपेक्षा करती है।

विश्व सामाजिक मंच

विश्व सामाजिक मंच (WSF) मानवाधिकार कार्यकर्ताओं, पर्यावरणविदों और नव-उदारवादी वैश्वीकरण का विरोध करने वाले अन्य कार्यकर्ताओं के वैश्विक गठबंधन का प्रतिनिधित्व करता है।

उल्लेखनीय बैठकें:

प्रथम WSF: वर्ष 2001, पोर्टो एलेग्रे, ब्राजील।

चौथा WSF: वर्ष 2004, मुंबई

सोलहवाँ WSF: मार्च 2018, ब्राजील

भारत और वैश्वीकरण का प्रतिरोध

- सामाजिक आंदोलनों की भूमिका:** भारत में सामाजिक आंदोलनों ने लोगों को वैश्वीकरण की जटिलताओं को समझने और उनसे निपटने में मदद की है। ये आंदोलन चिंताओं को व्यक्त करने और वैश्विक प्रभावों से उत्पन्न होने वाले मुद्दों को संबोधित करने के लिए मंच प्रदान करते हैं।
- वामपंथी प्रतिरोध:** भारत में वामपंथी विचारधारा ने आर्थिक उदारीकरण पर चिंता व्यक्त की है। प्रतिरोध मंचों में राजनीतिक दल और भारतीय सामाजिक मंच जैसे मंच शामिल हैं। औद्योगिक कार्यबल और कृषक हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले ट्रेड यूनियनों ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रवेश का विरोध किया है। मुख्य विवाद तब उत्पन्न हुआ जब अमेरिकी और यूरोपीय फर्मों ने भारतीय पौधों, विशेष रूप से नीम को पेटेंट करने का प्रयास किया, जिसका काफी विरोध हुआ।
- दक्षिणपंथी प्रतिरोध:** भारत में राजनीतिक दक्षिणपंथ ने मुख्य रूप से वैश्वीकरण के सांस्कृतिक पहलुओं का विरोध किया है। उनकी आपत्तियाँ इस प्रकार हैं:
 - केबल नेटवर्क के माध्यम से विदेशी टीवी चैनलों का आगमन।
 - वैलेंटायन डे जैसे पश्चिमी त्यौहारों का मनाना।
 - स्कूलों और कॉलेजों में छात्राओं के बीच पोशाक संबंधी पसंद में पश्चिमीकरण की धारणा।

निष्कर्ष

साहित्य में, वैश्वीकरण एक प्रमुख विषय के रूप में सामने आता है, जो कई शैक्षणिक/अकादमिक क्षेत्रों को प्रभावित करता है। इस बहस ने वैश्वीकरण की बहुआयामी प्रकृति को इसके प्रेरक बलों से लेकर इसके व्यापक राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिणामों तक उजागर किया है। इस अन्वेषण का केंद्र भारत और वैश्वीकरण के मध्य सहजीवी संबंध रहा है, जो वैश्विक रूढ़ानों के एक प्रभावशाली और प्राप्तकर्ता दोनों के रूप में भारत की दोहरी भूमिका को प्रकट करता है। जैसे-जैसे वैश्वीकरण को लेकर चुनौतियाँ और प्रतिरोध उत्पन्न हो रहे हैं, भारतीय सामाजिक आंदोलनों का महत्व निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो रहा है, जो इस वैश्विक आख्यान में भारत की सक्रिय भागीदारी को दर्शाता है।

महत्वपूर्ण शब्दावलि

- वैश्वीकरण:** वह प्रक्रिया, जिसके द्वारा व्यवसाय और अन्य संगठन अंतरराष्ट्रीय प्रभाव विकसित करते हैं या अंतरराष्ट्रीय स्तर पर परिचालन शुरू करते हैं, जो अक्सर परिवहन, प्रौद्योगिकी एवं संचार में प्रगति के कारण परस्पर जुड़ाव द्वारा संचालित होता है।
- सांस्कृतिक समरूपीकरण:** वह प्रक्रिया जिसके द्वारा स्थानीय संस्कृतियों को एक प्रमुख बाहरी संस्कृति द्वारा रूपांतरित या अवशोषित कर लिया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप अक्सर सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों में एकरूपता आ जाती है।
- सॉफ्ट पॉवर:** किसी देश की वह क्षमता जिसके द्वारा वह बिना किसी बल या दबाव के दूसरों को अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए राजी कर सकता है, जिसे प्रायः सांस्कृतिक प्रभाव के माध्यम से प्राप्त किया जाता है।
- सांस्कृतिक विषमता:** वह प्रक्रिया जिसमें वैश्विक प्रभाव सांस्कृतिक विभेदीकरण को उत्पन्न करते हैं, जिससे प्रत्येक संस्कृति अधिक विशिष्ट और अद्वितीय बनती है।

- ❖ **संरक्षणवाद:** आयात पर कर लगाकर किसी देश के घरेलू उद्योगों को विदेशी प्रतिस्पर्धा से बचाने का सिद्धांत या व्यवहार।
- ❖ **आर्थिक उदारीकरण:** आर्थिक गतिविधियों में राज्य के हस्तक्षेप में कमी, जिसके परिणामस्वरूप बाजार में निजी संस्थाओं की अधिक भागीदारी होगी।
- ❖ **नव-उदारवादी वैश्वीकरण:** सामाजिक अध्ययन और अर्थशास्त्र का एक नीति मॉडल जो मुक्त बाजार प्रतिस्पर्धा के मूल्य पर बल देता है, राज्य के हस्तक्षेप को कम करता है।
- ❖ **विश्व व्यापार संगठन (WTO):** राष्ट्रों के मध्य व्यापार के नियमों को स्पष्ट करने वाला एक अंतरराष्ट्रीय संगठन।
- ❖ **विश्व सामाजिक मंच (WSF):** एक वैश्विक मंच जो नव-उदारवादी वैश्वीकरण का विरोध करने वाली संस्थाओं और व्यक्तियों को एक मंच प्रदान करता है तथा मुख्यधारा की वैश्वीकरण रणनीतियों के विपरीत वैश्विक आख्यानो पर केंद्रित है।
- ❖ **आर्थिक संवृद्धि:** किसी विशिष्ट अवधि में वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में वृद्धि, जो प्रायः किसी देश के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) से संबंधित होती है।





समकालीन विश्व में सुरक्षा

संदर्भ: इस अध्याय में NCERT पाठ्यपुस्तक की कक्षा-XII (भारत और समकालीन विश्व-II) के अध्याय-5 व 6 का सारांश शामिल है।

परिचय

सुरक्षा संबंधी चिंताएँ, जो किसी राष्ट्र के कल्याण हेतु आवश्यक हैं, अक्सर लोकतंत्र में आम नागरिकों के दैनिक जीवन से अलग दिखाई देती हैं। हालाँकि, एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में, सुरक्षा का महत्त्व हर नागरिक तक विस्तृत है। इसलिए, लोकतंत्र में भागीदार के रूप में, व्यक्तियों के लिए सुरक्षा की अवधारणा की गहरी समझ हासिल करना और इसके विभिन्न आयामों से अच्छी तरह वाकिफ़ होना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त, यह चर्चा सुरक्षा पर दो अलग-अलग दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है और सुरक्षा की हमारी धारणा को प्रभावित करने वाले विभिन्न संदर्भों और स्थितियों पर विचार करने के महत्त्व को रेखांकित करती है। वर्ष 1994 की संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) की मानव विकास रिपोर्ट ने मानव सुरक्षा के बारे में चिंता जताई, जिसमें इस बात पर जोर दिया गया कि सुरक्षा की पारंपरिक व्याख्या राष्ट्र-राज्यों पर अत्यधिक केंद्रित रही है, न कि अपने रोजमर्रा के जीवन में सुरक्षा चाहने वाले आम लोगों की सुस्थापित चिंताओं पर।



चित्र 14.1: यह चित्र विभिन्न प्रकार के सुरक्षा खतरों को दर्शाता है

सुरक्षा(Security)

सुरक्षा का तात्पर्य खतरों से आजादी है। इसका संबंध केवल उन अत्यंत गंभीर खतरों से है जो मौलिक सिद्धांतों को खतरे में डाल सकते हैं, ऐसे सिद्धांत जो अपूरणीय रूप से नष्ट हो जाएंगे यदि स्थिति से निपटने के लिए कुछ नहीं किया गया। (चित्र 14.1 देखें)

सुरक्षा के लिए बाहरी पारंपरिक धारणाएँ

- किसी देश के लिए सबसे बड़ा खतरा सैन्य धमकियाँ हैं। इस खतरे का स्रोत कोई दूसरा देश है जो सैन्य हमले की धमकी देकर संप्रभुता, स्वतंत्रता और क्षेत्रीय अखंडता के केंद्रीय मूल्यों को खतरे में डालता है। सैन्य कार्रवाई के दौरान आम लोगों की जान भी खतरे में पड़ जाती है। यह असंभव है कि युद्ध में केवल सैनिक ही घायल हों या मारे जाएँ। युद्ध के प्रति उनके समर्थन को कमजोर करने के प्रयास में आम पुरुषों और महिलाओं को अक्सर युद्ध का निशाना बनाया जाता है।
- युद्ध के खतरे का जवाब देने में सरकार के पास तीन बुनियादी विकल्प होते हैं: आत्मसमर्पण करना; युद्ध की लागत को अस्वीकार्य स्तर तक बढ़ाने का वादा करके दूसरे पक्ष को आक्रमण करने से रोकना; और स्वयं का बचाव करना।
- **अपरोध और रक्षा(Deterrence and Defense):** सुरक्षा नीति का संबंध युद्ध को रोकने से है, जिसे **अपरोध** कहा जाता है, तथा युद्ध को सीमित करने या समाप्त करने से है, जिसे **रक्षा** कहा जाता है।
- **शक्ति संतुलन की भूमिका:** पारंपरिक सुरक्षा नीति में एक तीसरा घटक होता है जिसे **शक्ति संतुलन** कहा जाता है। जब देश अपने आस-पास देखते हैं, तो वे पाते हैं कि कुछ देश बड़े और मजबूत हैं। शक्ति संतुलन बनाए रखने का एक अच्छा हिस्सा अपनी सैन्य शक्ति का निर्माण करना है, हालाँकि आर्थिक और तकनीकी शक्ति भी महत्वपूर्ण है क्योंकि वे सैन्य शक्ति का आधार हैं।
- पारंपरिक सुरक्षा नीति का चौथा और संबंधित घटक गठबंधन निर्माण है। गठबंधन राज्यों का एक समूह है जो सैन्य हमले को रोकने या उसके खिलाफ बचाव करने हेतु अपने कार्यों का समन्वय करता है। अधिकांश गठबंधन औपचारिक रूप से लिखित संधियों से निर्मित होते हैं और यह इस बात की स्पष्ट पहचान पर आधारित होते हैं कि खतरा किससे है।
- सुरक्षा के पारंपरिक दृष्टिकोण में, किसी देश की सुरक्षा के लिए सबसे ज़्यादा खतरे उसकी सीमाओं के बाहर से आते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था एक क्रूर क्षेत्र है जिसमें व्यवहार को नियंत्रित करने में सक्षम कोई केंद्रीय प्राधिकरण नहीं है।
- किसी देश के भीतर हिंसा के खतरे को एक स्वीकृत केंद्रीय प्राधिकारी - सरकार - द्वारा नियंत्रित किया जाता है।

सुरक्षा के लिए आंतरिक पारंपरिक धारणाएँ

- पारंपरिक सुरक्षा का संबंध आंतरिक सुरक्षा से भी है, क्योंकि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, दुनिया के शक्तिशाली देशों को आंतरिक सुरक्षा कमोबेश सुनिश्चित हो गई थी।
- अधिकांश यूरोपीय देशों को अपनी सीमाओं के भीतर रहने वाले समूहों या समुदायों से कोई गंभीर खतरा नहीं था। इसलिए, इन देशों ने मुख्य रूप से अपनी सीमाओं के बाहर से आने वाले खतरों पर ध्यान केंद्रित किया।
- एशिया और अफ्रीका के नव स्वतंत्र देशों के सामने मौजूद सुरक्षा चुनौतियाँ यूरोप की चुनौतियों से दो तरह से भिन्न थीं।
 - **बाहरी:** नए देशों को पड़ोसी देशों के साथ सैन्य संघर्ष की संभावना का सामना करना पड़ा।
 - **आंतरिक:** आंतरिक रूप से नए राज्य अलगाववादी आंदोलनों के खतरे से चिंतित थे जो स्वतंत्र देश बनाना चाहते थे।
- अब विश्व में कहीं भी लड़े जाने वाले सभी सशस्त्र संघर्षों में से 95% से अधिक आंतरिक युद्धों के कारण होते हैं।
- 1946 और 1991 के बीच गृह युद्धों की संख्या में बारह गुना वृद्धि हुई - जो 200 वर्षों में सबसे बड़ी वृद्धि थी।

पारंपरिक सुरक्षा और सहयोग

- पारंपरिक सुरक्षा में यह मान्यता है कि हिंसा को सीमित करने में सहयोग संभव है।
- ये सीमाएँ युद्ध के उद्देश्य और साधन दोनों से संबंधित हैं। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण हैं निरस्त्रीकरण, शस्त्र नियंत्रण और विश्वास निर्माण।
- निरस्त्रीकरण के लिए सभी देशों को कुछ खास तरह के हथियारों को त्यागना पड़ता है। उदाहरण के लिए, 1972 के जैविक हथियार सम्मेलन (BWC) और 1992 के रासायनिक हथियार सम्मेलन (CWC) ने इन हथियारों के उत्पादन और कब्जे पर प्रतिबंध लगा दिया।
- जैविक हथियार सम्मेलन (BWC) 155 से अधिक राज्यों ने इसमें प्रवेश किया और 181 देशों ने 1992 के रासायनिक हथियार सम्मेलन (CWC) में भाग लिया। दोनों सम्मेलनों में सभी महाशक्तियाँ शामिल थीं। लेकिन महाशक्तियाँ - अमेरिका और सोवियत संघ - सामूहिक विनाश के तीसरे प्रकार के हथियारों, अर्थात् परमाणु हथियारों को छोड़ना नहीं चाहते थे, इसलिए उन्होंने हथियार नियंत्रण का प्रयास किया।

- शस्त्र नियंत्रण हथियारों के अधिग्रहण या विकास को नियंत्रित करता है। 1972 में एंटी-बैलिस्टिक मिसाइल (ABM) संधि ने संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ को परमाणु हमला करने के लिए रक्षात्मक ढाल के रूप में बैलिस्टिक मिसाइलों का उपयोग करने से रोकने की कोशिश की।
- अमेरिका और सोवियत संघ ने सामरिक शस्त्र सीमा संधि II या SALT II और सामरिक शस्त्र न्यूनीकरण संधि (START) सहित कई अन्य शस्त्र नियंत्रण संधियों पर हस्ताक्षर किए।
- 1968 की परमाणु अप्रसार संधि (NPT) इस अर्थ में एक शस्त्र नियंत्रण संधि थी कि यह परमाणु हथियारों के अधिग्रहण को विनियमित करती थी।
 - इसके तहत, जिन देशों ने वर्ष 1967 से पहले परमाणु हथियारों का परीक्षण और निर्माण किया था, उन्हें अपने हथियार रखने की अनुमति दी गई; तथा जिन देशों ने ऐसा नहीं किया था, उन्हें हथियार हासिल करने से रोक दिया गया।
 - NPT ने परमाणु हथियारों को समाप्त नहीं किया; बल्कि, इसने उन देशों की संख्या सीमित कर दी जिनके पास परमाणु हथियार हो सकते थे।
- पारंपरिक सुरक्षा भी हिंसा से बचने के साधन के रूप में विश्वास निर्माण को स्वीकार करती है। विश्वास निर्माण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें देश अपने प्रतिद्वंद्वियों के साथ विचार और जानकारी साझा करते हैं। वे एक-दूसरे को अपने सैन्य इरादों और एक हद तक अपनी सैन्य योजनाओं के बारे में बताते हैं।
- इसलिए, पारंपरिक सुरक्षा में, सैन्य बल, सुरक्षा के लिए प्रमुख खतरा भी है और सुरक्षा प्राप्त करने का प्रमुख साधन भी।

सुरक्षा की अपारंपरिक धारणाएँ

- सुरक्षा के अपारंपरिक विचार, मानव अस्तित्व को प्रभावित करने वाले खतरों और संकटों के एक व्यापक दायरे को समाहित करते हैं, जो सैन्य चिंताओं से कहीं आगे तक विस्तृत हैं।
- वे सुरक्षा की पारंपरिक परिभाषा पर संदेह जताते हुए प्रारंभ होते हैं। इस प्रक्रिया में, वे सुरक्षा के अन्य तीन घटकों पर भी सवाल उठाते हैं:
 - सुरक्षा की रणनीति
 - व्यवस्था के सामने मौजूद खतरे
 - सुरक्षा का उद्देश्य
- राज्य, अपने क्षेत्र और शासकीय निकायों के साथ, पारंपरिक सुरक्षा विचार में संदर्भित (सुरक्षा किसकी /referent) है। अपारंपरिक धारणाओं के भीतर, संदर्भ को बढ़ाया जाता है। जब हम पूछते हैं, “सुरक्षा किसे चाहिए?” अपारंपरिक सुरक्षा के समर्थक उत्तर देते हैं, “केवल राज्य ही नहीं, बल्कि लोगों, समुदायों और समग्र रूप से मानवता को भी सुरक्षा चाहिए।” “मानव सुरक्षा” या “वैश्विक सुरक्षा” सुरक्षा पर अपारंपरिक दृष्टिकोणों का वर्णन करने के लिए उपयोग किए जाने वाले शब्द हैं।
- मानव सुरक्षा का मतलब राज्यों की सुरक्षा से ज्यादा लोगों की सुरक्षा है। मानव सुरक्षा के सभी पैरोकार इस बात पर सहमत हैं कि इसका प्राथमिक लक्ष्य व्यक्तियों की सुरक्षा है।
- मानव सुरक्षा की ‘संकीर्ण’ अवधारणा के पैरोकार व्यक्तियों के लिए हिंसक खतरों यानी खूनी संघर्ष पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जबकि मानव सुरक्षा की ‘व्यापक’ अवधारणा के पैरोकार तर्क देते हैं कि खतरे के एजेंडे में अकाल, बीमारी और प्राकृतिक आपदाओं को शामिल किया जाना चाहिए, क्योंकि ये युद्ध, नरसंहार और आतंकवाद से होने वाली कुल मौतों से कहीं अधिक लोगों को मारते हैं।
- वैश्विक सुरक्षा का विचार 1990 के दशक में वैश्विक तापन(global warming) वृद्धि, अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद तथा एड्स, बर्ड फ्लू जैसी स्वास्थ्य महामारियों जैसे खतरों की वैश्विक प्रकृति के प्रत्युत्तर में उभरा।
- चूंकि ये समस्याएँ प्रकृति में वैश्विक हैं, इसलिए अंतरराष्ट्रीय सहयोग अत्यंत महत्वपूर्ण है, भले ही इसे प्राप्त करना कठिन हो।

खतरे के नए स्रोत

- अपारंपरिक अवधारणाएँ - मानव सुरक्षा और वैश्विक सुरक्षा दोनों - सुरक्षा के लिए खतरों की बदलती प्रकृति पर ध्यान केंद्रित करती हैं। हम नीचे दिए गए अनुभाग में इनमें से कुछ खतरों पर चर्चा करेंगे।

आतंकवाद

- आतंकवाद से तात्पर्य राजनीतिक हिंसा से है जो जानबूझकर और बिना संकोच के नागरिकों को निशाना बनाती है। अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद में एक से अधिक देशों के नागरिक या क्षेत्र शामिल होते हैं। आतंकवादी समूह बल-प्रयोग या बल-प्रयोग की धमकी के ज़रिए किसी राजनीतिक संदर्भ या स्थिति में परिवर्तन की कोशिश करते हैं जो उन्हें पसंद नहीं है।
- आतंकवाद के चिर-परिचित उदाहरणों में विमानों का अपहरण करना या रेलगाड़ियों, कैफे, बाजारों और अन्य भीड़-भाड़ वाले स्थानों पर बम लगाना शामिल है।

विचारणीय बिंदु

‘सुरक्षा’ शब्द का ऐतिहासिक रूप से सेना से जुड़ा हुआ अर्थ (militaristic connotation) रहा है। लेकिन समय के साथ यह एक व्यापक विचार के रूप में उभरा है और इसका व्यापक अर्थ हो गया है। हम ऊर्जा सुरक्षा और खाद्य सुरक्षा के बारे में भी चर्चा देखते हैं। क्या आप सैन्यवादी राष्ट्रीय सुरक्षा के अलावा ऐसी ही अन्य सुरक्षा चिंताओं को सूचीबद्ध कर सकते हैं?

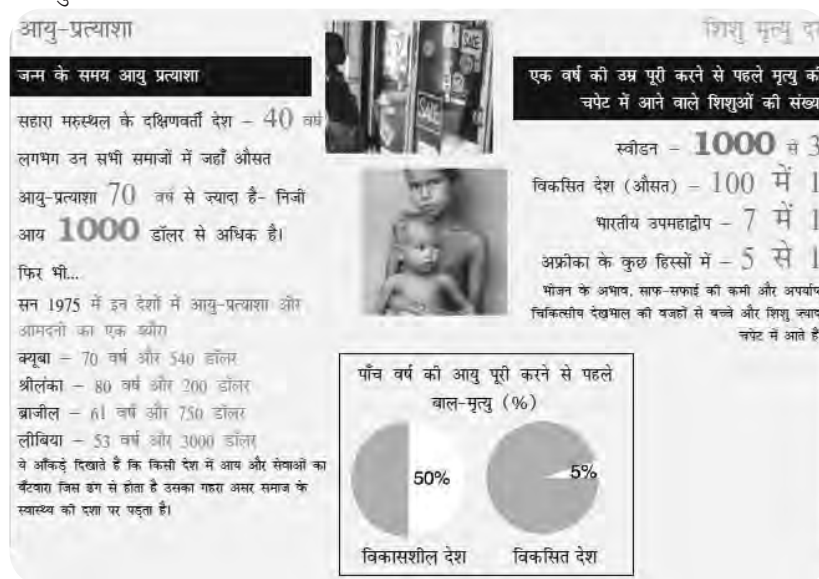


मानवाधिकार

- मानव अधिकारों को तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है।
 - पहला प्रकार राजनीतिक अधिकार है, जैसे भाषण और सभा करने की स्वतंत्रता।
 - दूसरा प्रकार आर्थिक और सामाजिक अधिकार है।
 - तीसरे प्रकार के अधिकार उपनिवेशित लोगों या जातीय एवं मूलवासी अल्पसंख्यकों के अधिकार हैं।

गरीबी

- वैश्विक गरीबी असुरक्षा का एक और स्रोत है। उच्च प्रति व्यक्ति आय और कम जनसंख्या वृद्धि धनी राज्यों या धनी सामाजिक समूहों को और अधिक धनी बनाती है, जबकि कम आय और उच्च जनसंख्या वृद्धि एक दूसरे को मजबूत करके गरीब राज्यों और गरीब समूहों को और अधिक गरीब बनाती है। (चित्र 14.2 देखें)
- वैश्विक स्तर पर यह असमानता दुनिया के उत्तरी और दक्षिणी देशों के बीच अंतर को बढ़ाती है।



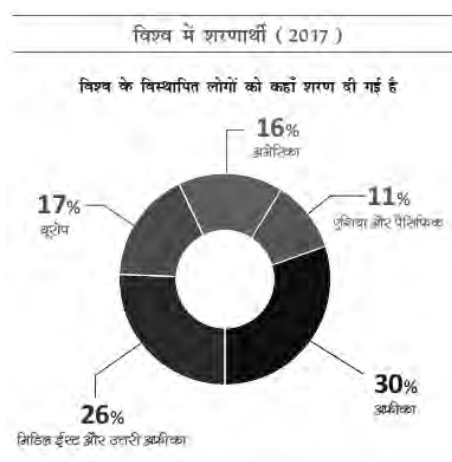
चित्र 14.2: जीवन प्रत्याशा और शिशु मृत्यु दर वैश्विक गरीबी को दर्शाती है।

प्रवासियों और शरणार्थियों का विस्थापन

- अंतरराष्ट्रीय नियम और कानून प्रवासियों (जो अपनी मर्जी से अपने को देश छोड़ते हैं) और शरणार्थियों (जो युद्ध, प्राकृतिक आपदा या राजनीतिक उत्पीड़न से मजबूर होकर देश छोड़ते हैं) के बीच अंतर करते हैं।
- राज्यों से आम तौर पर शरणार्थियों को स्वीकार करने की अपेक्षा की जाती है, लेकिन उन्हें प्रवासियों को स्वीकार करना ज़रूरी नहीं है। जबकि शरणार्थी अपने मूल देश को छोड़ते हैं, जबकि जो लोग अपने घरों को छोड़ चुके हैं, लेकिन राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर रहते हैं उन्हें 'आंतरिक रूप से विस्थापित जन' कहा जाता है। (चित्र 14.3 देखें)
- 1990 के दशक के प्रारंभ में कश्मीर घाटी में हुई हिंसा से बचने के लिए पलायन करने वाले कश्मीरी पंडित आंतरिक रूप से विस्थापित जन का एक उदाहरण हैं।

स्वास्थ्य महामारी (Health Epidemics)

- HIV-एड्स, बर्ड फ्लू और गंभीर तीव्र श्वसन सिंड्रोम (SARS-severe acute respiratory syndrome) जैसी स्वास्थ्य महामारियाँ प्रवास, व्यापार, पर्यटन और सैन्य अभियानों के माध्यम से बड़ी तेजी से विभिन्न देशों में फैली हैं।
- अन्य नई और ऐसी बीमारियाँ जिनके बारे में कम जानकारी है जैसे इबोला वायरस, हंटावायरस और हेपेटाइटिस सी उभरी हैं, जबकि पुरानी बीमारियाँ जैसे तपेदिक, मलेरिया, डेंगू बुखार और हैजा ने औषधि-प्रतिरोधक रूप धारण कर लिया है और इससे इनका उपचार करना कठिन हो गया है।



चित्र 14.3: वर्ष 2017 में विश्व में शरणार्थी

सहयोगमूलक सुरक्षा

- सुरक्षा की दृष्टि से अनेक गैर-परंपरागत खतरों से निपटने के लिए सैन्य टकराव के बजाय सहयोग की आवश्यकता होती है।
- सहयोग द्विपक्षीय (यानी किसी भी दो देशों के बीच), क्षेत्रीय, महाद्वीपीय या वैश्विक स्तर हो सकता है। यह सब खतरे की प्रकृति और देशों की प्रतिक्रिया करने की इच्छा और क्षमता पर निर्भर करेगा।
- सहयोगमूलक सुरक्षा में कई अन्य अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय दोनों अभिकर्ता भी शामिल हो सकते हैं, अंतरराष्ट्रीय संगठन (संयुक्त राष्ट्र, विश्व स्वास्थ्य संगठन, विश्व बैंक, आईएमएफ आदि), गैर-सरकारी संगठन (एमनेस्टी इंटरनेशनल, रेड क्रॉस, निजी फाउंडेशन और धर्मार्थ संगठन, चर्च और धार्मिक संगठन, ट्रेड यूनियन, एसोसिएशन, सामाजिक और विकास संगठन), व्यवसाय और निगम, और महान व्यक्तित्व (जैसे मदर टेरेसा, नेल्सन मंडेला)।
- सहयोगमूलक सुरक्षा में बल का प्रयोग अंतिम उपाय के रूप में किया जा सकता है। अंतरराष्ट्रीय समुदाय को उन सरकारों से निपटने के लिए बल के प्रयोग को मंजूरी देनी पड़ सकती है जो अपनी ही जनता को मार रही हों या गरीबी, महामारी और प्रलयकारी घटनाओं की मार झेल रही जनता के दुःख दर्द की उपेक्षा कर रही हो।
- उसे अंतरराष्ट्रीय आतंकवादियों और उन्हें शरण देने वालों के खिलाफ हिंसा के इस्तेमाल पर सहमत होना पड़ सकता है। अपरम्परागत सुरक्षा तब बेहतर होती है जब बल के प्रयोग को अंतरराष्ट्रीय समुदाय द्वारा सामूहिक रूप से मंजूरी दी जाती है और लागू किया जाता है, बजाय इसके कि कोई एक देश अपने आप बल के प्रयोग करने का फैसला करे।

भारत की सुरक्षा रणनीति

- भारत को अपनी सुरक्षा के लिए पारंपरिक (सैन्य) और अपारंपरिक खतरों का सामना करना पड़ा है जो इसकी सीमाओं के भीतर से भी उभरे हैं और बाहर से भी आये हैं। इसकी सुरक्षा रणनीति के चार बड़े घटक हैं।
- पहला घटक रहा अपनी सैन्य क्षमता को मजबूत करना, क्योंकि भारत अपने पड़ोसियों के साथ संघर्षों में शामिल रहा है - 1947-48, 1965, 1971 और 1999 में पाकिस्तान के साथ; तथा 1962 में चीन के साथ।



चित्र 14.4: वर्षावन और मैंग्रोव

- भारत की सुरक्षा रणनीति का दूसरा घटक अपने सुरक्षा हितों की रक्षा के लिए अंतरराष्ट्रीय मानदंडों और अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं को मजबूत बनाना रहा है।
- भारतीय सुरक्षा रणनीति का तीसरा घटक देश के भीतर सुरक्षा चुनौतियों का सामना करने पर केंद्रित है।
- अंत में, भारत में अपनी अर्थव्यवस्था को इस तरह से विकसित करने का प्रयास किया गया है कि नागरिकों का एक बड़ा हिस्सा गरीबी और दुख से बाहर निकल सके और भारी आर्थिक असमानताओं को अस्तित्व में न आने दिया जाए। यह प्रयास पूरी तरह सफल नहीं हुआ है; हम अभी भी एक बहुत गरीब और असमान देश हैं।

आगे बढ़ते हुए हम विश्व राजनीति में पर्यावरण के साथ-साथ संसाधन मुद्दों के बढ़ते महत्त्व को देखेंगे और उसका विश्लेषण करेंगे। साझा सम्पदा संसाधनों और वैश्विक सम्पदा (global commons) की धारणाओं का भी मूल्यांकन किया जायेगा। 1992 के पृथ्वी शिखर सम्मेलन ने पर्यावरण के मुद्दों को वैश्विक राजनीति के केंद्र में ला दिया है। ऊपर दिए गए चित्र वर्षावन और गारान (मैंग्रोव) को दिखाते हैं। (चित्र 14.4 देखें)

वैश्विक राजनीति में पर्यावरण संबंधी चिंताएँ

- दुनिया भर में, कृषि योग्य क्षेत्र में अब कोई बढ़ोत्तरी नहीं हो रही है, और मौजूदा उपजाऊ जमीन का एक बड़ा हिस्सा अपनी उर्वरता खो रहा है। घास के मैदानों पर अत्यधिक चराई हो रही है और मछली पालन में अत्यधिक दोहन हो रहा है।

- ❑ जल निकायों में व्यापक कमी और प्रदूषण के कारण खाद्य उत्पादन पर गंभीर प्रतिबंध लगा है।
- ❑ संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की मानव विकास रिपोर्ट 2016 के अनुसार, विकासशील देशों में 66.3 करोड़ लोगों को सुरक्षित जल उपलब्ध नहीं होता है और 2.4 बिलियन लोगों को स्वच्छता की सुविधा उपलब्ध नहीं है, जिसके परिणामस्वरूप हर वर्ष तीस लाख से अधिक बच्चों की मृत्यु हो जाती है।
- ❑ प्राकृतिक वन - जो जलवायु को स्थिर रखने, जल आपूर्ति को संतुलित रखने, तथा धरती की अधिकांश जैव विविधता को भूमि पर आश्रय देने में सहायक होते हैं - काटे जा रहे हैं तथा लोगों को विस्थापित किया जा रहा है।
- ❑ जैव-प्रजातियों से समृद्ध क्षेत्रों में आवास के विनाश के कारण जैव विविधता की हानि जारी है।



चित्र 14.5: अरल सागर के आस-पास, हजारों लोगों को अपने घर छोड़ने पड़े हैं क्योंकि विषैले पानी ने मछली पकड़ने के उद्योग को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है।

- ❑ पृथ्वी के समताप मंडल (जिसे सामान्यतः ओजोन छिद्र कहा जाता है) में ओजोन की कुल मात्रा में लगातार गिरावट से पारिस्थितिकी तंत्र और मानव स्वास्थ्य के लिए वास्तविक खतरा उत्पन्न हो गया है।
- ❑ तटीय प्रदूषण भी वैश्विक स्तर पर बढ़ रहा है। हालाँकि मध्यवर्ती समुद्र अपेक्षाकृत साफ है, लेकिन तटीय जल जंगलों, पानी और वायुमंडल में क्रियाकलाप से प्रदूषित हो रहा है। (चित्र 14.5 देखें)

UNCED और 'सतत विकास'

जून 1992 में ब्राज़ील के रियो डी जेनेरियो में पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन आयोजित किया गया था। इसे पृथ्वी शिखर सम्मेलन भी कहा जाता है। इस शिखर सम्मेलन में 170 राज्यों, हजारों गैर सरकारी संगठनों और कई बहुराष्ट्रीय निगमों ने भाग लिया था।

- ❑ पाँच साल पहले, 1987 की ब्रंटलैंड रिपोर्ट, हमारा साझा भविष्य (आवर कॉमन फ्यूचर), ने चेतावनी दी थी कि आर्थिक विकास के पारंपरिक पैटर्न लंबे समय तक संधारणीय नहीं होंगे।
- ❑ रियो शिखर सम्मेलन में जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता, वानिकी से संबंधित सम्मेलन आयोजित किये गये तथा 'एजेंडा 21' नामक नियमाचार के कुछ तौर तरीके सुझाये गए।
- ❑ लेकिन इससे काफी मतभेद और कठिनाइयाँ पैदा हुईं। आर्थिक विकास को पारिस्थितिकी जिम्मेदारी के साथ जोड़ने पर आम सहमति थी। विकास के इस दृष्टिकोण को आम तौर पर 'सतत विकास' के रूप में जाना जाता है।

विश्व की साझी सम्पदा की सुरक्षा

- ❑ 'साझी संपदा' वे संसाधन हैं जिनका स्वामित्व किसी एक के पास नहीं होता बल्कि वे समुदाय द्वारा साझा किए जाते हैं। यह 'कॉमन रूम', 'सामुदायिक केंद्र', पार्क या नदी हो सकता है।
- ❑ इसी तरह, दुनिया के कुछ क्षेत्र या इलाके ऐसे हैं जो किसी एक देश के संप्रभु अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं और इसलिए उन्हें अंतरराष्ट्रीय समुदाय द्वारा साझा शासन की आवश्यकता है। इन्हें रेस कम्युनिस् ह्यूमैनिटैटिस या वैश्विक सम्पदा के नाम से जाना जाता है। इनमें पृथ्वी का वायुमंडल, महासागर तल और बाहरी अंतरिक्ष शामिल हैं।

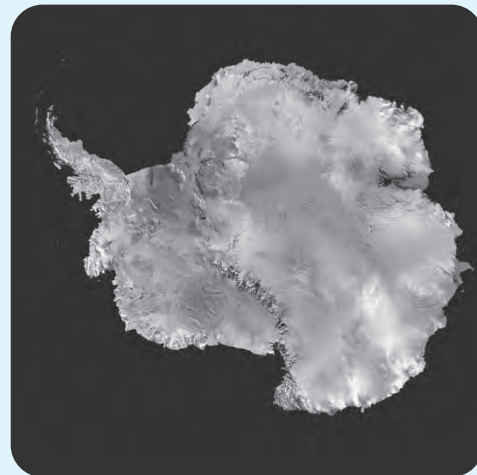
- वैश्विक साझा संसाधनों पर सहयोग के लिए कई अग्रणी समझौते हुए हैं, जैसे 1959 की अंटार्कटिका संधि, 1987 का मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल और 1991 का अंटार्कटिका पर्यावरणीय न्यायाचार (प्रोटोकॉल)। (चित्र 14.6 देखें)
- वैश्विक सम्पदा के रूप में बाहरी अंतरिक्ष के इतिहास से पता चलता है कि इन क्षेत्रों के प्रबंधन पर उत्तरी और दक्षिणी गोलार्ध के देशों के बीच मौजूद असमानताओं का असर पूरी तरह से पड़ा है।

अंटार्कटिका पर स्वामित्व किसका है?

अंटार्कटिक महादेशीय इलाका। करोड़ 40 लाख वर्ग किलोमीटर में विस्तृत है। विश्व के निर्जन क्षेत्र का 26% हिस्सा इसी महादेश के अंतर्गत आता है। स्थलीय हिम का 90% हिस्सा और धरती पर मौजूद स्वच्छ जल का 70% हिस्सा इस महादेश में मौजूद है। अंटार्कटिक महादेश का 3 करोड़ 60 लाख वर्ग किलोमीटर तक अतिरिक्त विस्तार समुद्र में है। सीमित स्थलीय जीवन वाले इस महादेश का समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र अत्यंत उर्वर है जिसमें कुछ पादप (सूक्ष्म शैवाल, कवक और लाइकेन), समुद्री स्तनधारी जीव, मत्स्य तथा कठिन वातावरण में जीवनयापन के लिए अनुकूलित विभिन्न पक्षी शामिल हैं। इसमें किल मछली भी शामिल है जो समुद्री आहार शृंखला की धुरी है और जिस पर दूसरे जानवरों का आहार निर्भर है। अंटार्कटिक प्रदेश विश्व की जलवायु को संतुलित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस महादेश की अंदरूनी हिमानी परत ग्रीन हाऊस गैस के जमाव का महत्वपूर्ण सूचना स्रोत है। साथ ही, इससे लाखों बरस पहले के वायुमंडलीय तापमान का पता किया जा सकता है।

विश्व के सबसे सुदूर ठंडे और झंझावाती महादेश अंटार्कटिका पर किसका स्वामित्व है? इसके बारे में दी दावे किये जाते हैं। कुछ देश जैसे- ब्रिटेन, अर्जेंटीना, चिली, नॉर्वे, फ्रांस, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड ने अंटार्कटिक क्षेत्र पर अपने संप्रभु अधिकार का वैधानिक दावा किया। अन्य अधिकांश देशों ने इससे उलटा रुख अपनाया कि अंटार्कटिक प्रदेश विश्व की साझी संपदा है और यह किसी भी देश के क्षेत्राधिकार में शामिल नहीं है। इस मतभेद के रहते अंटार्कटिका के पर्यावरण और पारिस्थितिकी तंत्र को सुरक्षा के नियम बने और अपनाये गए। ये नियम कल्पनाशील और दूरगामी प्रभाव वाले हैं। अंटार्कटिका और पृथ्वी के ध्रुवीय क्षेत्र पर्यावरण सुरक्षा के विशेष क्षेत्रीय नियमों के अंतर्गत आते हैं।

1959 के बाद इस इलाके में गतिविधियों वैज्ञानिक अनुसंधान, मत्स्य आखेट और पर्यटन तक सीमित रही हैं। लेकिन इतनी कम गतिविधियों के बावजूद इस क्षेत्र के कुछ हिस्से अवशिष्ट पदार्थ जैसे तेल के रिसाव के रथाव में अपनी गुणवत्ता खो रहे हैं।



चित्र 14.6: अंटार्कटिका

साझी परन्तु अलग-अलग जिम्मेदारियाँ

- उत्तरी गोलार्ध के विकसित देश पर्यावरणीय मुद्दे पर वर्तमान स्थिति के अनुसार चर्चा करना चाहते हैं तथा चाहते हैं कि पर्यावरण के संरक्षण के लिए सभी लोग समान रूप से जिम्मेदार हों।
- दक्षिण के विकासशील देशों का मानना है कि दुनिया में पारिस्थितिकी तंत्र का अधिकांश क्षरण विकसित देशों द्वारा किए गए औद्योगिक विकास का परिणाम है। यदि उन्होंने अधिक क्षरण किया है, तो उन्हें अब नुकसान को कम करने के लिए अधिक जिम्मेदारी भी लेनी चाहिए।
- इस तर्क को 1992 में पृथ्वी शिखर सम्मेलन में रियो घोषणापत्र में स्वीकार किया गया था और इसे 'साझा लेकिन अलग-अलग जिम्मेदारियों' का सिद्धांत कहा जाता है। रियो घोषणापत्र के प्रासंगिक हिस्से में कहा गया है कि "राज्य धरती के पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य और अखंडता को संरक्षित, सुरक्षित और बहाल करने के लिए वैश्विक बंधुत्व की भावना से आपस में सहयोग करेंगे।
- विकसित देश अपने समाज द्वारा वैश्विक पर्यावरण तथा तकनीकी एवं वित्तीय संसाधनों पर डाले जाने वाले दबावों को देखते हुए सतत विकास के अंतरराष्ट्रीय प्रयास में अपनी जिम्मेदारी स्वीकार करते हैं।
- जलवायु परिवर्तन पर 1992 के संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन (UNFCCC) में यह भी प्रावधान है कि पक्षों को जलवायु प्रणाली की रक्षा के लिए "समानता के आधार पर तथा अपनी साझा लेकिन अलग-अलग जिम्मेदारियों और संबंधित क्षमताओं के अनुसार" कार्य करना चाहिए।
- सम्मेलन के पक्ष इस बात पर सहमत हुए कि ग्रीनहाउस गैसों के ऐतिहासिक और वर्तमान वैश्विक उत्सर्जन का सबसे बड़ा हिस्सा विकसित देशों से आया है। यह भी स्वीकार किया गया कि विकासशील देशों में प्रति व्यक्ति उत्सर्जन अभी भी अपेक्षाकृत कम है। इसलिए, चीन, भारत और अन्य विकासशील देशों को क्योटो प्रोटोकॉल की आवश्यकताओं से छूट दी गई।

- ❑ क्योटो प्रोटोकॉल एक अंतरराष्ट्रीय समझौता है जो औद्योगिक देशों के लिए अपने ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कटौती करने के लिए लक्ष्य निर्धारित करता है। कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन, हाइड्रोफ्लोरोकार्बन आदि जैसी कुछ गैसों को ग्लोबल वार्मिंग के लिए कम से कम आंशिक रूप से जिम्मेदार माना जाता है - वैश्विक तापवृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग) में इनकी कोई न कोई भूमिका जरूर है ग्लोबल वार्मिंग की परिघटना में विश्व का तापमान बढ़ता है जो पृथ्वी पर जीवन के लिए विनाशकारी साबित होगी। UNFCCC में निर्धारित सिद्धांतों के आधार पर 1997 में जापान के क्योटो में प्रोटोकॉल पर सहमति हुई थी।

साझी संपदा (Common Property Resources)

- ❑ साझी संपदा समूह के लिए साझी संपदा का प्रतिनिधित्व करती है। यह समूह के लिए सामान्य संपत्ति का प्रतिनिधित्व करती है, लेकिन इस नियम के साथ कि समूह के सदस्यों के पास किसी दिए गए संसाधन की प्रकृति, उपयोग के स्तर के संबंध में अधिकार और कर्तव्य दोनों होते हैं।
- ❑ निजीकरण, कृषि गहनता, जनसंख्या वृद्धि और पारिस्थितिकी तंत्र क्षरण सहित कई कारकों के कारण दुनिया के अधिकांश हिस्सों में साझी संपदा का आकार, गुणवत्ता और गरीबों के लिए उपलब्धता कम हो गई है।

पर्यावरण संबंधी मुद्दों पर भारत का रुख

- ❑ भारत ने अगस्त 2002 में 1997 के क्योटो प्रोटोकॉल पर हस्ताक्षर और अनुमोदन किया।
- ❑ जून 2005 में G-8 की बैठक में भारत ने बताया कि विकासशील देशों की प्रति व्यक्ति उत्सर्जन दर विकसित देशों की तुलना में बहुत छोटी है।
- ❑ भारत सरकार पहले से ही कई कार्यक्रमों के माध्यम से वैश्विक प्रयासों में भाग ले रही है। उदाहरण के लिए, भारत की राष्ट्रीय ऑटो-ईंधन नीति वाहनों के लिए स्वच्छ ईंधन को अनिवार्य बनाती है। 2001 में पारित ऊर्जा संरक्षण अधिनियम, ऊर्जा दक्षता में सुधार के लिए पहल की रूपरेखा तैयार करता है। 2003 का बिजली अधिनियम नवीकरणीय (Renewable) ऊर्जा के उपयोग को प्रोत्साहित करता है।
- ❑ भारत का यह भी मानना है कि सार्क देशों को प्रमुख वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दों पर एक साझा रुख अपनाना चाहिए, ताकि क्षेत्र के प्रतिनिधित्व को अधिक महत्त्व मिल सके।

पर्यावरण आंदोलन

- ❑ पर्यावरण आंदोलनों का नेतृत्व दुनिया के विभिन्न हिस्सों में काम करने वाले पर्यावरण के प्रति जागरूक कार्यकर्ताओं के समूहों द्वारा किया जाता है। उनमें से कुछ अंतरराष्ट्रीय स्तर पर काम करते हैं, लेकिन उनमें से अधिकांश स्थानीय स्तर पर काम करते हैं।
- ❑ दक्षिणी गोलार्ध के मैक्सिको, चिली, ब्राजील, मलेशिया, इंडोनेशिया, महाद्वीपीय अफ्रीका और भारत (यह केवल कुछ उदाहरण हैं) को वन आंदोलनों को भारी दबाव का सामना करना पड़ रहा है।
- ❑ खनिज उद्योग द्वारा मिट्टी का दोहन, रसायनों का प्रयोग, जलमार्गों और भूमि का प्रदूषण, देशी वनस्पतियों का सफाया, समुदायों का विस्थापन, अन्य कारकों के अलावा, विश्व के विभिन्न भागों में आलोचना और प्रतिरोध को आमंत्रित करना जारी है।
- ❑ आंदोलनों का एक और समूह वे हैं जो बड़े बांधों के खिलाफ संघर्ष में शामिल हैं। हर देश में जहाँ कोई बड़ा बांध बनाया जा रहा है, वहाँ उसका विरोध करने वाला कोई न कोई पर्यावरण आंदोलन मिल ही जाता है।
- ❑ 1980 के दशक की शुरुआत में उत्तर में पहला बांध विरोधी आंदोलन शुरू हुआ, जिसका नाम था ऑस्ट्रेलिया में फ्रैंकलिन नदी और उसके आसपास के जंगलों को बचाने का अभियान। भारत में बांध विरोधी और नदी समर्थक कुछ प्रमुख आंदोलन हुए हैं। नर्मदा बचाओ आंदोलन इन आंदोलनों में से सबसे प्रसिद्ध है।
- ❑ तटीय पर्यावरणीय मुद्दों और मत्स्य कानूनों के बारे में अधिक जानने के लिए चित्र 14.7 देखें।

निर्जन वन

- ❑ दक्षिण के जंगलों की गतिविधियाँ उत्तर के जंगलों से भिन्न हैं। दक्षिण के जंगलों में अभी भी लोग रहते हैं, जबकि उत्तर के जंगलों में कमोबेश मानव निवास नहीं है।
- ❑ यह कुछ हद तक उत्तर में जंगल के बारे में प्रचलित धारणा को स्पष्ट करता है कि यह एक 'जंगली स्थान' है जहाँ लोग नहीं रहते।
- ❑ इस परिप्रेक्ष्य में, मनुष्य को प्रकृति का हिस्सा नहीं माना जाता। दूसरे शब्दों में, 'पर्यावरण' को 'कहीं दूर की चीज' माना जाता है, जिसे पार्क और रिजर्व बनाकर मनुष्यों से बचाया जाना चाहिए।

विचारणीय बिंदु

सामान्य लेकिन अलग-अलग जिम्मेदारियों की माँग है कि अविकसित और विकासशील देशों को वैश्विक पर्यावरण संरक्षण नीतियों का पालन करने के लिए कुछ रियायतें दी जानी चाहिए। क्या आप उस संघर्ष के बारे में सोच सकते हैं जिसका सामना दुनिया कर रही है, जहाँ भारत जैसे विकासशील देश ऐतिहासिक उत्सर्जन के लिए जिम्मेदार नहीं हैं और इसलिए उन्हें दंडित नहीं किया जाना चाहिए और पश्चिमी देशों की तरह विकास करने का अवसर दिया जाना चाहिए, जबकि हम वर्तमान में कार्बन डाई ऑक्साइड के तीसरे सबसे बड़े उत्सर्जक हैं, क्या हमें उत्सर्जन को प्रतिबंधित करने के लिए अधिक योगदान नहीं देना चाहिए?





चित्र 14.7: तटीय पर्यावरणीय मुद्दे

- ❑ दूसरी ओर, दक्षिण में अधिकांश पर्यावरणीय मुद्दे इस धारणा पर आधारित हैं कि लोग जंगलों में रहते हैं।
- ❑ ऑस्ट्रेलिया, स्कैंडिनेविया, उत्तरी अमेरिका और न्यूजीलैंड में जंगल-उन्मुख दृष्टिकोण प्रमुख रहे हैं। इन क्षेत्रों में, अधिकांश यूरोपीय देशों के विपरीत, अभी भी अपेक्षाकृत 'अविकसित जंगल' के बड़े हिस्से मौजूद हैं।
- ❑ फिलीपींस (दक्षिण) में, हरित संगठन गरुड़ और अन्य शिकारी पक्षियों को विलुप्त होने से बचाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं।
- ❑ भारत में बंगाल टाइगर की बेहद कम संख्या को बचाने के लिए मुहिम जारी है। अफ्रीका में हाथीदांत के व्यापार और हाथियों के बर्बर वध के खिलाफ लंबे समय से अभियान चलाया जा रहा है। कुछ सबसे प्रसिद्ध संघर्ष ब्राजील और इंडोनेशिया के जंगलों में छिड़े हैं।
- ❑ ये सभी अभियान अलग-अलग प्रजातियों के साथ-साथ जंगल के आवासों के संरक्षण पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जो उन्हें सहारा देते हैं। हाल के दिनों में जंगल के कई मुद्दों का नाम बदलकर जैव विविधता के मुद्दे कर दिया गया है, क्योंकि दक्षिण में जंगल की अवधारणा को स्वीकृति मिलना मुश्किल साबित हुआ है।
- ❑ इनमें से कई अभियान स्थानीय लोगों के सहयोग से वर्ल्ड वाइड फण्ड (WWF) जैसे गैर सरकारी संगठनों द्वारा शुरू और वित्तपोषित किए गए हैं।

संसाधनों की भूराजनीति

- ❑ संसाधनों की भूराजनीति का संबंध इस बात से है कि किसे क्या, कब, कहाँ और कैसे प्राप्त होता है।
- ❑ शीत युद्ध के दौरान उत्तर के औद्योगिक देशों ने संसाधनों के सतत आपूर्ति को सुनिश्चित करने के लिए अनेक तरीके अपनाए, जैसे शोषण स्थलों के निकट तथा संचार के समुद्री मार्गों पर सैन्य बलों की तैनाती, सामरिक संसाधनों का भण्डारण, तथा उत्पादक देशों में मित्रवत सरकारों को बढ़ावा देने के प्रयास।
- ❑ विशेष चिंता का विषय खाड़ी क्षेत्र में तेल तथा दक्षिणी एवं मध्य अफ्रीका में सामरिक खनिजों पर पश्चिमी नियंत्रण था।
- ❑ वैश्विक अर्थव्यवस्था 20वीं सदी के अधिकांश समय में पोर्टेबल और अपरिहार्य ईंधन के रूप में तेल पर निर्भर रही। तेल से जुड़ी अपार संपदा इसे नियंत्रित करने के लिए राजनीतिक संघर्षों को जन्म देती है, और पेट्रोलियम का इतिहास युद्ध और संघर्ष का भी इतिहास है।

- ❑ जल एक अन्य महत्वपूर्ण संसाधन है, जो वैश्विक (निचले तटवर्ती) राज्य द्वारा प्रदूषण, अत्यधिक सिंचाई, या ऊपरी तटवर्ती राज्य द्वारा बांधों के निर्माण पर आपत्ति के लिए प्रासंगिक है, जिससे निचले तटवर्ती राज्य को उपलब्ध जल की गुणवत्ता में कमी या गिरावट आ सकती है।
- ❑ राज्यों ने मीठे पानी के संसाधनों की रक्षा या उन्हें जब्त करने के लिए बल का इस्तेमाल किया है। हिंसा के उदाहरणों में 1950 और 1960 के दशक में इजरायल, सीरिया और जॉर्डन के बीच जॉर्डन और यार्मुक नदियों से पानी मोड़ने के प्रत्येक पक्ष के प्रयासों को लेकर हुई हिंसा और हाल ही में यूफ्रेट्स नदी पर बांधों के निर्माण को लेकर तुर्की, सीरिया और इराक के बीच हुई धमकियाँ शामिल हैं।

विचारणीय बिंदु

क्या ऐसे उभरते या संभावित संसाधन संघर्ष हैं जो इतिहास में अच्छी तरह से प्रलेखित नहीं हैं, लेकिन भविष्य में महत्वपूर्ण भू-राजनीतिक मुद्दे बन सकते हैं? वैश्विक स्थिरता और सुरक्षा पर ऐसे संघर्षों के क्या प्रभाव हो सकते हैं? क्या आप दुर्लभ पृथ्वी धातुओं की बढ़ती माँग के मद्देनजर इस प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं?



मूलवासी और उनके अधिकार

- ❑ संयुक्त राष्ट्र ने स्वदेशी आबादी को उन लोगों के वंशजों के रूप में परिभाषित किया है जो किसी देश के वर्तमान भूभाग पर उस समय निवास करते थे जब भिन्न संस्कृति या जातीय मूल के लोग विश्व के अन्य भागों से वहाँ पहुँचे और उन पर विजय प्राप्त की।
- ❑ आज के समय में मूलवासी लोग अपने देश की संस्थाओं की तुलना में अपने विशेष सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रीति-रिवाजों और परंपराओं के अनुरूप अधिक रहते हैं, जिसका वे अब हिस्सा हैं। उदाहरण के लिए, भारत में पवित्र उपवन।
- ❑ अन्य सामाजिक आंदोलनों की तरह, स्वदेशी लोग अपने संघर्षों, अपने एजेंडे और अपने अधिकारों की बात करते हैं।
- ❑ मूल निवासी लोग मध्य और दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका, भारत (जहाँ उन्हें आदिवासी के रूप में जाना जाता है) और दक्षिण पूर्व एशिया के क्षेत्रों में रहते हैं।
- ❑ भारत में, 'मूलवासी लोग' शब्द का प्रयोग सामान्यतः अनुसूचित जनजातियों के लिए किया जाता है, जो देश की जनसंख्या का लगभग 8% हैं।
- ❑ विश्व आदिवासी परिषद का गठन 1975 में किया गया था। इसके बाद यह परिषद संयुक्त राष्ट्र में परामर्शदात्री दर्जा प्राप्त करने वाली 11 आदिवासी गैर सरकारी संगठनों में से पहली बन गयी।

भारत के पावन वन प्रांतर

बहुत से पुराने समाजों में धार्मिक कारणों से प्रकृति की रक्षा करने का चलन चलन है। भारत में विद्यमान 'पावन वन-प्रांतर' इस चलन के सुंदर उदाहरण है। इस प्रथा में वनों के कुछ हिस्सों को काटा नहीं जाता। इन स्थानों पर देवता अथवा किसी पुण्यात्मा का वास माना जाता है। इन्हें ही 'पावन वन प्रांतर' या 'देवस्थान' कहा जाता है। इन पावन वन-प्रांतरों के देशव्यापी फैलाव का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि देशभर की भाषाओं में इनके लिए अलग-अलग शब्द हैं। इन देवस्थानों को राजस्थान में वानी, केकड़ी और ओरान; झारखंड में जहेरा थान और सरना; मेघालय में लिंगदोह; केरल में काव; उत्तराखंड में थान या देवभूमि और महाराष्ट्र में देव रहतिस आदि सैकड़ों नामों से जाना जाता है। पर्यावरण संरक्षण से जुड़े साहित्य में 'देवस्थान' के महत्त्व को अब स्वीकार किया जा रहा है और इसे समुदाय आधारित संसाधन प्रबंधन के रूप में देखा जा रहा है। 'देवस्थान' को हम ऐसी व्यवस्था के रूप में देख सकते हैं जिसके अंतर्गत पुराने समाज प्राकृतिक संसाधनों का इस्तेमाल इस तरह करते हैं कि पारिस्थितिकी तंत्र का संतुलन बना रहे। कुछ अनुसंधानकर्ताओं का विश्वास है कि 'देवस्थान' की मान्यता से जैव-विविधता और पारिस्थितिकी संरक्षण में ही नहीं सांस्कृतिक वैविध्य को भी कायम रखने में मदद मिल सकती है। 'देवस्थान' की व्यवस्था वन-संरक्षण के विभिन्न तौर-तरीकों से संपन्न है और इस व्यवस्था की विशेषताएँ साझी संपदा के संरक्षण की व्यवस्था से मिलती-जुलती है। 'देवस्थान' के महत्त्व का परंपरागत आधार ऐसे क्षेत्र की आध्यात्मिक अथवा सांस्कृतिक विशेषताएँ हैं। हिंदू समवेत रूप से प्राकृतिक वस्तुओं की पूजा करते हैं जिसमें पेड़ और वन-प्रान्तर भी शामिल हैं। बहुत से मंदिरों का निर्माण 'देवस्थान' में हुआ है। संसाधनों की विरलता नहीं प्रकृति के प्रति गहरी श्रद्धा ही वह आधार थी जिसने इतने युगों से वनों को बचाए रखने की प्रतिबद्धता कायम रखी। बहरहाल, हाल के सालों में मनुष्यों की बसाहट के विस्तार ने धीरे-धीरे ऐसे 'देवस्थानों' पर अपना कब्जा कर लिया है।

नई राष्ट्रीय वन नीतियों के का कानूनी स्वामित्व एक के पास हो और व्यावहारिक नियंत्रण किसी दूसरे के हाथ में हो। कानूनी स्वामित्व राज्य का हो और व्यावहारिक नियंत्रण समुदाय के हाथ में। इन दोनों के नीतिगत मानक अलग-अलग हैं और 'देवस्थान' के उपयोग के उद्देश्यों में भी इनके बीच कोई मेल नहीं।

निष्कर्ष

लोकतांत्रिक राजनीति गरीबी और वैश्विक नागरिकों की आवश्यकताओं को पूरा करने का अवसर प्रदान करती है। लोकतांत्रिक रूप से चुनी हुई सरकारों पर आर्थिक विकास को सामाजिक विकास के साथ जोड़ने का दबाव होता है। इस प्रकार लोकतंत्र केवल एक राजनीतिक आदर्श नहीं है, बल्कि एक लोकतांत्रिक सरकार, अधिक समृद्धि और अवसर प्रदान करने का एक तरीका भी है। प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण आने वाली पीढ़ियों की जरूरतों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। भविष्य के लिए इन संसाधनों का संरक्षण हमारा उत्तरदायित्व है। आने वाली पीढ़ियों के लिए जैव विविधता का संरक्षण सबसे आवश्यक कार्य है। हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिए पारिस्थितिकी तंत्र और इन संसाधनों की स्थिरता बनाए रखने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण आवश्यक है। सतत विकास एक सिद्धांत है, जिसके अनुसार हमें अपने संसाधनों का इस प्रकार उपयोग करना चाहिए कि वे हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिए भी उपलब्ध रहें।

महत्त्वपूर्ण शब्दावलियाँ

- ❖ **सुरक्षा:** मानव जीवन के अस्तित्व को बाहरी या आंतरिक खतरों से बचाने के लिए एक सार।
- ❖ **शस्त्र नियंत्रण:** यह हथियारों के अधिग्रहण को नियंत्रित करता है।
- ❖ **निरस्त्रीकरण:** यह राज्यों को सामूहिक विनाश से बचने के लिए कुछ प्रकार के हथियारों का त्याग करने के लिए बाध्य करता है।
- ❖ **विश्वास निर्माण:** एक प्रक्रिया जिसमें विभिन्न देश अपनी सैन्य योजनाओं के बारे में एक-दूसरे को सूचित करके प्रतिद्वंद्वी देशों के साथ विचार और जानकारी साझा करते हैं।
- ❖ **वैश्विक गरीबी:** इसका तात्पर्य ऐसे देश से है जो कम आय और कम आर्थिक विकास से पीड़ित हैं, और उसे सबसे कम विकसित या विकासशील देश की श्रेणी में रखा जाता है।
- ❖ **प्रवास:** यह कुछ विशेष कारणों से मानव संसाधनों का एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थानांतरण है।
- ❖ **पृथ्वी शिखर सम्मेलन:** विभिन्न पर्यावरणीय समस्याओं से निपटने के लिए जून 1992 में रियो डी जेनेरियो (ब्राजील) में पर्यावरण और विकास पर एक सम्मेलन आयोजित किया गया।
- ❖ **एजेंडा 21:** पृथ्वी शिखर सम्मेलन में स्थिरता प्राप्त करने के लिए विकास के संदर्भ में प्रथाओं की एक सूची की सिफारिश की गई, जिसे एजेंडा 21 कहा गया।
- ❖ **क्योटो प्रोटोकॉल:** औद्योगिक देशों के लिए ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कटौती के लक्ष्य निर्धारित करने वाले एक अंतरराष्ट्रीय समझौते पर वर्ष 1997 में जापान के क्योटो में सहमति बनी थी, जो UNFCCC में निर्धारित सिद्धांतों पर आधारित था।
- ❖ **यूएनएफसीसीसी (UNFCCC):** जलवायु परिवर्तन पर वर्ष 1992 के संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन में यह प्रावधान किया गया था कि सभी पक्षों को समान किन्तु अलग-अलग जिम्मेदारियों के साथ जलवायु प्रणाली की रक्षा के लिए कार्य करना चाहिए।
- ❖ **मूलवासी लोग:** मूलवासी लोगों में उन लोगों के वंशज शामिल होते हैं जो किसी देश के वर्तमान क्षेत्र में उस समय निवास करते थे जब दुनिया के विभिन्न हिस्सों से विभिन्न संस्कृति के लोग वहाँ पहुँचे थे।



इस शृंखला की अन्य पुस्तकें

